CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

# संस्कृत में एकांकी रूपक

डॉ० वीरबाला शर्मा

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी. ६६४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

# संस्कृत में एकांकी रूपक

शिक्षा तथा समाज कल्याण मन्त्रालय भारत सरकार की विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजना
के अन्तर्गत मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

# संस्कृत में एकांकी रूपक

डॉ० वीरबाला शर्मा

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत में एकांकी रूपक

प्रकाशक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

© मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्रथम संस्करण : १९७२

क्र. नं. १८८८२
...विद्यापीठ-पुस्तकालय

मूल्य
पुस्तकालय संस्करण : १४=००
साधारण संस्करण : १२=५०

मुद्रक
अनुपम मुद्रण
गोविन्दपुरा,
भोपाल—२३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

# प्रस्तावना

नाट्य कृतियों की दृष्टि से संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध रहा है। नाट्य और नृत्य के बीज वैदिक संहिताओं में भी मिलते हैं। ईसा पूर्व ५०० के लगभग तो रंगमंच पर नाट्य कृतियों का प्रयोग होने लगा था और उसी समय के लगभग नाट्य सूत्रों का निर्माण होने का भी पता चलता है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में रंगमंच और अभिनय सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। नाट्य शास्त्र के निर्माण के बाद तो इस विषय को समग्र शास्त्र का रूप ही प्राप्त हो गया जिससे आगे चलकर काव्यशास्त्र का भी विकास हुआ।

यह बात सहज में समझ में आ सकती है कि नाट्य-ग्रन्थों के निर्माण के पूर्व ग्रामों और नगरों में भी अभिनय और रंगमंच का विकास हो चुका होगा। प्रारम्भ में रंगमंच पर नृत्य प्रदर्शन होता रहा होगा जो मानवीय संवेदनाओं के प्रकाशन के साथ जुड़कर नृत्य में परिणत हो गया होगा। बाद में बात-चीत या संवादों के योग से नृत्य का रूप बदल कर अभिनय में परिवर्तित हो गया होगा। यदि विकास के इस क्रम को ठीक माना जाये तो कहा जा सकता है कि नाट्य कृतियों में सबसे पहले एकांकिओं का प्रणयन हुआ होगा। प्रारम्भ में किसी विशेष घटना या तथ्य के प्रदर्शन या निरूपण के लिए अभिनय का सहारा लिया गया होगा और बाद में कई घटनाओं को जोड़कर समूचे नाटक को प्रस्तुत किया गया होगा। नाट्य शास्त्रकारों ने रूपक के दस भेदों का परिगणन करते समय नाटक का जो सर्व प्रथम उल्लेख किया है, वह उस समय की चरम उपलब्धि थी। यह तथ्य इस बात से भी स्पष्ट है कि संस्कृत में प्राप्त होने वाले प्राचीन उत्तम रूपक कलेवर की दृष्टि से छोटे हैं। और भास के नाटकों में तो बहुत से एकांकी ही हैं। किन्तु जिस प्रकार भास के पश्चात एक लम्बे काल तक नाटकों का पता नहीं चलता उसी प्रकार एकांकियों की भी कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। इस क्षेत्र में प्रथम महत्वपूर्ण कृतियाँ चतुर्भाणी ही हैं। चतुर्भाणी के पश्चात् संस्कृत में जो एकांकियों की परम्परा चली वह आज तक अबाध रूप से चली जा रही है। इसलिए आधुनिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समीक्षकों का यह कहना कि भारत में एकांकियों का प्रचलन यूरोप के प्रभाव से हुआ, केवल उनके अज्ञान का द्योतक है।

डा० वीरबाला शर्मा ने इस कृति में भारतीय एकांकी परम्परा का समीक्षात्मक एवं विशद अध्ययन प्रस्तुत किया है। इससे न केवल संस्कृत एकांकियों की दीर्घकालीन परम्परा और विपुल संख्या का ही पता चलता है अपितु उनकी विविधता एवं बहुरूपता का भी परिज्ञान होता है। समीक्षण के मध्य डा० शर्मा ने समुचित उद्धरणों के द्वारा कथन की प्रामाणिकता एवं सरसता में भी वृद्धि की है। उन्होंने संस्कृत के आधुनिक एकांकियों के साथ आधुनिक भारतीय भाषाओं के एकांकियों की भी संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की है।

मेरा विश्वास है कि साहित्य के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक ज्ञानवर्धक और रुचिकर सिद्ध होगी।

प्रभुदयालु अग्निहोत्री

( डा० प्रभुदयालु अग्निहोत्री )
संचालक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

# भूमिका

किसी भी राष्ट्र के महत्व का ज्ञान उसकी साहित्यसम्पदा द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्", "नाटके नटवन्नित्य रसास्वादः पदे पदे"... इत्यादि वाक्यों द्वारा आलोचकों ने नाट्यसाहित्य की रमणीयता और उपयोगिता का परिचय दिया है। आज के कार्यसंकुल युग में भी इसकी महत्ता को देखकर लोकरञ्जन और लोकरक्षण के लिए एकांकियों के प्रणयन को प्रोत्साहन दिया जाने लगा है। नाट्यसाहित्य की इस विधा की आलोचना के भण्डार को भी पुष्ट बनाने का यत्न साहित्यजगत् में हो रहा है। परिणामस्वरूप वर्तमान युग में प्राच्य तथा पाश्चात्य साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उनका मूल्यांकन करने की परम्परा चल पड़ी है, जिसका प्रचार द्रुतगति से हो रहा है। यद्यपि आज विभिन्न साहित्यिक क्षेत्रों में समालोचनात्मक ग्रन्थों का अभाव नहीं है तथापि नाट्यविभाग की स्थिति अब भी दयनीय-सी ही है। अधुनातन उपलब्ध नाट्यविषयक ग्रन्थों में भी नाट्यशास्त्र अथवा रूपक के प्रमुख प्रकारों (नाटक, प्रकरण, सट्टक आदि) से सम्बद्ध रचनाओं की संख्या अधिक है। उनमें भी अधिकांश संस्कृत के विख्यात कवियों के सुपरिचित नाटकों (शाकुन्तल, उत्तर-रामचरित, कर्पूरमञ्जरी आदि) के यत्किञ्चित टीका-टिप्पणी-सहित विभिन्न भाषाओं में रूपान्तर मात्र है। संस्कृत की अतिप्राचीनकाल से प्रवाहित होने वाली एकांकी रूपकों की अमृतमयी सरिता का अवगाहन तो कम काव्यरसिकों ने ही किया है। नाट्य के नियामक ग्रन्थों में एकांकी रूपकों तथा उपरूपकों के सोदाहरण विस्तृत विवेचनों, संस्कृत साहित्य के इतिहासों एवं हस्तलिखित पोथियों की पुष्पिकाओं में अंकित एकांकियों की विशद नामावली को देखने से और उनके परिशीलन से यह रहस्य खुल जाता है कि संस्कृत के एकांकी भोक्ता को आनन्दमग्न कर देने के साथ-साथ अमृतमय शिक्षा देने में भी सक्षम हैं।

प्रायः सब आधुनिक समालोचक संस्कृत में एकांकियों की सत्ता तथा उनकी प्राचीनता को तो स्वीकार करते हैं परन्तु वे अनेक कारणों से उन्हें एकांकियों की कोटि में रखने को तैयार नहीं हैं।

अधुनातन भारतीय समीक्षात्मक साहित्य पर यद्यपि यूरोपीय प्रभाव बहुत बढ़ गया है, तो भी उसे वैदिक-काल से चली आ रही भारतीय मान्यताओं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



से पृथक् करके समझा नहीं जा सकता। अतः भारतीय साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए साहित्य के प्रत्येक विद्यार्थी का काव्य (जिसमें नाटक और कथा-साहित्य भी सम्मिलित है) की मूलभूत मान्यताओं को समझ लेना परमावश्यक है।

पश्चिम के सम्पर्क तथा संस्कृत और प्राकृत के पठन-पाठन की परम्परा के विच्छिन्न हो जाने के कारण आज के सामान्य विद्यार्थी की संस्कृत भाषा को हृदयंगम करने की शक्ति क्षीणप्राय हो चुकी है। लोकरुचि भी इस ओर नहीं है। विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी अथवा इसके समकक्ष समझी जाने वाली अन्य भाषाओं के माध्यम से संस्कृत के शास्त्रीय एवं साहित्यिक विषयों का ज्ञान कराया जाता है। अतः संस्कृत-साहित्य के पाठ को समुचित रूप से ग्रहण न कर सकने के कारण कभी-कभी अर्थ का अनर्थ हो जाया करता है और अनेक भ्रम फैल जाते हैं। इसके यथेष्ट प्रमाण समानालोचत्मक ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। जैसे– किसी आधुनिक विचारक के अनुसार भाण में कैशिकी वृत्ति नहीं होती जबकि संस्कृत के साहित्याचार्य उसमें उक्त वृत्ति का स्पष्ट शब्दों में विधान करते हैं। इसी प्रकार प्राचीन रूपक-लक्षणकर्ताओं द्वारा निरूपित रूपक के भेदों के लक्षण एवं वर्गीकरण के अनुसार कतिपय रचनाओं का समावेश निश्चित रूप से किस वर्ग में किया जाय इसका निर्धारण करना भी कठिन ही है। भास्कर के "उन्मत्तराघव" को कोई अंक के दृष्टान्त के रूपमें उद्धृत करते हैं तो कोई उसे प्रेक्षणक कीं संज्ञा देते हैं। व्यायोग और उत्सृष्टिकांक का क्षेत्र भी विवादास्पद है। किसी ने लटकमेलक प्रहसन को ईहामृग कह कर साहित्यिकों के समक्ष एक नई समस्या प्रस्तुत कर दी है।

प्रारम्भ में लेखन के साधनों के अभाव में कण्ठाग्र करके साहित्य को जीवित रखने की प्रथा थी और साहित्य के ऐसे रक्षकों की संख्या भी अल्प थी। विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा पुस्तकालयों के नष्ट कर दिये जाने तथा गिने चुने महाकवियों के अतिरिक्त शेष कवियों के प्रति विद्वानों के उपेक्षा-भाव के फलस्वरूप अगणित एकांकियों के नाम तक नष्ट हो चुके हैं। उपलब्ध कृतियों के भी सार्वजनिक पुस्तकालयों में दर्शन तक नहीं हो पाते। इन पर किसी ने टीका तक करने का भी प्रयास नहीं किया है। केवल चतुर्भाणी (पद्मप्राभृतक, धूर्तविटसंवाद, उभयाभिसारिका और पादताडितक) पर कतिपय पूर्वीय एवं पश्चिमीय विचारकों ने अवश्य ध्यान दिया है, जिनसे इनके इतिहास तथा पात्रों के चरित्र पर कुछ प्रकाश पड़ता है, परन्तु इनकी साहित्यिक महत्ता और इनकी आधुनिकतम उपयोगिता का ज्ञान नहीं हो पाता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



यह ठीक है कि आधुनिक नाटक के तन्त्र का बहुत विकास हुआ है और पश्चिम से परिचय होने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से अनेक रङ्गमञ्चीय परिवर्तन भी हुए हैं, परन्तु परिवर्तन का अर्थ किसी कला का पतन नहीं होता है। उत्थान और पतन की क्रिया का नाम परिवर्तन है।

प्रत्येक देश के साहित्य की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं जो युगधारा के अनुसार बदलती जाती हैं। संस्कृत में दुःखान्त नाटकों का अभाव इनकी प्रमुख विशेषता है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा नहीं मरती। सत्य की क्षणिक पराजय होने पर भी अन्ततोगत्वा न्याय की ही विजय होती है। इस दृष्टि से जीवन सदा आशामय है। इसी कारण शुद्ध दुःख-प्रवण नाटक संस्कृत में नहीं रचे जाते थे। परन्तु युग ने संस्कृत के आचार्यों को भी इस दिशा में आगे बढ़ने को बाध्य किया है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और अन्तर्द्वन्द्व के चित्र भी प्राचीन नाटकों में कम मिलते हैं। कहा जाता है कि हास्य के क्षेत्र में भी संस्कृत और उस पर आधारित भारतीय साहित्य में उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं हुई। संस्कृत के एकांकियों के शास्त्रीय लक्षणों को देखने से तो ऐसा आभास होता है कि हास्य से युक्त रचना के प्रणयन के समय औचित्यानौचित्य का ध्यान रखने का विधान था, किन्तु साहित्यकारों को उसमें पूरी सफलता नहीं मिल सकी क्योंकि प्राचीन हास्यप्रधान रचनाओं में बुभुक्षित ब्राह्मण विदूषक का या निम्नकोटि के पात्रों का ही चित्रण किया गया है। हास्य कृतियों की हीन अवस्था केवल भारत में ही नहीं, पश्चिम में भी रही है। किसी कलाकृति का रूप निखरते-निखरते ही निखरता है। आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ इस क्षेत्र में भी पर्याप्त सुधार हुआ है।

आज हमारा देश विचित्र संक्रमण काल से गुजर रहा है। हम अतीत के आधार पर नवीन का निर्माण करने की ओर अग्रसर हैं। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अधुनातन नाट्यशिल्प और रंगमंच का विचार करते समय प्राचीन धरोहर का भी लेखा-जोखा लें। प्रस्तुत रचना का उद्देश्य एकांकियों के क्षेत्र में भारत की देन को साहित्यानुरागियों के सम्मुख प्रस्तुत करना है। इस रचना के अध्ययन से यह भेद भी खुलेगा कि पथप्रदर्शक के रूप में भास-कृत अनेक एकांकी रचनाओं के होते हुए भी संस्कृत के एकांकी नाट्य-साहित्य का श्रृंगार एवं हास्यमूलक पक्ष किस प्रकार एक अन्य जघन्य दिशा की ओर प्रवृत्त हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



कामविज्ञान आयुर्वेद के सूक्ष्म अध्ययन की सीमा से निकलकर रसिक कवियों के हाथ में पड़ कर अश्लील हास्य का साधन बन गया। जिसके कारण संस्कृत की प्रतिष्ठा को बहुत आघात पहुँचा। ईसा की १२ वीं शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ऐश्वर्यशाली राजाओं की विलासितामय प्रवृत्ति को देखकर कवियों ने आसक्तिप्रधान लीलाओं को ही विषयवस्तु के रूप में चुन कर रचनाएँ लिखीं। सांस्कृतिक दृष्टि से यह अधोगति का काल माना जाता है। इस समय के अधिकांश कवि राजाओं के आश्रय में थे। उन्हें अपने आश्रयदाताओं की विषयासक्ति एवं अन्य दुर्व्यसनों के प्रति अनुराग को देख क्षोभ होता था, किन्तु शब्द की अभिधाशक्ति से उन्हें इस ओर से विमुख करने में वे स्वयं को असमर्थ पाते थे। तब वे वक्रोक्तियों द्वारा उन्हें सन्मार्ग पर लाने के उद्देश्य से ऐसी रचनाएँ करते थे। यद्यपि इनको पढ़ते समय कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही रहा होगा, परन्तु वास्तव में लोक के हासविलास के साथ इनमें दर्शकों के लिए सीख भी छिपी रहती है।

लौकिक जीवन के आह्लाद-विषद रीति-नीति, एवं आचार-व्यवहार के दर्शन भाणों एवं प्रहसनों में किये जा सकते हैं। आकार में छोटे होने के कारण पूर्ण नाटक की तरह इनमें नाटक के सब तत्वों का रहना आवश्यक नहीं होता। पहले भिन्न-भिन्न रुचि के लोगों के मनोरंजन के हेतु विविध एकांकी-प्रकारों की रचना होती थी, समय की बचत की ओर लोगों का ध्यान आज की अपेक्षा कम था।

वर्तमान मंचीयलोक में हर वस्तु को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का आग्रह है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह भी दोषमुक्त दिखाई नहीं देता। प्राचीन कृतियों में शृंगार का जो सरस वर्णन काव्यमयी शैली में प्रस्तुत किया जाता था, उसे आज सम्पूर्ण रूपेण खोलकर यथावत् दर्शकों के समक्ष दिखाया जाने लगा है। फलतः जिन वस्तुओं को देख और सुन कर बहुत-सी दृश्य-वस्तुओं के अनिर्वचनीय सुख को मन ही मन अनुभव करके लोग प्रसन्न होते थे, अब उन बातों को (वैषयिक) साक्षात् देखकर उनसे पहले-सा रस प्राप्त नहीं कर पाते। इससे मानव की सुकुमार भावनाओं को आघात पहुँचने की आशंका है। सुकुमारभाव-प्रदर्शन की भारतीयों की विशेष शैली रही है, जिसके दर्शन संस्कृत की कृतियों में ही किये जा सकते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



संस्कृत के उपलब्ध एकांकी साहित्य को देखने से विदित होता है कि युग की माँग के अनुसार रचे गये ये एकांकी बहुत समय तक लक्षणग्रन्थों में निर्दिष्ट नियम-बन्धनों से जकड़े रहे। उनके अन्तरंग और बहिरंग-स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आया। इनकी काव्यगत शैली में भी भासकालिदासादि प्राचीन ख्यातनामा कवियों की लेखनरीति की आलंकारिक छटा प्रतिबिम्बित है। इन्हीं कवियों द्वारा प्रयुक्त परिचित छन्दों की ध्वनि भी इनमें गूँजती सुनाई देती है। सृष्टि के विकासक्रम की द्योतक परिवर्तनशीलता ने संस्कृत की विचारधारा को धीरे-धीरे बदला। ईसा की १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में सांस्कृतिक इतिहास में पुनर्जागरण के लक्षण दिखाई देने लगते हैं, जो १८ वीं शताब्दी में पूर्ण रूप से स्पष्ट होने लगते हैं। इस समय से हास्यमूलक साहित्य निम्नस्तर को त्याग कर उच्चस्तर की ओर प्रवृत्त होता है।

वर्तमान युग का संस्कृत एकांकी अपनी प्राचीन नाट्य-परम्परा की ओर सतर्क रह कर भी आज की आवश्यकता तथा जनरुचि की उपेक्षा नहीं कर रहा है। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के एकांकियों तथा पाश्चात्य एकांकियों की संस्कृत के प्राचीन एकांकी साहित्य से तान्त्रिक दृष्टि से तुलना करने पर यह रहस्य किसी से छिप नहीं सकता कि इस परिवर्तनशील युग में चिरकाल से चली आ रही अखण्ड संस्कृत नाट्यधारा के साथ पाश्चात्य नाट्य-धारा का संगम हो जाने के कारण भारतीय एकांकी का रूप आज बदला हुआ दिखाई देने लगा है। आधुनिक कार्यसंकुल युग में सोई हुई एकांकी कला को पुनर्जागरित करने का श्रेय पाश्चात्य नाट्यकारों को है, इसमें संदेह नहीं।

आधुनिक युग के प्रवाह में बहते हुए संस्कृत-एकांकी भी तान्त्रिक और साहित्यिक दृष्टि से विस्तार के स्थान पर संकोच को महत्व देने लगे हैं। इनकी भाषा को सरलतम बनाने की चेष्टा हो रही है परन्तु ये पहले की तरह निकट भविष्य में लोकप्रिय हो सकेंगे, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इनका प्रयोग शिक्षण अथवा भारतीय धर्म और संस्कृति की प्रचारक संस्थाओं में कतिपय संस्कृतानु-रागियों और बालकों में संस्कृत के प्रति प्रेम बनाये रखने के लिए होगा। भारतीय संस्कृति के रक्षण और साधक इन्हें भूल नहीं सकेंगे और इनकी गणना क्लासेट ड्रामा (बन्द कमरे में यदा-कदा खेलने योग्य) के अन्तर्गत की जा सकेगी।

इस प्रबन्ध में कई त्रुटियाँ विचारकों को निराश कर सकती हैं। यद्यपि रूप में कुछ एक एकांकियों के नामों और उनकी संक्षिप्त कथाओं से भी विद्व-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



समाज पूर्व परिचित हो सकता है, परन्तु समस्त उपलब्धानुपलब्ध एकांकियों का तुलनात्मक, शास्त्रीय समीक्षण समष्टि के रूप में संभवतः अब तक नहीं आ सका है। यद्यपि पुस्तकों के अभाव में एकांकियों की नाममाला में परिगणित कृतियों में सबकी सांगोपांग समीक्षा नहीं हो सकी है, तथापि मुझे इस बात का संतोष है कि इसमें प्राचीन एवं अर्वाचीन एकांकी भेदों के सब प्रकार सम्मिलित हैं। यदि यह प्रबन्ध संस्कृत-नाट्य-साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कर सका तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगी। ग्रन्थ के ग्रन्थनकाल में मुझे विवेच्यविषय की पाठ्य पुस्तकों को उपलब्ध करने की विकट समस्या का सामना करना पड़ा। इसके लिए मुझे ग्वालियर के विश्वविद्यालयीन तथा केन्द्रीय पुस्तकालय के अतिरिक्त कलकत्ता की नेशनल लाइब्रेरी एवं पटना नगर के समस्त ग्रन्थसंग्रहालयों की छान-बीन करनी पड़ी। इन स्थलों के पुस्तक संग्रहों में भी प्रबन्ध के विषय से सम्बद्ध पाठ्यपुस्तकों के अभाव को देख निराश ही होना पड़ा।

त्रावनकोर विश्वविद्यालय की ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी से मुझे रामपाणिवाद की चन्द्रिकावीथी की प्रतिलिपि प्राप्त हो सकी। इसके लिए मैं प्रतिलिपिकार के. सरस्वती अम्मा तथा इस लाइब्रेरी के व्यवस्थापक के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

पुस्तकावलोकन के अतिरिक्त भारत के ख्यातनामा विद्वानों के साथ पत्र व्यवहार एवं उनसे साक्षात् विचार-विनिमय द्वारा लाभ उठाने के अवसर भी समय-समय पर मिलते रहे हैं। उनमें से अनेक उपयोगी परामर्शों के लिए मैं निम्नांकित महानुभावों की विशेष कृतज्ञ हूँ—

श्री एस. एन. घोषाल, अध्यक्ष, बंगला विभाग, पटना विश्वविद्यालय
गुरुवर डॉ. बेचन झा, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, पटना विश्वविद्यालय
हास्य सम्राट प्रो. हरिमोहन झा, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, पटना विश्वविद्यालय
डॉ. बी. जे. संदेसरा, बड़ौदा विश्वविद्यालय
डॉ. वी. राघवन, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास
प्रो. बी. एन. मुण्डी, मराठी विभाग, महारानी लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर
प्रो. आर. डी. लद्दू, (संस्कृत विभाग) महारानी लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर
डॉ. एच. आर. दिवेकर.
प्रो. एस. एन. राजन्, अंग्रेजी विभाग, महारानी लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



डॉ. वी. राघवन् ने संस्कृत के आधुनिक एकांकियों के सम्बन्ध में मुझे पर्याप्त सामग्री भेजी और डॉ. सदेसरा ने कतिपय दुर्लभ पुस्तकों को भेजकर जो मेरी सहायता की है उसके लिए मैं इनके प्रति श्रद्धावनत हूँ। प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर अपने पिताजी श्रद्धेय डा. ईश्वरदत्त जी, अवकाश प्राप्त, पटना विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष तथा अपनी पूजनीया माताजी श्रीमती सुमित्रादेवी, स्नातिका, जालन्धर कन्या महाविद्यालय का सादर साभार स्मरण मेरा पावन कर्त्तव्य है क्योंकि उनके आशीर्वाद और अमूल्य सहयोग के बिना कार्य का सफल होना असम्भव था।

इस रचना को पूर्ण कराने का श्रेय पूज्य आचार्य डॉ. प्रभुदयालु जी अग्निहोत्री (संचालक, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल) को है जिनके कुशल निर्देशन तथा निरीक्षण में इस कार्य का सम्पादन हो सका है। उनसे जो प्रेरणा और सहायता मिली है उसके लिए मैं उनके प्रति केवल कृतज्ञता प्रकाशित करके ही मुक्त नहीं हो सकती।

वीरबाला शर्मा

१५, लक्ष्मीबाई कालोनी, ग्वालियर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



## व्यवहृत संक्षिप्त शब्दचिह्न

| मूलशब्द | संक्षिप्त चिह्न |
|---|---|
| अग्नि पुराण | अ. पु. |
| श्री वेंकटेश्वर ओरियण्टल सीरीज़ | एस. वी. ओ. सी. |
| कर्पूरमंजरी | क. म. |
| काव्यमाला | का. मा. |
| गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज | गा. ओ. सी. |
| भावप्रकाश | भा. प्र. |
| सागरनन्दी | सा. न. |
| साहित्यदर्पण | सा. द. |
| नाट्यशास्त्र | ना. शा. |
| नाटक लक्षणरत्नकोश | ना. ल. र |
| नाट्यदर्पण | ना. द. |
| मदनकेतु प्रहसन | मदनकेतु |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

# अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

भूमिका

व्यवहृत–संक्षिप्त चिह्न

## प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश १–३०

दृश्य-काव्य का महत्व, रूपकों के भेद, एकांकियों के प्रकार, नाटक का आरम्भ और विकास, नाट्य का विकसित अवस्था से एकांकियों का प्रारम्भ, एकांकियों का उपयोग, भाणों एवं प्रहसनों का महत्व, एकांकियों के विषय में प्रचलित भ्रम, एकांकियों की तालिका।

## द्वितीय अध्याय

भाण ३१–१०५

रूपनिर्देश, भाण की व्युत्पत्ति, विभिन्न आचार्यों के मत, भाण और प्रहसन, शृंगार का शास्त्रीय विवेचन, भाणों का साहित्यिक महत्व, भाण और वेश्या, भाणों का उद्देश्य, भाण और मोनोएक्टिंग, चतुर्भाणी तथा उत्तर कालीन भाणों की समीक्षा।

## तृतीय अध्याय

प्रहसन १०६–१७७

रूपनिर्देश, विभिन्न आचार्यों के मत, हास्य का शास्त्रीय विवेचन, हास्य पर पूर्वीय एवं पाश्चात्य आलोचकों के मत, प्रहसनों की समीक्षा – दामक प्रहसन, मत्तविलास प्रहसन, लटक-मेलक प्रहसन, हास्यार्णव प्रहसन, सोमवल्ली योगानन्द प्रहसन, भगवदज्जुकम् प्रहसन, मदनकेतु प्रहसन, धूर्तसमागम प्रहसन, कौतुकसर्वस्व प्रहसन, कौतुकरत्नाकर प्रहसन, धूर्तनर्तनक प्रहसन, उन्मत्तविलास प्रहसन, डमरुक प्रहसन, नाटवाट प्रहसन इत्यादि।

## चतुर्थ अध्याय

व्यायोग १७८–२४५

संस्कृत में व्यायोग, परिचय, विभिन्न आचार्यों के मत, व्यायोगों की समीक्षा, महाकवि भास के व्यायोग, धनञ्जयविजय व्यायोग, पार्थपराक्रम और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



धनञ्जयविजय की तुलना, धनञ्जय विजय की टीका, व्यायोग और प्रेक्षणक का तुलनात्मक विवेचन, सौगन्धिका-हरण, नरकासुर-विजय व्यायोग, साहित्यिक समीक्षा, प्राकृतिक चित्रण, शंख पराभव का ऐतिहासिक महत्व, भीमविक्रम, धर्मसूरि पर माघ का प्रभाव, एकांकियों में रस, वीर रस का शास्त्रीय विवेचन, व्यायोगों में मनोविज्ञान और अन्तद्वन्द्व ।

### पंचम अध्याय

उत्सृष्टिकांक तथा वीथी २४६-२६०

उत्सृष्टिकांक, रूप-निर्देश, विभिन्न आचार्यों के मत, अंकों की विवेचना-उरुभंग, कर्णभार, दूतघटोत्कच ।

वीथी--रूपनिर्देश, विभिन्न आचार्यों के मत, लीलावती वीथी और चन्द्रिका की समीक्षा, रामपाणिवाद का परिचय, रामपाणिवाद और भास ।

### षष्ठ अध्याय

संस्कृत साहित्य में एकांकी रूपक २९१-३२५

उपरूपक–परिचय और उपरूपकों का इतिहास, एकांकी उपरूपक–गोष्ठी, नाट्यरासक, रासक, भाणिका, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, प्रेक्षणक, हल्लीश, श्रीगदित इत्यादि की शास्त्रीय दृष्टि से विवेचना, उन्मत्तराघव (प्रेक्षणक) तथा सुभद्राहरण (श्रीगदित) की समीक्षा ।

### सप्तम अध्याय

बीसवीं शताब्दी के संस्कृत एकांकी ३२६-३७७

उनका वर्गीकरण और समीक्षा, रेडियो रूपक, संवादमाला, अनूदित रूपक, नाट्य-शास्त्र के नियमों के आधार पर उनका विश्लेषण, संस्कृत एकांकी पर युग का प्रभाव, आधुनिक एकांकियों में प्राकृत का बहिष्कार, रंगमंचीय और साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्यांकन, पाश्चात्य एकांकियों की तुलनात्मक विवेचना, आधुनिक भारतीय भाषाओं (हिन्दी, बंगला, मराठी, मैथिली तथा दक्षिण-भारतीय) के एकांकियों कीशास्त्रीय दृष्टि से तुलना ।

**सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचीः** ३७८-३८३

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

## प्रथम अध्याय

# विषय-प्रवेश

संस्कृत वाङ्मय में काव्य शब्द जिस अर्थ का बोध कराता था, उसके लिए आजकल साहित्य और नाटक इन दो शब्दों का प्रयोग होने लगा है। काव्य-शास्त्र के अनुसार 'काव्य' में इसके श्रव्य और दृश्य इन दोनों रूपों का समावेश होता है, जबकि आज के विद्वान प्रायः रसालंकारयुक्त कविताओं की समष्टि को ही काव्य समझने लगे हैं। आज दृश्य-काव्य के लिए एक पृथक् पद 'नाटक' का प्रयोग किया जाने लगा है। इसके विपरीत भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार रूपक के दस भेदों में से एक भेद-विशेष का नाम नाटक है, जिसे संस्कृत के आचार्य रूपक कहते हैं। इस स्पष्टीकरण से, आशा है, उक्त दोनों शब्दों का अर्थ समझने में पाठकों को किसी प्रकार का भ्रम नहीं होगा।

### दृश्य काव्य का महत्त्व

काव्य अपने श्रव्य और दृश्य दोनों ही रूपों में प्रभावोत्पादक तथा आनन्दवर्धक होता है, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से इन दोनों रूपों में भी दृश्य-काव्य, नेत्र तथा कर्ण इन दोनों इन्द्रियों द्वारा गम्य होने के कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



श्रव्य-काव्य की अपेक्षा जो केवल कर्णेन्द्रिय द्वारा ही श्रोता की आराधना करता है, अधिक तीव्र प्रभाव उत्पन्न करता है।

काव्य-जगत् में प्रसिद्ध ऐसी अनेक उक्तियाँ मिलती हैं जिनसे दृश्य-काव्य की यह विशेषता प्रमाणित होती है। उदाहरणार्थ सुभाषितरत्न-भाण्डागार नाटकों की स्तुति में कहता है "नाटकान्तं कवित्वम्" अर्थात् काव्य-रचना का परमोत्कर्ष नाटकों में पाया जाता है। उनमें कवि सहृदय जन-समुदाय के हृदय में काव्य वस्तु को दृश्य रूप प्रदान करके अभिव्यक्ति तथा भावुकता को चरम सीमा तक पहुँचा देता है। अग्नि-पुराण में "त्रिवर्गसाधनम् नाट्यम्" के द्वारा नाट्य् कला को धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति का साधन घोषित करते हुए उसकी काव्य-सम्बन्धी महत्ता स्वीकार की गयी है। कवि-सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध "काव्येषु नाटकं रम्यम्" तथा अभिनय दर्पण की "अभिब्रह्मपरानन्दादिदमप्यधिकं मतम्" जैसी उक्तियाँ भी उक्त तथ्य की ही पुष्टि करती हैं।

## रूपकों के भेद

भारतीय-नाट्य-परम्परा में प्रधान और गौण रूपक के भेदों-प्रभेदों का बाहुल्य दृष्टिगत होता है। भरत मुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ जैसे प्रकाण्ड साहित्य-शास्त्रियों तक के ग्रन्थों में इस विषय का विशद विवेचन किया गया है। मुख्य रूपकों के दस तथा गौण के अधिक से अधिक बीस भेद प्राप्त हैं।[1] रूपकों की नाटक, प्रकरण, व्यायोग, अंक, डिम, ईहामृग, प्रहसन, भाण, समवकार और वीथी ये दस विधायें होती हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र, अग्निपुराण, नाटकलक्षणरत्नकोष, भावप्रकाश, दशरूपक तथा साहित्य दर्पण में रूपक के ये ही दस भेद बतलाये गये हैं। केवल रामचन्द्र और हेमचन्द्र ने रूपकों की संख्या बारह मानी है।[2] नाट्य-दर्पणकार रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र रूपक के नाटक, प्रकरण, नाटिका, प्रकरणी, व्यायोग, समवकार, भाण, प्रहसन, डिम, अंक, ईहामृग और

---

१ – भा. प्र. (नवम अधिकार) पृष्ठ २५६

२ – नाटकं प्रकरणं च नाटिकाप्रकरण्यथ ।
व्यायोगः समवकारो भाणः प्रहसनं डिमः ॥
अङ्कः ईहामृगो वीथी चत्वारः वृत्तयः स्मृताः । ना. द.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MDP



वीथी ये वारह भेद मानते हैं । हेमचन्द्र ने भी पहले काव्य को प्रेक्ष्य और श्रव्य इन दो भागों में वाँट कर प्रेक्ष्य को पुनः पाठ्य एवं गेय में विभक्त किया है ।[१] इस प्रकार काव्यानुशासन में नाटक, प्रकरण, नाटिका, समवकार, ईहामृग, डिम, व्यायोग, वीथी, सट्टक, प्रहसन, भाण और उत्सृष्टिकांक ये बारह भेद पाठ्य के तथा डोम्बिका, भाण, प्रस्थानक, शिंगक, भाणिका, प्रेंखण, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित एवं काव्य ये भेद गेय के वतलाये हैं । यहाँ भरत मुनि के दस रूपकों में नाटिका और सट्टक को मिलाकर हेमचन्द्र ने वारह रूपक गिना दिये हैं । उप-रूपकों के विषय में यद्यपि भरत मुनि स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहते तथापि उनके नाट्य-शास्त्र के सम्प्रेक्षण से नाटी नामक एक गौण रूपक का भी पता चलता है तथा अभिनवगुप्त की टीका से डोम्बिका, भाण, षिद्गक, भाणिका, प्ररेरण, रामाक्रीड, हल्लीस एवं रासक इन नौ प्रकार के गौण रूपकों से हमारा परिचय होता है । इसके अतिरिक्त अग्निपुराण, धनञ्जय की अवलोक टीका, शारदातनय के भावप्रकाश तथा साहित्य-दर्पण में इन उप-रूपकों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख मिलता है । साहित्यिकों द्वारा उपेक्षित उप-रूपकों का विशद विवेचन एवं प्राचीन आचार्यों के मुख्य और गौण रूपक के भेदों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता । आचार्य रामचन्द्र ने नाटिका तथा प्रकरणिका को भरतादि प्राचीन नाट्यमीमांसकों के दशरूपकों के साथ जोड़ दिया है, जबकि साहित्यदर्पणकार ने नाटिका की उप-रूपकों के साथ गणना की है । प्रकरणी को भी नाटिका के साहचर्य से गौण रूपकों का ही एक भेद माना जा सकता है ।

उपर्युक्त नाट्यलक्षणकारों के अतिरिक्त विख्यात प्रहसनकार बोधायन कवि ने भी अपने 'भगवदज्जुकम्' प्रहसन में नाटक के भेद-प्रभेदों पर प्रकाश डालते हुए, हास्यरसप्रधान प्रहसन को प्रेक्ष्य काव्य का उत्तम रूप बतलाया है ।[२]

---

१ – काव्यानुशासन — [ का. मा. ] अध्याय ८ पृ० ३७९

२ – भगवदज्जुकम्—पृष्ठ ३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



## एकांकियों के प्रकार

रूपकों के इन भेदों में भाण, प्रहसन, व्यायोग, वीथी और अंक या उत्सृष्टिकांक तथा उप-रूपकों में गोष्ठी, नाट्यरासक, रासक, भाणिका, विलासिका, उल्लाप्य, श्रीगदित, हल्लीस, प्रेक्षणक, ( प्रेक्षाणक, प्रेक्षणीयक ) प्रेंखण और काव्य एकांकी हैं। कतिपय ऐसे भी साहित्यकार हैं जो रूपकों एवं उपरूपकों के उपर्युक्त भेदों में से कुछ अन्य भेदों को भी एक अंक का प्रेक्षणक बतलाते हैं जैसे—ईहामृग। इसमें आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार एक अंक होता है।[१] किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें चार अंक भी हो सकते हैं। भावप्रकाश में अंकित उप-रूपकों की पुष्पिका में भी कतिपय ऐसे नवीन नाम उपलब्ध होते हैं जो एकांकी की कोटि में रखे जा सकते हैं-यथा-प्रस्थानक, डोम्बि या डोम्बिका आदि। ऊपर गिनाये गये रूपकों तथा उप-रूपकों के अट्ठाईस भेदों में ( १० रूपक+१८ उप-रूपक =२८ ) पन्द्रह ऐसे नाट्य-प्रकार हैं जो एक ही अंक के होते हैं। इस प्रकार संस्कृत में एकांकी रूपकों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संस्कृत के एकांकी रूपक नाटक की अन्य विधाओं से रूप की दृष्टि से ही छोटे होते हैं। इनमें पात्र कम होते हैं और अंक एक ही होता है परन्तु बड़े नाटक का कोई एक अंक एकांकी नहीं कहा जा सकता क्योंकि एकांकी आकार में छोटे होते हुए भी अन्य रूपकों की तरह अपने में पूर्ण होते हैं। इनमें नाट्य-रचना के समान सब तत्वों-संधि, सन्ध्यंग, अर्थप्रकृति एवं पताकादि-का विधान होता है। केवल वस्तु, नेता और रस ही इनके भेदक तत्व हैं। नान्दी-पाठ, पूर्वरंगक्रिया, स्थापना आदि की व्यवस्था एकांकियों में भी होती है। भारतीय नाट्य-शास्त्र में इसका विशद वर्णन किया गया है।

---

१ – ईहामृगश्चकथितो यथा कुसुमशेखरः।
विप्रत्ययकारकेति विगतानि प्रत्ययकारणानि विश्वासहेतवो यत्र।
तेनैक एवांकः। नायकास्तु द्वादश समवकारातिदेशेन व्यायोगे तल्लाभात्
व्याजादिति। फलायनादिमिः। ईहा चेष्टा मृगस्येव स्त्रीमात्रार्था यत्र
स ईहामृगः।

—अभिनवगुप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



निम्नलिखित तालिका से भी एकांकियों का पारस्परिक अन्तर समझा जा सकता है :–

| एकांकी रूपक | रस | अवस्थाएँ | संधियाँ | वृत्तियाँ | विषय-वस्तु |
|---|---|---|---|---|---|
| भाण | शृंगार, वीर एवं हास्य | प्रारम्भ, फलागम | मुख निर्वहण | भारती और कैशिकी | उत्पाद्य (कवि कल्पित) |
| प्रहसन | हास्य एवं शृंगार | प्रारम्भ फलागम | " | " | उत्पाद्य |
| वीथी | शृंगार (मुख्य) अन्य रसों की छाया मात्र | प्रारम्भ फलागम | " | कैशिकी | उत्पाद्य |
| व्यायोग | वीर, रौद्र एवं वीभत्स | प्रारम्भ यत्न फलागम | मुख, प्रतिमुख एवं निर्वहण | कैशिकी से भिन्न तीन वृत्तियाँ | प्रख्यात |
| अंक | करुण | प्रारम्भ फलागम | मुख, निर्वहण | कहीं भारती कहीं कैशिकी का प्रयोग | कभी प्रख्यात कभी उत्पाद्य |

## नाटक का आरम्भ और विकास

नाट्य की उत्पत्ति के मूल कारणों और इसके आदि स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि नाट्य का आरम्भ एकांकिका से हुआ होगा तथा उसका अभिनेय स्थल रहा होगा टोले मुहल्ले का खुला स्थान। घरेलू व्यवहार में पाँच से लेकर दस से भी अधिक अंकों वाले शास्त्रोक्त वृहन्नाटकों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता था। यहाँ तो एक अंकवाला लघु नाटक ही मनोरञ्जन कार्य में सफल हो सकता था। सभ्यता और मानसिक विकास के इतिहास पर दृष्टिपात करने से भी यह स्पष्ट हो जायेगा कि एकांकी रूपक नाटक-साहित्य के विकास-क्रम में पहले प्रादुर्भूत हुए होंगे तथा शनैः-शनैः उनका विकास पूर्ण और महा–नाटकों के रूप में हुआ होगा। ऋग्वेद के यम-यमी, पुरुरवस्-उर्वशी सम्वाद तथा दशममंडल के सोम-यज्ञ के प्रसग में इन्द्र के भाण सूक्त (मंत्र– ११९ आदि) एवं पतंजलि के महाभाष्यगत कंस-वध आदि निर्देशों में एकांकियों की प्राचीनता पूर्णरूपेण पुष्ट होती है। अधिक सम्भव है कि इसका सूत्रपात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



छोटे-छोटे हास्यपरक संवादों से ही हुआ होगा जिन्होंने आगे चलकर प्रहसन का रूप ले लिया हो। श्री मनकद भाण को रूपक का प्राचीनतम नाट्यरूप मानते हैं परन्तु प्रस्तुत प्रबंध में आगे किये गये भाण एवं प्रहसन साहित्य के तुलनात्मक साहित्यिक परीक्षण के आधार पर प्रहसन भाण से पूर्व की रूपक-विधा प्रतीत होती है।

## नाट्य का विकसित अवस्था से एकांकियों की ओर प्रत्यावर्त्तन

सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य का जीवन अधिक जटिल और कार्यसंकुल होता जाता है जिसके फलस्वरूप समय का अभाव मनुष्य को खलने लगता है परन्तु दैनिक श्रम के कारण खोयी हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए मनोरञ्जन की आवश्यकता भी वैसी ही बनी रहती है। जहाँ एक ओर हमें नाट्य-साहित्य के विकास में महानाटकों की एक विशेष अवस्था उपलब्ध होती है, वहाँ दूसरी ओर एकांकी नाट्य-साहित्य की परम्परा के प्रमाण भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। ऐसी वस्तुस्थिति में यह प्रश्न स्वभावतः उपस्थित होता है कि महानाटकों की अवस्था प्राप्त कर लेने के बाद फिर एकांकियों की ओर नाट्य साहित्य का प्रत्यावर्तन क्योंकर हुआ? इसके उत्तर में निम्नलिखित चार कारण युक्तिसङ्गत प्रतीत होते हैं :—

१— समय का अभाव।
२— श्रम की वचत।
३— व्यञ्जना की तीव्रता।
४— किसी एक रस का प्राधान्य।

एक अंक के नाटकों में द्रष्टा और नाट्यकार दोनों के समय तथा श्रम की बचत होती है, यह स्पष्ट है। किन्तु इसके साथ-साथ व्यंग्य वस्तु की व्यञ्जना भी इनमें तीव्र होती है। वृहन्नाटकों की नाट्य-रचना में पञ्चसन्धि एवं पञ्चअर्थप्रकृति आदि अंगों का विधान अनिवार्य होता है। उनमें रसों की विविधता भी रहती है जिसके कारण गम्भीरता का आ जाना भी स्वाभाविक ही है। अतः उनकी प्रभावोत्पादकता शिथिल पड़ जाती है। जिस प्रकार कोई नदी जितनी अधिक चौड़ी होती है उतनी ही उसकी धारा अधिक मन्द पड़ जाती है और इसके विपरीत नदी जितनी सँकरी होती है उसकी धारा भी उतनी ही अधिक तीव्र हुआ करती है। यही नियम नाट्य-कृतियों के आकार पर भी लागू होता है। इसी कारण एकांकी नाटकों की व्यंग्य वस्तु का प्रभाव तीव्रतर होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



नाट्य-साहित्य के लिए जिन शास्त्रीय शृङ्गार आदि आठ रसों का विधान किया गया है उनमें करुण, रौद्र और अद्‌भुत आदि कुछ ऐसे रस हैं जो अधिकतर गंभीर प्रकृति के लोगों की ही तृप्ति कर सकते हैं, सर्व-सामान्य की नहीं। इसके विपरीत शृङ्गार अथवा हास्य के लिए सर्व-सामान्य का आकर्षण स्वभाव से होता है। तदनुसार एकांकियों में व्यंग्यवस्तु हास्य-रस जैसे एक लोकप्रिय तथा आह्लादकारी रस के साथ द्रष्टा के हृदय तक पहुँचाई जाती है। अतः काव्य-कला की कल्याणकारिता (शिवेतरक्षतिः) अपने चरम उत्कर्ष तक पहुँच जाती है जिससे दर्शक मनुष्यगत त्रुटियों के चित्रण से भी आत्मा के उत्थान और रसानन्द इन दोनों अपूर्व लाभों का एक साथ भागी बनता है।

## संस्कृत रूपकों में विदूषक

भाणों एवं प्रहसनों में विट तथा विदूषकों को ही मुख्य अभिनेता के रूप में हम देखते हैं। विदूषक[1] भारतीय हास्य का प्राचीन प्रतीक और उसकी वेश-भूषा, बातचीत आदि हास्योत्पादन करने वाली होती है। विदूषक पद का ही अर्थ होता है रूप को विदूषित करनेवाला ( विदूषयति आत्मानमिति= वि+दुष+णिच्+ण्वुल ) अर्थात् जो तरह-तरह के स्वाँग बनाकर अपने आपको भद्दा रूप देकर दर्शकों को हँसाता है, वह विदूषक कहलाता है। उसकी असंगत, असम्बद्ध तथा विपरीत शब्दावली, वाचिक और रहन-सहन की विधि तथा हँसानेवाली आकृति, क्रमशः आंगिक एवं आहार्य की ओर इंगित करती है। उसकी रूपप्रतिष्ठा में वाचिक आंगिक तथा आहार्य अभिनय की ओर संकेत है। वह जाति का ब्राह्मण होता है।[2] भरत मुनि से लेकर विश्वनाथ तक तथा अन्य आधुनिक पूर्वी एवं पश्चिमी विद्वानों ने इसके लक्षण पर पर्याप्त विचार किया है जो एक दूसरे से प्रायः मिलता जुलता है।

नाट्य-जगत् में सर्वत्र नायक ( राजा ) के अन्तरंग मित्र के रूप में उसके दर्शन होते हैं। वह अपने कर्म, रूप एवं भाषण द्वारा हास्य की अभिव्यक्ति करता हुआ खिन्न हृदय राजा तथा अन्य अन्तःपुरवासियों का मनोरञ्जन

---

१ – ना. शा. गा. ओ. सी. भाग-१ पंचम अध्याय १३४ पृ० २४२

२ – वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजन्मा विकृताननः ।
खलतिः पिंगलाक्षश्च सविधे यो विदूषकः ॥
ना. शा. अध्याय ३५ श्लोक नं० ३५-३७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



करता दिखाई देता है। शृङ्गार रस के प्रसंग में साहित्यशास्त्रों में नायक के सहायकों का विवेचन करते समय विट, विदूषक, पीठमर्द, नर्मसचिव आदि पात्रों का वर्णन किया गया है। इन पात्रों को हीन पात्रों की संज्ञा भी दी जाती हैं। शारदातनय के कामसचिव और वाग्भट्ट के नर्मसचिव को अनुचर के अन्तर्गत एक भेद स्वीकार किया है। राजा का सखा होने के कारण विदूषक प्रेम कार्य में सहायक पीठमर्द एव नर्मसचिव का कार्य करता हुआ भी पाया जाता है। वह ईर्ष्यालु, कलहयुक्त और प्रणयमान की स्थिति में ज्येष्ठा नायिका को प्रसन्न करनेवाला होता था। बड़े नाटकों में विदूषक को हम प्रायः इसी रूप में पाते हैं। भास के अविमारक तथा राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी में विदूषक का कवितापाठ उसका पेटूपन और रामायण की कथा से अनभिज्ञता आदि बातें हास्य रस द्वारा बीच-बीच में नाटकों की गम्भीरता को दूर कर उसे आनन्दवर्धक रूप देने के लिए ही रखी गयो हैं।

अन्य विदूषकों की भाँति वह भी भोजन-भट्ट है। परन्तु पीठमर्द के रूप में उसका चरित्र बहुत निखरा है। इसके अतिरिक्त स्त्री पात्रों में चेटी, दासी, दूती आदि द्वारा हास्य की धारा प्रवाहित की जाती है।

भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र के चौथे अध्याय में (१६–२० श्लोको में) नायक के चार भेदों के आधार पर विदूषक के भी चार भेद वतलाये हैं— लिङ्गी, द्विज, राजजीवी और शिष्य जो क्रमशः दिव्य, नृप, अमात्य तथा ब्राह्मण नायक के विदूषक होते हैं। शारदातनय में भी भरत के शब्दों में यत्किचित् परिवर्तन के साथ चारों प्रकार के नायकों के विदूषकों के पृथक् गुणों का उल्लेख किया है।[१] देवताओं का विदूषक सत्यवादी, भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञाता, कृत्याकृत्य का विशेषज्ञ, तर्क एवं वितर्क करनेवाला, अर्थ और स्त्रियों में शुद्ध मनवाला तथा देवी की परिचारिकाओं का प्रियतम होता है। वह राजदरवार का मनोरञ्जक ही नहीं अपितु अन्तःपुर का आलोचक भी होता है। विदूषक पद का अर्थ आलोचक ( खण्डक ) भी होता है। वेदादि के खण्डक के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग नैषधकार श्रीहर्ष ने भी किया है।[२] वैदिक साहित्य का यह आलोचक ही सम्भवतः विदूषित रूप में

---

१– भा. प्र. नवमअधिकार - पृ० २७१-२८२.

२ – प्राशंसि संसद्गुरुणापि चार्वी चार्वाकता सर्वविदूषकेण ।

—नैषधचरित - सर्ग १०-५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



लौकिक साहित्य में मसखरे विदूषक के वेश में अवतरित हुआ है। यहाँ वह अन्तःपुर के छिद्रान्वेषण द्वारा अपने इस प्राचीन कर्म की हमें याद दिलाता है। ब्राह्मण होकर भी वह प्राकृतभाषी होता है। भरत, सागरनन्दी आदि आचार्य भी उसे प्राकृतभाषी ही बतलाते हैं।[1]

विल्सन, कीथ आदि पाश्चात्य समालोचकों ने विदूषक जैसे हीन पात्र के ब्राह्मणत्व पर आश्चर्य प्रगट किया है। उनके मत से इस पात्र के राजा से सम्बद्ध होने के कारण ही संभवतः इसे आचार्यों ने विप्र जाति का होना आवश्यक समझा होगा। विप्र होने के कारण राजा के साथ इसके पारस्परिक गाढ प्रेम को जातिगत मलिनता दूषित नहीं कर सकेगी। इसके मूल में यही धार्मिक भावना छिपी होनी चाहिये। रनिवास के लिये ब्राह्मण जैसे सात्विक वृत्ति के व्यक्ति का रहना ही अधिक उपयुक्त है। नायक तथा नायिका के पारस्परिक प्रणय-कलह को अनावश्यक रूप से न बढ़ाकर परस्पर सौमनस्य की स्थापना में ब्राह्मण ही अधिक सफल हो सकता है। इसके साहाय्य से महलों में संभावित अन्य भ्रष्टाचार भी रोके जा सकते हैं। महाव्रातविधि में उल्लिखित एक ब्राह्मण चरित्र की तुलना भी इस परिहासशील विदूषक से की जा सकती है। विदूषक जैसे विनोद-प्रिय प्राकृतभाषी ब्राह्मण का नाट्य में स्थान इस बात का पोषक है कि अभिनय-कला की उत्पत्ति जन-साधारण से हुई।

वात्स्यायनमुनि के कामसूत्र से भी विदित होता है कि विदूषक राजा का सखा और सलाहकार ही नहीं, जनसाधारण का स्नेहपात्र भी होता था। मनोरञ्जन कार्य में सहायक के रूप में विट, पीठमर्द आदि पात्रों का उल्लेख कामसूत्र में भी मिलता है।[2] नाट्यशास्त्र, कामसूत्रादि शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त चतुर्भाणी में भी विटवेश्यादि के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश

---

१ – प्राच्याविदूषकादी नाम् —ना. शा. ३८ अध्याय १८.

शौरसेनीमयं प्राच्यामवन्तीं कर्हिचेद् पठेद् ।
एता एव वणिक्-श्रेष्ठि-बालकाश्च विदूषकः ॥
ना. ल. र.

२ – भोजनान्तरं शुकसारिकाप्रलापनव्यापाराः ।
लावककुक्कुटमेषयुद्धानि तास्ताश्च ॥
कल्पक्रीडाः पीठमर्द विदूषकायत्ता व्यापाराः ।
दिवाशय्या च ॥ ८ ॥

कामसूत्र १-४ पृ०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



डाला गया है। लक्षण ग्रन्थों में विदूषक का, भेदों सहित विस्तृत वर्णन तथा उसका प्राकृत-प्रयोक्ता होना भी लक्षित किया गया है। आचार्य वात्स्यायन द्वारा विदूषकादि का नागरिक के मित्र एवं सलाहकार के रूप में उल्लेख करना, इस बात को प्रमाणित करता है कि विदूषक तथा विट केवल नाट्य-जगत् ( उसमें भी विशेषकर भाण, प्रहसन एव प्रकरण ) की ही वस्तु नहीं थे अपितु वे साधारण लोक के जीवित प्राणी भी थे, जिनका पेशा ही था, हास्यमय अभिनय प्रदर्शन द्वारा नागरिकों का मनोविनोद करना। संस्कृत के शिष्ट रङ्गमञ्च एवं साहित्यिक रूपकों के पराभव के बाद भी परम्परागत जन-नाट्य का क्रम आज खंडित नहीं हो पाया है। हमें आज भी लोक में प्रचलित "टेसू के खेल" एवं गुजरात के इसी शैली के नाट्य "भवाई" को देखकर अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। " टेसू वालों " के मुख से प्रकृति-विपरीत वर्णन करने वाली गीतियाँ सुनकर हमारी गम्भीरता का बाँध टूट जाता है और "भवाई" में "रंगलो" नामक एक हँसोड़ पात्र के नाट्य को देखकर संस्कृत नाटकों के विदूषक का चित्र स्वतः उपस्थित हो जाता है। सरकस का " जोकर " भी विदूषक का ही विद्रूप है। ब्रजभूमि की लोकप्रिय रासलीला का " मनसुखा " भी विदूषक का ही एक रूप होता है।

अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र, संस्कृत तथा प्राकृत और पाली ग्रन्थों में निबद्ध लोकधर्मी एवं शास्त्रीयनाट्य-परम्परा के विवरणों के अध्ययन से यह निर्विवाद है कि नाटक प्राचीन भारतीयों के जीवन का अभिन्न अङ्ग था।

## जन-नाट्य एवं लोक-रङ्गमञ्च

लोक-नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों में लेखबद्ध न होता हुआ भी जन-जीवन में व्याप्त रहा है और कवि तथा नाटककार इन लोक नाट्यों से अनुप्राणित होते रहे हैं। डॉ० एस. एन. दासगुप्ता तथा संस्कृत साहित्य के अन्य विद्वान् समीक्षकों ने बारंबार राजाश्रित नाटकों एवं रङ्गमञ्चों के अतिरिक्त जन-नाटक तथा लोक-रङ्गमञ्च की परम्परा की स्थिति का समर्थन किया है। लोकनाट्य-परंपरा शिष्ट रङ्गमञ्च एवं शिष्ट नाट्य-साहित्य की समनुवर्तिनी होकर चलती रही है। इस शैली के नाट्यों के कुछ रूप बहुत ही प्रभावशाली और चमत्कारोत्पादक रहे हैं। जन-नाटकों के विविध रूप आज देखने को मिलते हैं, उनसे शृङ्गार और हास्यप्रधान एकांकी भाण तथा प्रहसन एवं दीप्तरसान्वित व्यायोग रूपकों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



की तुलना करने से ज्ञात होगा कि एकाँकी रूपक तथा उप-रूपकों का इन लोक-नाटकों से निकटतम सम्बन्ध है। भाणों की छाया "भवाई" में और अङ्क एवं व्यायोग की झलक "कठपुतली" के खेल में देखी जा सकती है।

भास एवं कालिदास के समय से लेकर ईसवी दसवीं शताब्दी तक संस्कृत-साहित्य में निरन्तर उत्कृष्ट नाटकों की रचना होती रही जो प्रायः नाटक, सट्टक, त्रोटक अथवा प्रकरण के रूप में थी। रूपक के ये भेद नाट्य-रचना के संविधान की दृष्टि से प्रायः मिलते-जुलते हैं।[1] इनका मुख्य उद्देश्य देवताओं एवं राजाओं के जीवन की घटनाओं का वर्णन करके उच्च वर्ग के सम्मानित व्यक्तियों का मनोरञ्जन करना था। अतः नाट्य रचना के समय नाटककार सचेत रहते थे, जिससे वे उपहास के पात्र न बन सकें।[2] इनमें हास्यमय अभिनय के प्रदर्शन का अवसर कम मिलता था। प्रकरण को छोड़कर दूसरे किसी पूर्ण विकसित नाटक में हमें साधारण जनता के संसार के दर्शन नहीं हो पाते। इस अभाव की पूर्ति नाट्यशास्त्रकार ने लोक में प्रचलित नाट्यकृतियों के आधार पर नाट्य-भेदों में प्रकरण की कोटि के सुकुमार-पद्धति के भाण,प्रहसन आदि तथा व्यायोग एवं उत्सृष्टिकांक नामक ओज-प्रधान-शैली के सामाजिक रूपकों को स्थान देकर की और नाट्यकारों ने उनके लक्ष्य ग्रन्थों का प्रणयन कर उस नाट्य-रीति को आगे बढ़ाया। भरत ने ' नाट्य " नामक पञ्चम वेद का निर्माण साधारण जनता ( उसमें भी शूद्र जाति ) के विनोद को ध्यान में रखकर ही किया था और उनके नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट

---

१ – नाटकमथ प्रकरणं ... ... रूपकाणि दश ॥
किंच —
नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम् ।
...
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः ।
विना विशेषं सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम् ॥
सा. द. परि. ६, ३-६

२ – सूत्रधार :—आर्य ! अभिरूप भूयिष्ठा परिषदियम् ।
नटी – सुविहितप्रयोगगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते।
सूत्रधार :—आर्ये, कथयामि ते भूतार्थम् ॥
आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥
अभि. शा. १, २.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



"चतुरस्र" मञ्च की व्यवस्था सर्वसाधारण के लिये ही होती थी। इन बातों को देखते हुए कुछ लोगों का भारतीय नाटकों को केवल राजदरबार की कहानी का वर्णन करनेवाला नाट्य कहना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता।

## संस्कृत एकांकियों का प्रारम्भ

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम और बारहवीं शती के प्रारम्भिक भाग में देश में मुसलमानों के प्रभुत्व की स्थापना के फलस्वरूप संस्कृत के पठन–पाठन एवं लेखन की गति कुछ धीमी पड़ गई। शासन की ओर से समुचित प्रोत्साहन न मिलने से निराशा के सागर में गोते लगाते हुए पराधीन भारतीयों का सर्वांगीण पतन होना नितांत स्वाभाविक था। यह काल भारतीय इतिहास का मध्ययुग कहलाता है। इस युग में वैदिक धर्मावलम्बियों के पतन के साथ-साथ बौद्ध धर्म की भी अवनति होने लगी। भारतीय समाज हर तरह की बुराइयों से ग्रस्त हो गया। ऐश्वर्यशाली भोगी राजा पुरुषों के साथ-साथ बड़े-बड़े विद्वान् कवि एवं दर्शनशास्त्री आदि भी अपने मुख्य धर्म-पथ का त्याग कर वेश्यागामी होने लगे और मद्यपान के कारण नशे में चूर संभ्रांत नागरिक राज-मार्गों पर अनर्गल प्रलाप करते दृष्टिगत होने लगे। इस प्रकार हमारा विवेच्य काल देश के नैतिक ह्रास का युग है।

ऐसी विषम परिस्थिति में भी भारत के कुछ भागों में स्थान-स्थान पर अनेक समृद्ध नरेश छोटे छोटे राज्यों में राज्य करते रहे, जिनकी छत्र-छाया में निराश धर्मात्मा जन भजन-पूजन में लीन हो गये। इनके ही आश्रय में संस्कृत के विद्वान् साहित्यकार पनपे। इन्हीं विद्याप्रेमी क्षत्रिय राजाओं ने संकटापन्न देश के साहित्य की धारा को अवरुद्ध होने से बचाया। इनके संरक्षण में रूपकों की भी रचनाएँ चलती रहीं। परन्तु ये कृतियाँ कालिदासादि की रचनाओं की की तरह उच्चकोटि की न थीं। इनमें से अधिकाँश नाट्य-ग्रन्थ एकांकी ही थे। इनका अभिनय धर्म-कर्म में व्यस्त तथा शासन से त्रस्त जनता के मनोरञ्जनार्थ देवी-देवताओं के माँगलिक पूजनोत्सव ( यात्रा ) के अवसर पर राजाज्ञा से हुआ करता था।[1] इन उत्सवों में दूर-दूर के निवासी भाग लेते थे। इन

१ – (क) शृङ्गारभूषण पृष्ठ २
(ख) रससदनभाण पृष्ठ २
(ग) शृङ्गार सुधाकर भाण पृष्ठ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



नाटकों के अभिनय का उद्देश्य राजाओं का अभिनंदन करना था किन्तु इनमें लोक-सुधार की भावना भी छिपी होती थी।[1] हास्य-रस शिक्षण-कार्य में भी बड़ा सहायक होता है। शिक्षाप्रद एवं रोचक होने के कारण ही भारतीय नाट्यलक्षणकर्ताओं ने भी भाणों की सार्थकता को माना था। इसके पुष्टिकरण में इतना ही कह देना सार्थक होगा कि लक्षण ग्रन्थों में एकाँक रूपकों में भाण का विस्तृत लक्षण प्राप्त होता है। अन्य एकांकियों का भेदमात्र वदला दिया गया है।

संस्कृत के प्रतिष्ठित नाट्यकार भास द्वारा प्रतिष्ठापित एकांकी परम्परा को उनके उत्तरवर्ती रूपककारों ने मध्यकालीन भारत की बिगड़ती हुई दशा को सुधारने के लिये भाण, प्रहसन, व्यायोग, अङ्क, वीथ्यादि एकांकी प्रकारों की रचना करके आगे बढ़ाया। संस्कृत में इस प्रकार का साहित्य पर्याप्त है परन्तु विखरा हुआ है। प्राचीन काल से भारत में प्रचलित एकांकी लेखन-प्रणाली के अस्तित्व के प्रमाण के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। यद्यपि आज सब की सब एकांकी कृतियाँ उपलब्ब नहीं हैं तथापि शास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थों में विभिन्न आचार्यों द्वारा भाण, प्रहसन एवं व्यायोगादि के नामों एवं उन कृतियों के उद्धरणों को देखकर यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि किसी युग में भारत में इन संस्कृत एकांकियों की अच्छी माँग थी जिसकी पूर्ति के प्रयत्न में हमारे नाट्यकार सदैव लगे रहते थे।[2] इसके अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दों के उदाहरण-स्वरूप करुणाकन्दल, इन्दुलेखा-वीथी आदि एकांकी रूपकों के श्लोकों को उद्धृत करने से यह भी व्यञ्जित होता है कि अपने युग का प्रतिनिधित्व करनेवाले इन एकांकियों ने रस–

१ – धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति॥
नाट्यशास्त्र

२ – यथेन्दुलेखायां वीथ्याम् – – राजावयस्य। ... ...
नाट्यदर्पण - पृ० १४३

यथाक करुणकन्दले –
रसार्णवसुधाकर ( द्वितीय विलास ) पृष्ठ ११६

यथानन्दकौशनामनि प्रहसने – –
रसार्णवसुधाकर ( तृतीय विलास )
पृष्ठ २७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



शास्त्रियों को भी प्रभावित किया था और वे भी इस कोटि के रूपक रचा करते थे।[1]

## एकांकियों का उपयोग

इन एकांकी नाटकों में कवियों के सन्देश भी निहित हैं। मध्यम–व्यायोग में विपत्ति से दीन–दुखियों की रक्षा करना ही मनस्वियों का कर्तव्य बतलाया गया है। दूत–वाक्य के अनुसार अपने व्यवहार में नीचता दिखलाना मानवता के अधःपतन का सूचक होता है। कर्णभार में दान–पुण्य द्वारा यशःशरीर का संरक्षण ही परम कर्तव्य बतलाया गया है। उरुभंग और दूतघटोत्कच में युद्ध की भीषणता का चित्रण करके मानवता को उससे विरत करने का उपदेश किया गया है। उत्सृष्टिकांक एवं व्यायोग साहित्य में यही बतलाया जाता है कि अनीति के दमन के लिए घोर कष्ट सहन करना पड़ता है। संघर्षों का सामना करने के उपरान्त ही अभीष्ट की सिद्धि होती है। संस्कृत की ये कृतियाँ प्राचीनकालीन होकर भी आज के युद्ध और उत्क्रान्ति में रत उन्मत्त शासकों को शील, सयम एवं सहिष्णुता की शिक्षा देने की क्षमता रखती हैं। कलह विनाश का कारण होता है। यहाँ तक कि मनुष्य के गुह्यतम मनोवेगों (कामेषणा) के प्रकाशन द्वारा जीवन की यथार्थता के दर्शन कराकर श्रृंगार एवं हास्य-रस की अनुभूति करानेवाली भाण तथा प्रहसन जैसी शास्त्रीय एवं आधुनिक सभ्य समाज की दृष्टि में निम्न स्तर की नाट्यविधाएँ भी (जिनमें धूर्तों और वेश्याओं का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है) प्रेक्षकों के लिए कोई न कोई सीख देती ही है। "कुट्टिनामत" अथवा "शंभली मत" काव्य में दामोदर गुप्त ने स्पष्ट कहा है कि धूर्तों तथा धूर्त नारियों का वर्णन करनेवाले काव्यों के अर्थ के सम्यक् अध्ययन एवं दर्शन से पाठक तथा दर्शक मनुष्य समाज में बसनेवाले इन पाखंडियों की लपेट में

---

१ – एकस्यदुःखस्य यथा भस्मवुपछे निर्भयभीमनाम्निव्यायोगे भीमः — —
ये तु न्यायपराः परार्णघधरास्ते पश्यतामी घयं,
नीचः कर्मकृतः परामवमृवस्तप्ताश्च वर्तामहे ॥

नाट्य-दर्पण–पृष्ठ ६८
भाग १. गा. ओ. सी.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



नहीं आ सकते।[१] केवल अध्येता और द्रष्टा ही नहीं प्रत्युत विपरीत परिस्थितियों में पड़ जाने के कारण बाधित होकर विट अथवा वेश्यावृत्ति ग्रहण कर जीविकार्जन करनेवाले लोग भी यथार्थता का ज्ञान हो जाने पर अपना सुधार स्वयं कर सकते हैं। मनुष्य दुर्बलताओं से ग्रस्त रहता हैं। राजा, पंडित, साधु, सन्यासी दुनियाँ को दिखाने के लिये भले ही सदाचरण में अनुरवित रखें परन्तु अचेतन मन में स्थित चापल्य के वे भी दास होते हैं। अपनी इन दुर्बलताओं के प्रति औदासीन्य–प्रदर्शन द्वारा वह स्वयं को प्रवंचित कर सकते हैं परन्तु समाज को नहीं। इसके अतिरिक्त एक ऐसा भी वर्ग है जिसे जीविकोपार्जनार्थ निरन्तर अपने घर तथा परिवार से दूर रहना पड़ता है। यथा–श्रमजीवी तथा देश–रक्षा कार्य में रत सैन्य शिविर में वास करनेवाले सैनिक। ऐसे प्रवासियों के निकट मनोनुकूल मनोरंजक साधनों का सदा अभाव रहता है। इस वर्ग को ध्यान में रखकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित गणिकाध्यक्ष के प्रकरण एवं हमारी विवेच्य साहित्यिक रचनाओं में वेश–वनिताओं के प्रसंगों की प्रचुरता के आधार पर आधुनिक युग में भी सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी उपयोगिता–अनुपयोगिता पर विचार के लिए पर्याप्त अवकाश है।

## भाणों एवं प्रहसनों का महत्त्व

साहित्य शास्त्र में मनुष्य के विभिन्न मनोविकारों प्रेम, हर्ष-विषाद आदि के सूचक शृङ्गार, हास्य, वीर आदि नव रस होते हैं। इनमें मानव जीवन को कमनीयता एवं सरसता प्रदान करने में शृङ्गार तथा हास्य का विशेष महत्त्व होता है। इन दोनों रसों में बहुत समानता है। कभी-कभी यह साम्य इतना अधिक होता है कि साहित्य शास्त्रियों के लिये शृङ्गार और हास्य में भेद दिखलाना दुष्कर सा हो जाता है। उदाहरण के लिये नाट्य-शास्त्र के टीकाकार आचार्य अभिनवगुप्त की भाण तथा प्रहसन नामक रूपक के भेदों की टीका के उस अंश को याद किया जा सकता है, जहाँ वह भाण और

---

१ – काव्यमिदं यः शृणुते सम्यक्काव्यार्थपालनेनासौ।
नो वञ्च्यते कदाचिद्विटवेश्याधूर्तकुट्टिनीभिरिति ॥
कुट्टिनीमत. पृष्ठ २२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



प्रहसन में तादात्म्य स्थापित करने में भी संकोच नहीं करते।

एकांकी साहित्य का अधिकांश इन्हीं दो रसों में डूबा है। शास्त्रीय दृष्टि से एकांकी रूपकों में रस की पूर्ण आनन्दानुभूति नहीं होती है, क्योंकि इनमें प्रयुक्त रस, रस नहीं, रसाभास होता है। इस रसाभाव से भी कभी-कभी काव्य के माधुर्य का आस्वादन किया जा सकता है क्योंकि काव्य-जगत् में ऐसा कोई शब्द नहीं, कोई अर्थ नहीं, ऐसा कोई शास्त्र नहीं जो काव्यात्मक-साहित्य का अंग न हो। किसी रसिक ने कहा है—" रम्यंजुगुप्सितमुदारमथापिनी-चमुग्रंप्रसादि गहनं विकृतं च वस्तु। यद्वाप्यवस्तु कवि भावकभाव्यमानं तन्नास्ति यन्न रसभावमुपैति लोके।। " कवि के संसार में कोई वस्तु वहाँ रम्य या जुगुप्सित, उदार अथवा अनुदार नहीं, सब कुछ कवित्व से चमत्कृत होकर रसभाव को प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि भाणों एवं प्रहसनों का उत्पाद्य विषय आधुनिक दृष्टि से घृणित होने पर भी प्राचीन एकांकी प्रणेताओं की काव्य-कला से यत्रतत्र चमक उठा है। आचार्य आनन्द वर्धन के अनुसार प्रत्येक वस्तु मानव की चित्तवृत्ति की विशेषता को प्रगट करने में समर्थ होती है।[१] रसादि चित्तवृत्ति के ही द्योतक हैं। संस्कृत के (उत्कृष्ट कोटि के रूपकों) नाटकादि के पात्र तो अपनी मनःस्थित दुर्बलताओं को दबाकर गुप्त रखते हैं जिसके कारण वह सामाजिकों की हृदयस्थ बुराइयों का परिष्कार नहीं कर पाते। इसके विपरीत, वैशिक जीवन एवं धूर्तों के चरित्र का अंकन करनेवाले भाण तथा प्रहसन के अभिनेता अपनी चित्तवृत्ति की गुह्यतम विशेषताओं को भी दर्शकों के सामने यथार्थ रूप में खोल कर रख देते हैं। वह शृङ्गार-वर्णनातिरेक द्वारा उनके प्रति प्रेक्षकों के मन में घृणा उत्पन्न करके तत्सम्बन्धी कमजोरियों को दूर करने में सफल हो जाते हैं। जहाँ शृङ्गार का निर्मल रूप सहृदय सामाजिकों को सुखकर प्रतीत होता है, वहाँ इसका अति-रक्षित नग्न-वर्णन उनके हृदय में रस-राज के प्रति घृणा भी उत्पन्न कर सकता है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के पृष्ठ तथा तत्कालीन एकांकी साहित्य (भाण, प्रहसन, वीथ्यादि) के अध्ययन से यह रहस्य खुल जाता है कि

१ – चित्तवृत्ति-विशेषा हि रसादयः।
न च तदस्ति वस्तु किंचित् यन्नचित्तवृत्तिविशेषमुपजनयति॥
डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित ध्वन्यालोक – (तृतीय उद्योत्)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



निर्बल मनवाले तथा भ्रमर-वृत्तिवाले कामुक नागरिकों का चरित्र विषमय होता हुआ भी दर्शकों को अमृतमय संदेश दे सकता है।

व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कराने के अतिरिक्त कवियों के जीवनकाल तथा उनके आश्रयदाताओं के जीवन चरित पर भी इन एकांकियों से प्रकाश डाला जा सकता है। उदाहरणार्थ ज्योतिरीश्वर के धूर्तसमागम प्रहसन एवं अन्य एकांक रूपकों का नाम लिया जा सकता है, जिनका यथास्थान विवेचन किया गया है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी इनकी उपयोगिता प्रत्यक्ष है।

शास्त्रों में सोदाहरण निरूपित एकांकी-भेदों तथा एक अंक में निबद्ध रूपकों के प्राप्त होने से, यद्यपि संस्कृत-साहित्य में एकांकियों का विशिष्ट स्थान प्रत्यक्ष है, तथापि नाट्य-साहित्य के इस अपरिहेय अङ्ग के साथ विद्वान् प्रायः न्याय नहीं कर पाये हैं। अब तक जितना भी शोधकार्य हुआ है वह या तो नाट्य-शास्त्र से सम्बद्ध है या रूपक की प्रमुख विधाओं यथा—नाटक, प्रकरण और सट्टक के विषय में हैं। एकांकियों का क्षेत्र अभी तक उपेक्षित सा ही रहा है। संस्कृत में एकांकियों की परम्परा रही है और उसका प्रभाव परिवर्ती साहित्य पर भी पड़ा है। हिन्दी, बंगला मराठी आदि आधुनिक भारतीय एवं कन्नड़, तेलगू, द्रविड़ आदि दक्षिण-भारत[1] की भाषाओं को इनसे प्रेरणा मिलती रही है, और इन्हें उससे दायरूप में बहुत कुछ प्राप्त हुआ है। इस बात की पुष्टि में भारत की प्रमुख भाषा हिन्दी के नाट्य साहित्य का अवलोकन पर्याप्त होगा। बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पहिले हिन्दी के नाट्य-साहित्य में मौलिक कृतियाँ नहीं के बराबर थीं। अतः भारतेन्दु के रूपक साहित्य को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक सम्पत्ति समझा जा सकता है जिस पर संस्कृत में प्रचलित एकांकी परम्परा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। उनकी कृतियों में से "धनञ्जय विजय" (व्यायोग) तथा "पाखण्ड-विडम्बन" (एकांकी रूपक) तो संस्कृत के अनुवाद ही हैं और " विषस्य विषमौषधम् " नामक रूपक संस्कृत के भाणों की शैली में ही रचा गया लोकप्रिय एकांकी है। इन्होंने नाटक शीर्षक

---

१ – दक्षिण भारत में तो मुख्य रूप से संस्कृत-नाटकों का निर्माण होता आया है और लोगों को इस कला के प्रयोग की शिक्षा दी जाती रही है। आज भी मद्रास के विद्वान् और कलाकार कला के इस क्षेत्र में रुचि रखते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



एक छोटी सी शास्त्रीय पुस्तिका लिखकर संस्कृत के नियमों के आधार पर हिन्दी के नाट्य-सिद्धान्त स्थिर करने का प्रयास भी किया जो इस बात को पुष्ट करता है कि हिन्दी की नाट्य-कला संस्कृत के नाट्य-सिद्धांतों की अनुयायिनी रही हैं। डॉ० जयकांत मिश्र के अनुसार मुंशी रघुनन्दन दास का "दूतांगद-व्यायोग" (१९३३ ई०) मैथिली का सर्वप्रथम एकांकी माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के भाण रूपक पर विचार करते हुए हम देखेंगे कि आज का मोनो ड्रामा भी एक प्रकार का भाणाभिनय है।

## एकांकियों के विषय में प्रचलित भ्रम

परम्परागत संस्कृत की एकांकी कला की सत्ता एवं महत्ता को जानते हुए भी इस सम्बन्ध में साहित्यिक समाज में अनेक भ्रांत धारणाएं प्रचलित हैं। भरत के नाट्य-शास्त्र अथवा संस्कृत नाट्य-साहित्य से अनभिज्ञ विचारकों[1] का यह समझना तो स्वाभाविक है कि नवीनता, अर्थ एवं समय की बचत के कारण एकांकी नाटक भी सिने-संसार जैसे वैज्ञानिक आविष्कारों की भाँति बीसवीं शताब्दी की देन है और आंग्ल साहित्य से प्राप्त हुई कोई अनोखी वस्तु है परन्तु संस्कृत के कतिपय विद्वानों एवं इतिहास लेखकों के ऐसे ही भ्रामक विचारों को देखकर आश्चर्य होता है। यथा—एकांकियों के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखक डॉ० कीथ[2] एवं एवं वाचस्पति[3] गैरो के निम्नांकित उद्गार विचारणीय हैं :—

(क) The Anka or One act play is represented by very few specimens.

---

१ – कुछ आलोचक एकाङ्की का उद्गम संस्कृत साहित्य से मानते हैं परन्तु एकाङ्की लेखन जब बीसवीं शताब्दी में शुरू हुआ तो स्पष्ट है कि उस पर अंग्रेजी का प्रभाव है न कि संस्कृत का।

नाटक की परख, ले. डॉ० एस. पी. खत्री। पृष्ठ २५३

२ – (क) संस्कृत-ड्रामा – कीथ, पृष्ठ २६८.

(ख) संस्कृत नाटक – ले. डॉ० कीथ (डा० उदयभानुसिंह द्वारा अनुवादित) पृष्ठ २७०

३ – संस्कृत-साहित्य का इतिहास – ले. वाचस्पति गैरोला (बृहद् संस्करण) पृष्ठ २१९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



(ख) ऐसा प्रतीत होता है कि भास द्वारा प्रस्तुत आदर्श के होते हुए भी व्यायोगों की अधिक रचना नहीं हुई।

संस्कृत-नाटकों में रस-निष्पत्ति और भावुकता के विशेष महत्व तथा आधुनिक भारतीय एकांकियों में मनोविज्ञान एवं अन्तर्द्वन्द्व की विशेषता को देखकर ही आज के विचारक विमोहित हो रहे हैं। युग के प्रभाव से प्रभावित आज के एकांकी का प्रायोगिक दृष्टि से परिवर्तित रूप भी उनके व्यामोह का एक कारण है। संस्कृत के पुरातन एकांकी साहित्य के समीक्षण से ज्ञात होगा कि उनमें जिन विशेषताओं ( मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, अन्तर्द्वन्द्व आदि ) का अभाव विद्वत्समाज को आज खटक रहा है, उनसे भी वह सर्वथा शून्य नहीं है। उसका चित्रण वहाँ दूसरे रूप में प्राप्त होता है।

नाट्य का मानव-जीवन से अविच्छेद्य सम्बन्ध है। मनुष्य के प्रगति-पथ में जिस प्रकार उत्थान और पतन की क्रिया चलती रहती है, उसी प्रकार साहित्य के अन्य क्षेत्रों की भाँति रूपक वाङ्मय में भी यह क्रम चलता रहता है। इस तथ्य को हृदयङ्गम न कर आज के विचारक साहित्य-जगत् में प्रचारक के रूप में अवतरित होने लगे हैं।

वस्तुतः विनोदरंग के क्षेत्र में मनोरञ्जन के साधनों के प्रभव-स्थान तथा उनके निर्माण-काल का विशेष महत्व नहीं हुआ करता। चित्तानुरञ्जक वस्तुओं का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ता का खेद-निवारण करना होता है। भोक्ता अपनी रुचि के अनुकूल विभिन्न मार्गों द्वारा अपना विनोद करता है। विलास तथा उल्लास के रंग में डूबा हुआ बुभुक्षित श्रान्त मनुष्य मनोरञ्जक वस्तु के रूप और गुण की परवाह नहीं करता। आह्लादमय साधनों में नाट्य सर्वोत्कृष्ट है। अन्य विनोदप्रद वस्तुओं के निर्माताओं की तरह नाट्यप्रणेता को भी भोक्ता की रुचि को ध्यान में रखना पड़ता है। बुभुक्षित समाज का चित्रण करने वाले संस्कृत के एकांकियों की सर्वाधिक संख्या में उपलब्धि का भी यही रहस्य है। विश्व-साहित्य के सम्प्रेक्षण से भी यही सिद्ध होता है। अहम्मति से आक्रांत हृदय की संकीर्णता का त्यागकर उदारतापूर्वक विचार करने पर यह बात किसी को आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होगी कि विश्व के अन्य क्षेत्रों की भाँति भारत में भी नाट्य द्वारा लोकरञ्जन एवं लोकशिक्षण का कार्य होता आया है, आज भी हो रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा। हाँ, उनका स्वरूप बदल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



सकता है। संस्कृत के प्राचीन एवं अर्वाचीन एकांकियों की बहुविधता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

संस्कृत वाङ्मय में निम्नलिखित एकांकियों का उल्लेख उपलब्ध होता है। इनमें रूपक तथा उपरूपक दोनों प्रकार के एकांकी सम्मिलित हैं। इन रूपकों एवं उपरूपकों में कुछ लेखकों तथा उनके रचनाकाल की निस्संदिग्ध जानकारी प्राप्त होती है किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो ग्रन्थ रूप में उपलब्ध हैं अथवा जिनका उल्लेख अन्यत्र मिलता है परन्तु उनके रचयिताओं के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे एकांकी भी हैं जिनके नाम, लेखक आदि का पता नहीं चल सका है। इनकी विवेचना आगे प्रस्तुत की जावेगी।

## एकांकी तालिका

### भाण

| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| **सामान्य भाण** | | |
| (१) | पद्मप्राभृतक | शूद्रक |
| (२) | धूर्तविटसंवाद | ईश्वरदत्त |
| (३) | उभयाभिसारिका | वररुचि |
| (४) | पादताड़ितक | श्यामिलक या श्यामल अथवा सोमिलक |
| (५) | कर्पूरचरित | वत्सराज |
| (६) | रससदन | युवराज कवि |
| (७) | शृङ्गारभूषण | वामनभट्टबाण |
| (८) | मदनगोपालविलास | गुरूराम |
| (९) | अनंगजीवन | कोच्चुण्णिभूपालक |
| (१०) | शृङ्गारतिलक अथवा अय्यभाण | रामभद्रदीक्षित |
| (११) | वसन्ततिलक अथवा अम्मभाण | वरदाचार्य या अम्मल आचार्य |
| (१२) | शृङ्गार सुधाकर | अश्विनराम वर्मा |
| (१३) | शृङ्गार सर्वस्व | भूतिनाथ |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (१४) | मदनसंजीवन | घनश्याम |
| (१५) | शृङ्गारसुधार्णव | रामचन्द्र |
| (१६) | शृङ्गारसर्वस्व | नल्लकवि |
| (१७) | शारदातिलक | शंकरकवि |
| (१८) | शृङ्गारशेखर | सुदर्शन शर्मा |
| (१९) | महिषमंगल | पूवनम् महिषमंगल कवि |
| (२०) | कन्दर्पदर्पण | श्रीकंठ |
| (२१) | अनंगजीवन | अभयवरद कवि |
| (२२) | अनंगसर्वस्व | लक्ष्मीनृसिंह |
| (२३) | मदनभूषण | अप्पायज्वन् |
| (२४) | रसोल्लास | श्रीनिवास वेदान्ताचार्य |
| (२५) | शृङ्गारकोष | कश्यपगोत्रतिलक (अभिनव कालिदास) |
| (२६) | शृङ्गारजीवन | अवधानसरस्वती |
| (२७) | शृङ्गारस्तवक | नृसिंह |
| (२८) | शृङ्गाररसभृङ्गार | विश्वनाथ |
| (२९) | मदनमहोत्सव | श्रीकंठ |
| (३०) | शारदानन्द | श्रीनिवासाचार्य |
| (३१) | शृङ्गारराजतिलक | अविनाशीश्वर |
| (३२) | संपत विलास | श्री रंगनाथ महादेशिक |
| (३३) | हरिविलास | हरिदास |
| (३४) | शृङ्गारदीपक | विज्जीभूराघवाचार्य |
| (३५) | शृङ्गारपावन | वामनभट्ट बाण |
| (३६) | गोपाललीलार्णव | गोविन्ददेव कवि |
| (३७) | शृङ्गारसर्वस्व (अप्रकाशित) | श्रीवेदान्ताचार्य |
| (३८) | रसिकामृत | शंकरनारायण |
| (३९) | चातुरीचन्द्रिका | श्रीनिवास कवि |
| (४०) | शृङ्गार जीवन | षठजित् कवि |
| (४१) | वल्लवीपल्लवोल्लास | मंजुलाचार्य |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (४२) | वसन्तभूषण | वरदार्य |
| (४३) | श्रृङ्गार जीवन | वरदाचार्य |
| (४४) | श्रृङ्गार सर्वस्व | अनन्तनारायण सूरि |
| (४५) | रसरत्नाकर | जयन्त |
| (४६) | श्रृङ्गारविलास | शाम्बशिव |
| (४७) | श्रृङ्गारमंजरी | रतिकर |
| (४८) | तरुणभूषण | शठकोप |
| (४९) | मालमंगल | मालमंगल |
| (५०) | केरलाभरण | रामचन्द्र दीक्षित |
| (५१) | विजयविटराज | कौच्युणितम्पुरन |

**मिश्र भाण**

| | | |
|---|---|---|
| (५२) | मुकुन्दानन्द भाण | काशीपति कविराज |
| (५३) | श्रृङ्गारराज | अज्ञात |
| (५४) | पंचबाणविलास | अज्ञात |
| (५५) | पंचायुधप्रपंच | अज्ञात |
| (५६) | प्रद्युम्नानन्द | अज्ञात |
| (५७) | रसविलास | अज्ञात |
| (५८) | रसिकरंजन | अज्ञात |
| (५९) | पंचबाणविजय | रंगाचार्य |
| (६०) | रसिकजनरसोल्लास | श्री निवासाध्वरि |
| (६१) | श्रृङ्गाररसोदय | रामकवि |
| (६२) | लीलामधुकर | अज्ञात |
| (६३) | अनंगतिलक | अज्ञात |
| (६४) | लालादर्पण | अज्ञात |
| (६५) | कलिकेलियात्रा | अज्ञात |
| (६६) | श्रृङ्गारदीपिका | अज्ञात |
| (६७) | अम्बाल | अज्ञात |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (६८) | अनंगमंगल | अज्ञात |
| (६९) | आनन्दतिलक | अज्ञात |
| (७०) | गोपीलीलार्णव | अज्ञात |
| (७१) | शृङ्गारमंजरी | अज्ञात |
| (७२) | अनंगब्रह्मविद्याविलास | अज्ञात |
| (७३) | कामविलास | अज्ञात |
| (७४) | कोल | अज्ञात |
| (७५) | कुसुमबाणविलास | अज्ञात |
| (७६) | सरसकविकुलानन्द | अज्ञात |

**अज्ञात लेखक भाण**

(७७) शृङ्गारतरंगिणी
(७८) शृङ्गारशृङ्गारक
(७९) पत्रलेखा
(८०) ललितनागर

**शीर्षकहीन चार भाण**

## प्रहसन

| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (१) | दामक प्रहसन | भास |
| (२) | मत्तविलास | महेन्द्र विक्रम |
| (३) | लटकमेलकम् | शंखधर कविराज |
| (४) | भगवदज्जुकम् | बोधायन कवि |
| (५) | हास्यार्णव | जगदीश्वर |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (६) | हास्य चूड़ामणि | वत्सराज |
| (७) | कौतुक सर्वस्व | गोपीनाथ चक्रवर्ती |
| (८) | धूर्तसमागम | ज्योतिरीश्वर |
| (९) | धूर्तनर्तक | सामराज दीक्षित |
| (१०) | चण्डानुरंजनम् | घनश्यान |
| (११) | डमरुक | घनश्याम |
| (१२) | कुमारविजय | घनश्याम |
| (१३) | दोलापंचीलक | रामनाथ शास्त्री |
| (१४) | मणिमंजूषा | कांचनमाला (सुरेन्द्रमोहन) |
| (१५) | पांडित्य ताण्डव | वटुकनाथ शर्मा |
| (१६) | पंडितचरित | मधुसूदन |
| (१७) | नाटवाट प्रहसन | यदुनन्दनन |
| (१८) | कौतुक रत्नाकर | कवितार्किक |
| (१९) | विनोदरंग | सुन्दरदेव वैद्य |
| (२०) | उन्मत्तकवि कलशप्रहसनम् | वेंकटेश्वर (अप्रकाशित) |
| (२१) | भानुप्रबन्ध | वेंकटेश्वर |
| (२२) | योगानन्दम् | अरुणगिरिनाथ |
| (२३) | सुभगानन्दम् | वासुदेव |
| (२४) | मुण्डितप्रहसनम् | शिवज्योतिर्विन्द |
| (२५) | कुहनाभैक्षवम् | बोम्भकण्टि गंगाधर |
| (२६) | पाषण्डविडम्बन | महेश्वर |
| (२७) | मदनकेतु प्रहसन | रामपाणिवाद |

**अज्ञात-लेखक प्रहसन**

(२८) सैरन्ध्रिका (सौभद्रिक)
(२९) कन्दर्पकेलि
(३०) सागरकौमुदी
(३१) प्रतापरुद्रीय विडम्बना
(३२) कलिकेलि (शशिकला)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
| --- | --- | --- |
| (३३) | पलाण्डुमण्डनम् | |
| (३४) | वैंकटेशप्रहसनम् | |
| (३५) | नटकमेलक | |
| (३६) | कालिदास | |
| (३७) | अद्भुतरंग | |
| (३८) | आनन्दकोष | |
| (३९) | लम्बोदर | |
| (४०) | वृहत्साभद्रक | |
| (४१) | देवदुर्गती | |
| (४२) | धूर्तविडम्बन | |
| (४३) | पयोधिमन्थन | |
| (४४) | हृदयविनोद | कवि पंडित |
| (४५) | कालेय कुतूहल | |
| (४६) | काशीदास | |
| (४७) | उन्मत्त | |
| (४८) | कौतुकरत्नाकर | कवि तार्किक |
| (४९) | सोमवल्ली योगानन्द | |
| (५०) | सान्द्रकुतूहल | |
| (५१) | शशिविलास प्रहसन | |
| (५२) | धूर्तचरित | |

**शीर्षकहीन प्रहसन**

(५३) प्रहसन

## व्यायोग

| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक | उपजीव्य |
| --- | --- | --- | --- |
| (१) | दूतवाक्य | भास | महाभारत |
| (२) | मध्यम-व्यायोग | भास | महाभारत |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक | उपजीव्य |
|---|---|---|---|
| (३) | धनंजय विजय | कांचन पंडित | महाभारत |
| (४) | धनञ्जय विजय | कनकाचार्य | महाभारत |
| (५) | पार्थपराक्रम | प्रह्लादनदेव | महाभारत (गोग्रहणपर्व) |
| (६) | निर्भयभीम | रामचन्द्र | महाभारत |
| (७) | भीम विक्रम | मोक्षादित्य | महाभारत |
| (८) | त्रिपुरविजय | पद्मनाभ | महाभारत |
| (९) | नरकासुरविजय | धर्मसूरि | महाभारत |
| (१०) | कल्याण-सौगन्धिक | नीलकण्ठ | महाभारत |
| (११) | सौगन्धिका-हरण | विश्वनाथ | महाभारत |
| (१२) | नृसिंह-विजय | अज्ञात | अज्ञात |
| (१३) | विक्रान्त-राघव | कृष्ण | रामायण |
| (१४) | वीरराघवीय | प्रधानवेंकटभूपति | रामायण |
| (१५) | प्रचण्ड-भैरव | सदाशिव | |
| (१६) | विनतानन्द | गोविन्द | महाभारत |
| (१७) | विजयविक्रम या प्रचण्डगरुड़ | आर्यसूर्य | महाभारत |
| (१८) | जामदग्न्यजय | अज्ञात | |
| (१९) | किरातार्जुनीय व्यायोग | वत्सराज | महाभारत |
| (२०) | शङ्खपराभव व्यायोग | हरिहर | |
| (२१) | परशुराम विजय | अज्ञात | |
| (२२) | वीर विक्रम | अज्ञात | |
| (२३) | व्यायोग [अप्राप्य] | घनश्याम | |

## उत्सृष्टिकांक (अंक)

| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक | उपजीव्य |
|---|---|---|---|
| (१) | उरुभंग | भास | महाभारत |
| (२) | कर्णभार | भास | महाभारत |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक | उपजीव्य |
|---|---|---|---|
| (३) | दूतघटोत्कच | भास | महाभारत |
| (४) | शर्मिष्ठाययाति | | |
| (५) | करुणकुण्डला अथवा करुणाकन्दल | | |

## वीथी

| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (१) | माधवी | अज्ञात |
| (२) | प्रेमाभिराम | रविपति |
| (३) | इन्दुलेखा | अज्ञात |
| (४) | वकुलवीथिका | अज्ञात |
| (५) | राधा | अज्ञात |
| (६) | लीलावती | रामपाणिवाद |
| (७) | चन्द्रिका | रामपाणिवाद |

## उपरूपक

| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (१) | सौगन्धिकाहरण | विश्वनाथ |
| (२) | कृष्णाभ्युदय | लोकनाथ भट्ट |
| (३) | कुमारी विलसितम् | सुदर्शन |
| (४) | त्रिपुरमर्दनम् | शारदातनय द्वारा उल्लिखित |
| (५) | भैरवविलास | ब्रह्मज्ञ वैद्यनाथ |
| (६) | उन्मत्तराघव | विरूपाक्ष |
| (७) | उन्मत्तराघव | भास्कर |
| (८) | कामदहन | |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| **गोष्ठी** | | |
| (१) | रैवतमदनिका | |
| (२) | सत्यभामा | |
| **भाणिका** | | |
| (१) | कामदत्ता | |
| (२) | दानकेलि कौमुदी | रूपगोस्वामिन् |
| **उल्लाप्य** | | |
| (१) | देवी–महादेव | |
| (२) | उदात्त कुंजर | |
| **श्रीगदित** | | |
| (१) | क्रीडारसातल | |
| (२) | सुभद्राहरण | माधवभट्ट |
| (३) | रामानन्द | |
| **काव्य** | | |
| (१) | गौडविजय | |
| (२) | सुग्रीवकेलन | |
| (३) | उत्खण्डितमाधव | |
| (४) | माधवोदय | |
| **प्रेंखण** | | |
| (१) | वालिवध | |
| **नाट्यरासक** | | |
| (१) | नर्मवती | |
| (२) | विलासवती | |
| **रासक** | | |
| (१) | मेनकाहित | |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



## २० वीं शताब्दी के एकांकी

| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (१) | अलब्धकर्मीयम् | के. आर. नायर |
| (२) | अमर्षमहिमा | श्री त्रिवेंकटाचार्य |
| (३) | अन्त्येष्टिसंस्कार | के. कमला |
| (४) | आषाढस्य प्रथमदिवसे | डॉ० वी. राघवन् |
| (५) | अवन्ति सुन्दरी | डॉ० वी. राघवन् |
| (६) | रासलीला | डॉ० वी. राघवन् |
| (७) | महाश्वेता | डॉ० वी. राघवन् |
| (८) | लक्ष्मी स्वयंवर | डॉ० वी. राघवन् |
| (९) | पुनरून्मेष | डॉ० वी. राघवन् |
| (१०) | कामशुद्धि | डॉ० वी. राघवन् |
| (११) | विजयांक | डॉ० वी. राघवन् |
| (१२) | विकटनितम्वा | डॉ० वी. राघवन् |
| (१३) | वाल्मीकिप्रतिभा | डॉ० वी. राघवन् द्वारा बंगाली रचना का अनुवाद |
| (१४) | गणेश चतुर्थी | पं० क्षमाराव तथा लीलारावदयाल |
| (१५) | कटुकविपाक | पं० क्षमाराव |
| (१६) | क्षणिकविभ्रम | पं० क्षमाराव तथा लीलारावदयाल |
| (१७) | मिथ्याग्रहणम् | पं० क्षमाराव तथा लीलारावदयाल |
| (१८) | वृतासमसिच्छत्रम् | पं० क्षमाराव |
| (१९) | वालविधवा | पं० क्षमाराव |
| (२०) | भैमीनैषीधयम् | सीतारामाचार्य |
| (२१) | छायाशकुन्तलम् | श्री जीवनलाल टी. पारेख |
| (२२) | ध्रुवतारा | स्कंद शंकर खोट |
| (२३) | हा ! हन्त शारदे ! | स्कंद शंकर खोट |
| (२४) | गिरिधरसंवर्धनम् | श्री जीवन्याय तीर्थ |
| (२५) | पुरुषपुंगव भाण | श्री जीवन्याय तीर्थ |
| (२६) | कैलाशनाथविजय [व्यायोग] | श्री जीवन्याय तीर्थ |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



| क्रमांक | ग्रन्थ का नाम | लेखक |
|---|---|---|
| (२७) | ऋतक्षेमीय | श्री जीवन्याय तीर्थ |
| (२८) | रागविराग प्रहसन | श्री जीवन्याय तीर्थ |
| (२९) | स्वातन्त्र्य संधिक्षणम् | श्री जीवन्याय तीर्थ |
| (३०) | स्वातन्त्र्य यज्ञाहुति | श्री जीवन्याय तीर्थ |
| (३१) | व्रतभोजनम् | श्री जीवन्याय तीर्थ |
| (३२) | विवाह विडम्बन | श्री जीवन्याय तीर्थ |
| (३३) | मनोहरंदिनम् | ए. आर. हेवरे |
| (३४) | नागराजविजय | डॉ० हरिहर त्रिवेदी |
| (३५) | पौरवदिग्विजय | श्री एस. के रामचन्द्र |
| (३६) | प्रतिक्रिया | वी. के. थम्पी |
| (३७) | वनज्योत्सना | वी. के. थम्पी |
| (३८) | धर्मस्यसूक्ष्मागतिः | वी. के. थम्पी |
| (३९) | प्रजापतेः पाकशाला | श्री सुरेन्द्रमोहन पञ्चतीर्थ |
| (४०) | वणिक्सुता | श्री सुरेन्द्रमोहन पञ्चतीर्थ |
| (४१) | उभयरूपकम् | श्री वाई महालिंग शास्त्री |
| (४२) | शृंगारनारदीय [प्रहसन] | श्री वाई महालिंग शास्त्री |
| (४३) | मर्कटमादलिका भाण | श्री वाई महालिंग शास्त्री |
| (४४) | रथरज्जु | श्री मोतीलाल विमलकृष्ण |
| (४५) | सीतापरित्याग | श्री के. टी. पाण्डुरङ्गी |
| (४६) | तपः फलम् | श्री के. टी. पाण्डुरङ्गी |
| (४७) | विक्रमाश्वत्थमीयम् [व्यायोग] | सी. नारायणराव |
| (४८) | स्नुषाविजय | इलाट्टुर सुन्दर राजकवि |
| (४९) | वासन्तिक स्वप्न | श्री कृष्णमाचार्य |
| (५०) | यामिनी | श्री बोमागन्ती रामलिंग शास्त्री |
| (५१) | यौवराज्य | वकुलभूषण |
| (५२) | प्रकृति सौंदर्य | महाव्रत |
| (५३) | गैर्वाणविजय | पुन्नसेरी नीलकण्ठ |
| (५४) | अरण्यरोदनम् | सीतादेवी |
| (५५) | महाश्मशान | (दुःखन्तिका नाटिका) |
| (५६) | सरस्वती | सदाशिव दीक्षित |
| (५७) | निपुणिका | |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

# द्वितीय अध्याय

## भाण

### रूप निर्देश

भाण एक प्रकार का एकांकी रूपक है, जिसमें एक ही पात्र होता है और वही इसका नायक होता है। यह धूर्तचरित सम्बन्धी किसी कल्पित कथावस्तु पर आधारित होता है। इसमें आकाशभाषित के माध्यम से उक्ति-प्रत्युक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसमें साँग मुख और निर्वहण संधियाँ होती हैं। लास्य के दस अंग भी इसमें प्रयुक्त हो सकते हैं। भाण में कहीं-कहीं वीर और शृङ्गार की भी योजना की जाती है। कहीं-कहीं कैशिकी वृत्ति का आश्रय लिया जाता है किन्तु प्रायः वागभिनय ( वाचिकाभिनय ) प्रधान भारती नामक शब्दवृत्ति ही प्रयुक्त होती है। इसलिये यह रूपक भाण ( कथन पर आश्रित ) कहलाता है। इसमें आंगिक सात्त्वकादि शेष अभिनयों का अभाव ही रहता है। इसमें एक दिन का ही वृत्तांत होना चाहिये। भरत मुनि ने भाण के (१) आत्मानुभूतशंसी और (२) परसंश्रय वर्णन, ये दो भेद किये हैं।

### भाण की व्युत्पत्ति

भाण शब्द की निष्पत्ति भण् धातु से हुई है जिसका अर्थ है कहना या बोलना। भण् धातु से भावार्थक घञ् प्रत्यय लगाकर यदि इसकी व्युत्पत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



मानी जाय तो भाण का अर्थ होगा कथन या वक्तव्य। करण में घञ् मानने पर इसका अर्थ होगा जिसके माध्यम से कथन किया जाय। तब यह कथन का एक माध्यम होगा किन्तु यदि भाण शब्द की व्युत्पत्ति भण् धातु के णिजन्तरूप "भाणि" से मानी जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि इसके मूल में ही अनुकरणात्मक तत्त्व छिपे हुये हैं—क्योंकि तब इसका अर्थ होगा कहलवाना। इसके अतिरिक्त अभिधानकोषों में भाणि धातु को ध्वनिविशेष की नकल का द्योतक क्रियापद बतलाया गया है।आचार्य अभिनव गुप्त ने भी नाट्यशास्त्र की टीका में एक स्थान पर भाण रूपक की व्याख्या के प्रसंग में इसे भाणि[1] धातु से निष्पन्न माना है। आगे चलकर भाण के अभिनेताओं का भाण या भाणक नामक एक वर्ग ही बन गया जिसका पेशा हुआ हास्य एवं अभिनय के साथ मनोरञ्जक कहानियाँ सुनाकर धनोपार्जन करना। आज भी शादी-विवाह के अवसर पर वेश्याओं के साथ मनोरञ्जन कार्य में सहायतार्थ शृङ्गार एवं हास्य रस से ओतप्रोत " क्या कहा ? " इत्यादि वाक्य कहता हुआ एक पुरुष घोड़ा कुदाता हुआ आता है जो भाण के नायक विट की याद दिलाता है तथा जिससे संस्कृत नाटक के "आकाशभाषित" का स्मरण हो आता है। * जन समाज में प्रचलित स्वांग के कतिपय रूपों में " भाण्ड " नामक लोक नाटक ग्रामीण जनता के मनोरञ्जन का प्रमुख साधन है। बहुत से आधुनिक विद्वान् भाण्ड को संस्कृत भाण का रूपांतर ही मानते हैं।[2]

---

* किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥ सा. द. ६-१४०

१ – एकेनमुखेनैव भाण्डयन्ते उक्तिमन्तः क्रियन्ते,
अप्रविष्टा अपि पात्र विशेषा यत्रेति भाणः।

अभिनवगुप्त (अभिनव भारती टीका)
ना. शा. गा. ओ. सी. पृ० ४४९

२ – कल्याणे च मुखे चैव भाडि धातुं प्रचक्षते।
मुखकल्याणकारत्वाद्भाण्डमाहुर्मनीषिणः ॥
अथवा भण धातोस्तु शब्दार्थादुपजायते।
भणनीत्येव भाण्डमित्यूहनीयं सुबुद्धिभिः ॥

भरतकोष से उद्धृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



## विभिन्न आचार्यों के मत

नाट्यशास्त्रकार भरत[1] से लेकर विश्वनाथ तक जितने भी नाट्य-मीमांसक हुए हैं, उनके लक्षण-ग्रन्थों में भाण रूपक के बाह्य-रूप का चित्राङ्कन एक सा ही है, किन्तु नवीन तथा प्राचीन नाट्यशास्त्रकारों और आलोचकों में रस प्रयोग के प्रसंग में मतभेद दिखाई देता है। भरत ने शृङ्गार रस की द्योतक कैशिकी वृत्ति को भाण में स्थान नहीं दिया और न उन्होंने यही बतलाया कि इसमें किन रसों का प्रयोग करना आवश्यक है। इस रूपक की विषय-वस्तु पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त नहीं किये हैं। भरत के नाट्य-शास्त्र पर टीका करते हुए अभिनवगुप्ताचार्य कहते हैं कि विट का चरित्र हास्योचित होना चाहिये। उनके अनुसार भाण एवं प्रहसन में बहुत कुछ साधर्म्य है और उत्सृष्टिकाङ्क, प्रहसन तथा भाण में क्रमशः करुण, हास्य एवं विस्मय[2] या अद्भुत रस प्रधान होने चाहिये। इस प्रकार उनमें शृङ्गार के लिये कहीं अवकाश नहीं है।

दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में धनञ्जय ने भाण में भारती वृत्ति[3] पर जोर दिया जिससे मालूम होता है कि उस समय या उसके पूर्व भाण केवल हास्य प्रधान हुआ करते थे। इस प्रकार उनके अनुसार भाण में भारती वृत्ति तथा वीर एवं शृङ्गार रस की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसके बाद आचार्य विश्वनाथ[4] ने सम्भवतः भाणों में शृङ्गार के आधिक्य को देखकर इसमें भारती वृत्ति के साथ साथ कैशिकी वृत्ति के समावेश का निर्देश किया यह बात स्पष्टतः भरत के विरुद्ध है। उन्होंने भाण में शृङ्गार रस के अनुरूप नृत्यमय ललित शैली की उपेक्षा करना उचित न समझा। विश्वनाथ ने इसमें दाक्षिण्य एवं हावांभिनय की खुली छूट देकर ही कैशिकी वृत्ति को ग्रहण किया।

---

१ – ना. शा. गा. ओ. सी. भाग–२ अध्याय १८

२ – ना. शा. गा. ओ. सी भाग–२ पृ० ४५३.

३ – सूचयेद्वीरशृंगारौ शौर्य-सौभाग्यसंस्तवैः।
भूयसा भारतीवृत्तिरेकाङ्के वस्तु कल्पितम्।
मुखनिर्वहणे साङ्गे लास्याङ्गानि दशापि च। दशरूपक तृ. प्र. ४९-५१

४ – साहित्यदर्पण १ परिच्छेद ६, पृष्ठ २२७-२३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



काव्यानुशासनकार आचार्य हेमचन्द्र ने अभिनव गुप्ताचार्य की भाँति भाण का लक्षण करते हुए स्पष्ट बतलाया है कि भाण की रचना अधिकतर जनसाधारण[१] के लिए हुआ करती है । इसका समर्थन अभिनवगुप्ताचार्य ने भी किया है ।[२] संस्कृत साहित्य के मध्ययुगीन मर्मज्ञ रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र ने प्राचीन साहित्याचार्यों की उक्तियों से मत-भेद प्रदर्शित करते हुए भाण को शृङ्गार, वीर तथा हास्य-रस-भूयिष्ठ रूपकों के प्रकारों में सबसे अधिक लोकप्रिय[३] माना है। इनके मत से भाण का कथाभाग सर्वथा विट द्वारा कल्पित होना चाहिये तथा उसका नायक भी सदा विट ही होना चाहिये ।[४] डॉ० कीथ ने भी इसको जन-साधारण का चित्तानुरञ्जन करने वाला एक नाट्य भेद स्वीकार किया है ।[५] भावप्रकाश में अपने पूर्ववर्ती कोहलादि आचार्यों के मत के साथ-साथ भाण का वर्णन करते हुए शारदातनय इसे "शृङ्गाररसैकाश्रयम्" कहकर अन्य आचार्यों से अपना मतभेद प्रगट करते हैं ।[६]

उनके द्वारा उल्लिखित भाण के लक्षण पर ध्यानपूर्वक विचार करने से इसके निम्नांकित दस भेद स्पष्ट होते हैं। उन्होंने इनमें से प्रत्येक प्रकार के भाण के लक्षण भी बतलाये हैं। शारदातनय का यह वर्गीकरण दस लास्यांगों

---

१– आत्मानुभूतशंसी--परसंश्रय वर्णना प्रयुक्तश्च ।
... ... ... एकांको बहुचेष्टः सततं कार्योन्नुधैर्भाणः ।
काव्यानुशासन (का. भा.) – अध्याय ८, पृष्ठ ३८९.
[टीका–सकल-सामान्य-पृथग्जनोपयोग्यत्र लोकव्यवहारो वेश्याविटादि-वृत्तान्तात्मा निरूप्यत इति । बाहुल्येन पृथग्जनव्युत्पत्युपयोगिरूपकम् ।]
–हेमचन्द्र

२– ना. शा. टीका, गा. ओ. सी. पृष्ठ ४५०

३– भाणः प्रधान शृङ्गार वीरो मुख-निर्वाहवान् ।
एकाङ्को दशलास्याङ्गः प्रायो लोकानुरञ्जकः ॥ ८१ ॥ नाट्यदर्पण, पृष्ठ १२७

४– एको विटो वा धूर्तो वा वेश्यादेः स्वस्य या स्थितिम् ।
व्योमोक्त्या वर्णयेदत्र वृत्तिर्मुख्या च भारती ॥ ८२ ॥ नाट्यदर्पण पृष्ठ १२७

५– The monolouge "भाण" has also an obviously popular character and origin..............
Keith, Sanskrit Drama, P. 348.

६– भा. प्र. अष्टम अधिकार – पृष्ठ २४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



के आधार पर किया गया प्रतीत होता है।[1]

धनञ्जय, भावप्रकाशकार तथा दर्पणकार आदि साहित्याचार्यों ने अपने ग्रन्थों के जिन स्थलों पर दशलास्यांगों का आकलन प्रस्तुत किया है, उन पर एक तुलनात्मक दृष्टिक्षेप करने से विदित होगा कि शारदातनय ने आचार्य विश्वनाथादि द्वारा प्रयुक्त "चान्यदुक्त-प्रत्युक्तमेवच" इत्यादि के स्थान पर "भाण्य मुक्त-प्रत्युक्तमेवच" का प्रयोग करना उचित समझा है।[2] भाण-रूपकों में उक्ति-प्रत्युक्ति के प्राचुर्य को देख कर ही संभवतः उक्त प्रसंग में भाण्य पद का प्रयोग किया गया होगा। डॉ० राघवन् का कथन है कि भाण एवं इसी कोटि के (वीथ्यादि) रूपकों में दस के दस लास्यांग प्राप्त नहीं होते। उन्होंने अपने "भोज का शृङ्गार प्रकाश" नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में पृष्ठ ५७६ से ५८६ तक, इस विषय पर विस्तृत चर्चा करते हुए भरत एवं अन्य आचार्यों का स्मरण किया है। उनका यह कथन ठीक है, परन्तु यदि लघुरूपकों में वीज, बिन्दु पताकादि के भेदोपभेद के प्रयोग के प्रसंग में रस की पुष्टि के हेतु दर्पणकार के अनुसार इनकी अवहेलना की जा सकती है तो उसी के साहचर्य से लास्यांगों के प्रयोग के समय भी रूपक रचयिताओं ने इस छूट का लाभ उठाया हो, इसमें आश्चर्य नहीं। कोई भी रूपककार रचना करते समय, लक्षण शास्त्र अपने सामने नहीं रखते और न लक्षणशास्त्री ही इसके विपरीत अपने पास कोई लक्ष्यग्रन्थ रखते हैं। वस्तुतः इनका प्रयोग नाट्य में माधुर्य एवं सौन्दर्य नियोजन के निमित्त ही हुआ करता था। अतः इस प्रकरण के विस्तार की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

---

१– गेयपदं स्थितं पाठ्यमासीनं पुष्पगण्डिका।
प्रच्छेदकस्त्रिगूढं च सैन्धवाख्यं द्विगूढकम्॥
उत्तमोत्तमकं चान्ययुक्तप्रत्युक्तमेव च।
हास्ये दशविधं ह्येतदंग निर्देशकल्पनम्॥

दशरूपक – तृतीय प्रकाश, ५२–५३

२– उत्तमोत्तमकं भाण्यामुक्तप्रत्युक्तमेव च।
लास्यं दशविधं ह्येतदङ्ग निर्देशकल्पनम्॥

भावप्रकाश। अष्टम अधिकार – पृष्ठ २४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



सागरनन्दी[1] किसी भी रस का इस विषय में नामोल्लेख नहीं करते। उनका मत है कि जिस रूपक में "परवचन" (आकाश भाषित) और "आत्मवचन" व्यवधान से ग्रथित हों तथा जिसमें धूर्त एवं विट की सुख-दुःखात्मक नानावस्थाएँ एक अङ्क में सन्निविष्ट हों वह भाण कहलाता है। शिंगभूपाल के "रसार्णवसुधाकर" के अनुसार भाण में दस तत्त्व प्रधान होते हैं यथा —अवगलित, अवस्कन्द, व्यवहार, विप्रलम्भ, उपपत्ति, अनृत, विभ्रान्ति, भय, गद्गद्वाक् और प्रलाप।

अग्रणी आचार्यों के अभिमतों का सम्यगवलोकन करने के उपरान्त भाण में लास्य के प्रयोग को देखकर प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् स्टेनकोनो जन साधारण में प्रचलित नकलों से इस रूपकविशेष का सम्बन्ध जोड़ते हैं। परन्तु श्री सुशीलकुमार दे के मतानुसार भाणों में नकलों का कोई अंश समाविष्ट नहीं है।

## भाण और प्रहसन

'अभिनव भारती' में अभिनव गुप्त के भाण को प्रहसन मानने से यह ध्वनित होता है कि प्रहसन मनोरञ्जन की एक सामान्यवस्तु थी जिसमें हास्य-रस प्रधान होता था। प्रहसन नामक रूपक-विशेष से भाण की समानता देख कर ही अभिनव-भारतीकार ने इसे प्रहसन (समानयोगक्षेम) माना।[2]

---

१– आत्मानुभूतशंसी परसंश्रयवर्णनाविशेषः
विविधाश्रयः एकहार्यः (एकनार्याहार्यः)
"भाण इहैकाकिन्यानार्या हार्योहारिण्येति"
यत्रपरवचनमात्मवचनैः सान्तरैर्ग्रथितं वाच्यं च भवेत्
आकाशपुरुषा यत्र व्याहरन्ति धूर्तविटानां सम्प्रयोगो नानावस्थाभिः.
सुखदुःखात्मिकाभिश्चोपेतः एकाङ्कश्च . भाणः ।
( देखिये भरत-कोप )

२– अथहास्यरसोचितविटधूर्ताद्यनुप्रवेशेन समानयोगक्षेमं भाणं
लक्षयितुमाह आत्मानुभूतशंसीति। एकेन पात्रेण हरणीयं सामाजिकहृदयं
प्रापयितुं व्यायोऽर्योयत्र स भाणः। एकेनमुखेनैव भाण्यन्ते उक्तिमन्तः क्रियन्ते।
अप्रविष्टा अपि पात्रविशेषा यत्रेति भाणः। तत्र स प्रविष्टः पात्र-विशेषः
ना. शा. १८, पृष्ठ ४४६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



भरत, धनञ्जय आदि प्राचीन आचार्यों के इस एकनटाभिनयप्रधान-रूपक-विषयक मतों के विवेचन से भी यही स्पष्ट होता है कि भाण का सम्बन्ध निश्चित रूप से प्रहसन से रहा होगा। दशरूपक के अनुसार एकांकी में भारती–वृत्ति का विशेष प्रयोग होता है।[1] भारती भरत या नटों द्वारा अधिक प्रयुक्त होने वाली रही होगी। इससे यह मालूम होता है कि प्रहसन सामाजिकों की रुचि को अभिनय की ओर आकृष्ट करने का एक सामान्य साधन था।

प्ररोचना, आमुख, प्रहसन और वीथी—भारती वृत्ति के इन चार अंगों में से पहले दोनों का सम्बन्ध नाटक की पूर्व-रंग-क्रिया से है।[2] प्रहसन और वीथी रूपक की प्रस्तावना के अंग प्रतीत होते हैं। इन अंगों का पूर्वाचार्यों ने भी अलग स्पष्ट रूप से विवेचन नहीं किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रस्तावना में प्रहसन, नर्मवचनादि द्वारा सामाजिकों को प्रसन्नचित्त करके रूपक के प्रयोग की ओर उनकी रुचि को उन्मुख करना ही नटों का कार्य था। पीछे से प्रहसन एवं वीथी ने रूपक के एक विशेष भेद का रूप ग्रहण कर लिया होगा।

प्रहसन और भाण में समानता होने पर भी, प्रहसनों में काव्य-सुषमा भाणों की तरह नहीं निखर पाई है। यद्यपि सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफाश करने के लिये कवि के पास प्रहसन और भाण ये दोनों भेद बड़े अस्त्र थे, तथापि दोनों की प्रणाली में गहरा भेद है। प्रहसनों में भाणों की अपेक्षा अशिष्ट ग्राम्य प्रयोग अधिक उपलब्ध होते हैं, जिसके फलस्वरूप प्रहसन की व्यंग्य-प्रणाली छिछली हो गई है। इसके विपरीत भाणों के माध्यम से कसा गया व्यंग अशिष्ट वर्णनादि से परे रहता है। यद्यपि इनमें भी गाली-गलौज-मिश्रित भाषा देखने को मिलती है, परन्तु वह व्यञ्जना आदि शब्द-शक्तियों के आवरण में छिपी होने के कारण प्रकट रूप से पाठकों के सामने नहीं आती। प्रहसनों का उद्देश्य होता है येनकेनप्रकारेण प्रेक्षकों को हँसाना। जबकि भाणों में समाज के परिष्करण की भावना तीव्र होती है। इनमें प्रेक्षक

---

१ –. भूयसा भारती वृत्तिरेकाङ्के ... ... ... ...
दशरूपक, तृतीय प्रकाश पृष्ठ ३५५

२ – भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।
तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे॥
प्रशंसातः प्ररोचना। साहित्यदर्पण, ६, पृष्ठ ३३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



को केवल हास्य-रस में डुबकियाँ लगाने का ही अवसर नहीं मिलता, प्रत्युत रसिकों को रसराजश्रृंगार का साक्षात् दर्शन कर एक अलौकिक आनन्द का अनुभव भी होता है। 'लटकमेलक' तथा 'हास्यार्णव' प्रहसन में किस प्रकार कवि केवल हास्य की सृष्टि हेतु विभिन्न औषधियों के द्वारा रोगों की चिकित्सा करता है यह उक्त हास्यप्रधान कृतियों में से उद्धृत कतिपय पंक्तियों से ज्ञात हो सकेगा। यथा—

चक्षूरोगे समुत्पन्ने, तप्तफालं गुदे न्यसेत्।
तदा नेत्रोद्भवां पीड़ां मनसापि नहि स्मरेत्॥[1]
अर्कक्षीरं बटक्षीरं स्नुहीक्षीरं तथैव च।
अञ्जनं तिलमात्रेण पवतोऽपि न दृश्यते॥

नेत्र-रोग को दूर करने के लिए 'लटकमेलक' के जन्तुकेतु वैद्य के अनुसार तपाई हुई शलाका को आँखों के कोमलतम प्रदेश में घुसा देना चाहिये और इस क्रूरकर्म के परिणामस्वरूप उत्पन्न नेत्र-पीड़ा का मन में ध्यान भी नहीं करना चाहिए। ठीक ही है, तप्त लौह का शरीर से सम्पर्क होने के कारण जब प्राणान्त ही हो जायेगा तब नेत्रगत कष्ट के स्मरण का प्रश्न ही नहीं उठेगा। इतना ही नहीं, आँखों का अञ्जन भी अनोखा है जो "आँख फूटी और पीर गई" की कहावत को चरितार्थ करता है। थोड़े से भी आक, बट तथा सेंहुड के दूध का आँख में लेप करने से पर्वत भी नहीं दिखाई दे सकता।

इसी प्रकार 'हास्यार्णव' प्रहसन में भी प्रकृतिविपरीत वर्णन द्वारा खुजली को दूर करने का एक विचित्र नुस्खा बतलाया गया है, जिसमें हास्य की ही प्रधानता है। तदनुसार देखिये—

वारिवर्णीचयैः साकं घृष्ट्वा वृश्चिकमञ्जतः।
दातव्यो वानरीरेणुः सद्यः कण्डूहरो हि सः॥ २ ॥[2]

---

१ – लटक-मेलक, २५, २६.
२ – हास्यार्णव, ३६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



रोगी के सारे शरीर के अंगों में शैवाल के समूह के साथ विच्छू को पीस कर एवं वानरीरेणु ( काँटों के आकार की बारीक धूलि ) का लेप कर देना चाहिये। इस चिकित्सा से खुजली का अविलम्ब नाश हो सकेगा।

भाण कल्पना-प्रधान रूपक होता है। कल्पना के क्षेत्र में नैपुण्य लाभ करना आसान काम नहीं। अमूर्त की अपेक्षा मूर्त वस्तु द्वारा साधारण लोगों का मनोरञ्जन करना सरल तथा सुलभ होता है परन्तु अमूर्त चित्रण के साहाय्य से श्रोता और दर्शक का मन मोह लेना दुष्कर कार्य है। कुशलता प्रारम्भ में ही प्राप्त नहीं की जा सकती। संस्कृत के प्रहसनों की अपेक्षा भाणों में काव्य-सौष्ठव के आधिक्य को देखने पर 'भाण' निश्चित रूप से प्रहसन रूपक के बाद का नाट्य प्रकार प्रतीत होता है।

## शृङ्गार का शास्त्रीय विवेचन

'काम' शब्द का अर्थ इच्छा भी होता है। शृंगार शब्द 'शृंग' और 'आर' के योग से बना है। 'शृंग' कामोद्रेक का तथा अण् प्रत्ययान्त 'ऋ' धातु से निष्पन्न 'आर' प्राप्ति का द्योतक है। कतिपय काव्यशास्त्रियों ने शृंगार में सन्निहित शृंग शब्द का यौवनकाल में उदित होने वाले शृंगी पशुओं के सींग से जोड़ा है और उसकी तुलना मनुष्य के जीवन के वसन्तकाल ( यौवन ) में उदित होने वाली उन्मत्त चेतना से की है। इससे शृंगार का क्षेत्र संकुचित-सा हो जाता है। वस्तुतः किसी वस्तु को प्राप्त करने तथा उससे स्नेह करने की भावना ( काम ) मनुष्य के मन में जन्म से ही होती है, जिनसे अपने जीवनकाल की विभिन्न अवस्थाओं में वह भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट करता है। गुरु-शिष्य, पिता-पुत्री, माता-पुत्र आदि अपनी इस मनःस्थित कामना को क्रमशः वात्सल्य और भक्ति के मार्ग से प्रकट करते हैं। इस प्रकार मनुष्य की कामैषणा के अनेकरूप शृंगार में निहित हैं। परन्तु भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में इसकी उद्देश्यपूर्ति की बदली हुई विधि के अनुसार साहित्य-शास्त्र में इनके विभिन्न नाम प्रस्तुत किये गये हैं। अधिकांश रसिकों के अनुसार विरोधी लिंग के प्राणियों के मन में संस्कार रूप से वर्तमान रति या प्रेम रसावस्था को पहुँच कर जब आस्वादक्षमता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



को प्राप्त करता है तब शास्त्रीय भाषा में उसे श्रृंगाररस कहते हैं। इस रस में समस्त सञ्चारी भावों का समावेश हो जाता है, जबकि अन्य रसों में परिमित सञ्चारी ही पाये जाते हैं। यद्यपि आलस्य, उग्रता, मरण आदि भावों का संभोग श्रृंगार में वर्णन निषिद्ध होता है तथापि विप्रलम्भ श्रृंगार में इसका वर्णन वांछनीय हो जाता है। जगत् के सब प्राणियों में रति-भाव का प्रावल्य होने के कारण सरस एवं विरस जन भी इसका आस्वादन कर सकते हैं।

इसकी व्यापकता, कमनीयता एवं सरसता के कारण विश्व-साहित्य का एक विस्तृत भाग इस परमप्रह्लादनरससागर में मग्न दिखाई देता है। इसका स्थायी भाव उज्जवलवेशान्वित रति है। इस प्राचीन कथा तथा फ्रायड जैसे आधुनिक मनोवैज्ञानिक विचारकों के काम-विषयक विचारों में भी रतिपति काम का सर्वातिशायी महत्त्व निहित है।

'कामसूत्र' में काम शब्द का सामान्य अर्थ बतलाते हुए वात्स्यायनाचार्य का कथन है कि कान, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका—इन पंचेन्द्रियों की इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और घ्राण नामक विषयों में प्रवृत्ति ही काम है।[१] दूसरे शब्दों में इन इन्द्रियों की प्रवृत्ति से आत्मा को जो आनन्दानुभूति होती है, उसे काम कहते हैं। 'कामशास्त्र' में ही स्त्री और पुरुष के पारस्परिक स्पर्शजन्य आत्मिक सुखों के बोधक तत्वों को भी काम ही कहा गया है। इस प्रकार 'काम' और 'रति' रमणेच्छासूचक पर्याय बन जाते हैं, जिसका दूसरा व्यापक अर्थ अनुराग अथवा प्रेम कहलाता है। इस दृष्टि से वह कान्तकान्ता के दैनिक सहवास की संकुचित सीमा का अतिक्रमण कर मानव-जीवन के सम्पूर्ण प्रेय तथा श्रेय की नियामिका प्रवृत्ति बन जाती है।

हमारे साहित्याचार्यों ने श्रृंगार की स्थिरवृत्ति रति का व्यापक एवं संकुचित दोनों ही अर्थों में वर्णन किया है। मम्मट[२] और विश्वनाथ[३] ने रति के व्यापक अर्थ

---

१- कामसूत्र, १-२, ११-१२
२- काव्यप्रकाश - ४, पृष्ठ १३५
३- साहित्यदर्पण, ३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



को ग्रहण किया है। काव्यप्रकाशकार के अनुसार कान्ताविषयक रति शृंगार का साध्य है। दर्पणाकार प्रियतम वस्तु में मन के प्रेमपूर्ण उन्मुख होने को रति कहते हैं। मनोनुकूल अर्थ की सीमा निस्संदेह व्यापक होती है, यद्यपि उसमें स्त्री-पुरुष की पारस्परिक मानसिक अनुकूलता का भाव भी सन्निहित है। शृंगार–सुधाकर में रति का संकुचित अर्थ वर्णित है।[१] अधिकांश साहित्याचार्यों ने नायक-नायिका की अन्योन्याश्रित नैसर्गिक आसक्ति को शृंगार के लिये स्पृहणीय बतलाया है। मानव की मधुरतम मानसिक बुभुक्षा "काम" को उज्जीवित तथा परितृप्त करने में समर्थ शृंगाररस को कवियों ने अपनी कृतियों में व्यावहारिकता का चोला पहना कर इसी भाव की पुष्टि की है। इसके अभाव में वे इसे रस न मानकर केवल रसाभास मानते हैं। परिणामस्वरूप उपनायक अर्थात् उपपति या अन्य पुरुष में अथवा अनेक पुरुषों में नायिका की रति होना, नटी आदि अचेतन वस्तुओं में सम्भोग का आरोप करना, तिर्यग्योनि में उत्पन्न जीवों (पशु-पक्षियों) के प्रेम का चित्रण, गुरुपत्नी आदि में अनुराग, नायक-नायिका में अनुभयनिष्ठ रति, नीच व्यक्ति से प्रेमव्यवहार आदि शृंगार नहीं, शृंगार–रसाभास के रूप कहे जाते हैं। भाण-प्रहसनादि एकांकियों में रसाभास ही होता है।

## भाणों का साहित्यिक महत्त्व

संस्कृत के भाणों में अधिकतर वेश्याओं, उनके निवेशों तथा उनसे सम्बद्ध दूसरे धूर्त जुआरियों के वर्णन मिलते हैं। यद्यपि विभिन्न साहित्य–शास्त्रियों ने इसमें वीर, शृंगार एवं हास्य रस की प्रधानता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आदेश किया है, तथापि संस्कृत में लिखे गये भाणों में प्रायः शृंगार की ही प्रमुखता है।[२] इस कोटि के रूपकों में चित्रित प्राकृतिक वर्णन तक शृंगार से प्रभावित हैं। उदाहरणार्थ 'शृंगारभूषण' भाण में कवि शीर्षक के अनुकूल ही शृंगाररसमय प्रभातकालीन प्राकृतिक छटा का वर्णन करता है। इन पंक्तियों में वह सूर्य की दशा को कामियों की दशा

१ – स्मरकरम्बितान्तःकरणयोः स्त्रीपुंसोः परस्परम् रिरंसा रतिः स्मृता।
२ – शास्त्रीय दृष्टि से यह शृङ्गार रस नहीं अपितु, शृङ्गाररसाभास कहलाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



जैसा चित्रित करता है।

"आश्लिष्यत्यनुरागिणीं कमलिनीं गाढानुरागैः करै
रालिम्पन् हरिचन्दनेन हरितो बालातपच्छद्मना।
आनन्दं दिवसश्रियो विरचयन्नाकृष्टरक्तांशुको,
मीलत्तारकमुच्चलद्भ्रमरकं प्राची मुखं चुम्बति ॥"[१]

देखो तो, सूर्य अपने गहरे अनुराग ( लाली और प्रेम ) भरे हाथों से अनुरागिणी 'रंगीन और प्रेमभरी' कमलिनी का आलिगन कर रहा है। पीछे बालातप के वहाने उसने दिशाओं ( स्त्रीलिंग ) के अंग पर हरिचन्दन का लेप कर दिया है, और अब एक ओर दिवसश्री का आनन्द बढ़ा रहा है, दूसरी ओर प्राची के लाल आँचल को खींचता हुआ उका मुँह चूम रहा है। प्राची में भ्रमर उड़ रहे हैं और तारे छिप रहे हैं, तो ऐसा लगता है मानो उसकी अलकें लहरा रहीं हैं और उसने आनन्दमग्न होकर पुतलियाँ बन्द कर ली हैं। " यहाँ कवि ने साँग रूपक या समासोक्ति का सुन्दर प्रयोग किया है।ऋग्वेद में भी उषस् का स्तुति के प्रसंग में सूर्य का ऐसा ही चित्रण किया गया है।[२]

इसी भाण में इसके मुख्य रस के अनुकूल सुन्दर एवं सरस शब्दों में चन्द्रमा की स्तुति की गई है जो वामनभट्टबाण ( रूपककार ) के अमूल्य–ज्ञान भाण्डार की परिचायक है।[३]

" जिससे ( चन्द्रमा से ) मित्रता स्थापित करके कामदेव प्रेम को उद्दीप्त करने वाले रसराजशृंगार के बल से ( वेग से ) संसार को जीत लेता है। जिसकी शीतल किरणें चकोर-वृन्द को तृप्त करती हैं, ऐसा विश्व को आनन्दित करने वाला चन्द्रमा तुम्हें अपूर्व सुख प्राप्त कराये। " इस प्रकार चतुर्भाणी के बाद के भाणों में भी अलंकार-मंडिता कविता-कामिनी

---

१ – शृङ्गार-भूषण भाण – श्लोक १२.
२ – ऋग्वेद – १-११५-२
३ – शृङ्गार-भूषण – १

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



का मनोहर रूप देखने को मिलता है ।

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक पूर्वीय एवं पाश्चात्य साहित्य-जगत् में (श्रव्य तथा दृश्य काव्य के क्षेत्र में) आहार तथा विहार की जो समस्या उभरी दिखाई देती है, वह भारतीयों के लिये नवीन वस्तु नहीं है। इन विषयों पर यहाँ चिरकाल से रसिकगण चर्चा करते आए हैं। आहार के साथ विहार भी मानव-जीवन के दैनिक कार्यों का एक आवश्यक अंग समझा जाता था। समाज में लोगों के मनोरञ्जनार्थ वारस्त्रियों की भी व्यवस्था थी, जो किसी भी युग में ग्राह्य नहीं थी, तो त्याज्य भी नहीं थी।

काल के स्रोत में वहता हुआ एक ऐसा भी युग आया जो भारत के इतिहास का मध्ययुग कहलाता है। उसमें साहित्य में श्रृंगार अथवा काम के शास्त्रीय एवं मंगलकर स्वरूप की उपेक्षा हो गई। यह काल कला, साहित्य एवं समाज–सभी क्षेत्रों में अवनति का काल माना जाता है। इस युग में समर्पणशील प्रेम जो काम की उदात्त परिणति है – का स्थान वासनाप्रधान काम ने ले लिया।

इस समय इसका अर्थ संकुचित होकर यौनविलासों तक सीमित रह गया। परिणामस्वरूप कुललक्ष्मी पीछे पड़ गई और उसका स्थान वार-वधू ने ले लिया। मध्ययुगीन भारत में ही वात्स्यायन के वैशिक पद की उपेक्षा होकर कुट्टिनीमत, समयमातृका जैसी रचनाओं की प्रतिष्ठा हुई। भाणों तथा प्रहसनों में ऐसे ही पात्रों का चित्रण है जिनका उद्देश्य हो गया था "खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ।"

## भाण और वेश्या

इस देश में वेश्या वर्ग का इतिहास पुराना है। कात्यायन ने गणिकाओं के समूह के लिये गाणिक्य शब्द बतलाया है और उसके लिये य् प्रत्यय का विधान किया है। प्राचीनकाल में राजदरबारों में गणिकाओं को यथेष्ट सम्मान प्राप्त था। यह ६४ कलाओं में निपुण हुआ करती थीं। इनके भरण-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध राज्य-कोष से होता था। वैशिक जीवन सम्बन्धी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



उपलब्ध सामग्री से विदित होता है कि इनके भी बहुत से प्रकार होते थे। प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत तथा उत्तम कोटि की वेश्यायें गणिका कही जाती थीं। शम्मली, माधवी, अर्जुनी, कुम्भदासी, गणेरूका, रंगमाता, वारस्त्री क्षुद्रा, शूला, वारबधू, भोग्या, भुजिष्या, कामरेखा, वारविलासिनी, भाण्ड-हासिनी, आदि वेश्या के पर्याय हैं। राजाओं एवं राज-अतिथियों का स्वागत तथा मनोरंजन करना इनका कर्त्तव्य होता था।

पारस्परिक युद्धों के समय पराजित शासकों के राज्य की सम्पत्ति विजेता की समझी जाती थी। इस सम्पत्ति के साथ-साथ हारे हुए राजा की दास-दासियाँ, नर्तकियाँ और गणिकाएँ भी उनको सौंप दी जाती थीं। इन अनुचरों में जो अधिक स्वामि-भक्त होते थे वे विजेता की सेवा में तत्परता प्रदर्शित न कर सकने के कारण निर्वासित किये जाते रहे होंगे। राज्य की ओर से समुचित सम्मान और वृत्ति न मिलने के कारण वेश्याओं ने उदरपूर्ति के लिये नगरों से दूर अपनी बस्तियाँ बना ली होंगी जहाँ यह कला बिकने लगी होगी। इस प्रकार जो वस्तु पहले सांस्कृतिक थी, वह व्यापारिक बन कर रह गई।

वेश्या-व्यसन की अति से उत्पन्न तत्कालीन सामाजिक दुरवस्था के फलस्वरूप ही इस अनैतिकता के नियन्त्रण के लिए स्मृति ग्रन्थों (मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि) का प्रणयन हुआ होगा, इसमें सन्देह नहीं। इस कोटि के शास्त्र कतिपय बुद्धिशाली मनीषियों के हृदय को ही संतुष्ट कर सकते हैं। इसी से सम्भवतः स्थूल-बुद्धि-प्रधान समाज को सुधारने के दीवाने रूपककारों को भाण जैसे श्रृंगारपरक रूपक रचने की प्रेरणा मिली होगी जिसका बीज ऋग्वेद के दशम मण्डलमें इन्द्र के सोमपान[1] के काव्यमय वर्णन में निहित है। समाज से गणिकाओं के बहिष्करण के कारण ही इस बीज ने अंकुरित होकर साहित्यिक रूप ग्रहण किया होगा।

## भाणों का उद्देश्य

यहाँ यह प्रश्न स्वभावतः उठ सकता है कि समाज सुधार के कार्य

1 – ऋग्वेद, मन्त्र १०. सू. ११९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



में मानव जीवन के वीभत्स रूप का प्रदर्शन करने वाला एकांकी रूपक भाण, कैसे सफल हो सकता है ? परन्तु इसका फल उल्टा ही होता है। जहाँ कामशास्त्र के पृष्ठों के पारायण से उत्तेजना बढ़ती है, वहाँ श्रृंगार रस में पगे भाणों के दर्शन मात्र से काम से घृणा उत्पन्न होती है। कामशास्त्रविदों की शास्त्रीय पद्धति से सुधार के काम में श्रम और समय की बचत हो सकती है, परन्तु उसका फल स्थायी नहीं हो सकता। आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान) का सर्वसम्मत नियम है कि "विष विष को मारता है" "अस्त्रं अस्त्रेणैव", "विषं विषेनैव" अथवा "कण्टकं कण्टकेनैव" इस नीति के अनुसार तत्कालीन दूषित समाज पर व्यंग करने के सर्वोत्तम साधन थे भाण एवं प्रहसन। जनसाधारण के पास जो निदान है वह वैज्ञानिकों (शास्त्रियों) के पास नहीं। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान, विकृतियों को निर्मूल नहीं करता, उपचारों से विकारों को दबा देता है, उसी प्रकार कोई भी शास्त्र किसी अनीप्सित वस्तु को जड़ से नष्ट नहीं कर सकता।[१] भाण और प्रहसन जैसे सामाजिक रूपकों द्वारा ही मानव-समाज के सदस्यों के हृदय स्थायी रूप से परिष्कृत हो सकते हैं।

एकांकियों का परिचय देते समय हम कह आए हैं कि एकांकी रूपकों में भाणों का महत्व अधिक रहा है। तदनुसार लक्षण ग्रन्थों में इसकी विस्तृत व्याख्या[२] तथा हस्तलिखित पोथियों के नामों की पुष्पिका में इनकी सर्वाधिक संख्या भाणों की लोकप्रियता को प्रमाणित करती है। भाणों की नाममाला प्रथम अध्याय में यथास्थान संलग्न है।

---

१ – स्त्रीमूलस्योपतापस्य स्त्रिय एव प्रतिक्रिया: ।
वह्निश्च वह्निमूलस्येत्यामनन्ति मनीषिण: ॥ मदनकेतु प्रहसन

२ – भाण: स्याद्धूर्तचरितो... ... ... ...
... ... ...कुर्यादाकाशभाषितै: ।
सा. द. ६, २२७-२३० पृष्ठ ३५५

भाणवत्सन्धिसन्ध्यङ्गलास्याङ्गैर्विनिर्मितम् ।
भवेत्प्रहसनं वृत्तम् निन्द्यानां कविकल्पितम् ॥
सा. द ६, २६४ पृष्ठ ३६३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



## भाण और मोनोऐक्टिंग

आंग्ल वाङ्मय के पर्यवेक्षण से भी ज्ञात होता है कि संस्कृत का भाण कई अवस्थाओं में पाश्चात्य पद्धति के एकाभिनय (मोनोऐक्टिंग) से मिलता है। उसमें भी एक पात्रात्मक अभिनय-प्रदर्शित किया जाता है। उसमें प्रेक्षक समस्त कार्य व्यापार एवं चरित्रों का एक ही पात्र के मस्तिष्क द्वारा दर्शन कराता है। नाट्य-जगत में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं। स्वगत-भाषण तथा एकपक्षीय संवाद भी एकपात्रीय रूपक कहा जा सकता है। पश्चिमी साहित्य में २० वीं शती में वाईवेट गिलबर्ट, रूथ ड्रेपर तथा कार्ने लिया ओटिसस्किनर ने इसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। शेक्सपीयर के दुःख प्रवण नाटक मैकवेथ में एक पूरे दृश्य में लेडी मेकवेथ द्वारा एकाभिनय दिखलाया गया है।

ब्राउनिंग के एण्ड्रिया ड्रेल सार्त्रो नामक कल्पनाप्रधान काव्य को भी इस कोटि में रक्खा जा सकता है। इसमें एक विख्यात चित्रकार एण्ड्रिया का उसकी काल्पनिक पत्नी के साथ वार्तालाप अंकित किया गया है। चित्रकार पत्नी से बार बार अपने सामने बैठे रहने की प्रार्थना करता है, कारण वह उसे देखकर ही चित्रांकन करता है। परन्तु उसकी पत्नी लूक्रेशिया अपने दूसरे प्रेमी की ओर से संकेत पाकर बारम्बार जाना चाहती है। इससे चित्रकारी के कार्य में विघ्न पड़ने के कारण चित्रकार "अब उन्हें स्वर्ग में पूरा करूँगा, जहाँ कोई बाधक न होगा," इन शब्दों के साथ चित्र को नष्ट कर देता है]। इसके सिवाय जार्ज केसर लिखित "फ्राम मार्न टु मिडनाइट," श्रीमती एलेनग्लासगो रचित 'वैरेन ग्राउण्ड' राबर्ट ब्राउनिंग का 'माई लास्ट डचेस' आदि काव्य कृतियाँ भी इसी कोटि की हैं। अल्फ्रेड टेनीसन भी अपनी 'माड' शीर्षक रचना को एकपात्रीय रूपक घोषित करता है। यद्यपि ये काव्य-खण्ड संस्कृत-भाण के सर्वथा समरूप नहीं माने जा सकते, किन्तु भाण के मूलतत्व–एकपात्रता की दृष्टि से इनमें समानता है। अतः इनका भाणों से निस्संकोच मिलान किया जा सकता है। कुछ समय से किसी भी साहित्यिकवस्तु को पाश्चात्य जगत से प्रेरणा पाकर लिखी गई कह कर अपने को गौरवान्वित समझने का भारत में फैशन-सा हो गया है। हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती जैसे भारतीय साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में यह बात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



देखी जाती है। इसका कारण प्राचीन भारतीय साहित्य से लोगों का अपरिचय और आत्मगौरव की भावना का अभाव ही समझना चाहिये। अतः हिन्दी संसार में प्रायः कहा जाता है कि प्रसिद्ध नाट्यकार सेठ गोविन्ददास जी ने नाट्य साहित्य में जो कतिपय नये प्रयोग किये हैं, उनमें से एक मोनो-ड्रामा भी है। कहा जाता है कि सेठजी ने प्रलय और सृष्टि', 'अलबेला', 'शाप और वर' तथा 'सच्चा जीवन' नामक एकपात्रीय एकांकी रचकर इस क्षेत्र में एक अभिनव प्रयास किया है। मेरे विचार से सेठजी का यह प्रयास बिल्कुल नया नहीं है। श्री सेठ गोविन्ददास कृत एकपात्रीय एकांकियों में शाप और वर, एक नायिकात्मक रूपक है तथा शेष कृतियाँ एक नायकात्मक हैं जो संस्कृत भाण से मिलती-जुलती हैं। संस्कृत के नाट्यशास्त्रवेत्ता सागरनन्दी के अनुसार भाणों में विट के स्थान पर नारी द्वारा भी अभिनय किया जा सकता है[1]। संस्कृत भाण के नायक (विट) के बदले आधुनिक फैशन में रँगे पुरुष या किसी अधेड़ पुरुष अथवा नायिका के एकाभिनय को दिखलाने से भाणों के एकपात्रत्व के सिद्धांत का परित्याग नहीं हो जाता। इनका पालन तो समान रूप से ही होता है।

## उपलब्ध भाण

सातवीं आठवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं-अठारहवीं शती तक सैकड़ों भाण लिखे गये। शूद्रक, ईश्वरदत्त, वररुचि, श्यामिलक, वामनभट्टबाण (अभिनवबाण) युवराज वर्मा आदि अनेक रूपककारों ने भाणों को एक सुन्दर साहित्यिक रूप दिया।

उपलब्ध और अनुपलब्ध भाणों की तालिका में अंकित भाणों में 'चतुर्भाणी' में आकलित भाण, सबसे प्राचीन होने के कारण बड़े महत्व के

---

१ – आत्मानुभूतशंसी परसंश्रय-वर्णनाविशेषः
विविधाश्रयः एकहार्यः (एकनार्याहार्य.)
" भाणइहैकाकिन्या नार्या हार्योऽङ्गहारिण्येति
यत्र परवचनमात्मवचनैः सान्तरैर्ग्रथितं वाच्यं च भवेत्।
सा. न. भरतकोष से उद्धृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



हैं। सन् १९२२ में श्री रामकृष्ण कवि और एस. के. रामनाथ शास्त्री ने वररुचि की रचना 'उभयाभिसारिका' राजा शूद्रक ( जो एक रूपककार भी थे) के 'पद्मप्राभृतक' ईश्वरदत्त के 'धूर्तविटसंवाद' तथा श्यामिलक के 'पादताड़ितक' इन चार भाणों को ढूंढकर, शिवपुरी (मद्रास) से इनका संग्रह प्रकाशित करवाया। इसके अतिरिक्त शृंगारहाट अथवा चतुर्भाणी के नाम से श्री मोतीचन्द्र तथा वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी उक्त भाणों का सुन्दर एवं उपादेय संकलन संस्कृत साहित्य के अनुरागियों के समक्ष प्रस्तुत किया। श्री टॉमस[1] जैसे पाश्चात्य विद्वान तथा संस्कृत के भारतीय आलोचकों[2] ने इन भाणों की प्रशंसा करते हुए इनके रचयिताओं को कालिदास से भी उच्च स्तर के कवि सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। कालक्रम के अनुसार उपलब्ध भाणपुंज को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। १. चतुर्भाणी के भाण और २. उत्तरकालीन भाण। सर्व प्रथम हम चतुर्भाणी के भाणों की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे।

## चतुर्भाणी

वररुचि की 'उभयाभिसारिका' में कुबेरदत्त द्वारा अपनी रूठी हुई प्रेमिका नारायणदत्ता को मनाने की कथा वर्णित है। नारायणदत्ता को प्रसन्न करने के लिये जाते समय मार्ग में कई घटनाओं का सामना करने के उपरांत कुबेरदत्त उसके घर पहुँचता है। वहां पहुँचने पर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने के फलस्वरूप प्रेमियों की मनःस्थिति बदल जाती है और एक

---

१ – It will, I think, be admitted that these compositions, inspite of the unedifying character of their general subject and even inspite of occassional vulgarities, have a real literary quality. They display a natural humour and a polite, intensely Indian irony which need not fear comparison with that of Ben Jonson or Moliere. The language is the varitable ambrosia of Sanskrit speech.
(Centary Suplement of J. R. A. S. 1924 Page. 135.)

२ – वररुचिरीश्वरदत्तः श्यामिलकश्चत्वारः।
एते भाणान् बभणुः का शक्तिः कालिदासस्य ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



दूसरे को ढूंढते हुए वे दोनों कामातुर मिल जाते हैं। इसके लेखक का पूर्ण परिचय अज्ञात है।

शूद्रक के 'पद्मप्राभृतक' में धूर्तों के प्रामाणिक आचार्य मूलदेव का देवदत्ता के साथ प्रेम चित्रित है। कर्णीपुत्र मूलदेव अपनी प्रिया देवदत्ता गणिका की बहिन देवसेना के प्रेम में आसक्त होकर उसकी मनोदशा का पता लगाने के लिये विट को भेजता है। विट उज्जयिनी की गलियों में फिरता हुआ समदुःखी पात्रों पर दयादृष्टि करता हुआ अपने कार्य को सफलतापूर्वक सिद्ध करके देवसेना के प्रेम का प्रतीक पद्म का फूल लेकर लौट आता है। इसलिए इस भाण का नाम रखा गया पद्मप्राभृतक। वर्ण्य विषय (वैशिक जीवन) तथा भाषा की समानता के आधार पर इसको मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक की रचना मान लिया गया है।

ईश्वरदत्त के धूर्तविटसंवाद को संक्षेप में वेश्या के कार्यों का वर्णन करनेवाली पुस्तिका कहा जा सकता है। यहाँ चतुर एवं अनुभवी विट वर्षा-ऋतु को विशेष कष्टकर जानकर सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने बाहर निकल पड़ता है। मनोरञ्जन के लिये किस व्यसन का आश्रय लिया जाय, इस प्रश्न पर भी विचार करता रहता है। द्यूतक्रीड़ा और मद्यपान उसकी सामर्थ्य के बाहर की वस्तु है, कारण है उसकी निर्धनता का प्रमाण उसके तन पर बचा हुआ एक वस्त्र। अतः वह वेशवीथिका की ओर ही चल देता है। अन्त में एक धूर्त विश्वालक के घर पहुँचकर उसकी कामशास्त्र विषयक कतिपय जटिल समस्याओं का समाधान करता हुआ दिन बिताता है। इसी से इसका नाम–करण हुआ धूर्तविटसम्वाद।

श्यामिलक के भाण ग्रन्थ पादताडितक का विषय अधिक रुचिप्रद और अनुपम है। इसका विट अन्य विटों की सभा में जाता है जहाँ प्रायश्चित की एक समस्या पर विचारार्थ लोग एकत्र हुए हैं। राजकर्मचारी तौण्डिकि विष्णुनाग ने खेल में अपने सिर जैसे पवित्र अंग पर वारवधू को पादाघात करने दिया था। उसके इस अपमान के प्रक्षालन के लिए विटों की सभा में भिन्न-भिन्न प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं। यहाँ सुन्दर हास्य का प्रकरण छिड़ जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



यह भाण-चतुष्टय केवल विटवेश्यादि की प्रणयलीला के कामपरक-चित्र ही प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि इसके सम्प्रेक्षण से तत्कालीन ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बद्ध विषयों के ज्ञान के साथ-साथ उस युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति से भी हमारा परिचय होता है। ज्ञान के क्षेत्र में इससे ख्यातिप्राप्त वैयाकरणों, कामशास्त्रविद् आचार्यों एवं साहित्यकारों की साहित्यिक कृतियों तथा कुछ एक स्मृतिकारों के नामों का पता चलता है। पद्म-प्राभृतक में पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्य दत्तकलश का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त एक प्रकरणग्रन्थ "कुमुद्वती" तथा एक प्राकृत-काव्य "कामदत्त" का भी इसमें संकेत है। इन दोनों ग्रन्थों के नाम और इनके रचयिताओं के नामाक्षर अज्ञानान्धकार में छिपे हुए हैं। 'धूर्तविटसम्वाद' में दत्तक जी शृङ्गार के आचार्य बतलाये गये हैं। वृहस्पति, उशना आदि स्मृतिकारों के नाम भी देखने को मिलते हैं। श्यामिलक के पादताड़ितक में एक कवि पारशव[1] का नाम मिलता है, जिसका उल्लेख गद्यकार बाण भी करते हैं। दक्षिण के एक कवि आर्यक[2] का नाम भी उल्लिखित है। बाण ने अपने मित्र श्यामल ( सौमिलक )[3] का एक स्थान पर नाम लिया है। सम्भव है, ये श्यामिलक बाण के ही मित्र हों। क्षेमेन्द्र ने भी श्यामिलक[4] का श्लोक श्यामल के नाम से उद्धृत किया है। अतः सौमिलक या श्यामिलक अथवा श्यामल एक ही व्यक्ति के नाम रहे होंगे। इसके अतिरिक्त इन भाणों में और भी अनेक संकेत मिलते हैं, जो इनकी प्राचीनता पर प्रकाश डालते हैं। चतुर्भाणी में संगृहीत पादताड़ितक[5] भाण में ईशानचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र भिषक् का उल्लेख आया है।

---

१ – पा. ता. – पृष्ठ १६१
    ह. च. प्रथम उच्छवास पृष्ठ १६

२ – पादताड़ितक पृष्ठ २५४

३ – ह. च. तृतीय उच्छवास, पृष्ठ ४०

४ – क्षेमेन्द्र – औचित्यविचार चर्चा पृष्ठ २३
    पादताड़ितक, पृष्ठ १७१

५ – पा. ता. पृ. १७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



लगभग ईसा पूर्व १५० में महाभाष्यकार ने उभयाभिसारिका के रचयिता वररुचि को महाभाष्य में प्रोक्तसाहित्य के प्रसंग में याद किया है यथा "वाररुचं काव्यम्"। अभिनवगुप्त,[1] कुन्तक तथा क्षेमेन्द्र आदि की कृतियों में ( जो दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग की रचनाएँ हैं ) इन भाणों की ओर संकेत किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी के साहित्यशास्त्रवेत्ता हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' में भी इन भाणों की ओर संकेत है। इनके आधार पर इनका काल निर्णय सुगम हो जाता है। कई स्थलों पर पद्म-प्राभृतक के 'कर्ता' ईश्वरदत्त तथा एक आभीर राजा शिवदत्त के पुत्र ईश्वरसेन को एक ही व्यक्ति बतलाया गया है। हस्तलिखित पोथी के अन्तिम श्लोक से पादताड़ितक के लेखक श्यामिलक औदीच्य प्रतीत होते हैं। इसकी पुष्टि काश्मीर के साहित्य निर्माताओं की रचनाओं में प्राप्त उद्धरणों से हो जाती है।

पद्मप्राभृतक और पादताड़ितक के कुछ एक पात्रों की झलक बाणभट्ट की कृतियों में मिलती है। 'कादम्बरी' में विन्ध्याटवीवर्णन के प्रसंग में पद्मप्राभृतक में वर्णित कर्णीपुत्र[2] मूलदेव की कथा की छाया प्रतिविम्बित है। यहीं शश,[3] विपुल आदि पदों से चतुर्भाणी के पात्रों का स्मरण हो आता है। विपुल और शश के नाम वृहत्कथा में भी आये हैं। केशव के कल्पद्रुम नामक शब्द-कोष में शश को मूलदेव का भाई तथा विपुल और अमल को उसके भृत्य के रूप में अंकित किया गया है। मूलदेव की कथा में उसकी प्रधान नायिका देवदत्ता और दूसरी देवदत्ता की बहिन देवसेना थी। मूलदेव कामशास्त्र का, विशेषतः वैशिकतंत्र का मुख्य पात्र समझा जाता था।

---

१ – पादताड़ितकादि-भाणरूपक इव–अभिनवगुप्तः – ना. शा. ( टीका )
गा. ओ. सी. पृष्ठ १७६

२ – कर्णीसुतकथेव सन्निहित विपुलाचला; शशोपगता च – विन्ध्याटवीवर्णन
– पृष्ठ १९ तुलना कीजिये–
सखे श्रूयताम् !......कर्णीपुत्रो विपुलामनुनेतुमभिगतः। प. प्रा. पृष्ठ १४. और भी –अये अयमपरो विपुलामात्यः कामदत्ता प्राकृतकाव्य– प्रतिष्ठानभूतः।

३– शश, पृष्ठ ८ विपुल पृष्ठ १२ अपिच...मूलदेवसखः शशोऽहम् प. प्रा. पृष्ठ १४
प. प्रा. पृष्ठ ८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



क्षेमेन्द्र ने कलाविलास में उसका उल्लेख किया है। शुकसप्तति की कहानियों में भी वेशसम्बन्धी मामलों में पञ्च के रूप में उसका चित्रण आया है। पद्म-प्राभृतक में धूर्ताचार्य मूलदेव का ऐसा ही चरित्रचित्रण किया गया है। इन प्रमाणों के आधार पर उक्त भाणों को बाणभट्ट ( जिनका समय ६ठी या ७वीं शताब्दी माना जाता है ) से पूर्व की रचना मानने में किसी को आपत्ति न होगी।

उभयाभिसारिका के कालनिर्धारण में वाह्यसाक्ष्य का अभाव-सा अवश्य प्रतीत होता है। परन्तु इसमें भी कतिपय प्रबल अन्तःसाक्ष्य प्राप्य है, जो इसकी प्राचीनता के द्योतक हैं। यहाँ वैशिकाचल नामक विट का मार्ग में जिस परिव्राजिका से साक्षात्कार होता है, वह बौद्ध श्रमणिका नहीं प्रतीत होती। वह सम्भवतः वैशेषिकन्याय का समर्थन करने वाली कोई संन्यासिनी है। अन्यथा " भवेद्वैशेषिकाचलेन " का प्रयोग व्यर्थ होगा। इस प्रसंग में उभयाभिसारिका में न्याय [1] और सांख्य विषयक [2] सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। कणाददर्शन के अनुसार (१) द्रव्य (२) गुण (३) कर्म (४) सामान्य (५) विशेष (६) समवाय-ये छः पदार्थ होते हैं। उत्तरवर्ती दार्शनिक इनके स्थान पर सात पदार्थ मानने लगे थे। शिवादित्य के समय तक उक्त छः पदार्थों में अभाव नामक एक और पदार्थ जोड़ दिया गया था। इसके अतिरिक्त इसमें नृत्यकला [3] एवं नृत्यांगों का प्राचीनतम वर्णन भी किया गया है। यहाँ चार प्रकार के अभिनय, बत्तीस प्रकार के हस्त-प्रचार, निरीक्षण के अट्ठारह भेद, छः स्थान, दो तरह की गतियाँ, तीन गीत वादित्र आदि विभिन्न नृत्यांगों का परिगणन किया गया है। इनमें से चार अभिनय तथा आठ रस तो सभी मानते हैं। भरत ने छः स्थान भी बतलाये हैं, परन्तु इनके नाट्य-शास्त्र में हस्त-

---

१- किं ब्रवीषि - " सांख्यभस्माभिर्ज्ञायते निर्गुणः क्षेत्रज्ञः पुरुषः " इति।
उभयाभिसारिका - पृष्ठ १३१-१३३

२- किं ब्रवीषि - "षट्पदार्थबहिष्कृतैः सहसंभाषणमस्माकं गुरुभिः प्रतिषिद्धम्।
उभयाभिसारिका, पृष्ठ १३१-१३३

३- उभयाभिसारिका, पृष्ठ १४३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्रचार के ६४ (१३ संयुत्त, २४ असंयुत्त, २७ नृत्तहस्त=६४), दृष्टि के ३६ तथा निरीक्षण के १८ भेद वतलाये गये हैं। इस उल्लेख से भी उभयाभिसारिका की प्राचीनता प्रमाणित होती है। यह रचना उस समय की होगी जव तक भरत की कृति को प्रामाणिकता नहीं प्राप्त हो पायी होगी।

श्री वरो चतुर्भाणी की रचनाओं का समय सप्रमाण ४१० और ४१५ ईस्वी के वीच निर्धारित करते हैं। डॉ. टामस सातवीं शताब्दी का मध्यवर्ती काल अथवा गुप्तयुग का उत्तरकाल मानते हैं। इन भाणों के पात्रों के माध्यम से वौद्धादिकों पर जो आक्षेप किये गये हैं उनसे भी यही सूचित होता है कि चतुर्भाणी की रचना के समय भारत में वौद्ध-ब्राह्मण विरोध की भावना तीव्र थी। उस समय तक उत्तरकालीन धार्मिक सम्प्रदाय इतने नहीं पनप पाये थे कि वे प्रहसनात्मक आलोचना के लक्ष्य वनाये जा सकते। यही कारण है कि उत्तरकालीन भाणों और प्रहसनों में वौद्धों के स्थान पर, हास्य के आलम्वन असंगत श्रोत्रिय, दुर्वृत्त पौराणिक, शैव और ब्राह्मण हैं। इतिहास के पृष्ठ पलटने से ज्ञात होता है कि देश की ऐसी स्थिति मौर्य-सम्राट अशोक के वौद्धधर्मावलम्बी होने के बाद गुप्त-युग में वौद्ध-धर्म के पतनोन्मुख होने के समय थी। अतः वर्ण्य-विषय के आधार पर भी ये भाण गुप्तयुगीन प्रतीत होते हैं। इन भाणों का मूल रचना-काल जो भी रहा हो, इनके आलोडन से विदित होता है कि इन्हें वर्तमान रूप भरत के नाट्य-शास्त्र के वाद तथा दसवीं शताब्दी के विख्यात नाट्य-शास्त्र कोविद धनंजय के पूर्व मिला होगा।

"पद्मप्राभृतक" में विट द्वारा प्रस्तुत वर्णन में प्रसंगवश कात्यायनगोत्रीय शारद्वती-पुत्र सारस्वतभद्र नामक कवि, पीठमर्द दर्दरक, कातन्त्रिकों से सदा झगड़ने वाले दन्दूशक के पुत्र दलकलशि, वृद्ध अभिनेता मृदंगवसालक (जो वेश्या द्वारा अभिनीत भगवद्ज्जुक नामक नाटक में विट का काम करता है) शाक्य भिक्षु सन्धिलक, वसन्तवतीतनया वनराजिका, पांचालदासी की पुत्री प्रियंगुष्टिका, नागरिक नन्दिनी शोणदासी, वासकसज्जिका नायिका के रूप में वर्णित माघसुन्दरी, गन्धर्वदत्त नामक नाट्याचार्य के शिष्य, एक अभिनेत्री के पुत्र दर्दुरक, देवसेना की दासी प्रियवादनिका, देवदत्ता की भगिनी देवसेना आदि स्त्री तथा पुरुष पात्रों से हमारी भेंट होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



'धूर्तविट संवाद' में पात्रों की संख्या अन्य भाणों की अपेक्षा कम है। इसमें श्रेष्ठिपुत्र कृष्णिलक, चतुरिका, खण्डिता नायिका के रूप में रामदासी रतिसेना, प्रद्युम्नदासी, विश्वलक और सुनन्दा जैसे कतिपय स्त्री एवं पुरुष अभिनेताओं के नाम आते हैं। उभयाभिसारिका में विट दर्शकों का परिचय विष्णुदत्ता की पुत्री अनंगदत्ता, धनदत्त नामक सेठ, बौद्ध परिव्राजिका विलासकौण्डिनी, चारणदासी की माता रामसेना, सुकुमारिका, व्यापारी पार्शक के पुत्र धनमित्र, प्रियंगुसेना नर्तकी, नारायणदत्ता की बेटी कनकलता, वीणाचार्य विश्वावसुदत्त आदि से कराता है। मृच्छकटिक की तरह विविध जाति के पात्रों का संगम पादताड़ितक में भी दृष्टिगत होता है। नाना वर्णों के पात्रों के जितने अधिक नाम पादताड़ितक में आये हैं उतने संस्कृत के किसी अन्य नाटक में नहीं मिलते। इस भाण की प्रवृत्ति आक्षेपात्मक प्रहसन की ओर है। प्रवंचना, आदि कुत्सित वृत्तियों से ग्रन्थकार को घृणा है। निन्दा कामचारियों, लटकों, अनध्यवसायी मनुष्यों तथा हृदयहीना वारांगनाओं के चित्रण में लेखक ने वाग्वैदग्ध्य और पर्यवेक्षण शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। इन्होंने प्रतिस्पर्धात्मक भावना से विदेशियों की निन्दा करने में भी कोई कसर नहीं रक्खी।

मृच्छकटिक को छोड़कर संस्कृत के प्रायः सब नाटक भाषा के लालित्य, उच्च कोटि के चरित्र-चित्रण तथा उदात्त शृंगारिक भावप्रदर्शन के लिये साहित्य-जगत में प्रसिद्ध हैं। संस्कृत नाट्य-साहित्य में चित्रित विटविदूषकादि पात्र, जिनके द्वारा तद्युगीन लोक-जीवन पर प्रकाश डाला जा सकता है, रूढिगत हैं। समाज की कामुक और ढोंगी प्रवृत्तियों के प्रदर्शन का अवसर साहित्य के भाणों एवं प्रहसनों के परिमित क्षेत्र में ही मिलता है। यद्यपि भाणों में लोक-जीवन के एक अंश (विट वेश्यादि से सम्बद्ध लोगों के जीवन की झाँकी) का ही चित्रण होता है, तथापि इसमें समाज के सामान्य जनों के अध्ययन का अवसर भी हमें मिलता है। जिस प्रकार भाषा-शास्त्री के लिये असंस्कृत ग्रामीण भाषाओं का पर्यवेक्षण अधिक उपयोगी सिद्ध होता है उसी प्रकार मानव-समाज का सच्चा रूप देखने को उत्सुक व्यक्तियों के लिये इसके निकृष्टतम सदस्यों को निकट से देखना अधिक उपादेय होता है।

रामचन्द्रादि नाट्यमीमांसकों ने भाण की कथावस्तु को पूर्णतया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



कल्पित बतलाया है। परन्तु उपर्युल्लिखित चार भाणों के सुन्दर संकलन के अध्ययन से यह नहीं मालूम होता कि इनकी कथाएँ कवियों की कोरी कल्पना पर आधारित हैं। शूद्रक के मृच्छकटिक, संघदास महत्तर के वसुदेवहिण्डी, बुद्धभट्ट के वृहत्कथा–संग्रह, बाणभट्ट के हर्षचरित तथा कादम्बरी एवं दण्डी की दशकुमार-चरित आदि प्रसिद्ध साहित्यिककृतियों में चित्रित संस्कृति और चतुर्भाणी में प्रतिबिम्बित देश की सांस्कृतिक और सामाजिक अवस्था बहुत कुछ मिलती जुलती है। उक्त भाणों में वर्णित देश की भौगोलिक स्थिति, नगर-व्यवस्था, वेशभूषा, धर्म, संगीत तथा लोक-जीवन-सम्बन्धी अगणित उल्लेख उपलब्ध हैं, जो गुप्तकालीन भारत का जीता जागता चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं। इन भाणों पर भरतमुनि के नाट्यशास्त्र तथा वात्स्यायन के कामशास्त्र का प्रभाव स्पष्ट है। इनके लेखकों ने ही उत्तरकालीन भाणों के रचयिताओं के सामने रचना का एक आदर्श रक्खा, जिसका उत्तरवर्ती रूपकों में उन्मुक्त अनुसरण किया गया है।

चतुर्भाणी का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन विलासमय समाज पर व्यंग करना है। उसके विट भी समाज के अंग हैं। हँसते-हँसाते हुए वे कभी अशिष्ट भी बन जाते हैं, और इनकी अटपटी और चटपटी संवादशैली को पढ़ कर या सुन कर ऐसा प्रतीत होता है, मानो हम आधुनिक बनारस के दलालों या भारत के लोभी पंडों के बीच में पहुँच गये हों। ये विट संस्कृत नाटकों के अन्य रूढ़िगत विटों से सर्वथा भिन्न हैं।[१] अपनी पद-प्रतिष्ठा के प्रतिकूल आचरण करने वाले सारे व्यक्ति (चाहे वह बौद्ध भिक्षु हो या राजा, बड़ा वैयाकरण हो या दर्शन-शास्त्र में सदा खोया रहने वाला मीमांसक) उनकी हँसी के पात्र हैं।[२] चतुर्भाणी के अध्ययन से यह बात भ्रांतिपूर्ण सिद्ध होती है कि संस्कृत-साहित्य विद्वद्जनों तथा राजदरबारों की भाषा में रचित है।

---

१– कामानुचरः। धूर्तः। इतिभरतः। कामतन्त्रकलाकोविदः। इति रसमञ्जरी।

२– किं ब्रवीषि – "विहारादागच्छसि इति"

वेश्यागणम् प्रविष्टो मोहाद्भिक्षुर्यदृच्छया वाऽपि।
न भ्राबत्ते प्रयुक्तो दत्तक-सूत्रेष्विवोङ्कारः॥

पद्मप्राभृतक २४, पृष्ठ ३३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



उत्तरकालीन भाणों में कवियों का उद्देश्य पांडित्य-प्रदर्शन अवश्य हो गया था। इस काल में विरचित साहित्य की अन्य विधाएँ भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। चतुर्भाणी में सरल बोलचाल की भाषा का प्रयोग है। यहाँ संस्कृत का प्रयोग दैनिक जीवन की घटनाओं के चित्रण तथा छिद्रान्वेषण के लिये हुआ है, पांडित्य-प्रदर्शन के लिये नहीं।

श्यामिलक के पादताड़ितक के अनुसार उस युग के कवि [१] एक प्याला मद्य के बदले कविता सुनाते थे। वे श्रोतियों के घर जाकर भी मधु-पान के बिना कविता-पाठ नहीं करते थे। काशी, कोसल, मर्ग, निषादनगर आदि स्थानों पर कवियों की यही दशा हो रही थी। यह उस युग के कवियों पर गहरा व्यंग है। इसके अतिरिक्त पद्मप्राभृतक में पुराने काव्यों में से पद लेकर उन्हीं से नये श्लोक रचने वाले काव्यवीर तुक्कड़ कवियों पर कटाक्ष किया गया है। इनकी तुलना फटे टुकड़ों को गाँठ कर जूते बनाने वाले मोची (छिदग्रथनचर्मकार) से की गयी है। पादताड़ितक में भी महाकवि वररुचि की काव्यप्रतिभा की अनुकृति करने वाले गुप्त और महेश्वरदत्त नामक दो मित्रों का संकेत है। संभवतः, ये वररुचि की उभयाभिसारिका का ही अनुकरण करते होंगे। [२] प्रस्तुत भाण के इस अंश को पढ़ते समय हिन्दी के आधुनिक नौसिखिये कवियों के लिये प्रायः उद्धृत की जाने वाली उक्ति "अब के कवि खद्योत-सम जहँ तहँ करैं प्रकास" की याद आ जाती है। इसी प्रसंग में ऐसे कवि के हास्य-रस [३] से ओतप्रोत एक श्लोक का उदाहरण उपस्थित करते हुए शूद्रक ने उसमें पीठमर्द के लक्षण घटा कर अपनी काव्य-कला का चमत्कार भी प्रदर्शित किया है।

---

१— विक्रीणाति हि काव्यं श्रोत्रिय भवनेषु मद्यचषकेण।
य: शिविकुले प्रसूतो मर्तृस्थाने जरायातः॥
विक्रीणन्ति हि कवयो यद्येवम् काव्यम् मद्यचषकेण।
काशीषु च कोसलेषु च भर्गेषु च निषाद नगरेषु॥
पादताड़ितक १३३–१३४ पृष्ठ २५१

२— पादताडितक १४२, पृष्ठ २५५.

३— पद्मप्राभृतक ११, पृष्ठ १२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



वेश्याओं या स्वभाव से कोमल स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने में व्याकरणसम्मत किन्तु श्रुति-कटु शब्दों का प्रयोग करने पर विट ने वैयाकरण[1] की खूब खिल्ली उड़ायी है। यहाँ वैयाकरण को सुकुमार स्त्रियों के अनुकूल भाषा बोलने में असमर्थ देख हँसी आये बिना नहीं रहती। हास्य-रस की सृष्टि के लिये कहीं-कहीं महाभारतादि का हवाला देकर उल्टे-पुल्टे श्लोक भी उद्धृत किये गये दृष्टिगोचर होते हैं। शृंगारहाट चतुर्भाणी के संग्रहकर्ता के अनुसार महाभारत के नाम से 'पादताड़ितक' में लिखा गया श्लोक महाभारत में नहीं मिलता।[2] वास्तव में यह श्लोक महाभारत का प्रतीत नहीं होता। जिस प्रकार 'मृच्छकटिक' का शकार और भास के 'अविमारक' का विदूषक रामायण से सम्बद्ध घटनाओं का विपरीत प्रयोग करके हास्योत्पत्ति करता है, उसी प्रकार यहाँ भी यह प्रयोग इसी उद्देश्य से किया गया मालूम होता है।

इसका यह अर्थ नहीं कि चतुर्भाणी संज्ञक चार भाणों की भाषा सदा ही सरल और निम्न कोटि की होती है या यहाँ हास्यार्णव में गोते लगाते समय केवल अनर्गल प्रलाप ही सुनने को मिलते हैं, वरन् इन भाण-प्रणेताओं के कवित्व की छटा भी यत्र-तत्र निखरी हुई मिलती है, जिन्हें पढ़ कर भास, कालिदास आदि संस्कृत-साहित्य के प्राचीन मान्य कवियों का स्मरण हो आता है। शूद्रकादि भाण-रचयिताओं की लेखन-शैली पर इन प्राचीन कवियों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है - यथा "एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते।" अंग पश्यामि-(उभयाभिसारिका, पृष्ठ १६) इसकी पुनरावृत्ति पादताड़ितक में भी की गयी है "कोनुखलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते"। यही वाक्य भास के नाटकों की प्रस्तावना में इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है— तुलना कीजिये—

---

१– पद्मप्राभृतक, पृ० १७–१८
पद्मप्राभृतक, पृष्ठ २०

२– ......न त्वया महाभारते श्रुतपूर्व
यस्यामित्रा न बहवो यस्मान्नोद्विजते जनः।
यं समेत्य न निन्दन्ति स पार्थ पुरुषाधमः॥ इति॥ पादताड़ितक, पृष्ठ १८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



सूत्रधार : — "एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये किंनु खलु मयिविज्ञापन व्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अंग पश्यामि ।" (दूतघटोत्कच) - इसके अतिरिक्त कवि श्यामिलक का वासवदत्ता तथा उदयन की कथा से परिचित होना भी इनकी कृति पर भास के प्रभाव को प्रमाणित करता है ।

"कान्तां हरति करेणुं । वासवदत्तामिवोदयन : ।।[१]

चतुर्भाणी की भाषा तो कहीं-कहीं महाकवि कालिदास से मिलती जुलती है ही उसमें उनके भावों की भी प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है ।

मेघालोके भवति सुखिनोऽ प्यन्यथावृत्ति चेतः ।
कण्ठाश्लेष-प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे—
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।। [२]

तुलना कीजिये:—

"भ्रान्तपवनेषु सम्प्रति सुखिनोऽपि कदम्बवासितवनेषु ।
औत्सुक्यं वहति मनो जलधर-मलिनेषु दिवसेषु ।। [३]
"आपूर्याभिनवाम्बुजद्युतिहरे नेत्रे प्रयातोऽधरं
तद्भ्रष्टः कठिनौगतः स्तनतटौ तत्राप्यलब्धास्पदः ।
वाष्पस्ते तनुरोमराजिलुलितः शोकप्रसंगोज्झितः
नाभिं पूरयति प्रियांगुलिमुख-प्रक्षेपलीलोचिताम् ।। [४]

'धूर्तविटसंवाद' के इस श्लोक की कुमारसंभव के पंचमसर्ग में स्थित चौबीसवें श्लोक से तुलना करके देखिये —

---

१– पादताडितक ११७, पृ० २४०
२– पूर्वमेघ ४–५.
३– धूर्तविटसम्वाद ६, पृ० ६७
४– धूर्तविटसम्वाद २३ पृ० ८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपात चूर्णिताः ।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ।।

बिहारी की ये पंक्तियाँ भी इसी भाव को अभिव्यक्त करती हैं।

'पलन प्रगटि बरुनीनि कढ़ि, नहि कपोल ठहरात ।
अँसुआ परि छतियाँ छिनक, छनछनाइ छपि जात ।।

कालिदास के गद्य-पद्य की छाया भाणों में देखिये—

,,दक्षिण वृक्षवाटिकायामालाप इव श्रूयते।"—अभिज्ञान शाकुन्तल.

"अये अयभिदानीं दक्षिणेन वृक्षवाटिकां भूषणप्रणादात् सम्भ्रान्त - विहग-संकुलः शब्द इव श्रूयते।" [1]

चारों भाणों की प्रस्तावना में ऋतु-वर्णन के प्रसंग में इन की काव्य शोभा देखते ही बनती है। उभयाभिसारिका तथा पद्मप्राभृतक के वसन्त ऋतु एवं धूर्तविटसंवाद में वर्षा का चित्रण किया गया है। शूद्रक ने अपने भाण में सूत्रधार के मुख से ऋतुराज वसन्त का श्रृंगार रस के अनुकूल सौन्दर्य-वर्णन करवाया है। इस ऋतु में प्रकृति एवं मानव की मादकता बड़ी भली लगती है। इन कवियों ने कहीं अनुप्रास और कहीं उपमालंकार द्वारा प्रकृति की उन्मत्तता का मनोहारी चित्र खींचा है, जिसकी ऋतुसंहार में चित्रित वासन्तिक सुषमा से समानता है—

ससम्भ्रमपरभृतरूतः ससिन्धुवारः सकुन्दसहकारः ।
समदमदनः सपवनः सयौवन-जनप्रियः कालः ।।[2]

तुलना कीजिये—

आकम्पयन् कुसुमिताः सहकारशाखा विस्तारयन् परभृतस्य वचांसि दिक्षु ।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां नीहारपातनिगमात्सुभगो वसन्ते ।। [3]

---

१- पद्मपाभृतक – पृ० ४१
२- पद्मपाभृतक – पृ० ५
३- ऋतुसंहार षष्ठ सर्ग २२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



उभयाभिसारिका में वसन्त के आरम्भ में कुम्हलाए हुए लोध्र वृक्ष की तुलना मित्र की प्रणय-लीलाओं को देख कर घबराये हुए दीन विट से की गयी है। कोकिला के रव से गुंजित तथा आम्र, अशोक, झूला, मधुर-मधु एवं चन्द्रमा से युक्त मधुमास की शोभा कामदेव के मन को भी विचलित करने में समर्थ है—

वसन्तप्रमुखे काले लोध्रवृक्षो गतप्रभः।
मित्रकार्येण सम्भ्रान्तो दीनो विट इव स्थितः॥[१]
परभृतचूताशोका डौलावारवारूणी शशांकश्च।
मधुगुणविगुणित-शोभा मदनमपि सविभ्रमं कुर्युः॥[२]

सर्वत्र शृंगार का प्रकरण छिड़ जाता है। प्रकृति का शृंगारमय चित्रण पश्चाद्वर्ती लेखकों के भाणों में भी उपलब्ध होता है जो दर्शकों को आनन्द-विभोर कर देता है।

"मालेयाचलवातपोतविकचद्वासन्तिकावल्लरी—
व्यालीनोल्लसमानभृंगपटली व्याहारजवाचालितः।[३]

और भी—

"सामोदा विदधृत स एव हि विटोत्तंसायते माधवः॥"[४]

हम ऊपर कह आये हैं कि भाण-साहित्य का शास्त्रीय स्रोत वात्स्यायन का कामशास्त्र ही है। कामसूत्र में निर्दिष्ट नागरिक के रहन-सहन, उनकी दैनन्दिनचर्या तथा वेश्याओं के हाव-भाव-हेला, मानभंग, शृंगारलीला, खेलकूद, संगीत और नृत्य में कुशलता, कलाप्रेमी के प्रति चुम्बनादि द्वारा प्रेम

---

१— उभयाभिसारिका पृ० २
२— उभयाभिसारिका, पृ० ३
३— शृङ्गारसुधाकर भाण, पृ० ४
४— शृङ्गार सुधाकर भाण पृ० ५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्रदर्शन, कुट्टिनियों का दरिद्र प्रेमियों को कला सिखलाना, मद्यपान, गोष्ठीप्रेम कभी-कभी प्रेमी के विरह में व्याकुलता, दूत अथवा दूती द्वारा प्रेमपुजारी को संदेश भिजवाना इत्यादि का पद्मप्राभृतकादि चार भाणों में सुन्दर वर्णन है।[1] इन भाणों में मध्युगीन भारत के संगीत, साहित्य एवं नृत्यकला आदि से समवेत नागरिक जीवन का चित्रण देखकर मेघदूत के यक्ष के भवन-वर्णन तथा मृच्छकटिक के चारुदत्त और वसन्त सेना के सदन के चित्रण की याद आ जाती है।

पद्मप्राभृतकादि भाणों में हमें ६४ कलाओं में निपुण वेश्याओं के जीवन का सांगोपांग विश्लेषण मिलता है।[2] कला सीखने के लिये उनकी आचार्यों के पास जाने की बात भाण-साहित्य के अवलोकन से पुष्ट होती है।[3] वेश्याएँ केवल अश्लील रति-लीला द्वारा ही अपना और दूसरों का चित्तानुरंजन नहीं करतीं थीं, कामसूत्र के बालोपक्रम प्रकरण में वेशकन्यकाओं के अनेक खेलों की सूची प्राप्त होती है जिनसे उनके मनोरंजन के विविध साधनों से पाठकों का परिचय होता है।[4] वार-कन्यायें कन्दुकक्रीड़ा (गेंद खेलना), पुष्पावचय (फूल चुनना), ग्रथन (माला गूँथना), गृहक (घरौंदे बनाना), दुहितृकाक्रीड़ायोजन (गुड्डे-गुड्डी का खेल), भक्तपाककरण (भात पकाना), आकर्ष-क्रीड़ा (पाँसे फेंकना) पट्टिका-क्रीड़ा (उँगलियाँ फँसा कर चक्कर लगाना), एवं मुष्टिद्यूत (किसी शर्त के साथ मुट्ठी बाँध कर साथ खेलने वाली से मुट्ठी में क्या है ? आदि

---

१– कामसूत्र –१ –४, ३–४.
१–४, ६– २६.

२– ६४ कलाओं की तालिका के लिए देखिये कामसूत्र – १, ३–१५. पृ ८३–८४!

३– श्वः किल ते भगिनी यथोचित्तमाचार्यगृहम् नृत्यवारेण यास्यति।
पद्मप्राभृतक पृ० ५८.

४– तया सह पुष्पावचयं ग्रथनं गृहकं दुहितृकाक्रीडायोजनं
भक्तपाककरणमितिकुर्वीत। ... ...
आकर्षक्रीडा पट्टिकाक्रीडा मुष्टिद्यूतक्षुल्लकादिद्यूतानि
मध्यमांगुलिग्रहणं षट्पाषाणकादीनि च देश्यानि......
कामसूत्र २ ३. –६८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



प्रश्न करते हुए मनोरंजन करना) इन नानाविध क्रीड़ाओं से अपना मन बहलाती थीं। यद्यपि उनकी क्रीड़ाओं की उक्त सूची सामान्य-सी प्रतीत होती है, उनके लक्षण भी लोकज्ञात हैं तथापि वारकन्यकाओं के इन क्रियाकलापों में प्रेक्षकों को कलात्मकता दिखाई देती है। परिणामस्वरूप उनके ये खेल रास्ते से जाने वाले लोगों का मन मोह लेते थे। इसका प्रमाण है, भाणों के नायक विट द्वारा किया गया इनका आकर्षक वर्णन। जैसे–पादताड़ितक में पिंछोला[1] कन्दुक क्रीड़ा एवं गुड्डा-गुड़िया के खेलों का उल्लेख है। पिंछोला मुंह से बजाने का एक वाद्य विशेष होता है। रामकृष्ण कवि की चतुर्भाणी में पिंछोला, पिंचोला एवं पिंजोला ये तीन रूप मिलते हैं। अभिधान-कोषों में बाँसुरी से मिलते–जुलते बाजे के अर्थ में पिंछोरा शब्द भी मिलता है। पद्मप्राभृतक में कंदुकक्रीडा करती हुई प्रियंगुष्टिका का सजीव एवं गतिमय वर्णन बाण, दंडी आदि प्राचीन कवियों की याद दिलाता है अथा—

> प्रवाल लोलांगुलिना करेण मनःशिलं कन्दुकमुद्वदन्ती।
> स्वपल्लवाग्रामिहितैकपुष्पा नतोन्नतानीय लतेव भाति ॥[2]

इन प्राचीन भाणों के बाद के रूपककारों ने भी कन्दुकक्रीडा का चित्ताकर्षक चित्रण किया है।

> "आलोलकजालकं कलरणत्काञ्ची क्वणत्कङ्कणं,
> मञ्जीरारवमञ्जुलाङ्घ्रियुगलं प्रेङ्खोलमुक्तालतम्।
> घर्माम्भः कणिकाविकासि वदनं निश्वासनृत्यत्कुचं,
> केयं क्रीडति कन्दुकेन शफरप्रस्पर्धिमुग्धेक्षणा ॥[3]

शृंगारभूषण भाण में भी गेंद खेलती हुई वेशकन्यका के अंग-प्रत्यंगों

---

१– ...निवृत्तकन्दुकपिंछोलाकृतकपुत्रकदुहितृकाक्रीडकानि वेशरथ्यायाः प्रतिभवनच्छायासु वेषकन्यकावृन्दकान्यवलोकयन्ति। पादताडितक पृ. २१०

२– पद्मप्राभृतक पृ० ३०

३– शृङ्गार सुधाकर, ७३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



की शोभा का चित्तग्राह्य चित्रण इस प्रकार किया गया है—

"शश्वन्निःश्वसितानिलव्यतिकर-व्याघूतविम्वाधरं
खेदाम्भः-कणमञ्जरी विलुलित-व्याकीर्णचूडालकम् ।
उत्कम्प्रस्तनलोलहारलतिकं क्लान्तावलग्नं वपुः
कुर्वन्कन्दुक एष कान्तइव ते धत्ते परां निवृतिम् ।।[1]

गेंद खेलने के कारण थकी हुई क्रीड़ा का यह वर्णन वृक्षों को सींचने के कारण थकी हुई शकुंतला का स्मरण कराता है।

प्राचीन भाण-चतुष्टय में उपलब्ध नगरों का सुन्दर वर्णन भी कालिदास की याद दिलाता है। पद्मप्राभृतक और पादताड़ितक का कार्यस्थल उज्जयिनी है तथा धूर्तविटसंवाद एवं उभयाभिसारिका का पाटलिपुत्र (कुसुमपुर, पटना)। इस प्रकार इन भाणों में उज्जयिनी तथा पटना (पाटलिपुत्र) नगर का विस्तृत और चित्ताकर्षक वर्णन प्राप्त होता है। तत्कालीन नगर-व्यवस्था तथा सांस्कृतिक दृष्टि से यह वर्णन ध्यान देने योग्य है।

"स्थाने खलु कुसुमपुरस्यानन्यनगरसदृशी नगरमित्यविशेषग्राहिणी पृथिव्यां स्थिता कीर्तिः। बहूनि खल्वस्य पुरस्य गृहाण्युच्छ्रायवन्ति। पण्यसमुदायाज्जनबाहुलयाच्च तांस्तान् समृद्धिविशेषान् दृष्ट्वा विस्मयते जनः।सन्ति ह्यन्यान्यपिसमृद्धिमन्तिपुराणि। ये त्वस्य निःसाधारणा गुणास्तान् वक्ष्यामः।

तथाहि-दातारः सुलभाः कलाबहुमता दाक्षिण्यभोग्याः स्त्रियो,
नोन्मत्ता धनिनो न मत्सरयुत्ता विद्याविहीना नराः।
सर्वः शिष्टकथः परस्परगुणग्राही कृतज्ञो जनः,
शक्यं भोः नगरे सुरैरपि दिवं सन्त्यज्य लब्धुं सुखम् ।।[2]

---

१- शृङ्गारभूषण पृ० ३८
२- धूर्तविटसम्वाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



कालिदास की इन पंक्तियों में यही भाव अंकित है—

"स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥[१]

वररुचि की लेखनी से प्रसूत कुसुमपुर के राजमार्ग की अपूर्व शोभा का वर्णन बड़ा ही रोचक एवं हृदयग्राही है जिसे पढ़ कर प्राचीन भारत के पुष्पपुर (पटना) के ऐश्वर्यशाली होने की सूचना मिलती है।[२] इन भाणों में उपलब्ध प्राचीन काल के ख्यातिप्राप्त पाटलिपुत्र का वर्णन भारतीय इतिहास में मेगास्थनीज़ द्वारा वर्णित पटना के विवरण से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इनका तुलनात्मक अध्ययन इसकी ऐतिहासिक महत्ता को समझने में सहायक होगा। मेगास्थनीज़ के अनुसार महाभाष्यकार द्वारा बारम्बार उल्लिखित पाटलिपुत्र नगर ६० फुट चौड़ी और ३० हाथ गहरी परिखाओं द्वारा सुरक्षित था। परिखा की लम्बाई ८० स्टेडियम या १६१७० गज़ और चौड़ाई १५ स्टेडियम या ३०३० गज़ थी। भीतरी खाई से २४ फीट भीतर हट कर एक प्राकार था, जिसमें ५७० गुम्बज तथा ६४ दरवाजे थे, नगर में ५ द्वार थे, जिनसे प्रसिद्ध मौर्य सम्राट अशोक को ४ लाख कार्षापण की दैनिक आय थी, फाह्यान के समय में भी यह भारत का अद्वितीय नगर था। उक्त भाणों में वर्णित पुष्पपुर के दर्शन मात्र से चन्द्रगुप्त, अशोक आदि मौर्य सम्राटों तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यकालीन भारत की जनसंकुल और शानदार राजधानी का स्मरण हो आता है।

भाण-साहित्य में इस प्रकार के नगर-वर्णन के परिशीलन से ज्ञात होता है कि बाणभट्ट के पूर्वकालीन साहित्य में नगरों का वर्णन रूढ़ि-सा हो गया था। संध्यासमय राजमार्ग पर मँडराते हुए 'मनुष्यकान्तार' (मनुष्यों का वन) का चित्र देखते ही बनता है।[३] इन रूपकों को पढ़ते समय आधुनिक दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता जैसे बड़े-बड़े जनसंकुल शहरों का सजीव

---

१— पूर्वमेघ ३०

२— उभयाभिसारिका — ६

३— पद्मप्राभृतक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। वेश्याओं के साथ विटों और राजाओं की वन यात्रा, देवालयों में वेश्याओं के नृत्य-गान आदि का आयोजन गुप्तकालीन संस्कृति का प्रमुख अंग रहा है। राजपथ पर घूमते हुए विटों, वेश्याओं तथा राजकुमारों के चित्र मृच्छकटिक में भी उपलब्ध हैं। [१]

प्रस्तुत भाणों में चित्रित वेशोपनिवेश के चित्र का मृच्छकटिक के वेश-चित्रण से पर्याप्त साम्य है। इन रूपकों में वेश्याओं के आवास का विस्तृत चित्र उपस्थित किया गया है। "एषोऽस्मि वेशमवतीर्णः। अहो न, वेशस्य परा श्रीः। इहहि वारमुख्यानाम्... [२]"

तुलना कीजिए —

" विदूषक :- (प्रविश्यावलोक्य च) ही, ही, भोः। इधोवि पढमे पओठे ससिसंखमुणालखच्छाहाओ, विणिहिदचुण्णमुट्ठिपाण्डुराओ

## उत्तरकालीन भाण

चतुर्भाणी के भाणों के अतिरिक्त कर्पूरचरित और मुकुन्दानन्द भाण को छोड़कर जितने भी उत्तरयुगीन भाण रचे गये वे सब दक्षिण भारत के हैं। अनुमानतः दक्षिण भारत का मुगल आक्रमणों से मुक्त रहना ही इसका कारण रहा होगा। शान्त वातावरण में ही ऐसे शृंगारमय रूपकों के दर्शन से वास्तविक आनन्दानुभूति हो सकती है। अथवा यों कहिये कि भोगविलास में मग्न होने के कारण राजसी जीवन उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में अधिक पतनोन्मुख हो रहा था, जिसके फलस्वरूप यहाँ के कवियों को व्यंग तथा हास्य की सामग्री अधिक मात्रा में प्राप्त हो सकी।

जितने भी भाणों के नाम ऊपर गिनाये गये हैं उनमें से पादताडितकादि चार भाणों को छोड़कर शेष कृतियों में से कोई भी तेरहवीं शताब्दी

---

१— मृच्छकटिक, प्रथम अंक – पृ. २४
२— पादताडितक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



से पूर्व की प्रतीत नहीं होती। उन पर विचार करने से प्रतीत होता है कि भाण रचना का सर्वाधिक उन्नत काल १६ वीं तथा १७ वीं या १८ वीं शताब्दी के बीच का था। इनमें विषय वस्तु की पुनरावृत्ति एवं रचनारीति में समानता इतनी अधिक है कि स्थालीपुलाक न्याय के अनुसार किसी एक के विश्लेषण से ही अवशिष्ट रचनाओं का सहज अनुमान किया जा सकता है। इनके सम्यगवलोकन से विदित होगा कि भाण के विकास-क्रम में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। भरताचार्य से लेकर विश्वनाथ तक प्रायः सब विचारकों की भाणविषयक विचार-पद्धति एक ही है। इसके लक्षणों में कहीं कुछ हेर फेर किया भी गया है तो उसमें विशेष ध्यान देने योग्य कोई बात दिखाई नहीं देती। यह बात भाण के लक्षण पर ही लागू नहीं होती, अन्य प्रकार की रचनाओं के अवलोकन से भी यही सिद्ध होता है कि इनकी आकृति एवं आत्मा के चित्रण में कोई अन्तर नहीं है। उक्त भाणावलि के दर्शन मात्र से विदित होता है कि हमारे यहाँ अगणित भाण रचे गये, परन्तु सबके सब प्रकाशित नहीं हो सके हैं। फिर भी इनमें जो हैं, उनसे भाण-साहित्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

प्रायः समस्त उत्तरकालीन भाण एक से ही हैं। इनके विटों के नामों में भी कोई नवीनता नहीं दिखाई देती। विलासशेखर, संभोगशेखर, मदनशेखर, सरस शेखर, अनंग-शेखर, भुजंग-शेखर, शृंगार-शेखर, शृंगार-सार या इनसे मिलता जुलता और कोई नाम रख दिया जाता है चाहे वह १२वीं सदी की रचना हो या १७वीं या १८वीं सदी की। इन भाणों की एक विलक्षणता यह भी है कि प्रस्तावना में सूत्रधार या पारिपार्श्वक[१] अथवा नटी[२], कोई दो पात्र रंगमंच पर उपस्थित होकर संभाषण करते हैं जबकि नियमानुसार भाण में आदि से अन्त तक एक ही पात्र को उपस्थित

---

१– सूत्रधारः– मैत्रीं येन मनोभवो...... चन्द्रमाः। मारिष, इतस्तावत्।
पारिपार्श्वकः-(प्रविश्य)–भाव, अयमस्मि। शृङ्गारभूषणभाण पृ. १।

२– (नान्द्यन्ते प्रविशति सूत्रधारः)
सूत्रधार :–श्रीमूलस्थानमाहुः प्रिये, इतस्तावत्।
नटी (प्रविश्य) – एसा पह्ह्मि। अहिमद करणिज्जे आणवेदु अज्जो।
रससदन भाण, पृ. ४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



रहना चाहिये। इसके विपरीत चतुर्भाणी के एक-पात्री रूपकों की प्रस्तावना संक्षिप्त होती है। सूत्रधार अकेला ही रंगमंच पर आकर भाषण करता है। पादताडितक को छोड़कर अन्य किसी भाण में लेखक का नाम और उसका अभिनयकाल उद्घोषित नहीं किया गया है।[१] इन्हीं कतिपय विशेषताओं के कारण प्राचीन भाण उत्तरयुगीन भाणों से सर्वथा पृथक् प्रतीत होते हैं। पश्चाद्वर्ती रूपककारों में वत्सराज का कर्पूरचरित भाण ही एक ऐसी रचना है, जिसकी समता चतुर्भाणी से की जा सकती है। यहाँ भी प्रस्तावना में सूत्रधार मंच पर आकर आकाशभाषित का प्रयोग करता है। इसकी कथा-वस्तु में भी मौलिकता है। इसका नायक कर्पूर नामक द्यूतकर है। वह वेश-वाट पर ही नहीं फिरता, सीधा रंगमंच पर आकर किसी कल्पित मित्र के समक्ष अपने साहसपूर्ण कार्यों तथा अन्य अनुभवों का विवरण प्रस्तुत करता है। इसका नाम कर्पूरचरित रखने का कारण भी संभवतः यही रहा होगा। वार्तालाप में प्राकृत प्रयोग की स्वच्छन्दता भी इस भाण की विलक्षणता है। नीलकंठ के यात्रा-महोत्सव में यह भाण परमाल की आज्ञा से खेला गया था। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें द्यूत मद्यपान और प्रेम ही मुख्य वर्ण्य विषय हैं। किन्तु इस वर्णन को रोचकता प्रदान करने के लिये प्रहसनात्मक तत्त्वों को भी प्रस्तुत रचना में यथेष्ट स्थान दिया गया है।

## कर्पूरचरित में काव्य की मनोज्ञता

उमा एवं महेश का जुआ और चौपड़ खेल भारतीय पौराणिक भक्तों को बहुत प्रिय रहा है। इन क्रीड़ाओं में रत भवानीशंकर की स्तुति को ही कवि ने भी प्रस्तुत भाण के नान्दी श्लोकों के लिये उपयुक्त समझा है :—

> दास्येऽहं परिरम्भणानि कितव ! द्यूते जितानि त्वया,<br>
> मिथ्यौत्सुक्यमिदं यतः शतमहोरात्रास्तदीयावधिः।<br>
> इत्युक्तः शिवया निशादिवसकृज्ज्योतिर्भयाक्षि-द्वय-<br>
> द्रागुन्मेष-निमेष-कोटिघटनव्यग्रो हरः पातु वः ॥[२]

---

१– कोनु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। (कर्णं दत्वा) हन्त। विज्ञातम्। एष हि स विट-मण्डपः। (प्रविश्य) धूर्तचाक्रिकः खलतिश्याभिलको घण्टामाहत्य घोषयति–पादताडितक –पृ. १५१

२– कर्पूरचरित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



इसके अतिरिक्त चौपड़ के खेल में मग्न पार्वती को गोटियों की झूठी गणना करने के बहाने अपनी गोटी को छल से आगे बढ़ाकर ठगने वाले महादेव की क्रीड़ाओं का स्वाभाविक चित्रण भी इन पंक्तियों में किया गया है-

स्मेराः काक्षशतैर्निवार्य निभृतं चातुर्यधुर्याः सखी,
सारिं सारयतो मृषा गणयतः स्थानान्यतिक्रामतः ।
कण्ठाश्लेषपरो दुरोदरविधौ चन्द्रावचूडामणे-
देवीं वञ्चयतो जयन्ति गहनच्छद्मक्रमाः केलयः ।।[१]

इसके पीछे यही रहस्य छिपा होना चाहिए कि जब भगवान शंकर जैसे योगी पुरुष और पावती जैसी तापसी नारियाँ यदा कदा श्रृंगार में लीन हो सकती हैं तब इहलोक के गृहस्थ मानव अपने धर्म-पथ का त्याग कर बैठें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? दूर जाने की आवश्यकता नहीं, स्वयं महाकवि वत्सराज के शरणदाता परमर्द्दिदेव भी इतिहासगत सूचना के अनुसार विलासी रहे हैं । संभव है, कवि ने राजा को सचेत करने के उद्देश्य से ही ये भाण और प्रहसन रचे हों ।

नान्दीपद के श्रृंगार–प्रकरण के अतिरिक्त उषाकालीन प्रकृति के चित्रण से भी वत्सराज की कविता की गरिमा एवं मधुरिमा प्रस्फुटित होती है । इन स्थलों को देखने से कवि की प्रकरणानुकूल पदरचनापद्धति का परिचय प्राप्त होता है । [२]

सम्पूर्ण रात्रि भर स्मर-संग्राम में व्यस्त रहकर उषाकाल में राजभवन से निकलकर जाने वाली वेश्याओं के बजते हुए नूपुरों से निद्रा में भंग हो जाने पर भी प्रातःकाल में दम्पत्ति शय्या-त्याग में आलस्य करते हैं। फलतः उनके श्रृंगार–सहायक कामदेव को प्रभात में भी सोने का अवसर नहीं मिल रहा है। द्यूत की धूर्तता भी देखते ही बनती है ।

---

१– कर्पूरचरित, २
२– कर्पूरचरित, ३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



मन्दप्रतिभ प्रतिनायक चन्द्र की शोभा को भेदकर एवं रात्रि–रूपी कुट्टिनी को दूर हटा कर धूर्त रवि उषारूपिणी गणिका के समीप जा रहा है।[१]

द्यूतक्रीड़ा तथा मधुपानादि में लगे रहने के कारण होने वाली हास्यास्पद दुर्दशा प्रस्तुत भाण के नायक द्यूतकरकर्पूर द्वारा दर्शकों के समक्ष उपस्थित की गई है।

ग्रन्थिच्छटाविकटजीर्ण-पटैक-वित्तः
स्कन्धार्पित-द्विगुण-वाहयुगोत्तरीयः ।
क्रोधोपमुक्त-कठिनीधव-लाधर-श्रीः ?
धूर्तप्रभोर - हुमभूवमति-प्रसादी ॥[२]

शेष कृतियों में सर्वत्र एकरूपता ही दृष्टिगोचर होती है। दो पात्रों के बीच संवाद के रूप में प्रस्तुत की गई प्रस्तावना के उपरान्त विरहाकुल विट प्रविष्ट होता है। वह उषाकाल का शृंगाररंजित वर्णन कर सवेरे ही सवेरे आने का प्रयोजन बतलाता है।[३] अपनी प्रेयसी (जो कोई वेश्या होती है) से बिछुड़ जाने के कारण उसकी मनोदशा दयनीय होती है। विरहावस्था के दुखःद क्षणों में अपना मनोरंजन करने के साथ साथ कभी कभी उसके आने का हेतु किसी मित्र से मिलना या मित्र की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी की रक्षा करने की प्रतिज्ञा को पूर्ण करना भी होता है। इनमें स्वैरिणी विवाहिता नारियों के पर-पुरुष गमन का उल्लेख भी आता है।[४] मुकुन्दानन्द भाण में ऐसी स्त्रियों पर छींटे कसे गए हैं। वेशवीथियों का चक्कर लगाता हुआ राह में मिलने वाले मित्रों तथा भिन्न भिन्न वेश्याओं से मिल कर काल्पनिक वार्तालाप करता हुआ उनके प्रत्युत्तरों को दोहराता जाता है। विट के आकाशभाषण में तरह तरह की क्रीड़ाओं और मनोविनोदों का उल्लेख भी होता है।[५] वह वेश्याओं अथवा उनके प्रेमियों के खेल में

---

१– कर्पूरचरित ४ पृ. २४.
२– कर्पूरचरित, २२
३– अनंगजीवन भाण ३–४
४– मुकुन्दानन्द भाण, ४७
५– शृङ्गारभूषण भाण ७१, पृ. १७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



उत्पन्न विवाद का निर्णायक[१] भी बनता है। नृत्य-शालाओं[२] अथवा संगीतालयों में प्रविष्ट होकर उनकी कला के दर्शन एवं कलाकारों तथा नर्तकियों से हास-परिहास करता हुआ अन्त में संध्या या चन्द्रोदय वर्णन से वह भाणाभिनय का उपसंहार करता है।[३] इन भाणों का प्रयोगस्थल चतुर्भाणी की तरह कोई प्रख्यात ऐतिहासिक नगर नहीं, प्रत्युत कोई कोलाहल पूर्ण काल्पनिक नगर है। ये भाण भी रूपक के अन्य प्रकारों की तरह किसी त्योहार के अवसर पर ही अभिनीत होते थे।

भाणों में विट को मिलने वाले मित्रों तथा वेश्याओं के विभिन्न नाम एवं उनके बीच होने वाले आलापों को देख कर श्री मनकद का कहना है कि इन एकनट नाटकों में बहुत से नायक तथा नायिकाएँ होती हैं। इतना ही नहीं, उभयाभिसारिका आदि प्राचीनतम भाणों में भी नायिकाओं की संख्या अधिक है। उनके एतद्विषयक विस्तृत विश्लेषण का यही सारांश है।[४] इन नायक-नायिकाओं में मुख्य तो एक ही होती है, विट उस पर अत्यधिक आसक्त होता है। परन्तु सच तो यह है कि शास्त्रोक्त लक्षणों के अनुसार भाण में आरम्भ से अन्त तक एक ही पात्र का अभिनय प्रदर्शित होता है। अनेक नायिकाओं की बात तो दूर, यहाँ एक नायिका की भी आवश्यकता नहीं समझी जाती। 'नायिका' वह है, जिसे पाने को नायक लालायित रहे परन्तु एकपात्रीय रूपकों में ऐसी बात नहीं होती। विट के साथ कल्पित वार्तालाप कर लेने से ही कोई राह चलती वेश्या नायिका

---

१– शृङ्गारभूषण पृ. १४

२– शृङ्गार भूषण पृ. १२

३– अनंग-जीवन-भाण ६६, पृ. ३३

४– Usually our extent Bhana Rupaka has a vita who goes out on some business, passes through the veshavata converses with a number of hetaerae and attains his object. This means that there were many heroins in Bhana……… so too in some of our existing Bhanas we have more than one hero, often three are four. Thus this Bhana Rupaka has many heroes and many heroines.

Types of Drama. Mankad.
Page. 148-149.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



नहीं कही जा सकती। समालोचक को यहाँ यह नहीं भूलना चाहिये कि भाणों में विट जिन व्यक्तियों से वार्तालाप करता है वे सब कल्पित होते हैं। बाद के भाणों में भर्त्सनात्मक प्रहास के माध्यम से कामचारी पौराणिकों[1], वंचनाशील ज्योतिषियों, वृद्ध श्रोत्रियों[2] एवं ऐसे ही अन्य कदाचारियों का उपहास किया गया है। इस प्रकार भाणों में हास्यरस के आस्वादन का अवसर भी मिलता है, किन्तु साधारणतः शृंगार का ही प्राधान्य होता है। शृंगार की प्रधानता तो पादताडितकादि भाण-चतुष्टय में भी है। परन्तु यहाँ इसके भद्दे चित्र के स्थान पर शृंगार का संयत भाषा में मनोहर चित्रण किया गया है।[3] इसके विपरीत परवर्ती भाण साहित्य में अश्लील शृंगार की अति हो गई है जिसके फलस्वरूप द्यूत-क्रीड़ा आदि में जो 'पण' नियत होता था, वह भी कामवासना को उद्दीप्त करने में सहायक होता था। परन्तु चतुर्भाणी में हर जगह विलक्षणता के दर्शन होते हैं, हरक्षण कुतूहल जगानेवाली बातें सुनाई देती हैं।

धूर्तविटसंवाद और पादताडितक जैसी रचनाएँ विकृत जीवन की दुश्चेष्टाओं, पाखण्डियों के परिवादों और प्रतापों के वर्णन की दृष्टि से जो

---

१– ... ... ...स्मृतपुराणसंकेतया... विटः परिक्रीडते ॥ शृङ्गारतिलक ५१

२– "अद्भुतमिदं श्रोत्रियमानिनश्चरितम्" ......

शृङ्गारतिलक.

३– पुष्पसमुज्ज्वलाः कुरवका नदन्ति परभृताः
कान्तमशोक-पुष्पसहितं चलति किसलयम् ।
चूतसुगंधयश्च पवना भ्रमररुतवहाः
सम्प्रति काननेषु सधनुर्विचरति मदनः । पद्मप्राभृतक २, पृ. २

और भी–

स्वगुणाः सद्गुणाः सर्वे
न स्तोतव्याः स्थितास्त्वयि ।
लोकलोचनकान्ते ते
स्थिरी भवतु यौवनम् ॥ उभयाभिसारिका ११, पृ. १२७

तुलना कीजिये -

अथ कीदृशः पणबन्धः। अथवा वयस्यमेव पृच्छामि। वयस्य, कीदृशो वो पणबन्धः। किं ब्रवीषि –'पराजयवता सुरते......
शृङ्गारभूषण पृ. १४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



संसार के प्रत्येक राजनगर में पाये जाते हैं, अतुलनीय हैं। ये विशेषताएँ उत्तरकालीन भाणों में नहीं मिल सकतीं। पादताडितक में गणिका ने पादाघात द्वारा नायक का जो अपमान किया है उसके प्रायश्चित्त के जो विभिन्न प्रकार दिये गये हैं, वे निस्सन्देह विनोदपूर्ण होने के साथ सभ्यजनोचित हैं। प्रस्तुत विटों की सभा में उपस्थित सभासदों में से किसी का विचार है कि विष्णुनाग को नहीं, किन्तु मदनसेना को ऐसे पशु का ताड़न करने के फलस्वरूप पश्चात्ताप करना चाहिये[1]। दूसरों की राय के अनुसार विष्णुनाग को उस वेश्या के अपमानित चरणकमल को अपने हाथों से दबाना चाहिये।[2] एक प्रस्ताव यह भी है कि अपराधी विष्णुनाग को मदनसेना के चरणोदक से अपना सिर धो कर उसे पी लेना चाहिये।[3] कवि रुद्र वर्मा के मतानुसार उसका सिर मुँडवा देना ठीक बतलाया है, किन्तु सभापति के आसन पर आसीन विट का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत होता है जिसके अनुसार मदनसेनिका को सभापति के सिर पर अपना पैर रखना चाहिये, जिससे विष्णुनाग उस दृश्य को देखकर मन ही मन कुढ़ता रहे।[4]

धूर्तविटसंवाद में भी कतिपय मनोरंजक विषयों की चर्चा के साथ साथ विटवेश्याओं के जीवन और आचार-सम्बन्धी नियमों का अच्छा उपसंहार किया गया है, जो कामशास्त्र में अंकित वेश-प्रकरण का स्मरण कराता है। परन्तु उक्त भाण में इस विषय के चित्ताकर्षक विवेचन को देखकर ऐसा मालूम नहीं होता कि धन ही वेश्याओं के हृदय को आकर्षित करता है। यदि धन ही उनके लिये लोभनीय है तो ग्रन्थों में इनको उत्तमा, मध्यमा[5] और अधमा

---

१– पा. ता. १३०. पृ० २४६

२– पा. ता. पृ० २५३

३– पादप्रक्षालनेनास्याः शिरः प्रक्षाल्यतामिति।

\+ \+ \+ \+

पादप्रक्षालनं तस्याः पातुमप्येष चार्हति॥ इति पा. ता. १४३ पृ० २५५.

४– पा. ता. पृ० २५७

पा. ता: पृ० २५८

५– किं ब्रवीषि – 'यद्यर्थार्थमेव वेश्यानां पुरुषैः सह संबन्धः कथं तासामुत्तमाधममध्यमत्वं विज्ञेयम्' इति। धूर्तविटसम्वाद पृ० ९०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



नामक तीन श्रेणियों में विभक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त रूठी हुई वारवनिताओं[1] को मनाने के विभिन्न उपाय भी बड़े रुचिप्रद और शिष्टहास्योत्पादक हैं। काव्य की ऐसी सरसता तथा कवि की वाग्विलासिता नव्य भाणों में दुर्लभ है।

कामशास्त्रादिग्रंथों में उपलब्ध शास्त्रीय लक्षणों से जो विट के जीवन की रूक्षता एवं तुच्छता ध्वनित होती है, वह पादताडितक के चरितनायक(विट) के विस्तृत भाषण से खंडित हो जाती है। विट का वक्तव्य विटत्व का सच्चा रूप प्रदर्शित करता है जो शास्त्रीय विवेचनों से स्पष्ट नहीं हो पाता है। धूर्तों, दुर्जनों अथवा कामुक विटों में भी स्वाभिमान होता है। वे कृतघ्नता को बड़ा पाप समझते हैं और समय पड़ने पर अपने मित्रों की सेवा में सर्वस्व उत्सर्ग करने को भी तत्पर रहते हैं। वास्तव में मानव-समाज में विट का इतना पतित तथा तुच्छ स्थान नहीं है जैसा उसे उत्तरकालीन भाणों में दिया गया है। उनमें वाक्पटुता, मृदुता और अपनी संस्कृति की रक्षा करने की भावना का एकदम अभाव नहीं है—

स्वैः प्राणैरपि विद्विषः प्रणयिनामापत्सु यो रक्षिता
यस्यार्तो भवति स्वएव शरणं खड्गद्वितीयो भुजः।
संवर्षान्मदनातुरो मृगयते यं वारमुख्यो जनः
स ज्ञेयो विट इत्यपावृतवनो यो नित्यमेवार्थिषु ॥[2]

तुलना कीजिये—

किंवदसि । नाहं विटलोक – वदसत्यवा – दिनीति
तर्हि तवाद्य जननी समागमेन किं कार्यमस्ति ।
किं वदसि मात्रागमनान्तरमेव मम स्नानप्रयाणमुचितम् ॥[3]
किं ब्रवीषि—'नाहं भाजनं विटजन-कपटचाटुपाटवस्य । पश्य ।[4]

---

१- धूर्तविट-संवाद ३७, पृ० ६३
२- पादताडितक, १६
३- अनङ्गजीवन
४- शृङ्गारभूषण, ३२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



विट वैशिकी कला के पूर्ण अनुभवी पंडित होते हैं। चारुदत्त तथा मृच्छकटिक को छोड़कर अन्य किसी वृहन्नाटक में हम विट को नहीं देखते।

डॉ. टामस के अनुसार चतुर्भाणी में मुसलमानों का उल्लेख नहीं आया है। इसके अतिरिक्त पदरचनापद्धति की भिन्नता से भी चतुर्भाणी की प्राचीनता स्पष्ट होती है। श्यामिलकृत भाण के कतिपय प्रसंगों को छोड़कर शेष भाणों में कवियों ने कोमलकान्तपदों से युक्त आलंकारिक किन्तु, व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया गया है। अतः डॉ. टामस के शब्दों में इसको संस्कृत-वचनामृत ठीक ही कहा गया है।

चतुर्भाणी एवं उत्तरकालीन भाणों के इस संक्षिप्त आलोचनात्मक सर्वेक्षण के बाद एकांकी साहित्य का गवेषणात्मक अध्ययन करते समय उपलब्ध अथवा अनुपलब्ध भाणों के लेखकों तथा उनके इतिवृत्ति का परिचय देना समीचीन होगा।

## वत्सराज

पश्चाद्वर्ती एकपात्रीय रूपकों में वत्सराज का कर्पूरचरित भाण प्राचीनतम प्रतीत होता है। इसके कवि कालंजर नरेश परमार्दिदेव के मंत्री थे। भास के उपरान्त वत्सराज ही एक ऐसे नाट्यप्रणेता हुए हैं जिन्होंने रूपक के विविध प्रचलित एवं अप्रचलित प्रकारों का प्रणयन किया है। यथा—(१) किरातार्जुनीय व्यायोग (२) कर्पूरचरित भाण, जिसकी कथा का संकेत ऊपर दिया जा चुका है (३) हास्य चूड़ामणि प्रहसन (४) रूक्मिणीहरण-चार अंकों का ईहामृग (५) त्रिपुरदाह डिम और (६) समुद्रमन्थन। इन रूपकों में काव्य का अत्यन्त सुन्दर रूप दिखाई देता है। दीर्घ समास तथा दुरूह-वाक्यविन्यासरहित होने के कारण वत्सराज की लेखन-रीति में माधुर्य और लालित्य के दर्शन होते हैं। उनके नाटक छोटे होने पर भी नाटकीय क्रियाशीलता रोचकता और घटनाओं की सम्यक् गुम्फना आदि गुणों से रहित नहीं हैं।

## काशीपति और मुकुन्दानन्द

इसके उपरान्त मैसूर राज्य के नञ्जराज के आश्रित कविराज काशीपति ने मुकुन्दानन्द भाण रचा। इसके अतिरिक्त अपने ही आश्रयदाता की कृति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



संगीत गंगाधर के टीकाकार के रूप में भी इन्हें ख्याति प्राप्त हुई। इनके देशकाल का निश्चित पता नहीं चलता। अनुमानतः यह द्रविड़ प्रतीत होते हैं। इस भाण का रचना-काल भी संदिग्ध है। कोई इसे १३वीं शताब्दी की रचना मानते हैं और दूसरे १८वीं शती के प्रारंभिक भाग की। इसकी प्रस्तावना में इसे मिश्र भाण कहा गया है, साथ ही यह भी बतलाया गया है कि साहित्य जगत में अब इसका विशेष प्रचार नहीं रहा।[१] इसके अपवाद-स्वरूप यद्यपि पञ्चवाण विलास, पञ्चायुध प्रपञ्च, प्रद्युम्नानन्द, रस विलास एवं रसिक रंजन, जैसे कुछ एक मिश्र-भाणों के नाम मिलते हैं और हस्त-लिखित पोथियों की वर्णनात्मक पुष्पिकाओं में इनके शीर्षकोल्लेख से ऐसे भाणों के अस्तित्व पर प्रकाश पड़ता है तथापि उनके लेखकों का परिचय अज्ञात होने के कारण उपलब्ध मिश्र भाण का यही एक दृष्टांत माना जाता है। इसमें मुकुन्द उपनाम धारी विट भुजंगशेखर की मंजरी के साथ घटित प्रणयलीलाओं का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इसके प्रणय-व्यापार संश्लिष्ट चित्रों द्वारा अंकित हैं तथा श्रीकृष्ण और गोपियों की रासलीलाओं की ओर संकेत करते हैं "सूत्रधारः— (श्रुत्वा नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) - अयं किल मञ्जरी - वियुक्तस्य मन्दारोद्यानगतस्य भुजङ्गशेखरस्य भगवतो मुकुन्दस्य भूमिकामादाय इत एवाभिवर्तते मातुलपुत्रो मधुकः।" यही कारण है कि अन्य उत्तरयुगीन भाणों से यह भिन्न है। अन्य परवर्ती साहित्यकारों की तरह प्रस्तुत भाण के प्रणेता का लक्ष्य भी पाण्डित्य-प्रदर्शन प्रतीत होता है। इसकी प्रस्तावना में नटी के शब्दों से प्रकट होता है कि "मुकुन्दानन्द" की भाषा कठिन है।

नटी अज्ज, अच्चरिअं, अच्चरिअं तक्के वक्कोत्तिणिट्ठरा तस्समारई।
जादा महुरसंदव्ये कव्वम्भि मिउला कहम्॥[२]

इसमें चित्त को आनन्द देने में समर्थ संभोग एवं विप्रलम्भ शृङ्गार का भी आभास प्राप्त होता है। कामज्वर से पीड़ित रोगियों को धीरज बँधाना

१– मुकुन्दानन्द भाण पृ० २
२– मुकुन्दानन्द, ५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



सरल नहीं है। इस प्रकार के वर्णन में चतुर्भाणी के लेखकों-जैसी सफलता न मिल सकने पर भी मुकुन्दानन्द की इन पंक्तियों से कवि का वाग्वैदग्ध्य प्रत्यक्ष है।

"हा हन्त किन्तु मदनो मम तावदेव
मर्माणि कृन्तति कृतान्त इवाततायी ।"
कथं वयस्य - माश्वसयामि—
शोकं त्यजेति पुरुषं किमितः शुचेति—
आश्वासयन्ति सुहृदं सुहृदो न विद्मः ॥[1]

तुलना कीजिए—

जयति भगवान् स रुद्रः कोपादथवाऽ प्यनुग्रहाद् येन ।
स्त्रीणां विलासमूर्तिः कान्ततरवपुः कृतः कामः ॥[2]

विषय एवं ग्रन्थ के शीर्षक के अनुकूल ही यमुना-तट पर रास रचाने वाले गोपियों के चीरहर्ता मुकुन्द की स्तुति कवि के भाषागत अधिकार को सूचित करती है।

वन्दे वन्दा - रूमन्दार - मिन्दुभूषणनन्दनम् ।
अमन्दा - नन्दसंदोह - बन्धूरं सिन्धुराननम् ॥
कण्ठालिङ्गन - मङ्गलं धनकुचाभोगोपभोगोत्सवं
श्रेणीसंगम-सौभगं च सततं मत्प्रेयसीनां पुरः
प्राप्तुं कोऽयमितीर्ष्ययेव यमुनाकूलेबलाद्यः स्वयं
गोपीनामहरद् दुकूलनिचयं कृष्णः स पुष्णातु नः ॥[3]

इसके अतिरिक्त एक रघुनाथ की स्तुति भी है जो प्रकाशित भाण की इस प्रति में नहीं मिलती—

"वन्दामहे महेशानचण्डकोदण्ड-खण्डनम् ।
जानकी हृदयानन्द-चन्दनं रघुनन्दनम् ॥"

---

१- मुकुंदानन्द ४२
२- पद्मप्राभृतक १, पृ० २
३- मुकुंदानन्द १-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्रातःकाल तथा प्रदोष-समय की प्राकृतिक मनोज्ञता के वर्णन को पढ़ कर कवि की अद्भुत वर्णन शक्ति का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। कविराज काशीपति पर कालिदास का प्रभाव दर्शाने वाले तथा प्रभात वर्णन के प्रकरण में माघ की याद दिलाने वाले अंश भी इस भाण में प्राप्त होते हैं।

( प्रतीचीमवलोक्य ) अयमिह—
जरठ इव मरालो जर्जरा–ग्रैर्मयूखैः
स्खलति शिशिरभानुः पश्चिमाम्भोधिपारे ।
अयम – यमुदया–द्रैर्नातिदूरे विस्वान
यमयममृतांशुः पातकी याति चास्तम् ।।[1]

कहीं कहीं वसन्त ऋतु का मनोहर चित्र भी उपस्थित किया गया है--
कालः कोकिलकोमलोक्तिमधुरः काव्यज्ञ–मान्यः कविः
काव्यस्यापि स एव कामजनको राधाविटो नायकः ।
सारज्ञाश्च सभासदः पुनरमी नाट्येप्रवीणा वयं
किंचायं समुदन्वितो भगवतश्चूडेश्वरस्योत्सवः ।।[2]

## शृङ्गारभूषणः–

वामनभट्टबाण का शृंगार-भूषण भाण भी एक अनुपम रचना है। इनका जन्म त्रिलिंग देश में हुआ था। इनके शृंगारभूषण की प्रस्तावना का पांचवाँ श्लोक कवि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करता है[3]। ये दक्षिण भारत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने 'पार्वती-परिणय' नामक नाटक, नलाम्युदय तथा शृंगार-भूषण शीर्षक भाण की रचना की। हस्तलिखित पोथियों में भाणों की नाममाला को देखने से इसी नाम के व्यक्ति की "शृंगार-पावन" नामक

---

१-- मुकुन्दानन्द २६.
२– मुकुन्दानन्द १२.
३– शृङ्गारभूषण ५, पृ० २.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



एक और भाण रचना का भी पता चलता है। संभव है यह भी इन्हीं की रचना हो। इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता।

नामसादृश्य के आधार पर कुछ लोग उनको श्रीहर्ष के राजकवि कादम्बरी, हर्षचरित, चण्डीशतक तथा मुकुटताडितक के रचयिता बाण से अभिन्न समझते हैं। परन्तु यह विचार युक्तिसंगत नहीं। हर्षचरितकार बाण सातवीं शताब्दी के हैं और भाण के रचयिता १४वीं शती या १५वीं शती के। कुछ लोग इन्हें १७वीं शताब्दी का भी मानते हैं। शक संवत १३३३ के एक ताम्रपत्र में अंकित श्रृंगारभूषण के लेखक बाण के नाम को देख कर विद्वानों ने इनका समय १४वीं एवं १५वीं शताब्दी का मध्यवर्ती भाग निर्धारित किया है। ये १५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में त्रिलिंग देश के राजा वेमभूपाल (जो वीर नारायण के नाम से भी विख्यात थे) के दरबार में रहते थे। सुप्रसिद्ध बाणभट्ट की शैली का सफलतापूर्वक अनुकरण करने के कारण इन्हें अभिनव बाण की संज्ञा दी जाती है। इनको साहित्यचूडामणि की उपाधि से भी विभूषित किया गया, जो इनकी साहित्यिक विद्वत्ता का परिचायक है। इनके पार्वतीपरिणय की प्रस्तावना में स्थित श्लोक से भी उनकी विद्याविलासिता प्रकट होती है। [1]

शब्दचन्द्रिका में बाण का उल्लेख विज्जिपुर के विद्यारण्य के शिष्य के रूप में मिलता है। यह बात ठीक भी हो सकती है। कारण, विज्जिनगर राजा वीरनारायण के राज्य के अति निकट ही था। वेमभूपाल के सभा-पण्डित तथा विजयनगर (विज्जिनगर) के संस्थापक माधवाचार्य के शिष्य अभिनवबाण ने केवल दृश्यकाव्य के प्रणयन में ही अपनी कवित्व शक्ति का परिचय नहीं दिया, प्रत्युत श्रव्य काव्य के क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा प्रस्फुटित है। इसका प्रमाण अपने आश्रयदाता के जीवन-चरित्र का वर्णन करने वाला गद्यकाव्य वेमभूपालचरित तथा मेघदूत के अनुकरण में लिखा गया हंसदूत ग्रंथ है। इनकी गणना द्वितीय कोटि के कवियों में की जा सकती है।

इनके श्रृंगारभूषण भाण में अन्य भाणों की तरह ही श्रृंगार

---

१– पार्वती परिणय ४, पृ० २.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



रस[1] का प्राधान्य है। विरहाकुल विट मंच पर आकर अपनी अवस्था का वर्णन करता है। वेशोपनिवेशों का पर्यटन करता हुआ कल्पित सुन्दरियों के सौन्दर्य-वर्णन के साथ-साथ उनको पाने के लिये लालायित विरोधी पुरुषों के झगड़े, मल्लयुद्ध, मुर्गों की लड़ाई, कन्दुक-क्रीड़ा आदि खेलों और वसन्तोत्सव का चित्रण करता जाता है। इनके यथेष्ट दृष्टांत ऊपर प्रसंगानुसार दिये जा चुके हैं। यहाँ कवि के वर्ण्य वस्तुओं के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उत्कृष्ट वर्णन-शैली का परिचय प्राप्त होता है। गद्य तथा पद्य रचना में भाण के प्रवाह तथा माधुर्य को देखकर परिख्यात गद्य लेखक बाणभट्ट तथा रसिक भोजराज की याद आए बिना नहीं रहती।

## रससदन

'रससदन' भी इसी कोटि की एक अपूर्व रचना है। इस भाण के कर्ता युवराज हैं। इनके जीवनकाल का प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। लेखन-शैली के आधार पर इनका समय पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी के बीच बतलाया जा सकता है। ग्रंथ के नान्दी श्लोक[2] तथा अंत में अंकित प्रशस्तियों[3] के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि शक्ति के अनन्य उपासक युवराज दक्षिण भारत में केरल प्रान्त के निवासी थे। रससदन भाण के अतिरिक्त इनकी त्रिपुर-दहन-चरित, देवदेवेश्वराष्टक, मुररिपुस्तोत्र, रामचरित, श्रीपादसप्तक, सदाशिवी, सुधानन्द लहरी तथा हेत्वाभासोदाहरण श्लोक नामक रचनाएँ भी साहित्य संसार में प्रसिद्ध हैं।

वैदर्भी रीति में रचित रससदन में शीर्षक के अनुकूल ही माधुर्य सौकुमार्यादि काव्य के विविध गुण देखने में आते हैं। कभी-कभी उनकी

---

१– वाचस्तस्यकवेः प्रसन्नमधुरा दक्षाः प्रयोगे वयं
वैदग्धयप्रथमावतारसरणिः सामाजिकानां मनः।
कालः कोकिलकण्ठराग-विलसत्कंदर्पदर्पोदयः
श्रृङ्गारोऽपि रसः स एष मिलितो दिष्ट्या गुणानां गणः॥
श्रृङ्गारभूषण ६, पृ० २.

२– रससदन १, पृ० १.

३– रससदन १०. १४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



अद्वितीय कल्पना-शक्ति का भी परिचय मिलता है। नाटकों में गीतों का विधान भारतीय-नाट्य-शास्त्र में प्राप्त होता है। लास्य के दस प्रकारों में गेय-पद प्रमुख है। दृश्य काव्य की शोभावृद्धि के लिये, लास्यांगों की योजना अनिवार्य होती है। इसकी पुष्टि अभिनवभारती से भी होती है।[१] भाण में तो दश लास्यांगों का विधान है।

नाटक में बहुत से छोटे छोटे गीत कथाप्रसंग के अनुकूल होते हैं। उनमें नियोजित गान स्वच्छन्द काव्य के रूप में भी उपलब्ध होते हैं। युवराज के रससदन भाण में उसकी कविता की श्रीवृद्धि करने वाले अनेक रसमय गीत भरे पड़े हैं। भाणों के शृंगार-रंजित पृष्ठों को पढ़ते-पढ़ते जी ऊब जाता है तो ऐसे गीतमय श्लोक उस एकसारता को दूर कर देते हैं। कुछ एक श्लोक वैदर्भी रीति के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में भी उद्धरणीय हैं।

राकामुखेन दशमी च कपोलकान्त्या
फालेन पञ्चमतिथिः प्रतिपन्नखाङ्कैः।
एषा कुहूरपि कच-प्रकरेण धत्ते
प्रायः समस्ततिथिसंग्रहभाजनत्वम् ॥[२]

भाषा के साथ व्याकरण पर कवि का अच्छा अधिकार प्रदर्शित करने वाले अंश भा प्रस्तुत भाण में प्राप्त होते हैं।

---

१– "यानि लास्याङ्गानि वक्ष्यन्तेतेभ्यः कश्चिद्वैचित्र्यांशो
लोकपरिदृष्टोऽपि रञ्जनावैचित्र्याय कविप्रयोक्तृभिर्नाट्ये निबंधनीयः।
और भी—
ध्रुवगानपञ्चकमंतरालापस्वर-रहितंयत्र प्रयोगयोग्यं
भवति स काव्यप्रयोगो गेयपदमित्युक्तम् भवति। यत्र हि
प्रयोगे तत्तत्राभिनिविष्टं सामाजिकरञ्जकं भवतीतियावानंशोऽसौ लास्याङ्गा-
दिहोपजीवितः ॥
अभि. भा. ना. शा. १६.
गा. ओ. सी. भाग ३. पृ० ६७-६८

२– रससदन ४५, पृ० १२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



भूतेभूताः समये सत्कारास्ते भविष्यति भविष्यन्ति ।
न भवन्तु वर्तमाने वाङ्मात्रेणाथवा विहिताः ।।[१]

कभी कभी इस भाण में प्रयुक्त छन्द कुछ अद्भुत तथा कटु से प्रतीत होते हैं,[२] किन्तु युवराज की अनेक साहित्यगत विशेषताओं के आगे नगण्य हैं।

इस एकपात्रीय रूपक में नायक विट वर्णनकर्ता है। उसके मुख से कवि ने मनोहरवर्णन करवाये हैं । घूमता हुआ विट मार्गस्थ वन-उपवनों की प्रातःकालीन तथा सन्ध्याकालीन शोभा का चित्रण करता है, जो हृदयग्राह्य है। प्रकृति का सीधा- सादा किन्तु मनमोहक रूप कवि ने बड़ी सरसता से उतार दिया है। यथा -

चोकूयन्ते विहङ्गा दिशिदिशि निजनीडद्रुमाग्रे निषण्णा ।
दोधूयन्ते वहन्तस्तुहिन – जलकणान्कुन्दगन्धं वहन्तः ।
लोलूयन्ते तमिस्रं दिनकर-किरणश्रेण्यः शोणशोभा
बोभूयन्ते क्रमेण प्रकटिततनवः शैलगेहद्रुमाद्याः ।।[३]

'पक्षी चारों ओर अपने घोंसलों के वृक्ष पर कूजन कर रहे हैं। अनिल ओस कणों और कुन्द की गन्ध को लेकर वृक्षों को कँपा रहा है। दिनकर की स्वर्णिम किरणें अन्धकार को बीन रही हैं और शैलगृहों पर वृक्षलताएँ आदि प्रकट रूप से शोभित हैं। यहीं प्रभात का एक और दर्शनीय चित्र उपलब्ध होता है। देखिए —

नग्नां वीक्ष्य नभःस्थलीं विगलितप्रत्यग्रधाराधर -
श्रेणीश्यामलवाससं पतिरसौरक्तः स्वय मुञ्चति ।
इत्यन्तश्चिरमाकलय्य नलिनी शोकातिरेकादिव
व्यादायाम्बुजमाननं विलपति व्यालोल-भृङ्गारवैः ।। [४]

---

१– रससदन १२६, पृ० ३१
२– रससदन ८२, पृ० १६, १६६ पृ० २३
३– रससदन १६, पृ० ६
४– रससदन २२, पृ० ६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



"आकाश को अनाच्छादित और बादल रूपी श्यामल वस्त्र को बिखरा हुआ देख (प्रभात होने पर आकाश के तारे लुप्त हो गये और बादल इधर-उधर बिखर गये) मेरा यह पति रक्त उगल रहा है। (सूर्योदय के साथ साथ आकाश में सर्वत्र लाली फैल गई है)। इस बात को बड़ी देर तक मन ही मन सोचकर शोकातिरेक से कमलिनी अपने मुखकमल को खोल कर चंचल भौंरों की गुंजनध्वनि में मानो विलाप कर रही है।

मनुष्य को अपनी मनःस्थिति की प्रतिच्छाया प्रकृति में भा दिखाई देती है। चिन्तामग्न विरहाकुल विट आकाश से भूतल तक सारे वातावरण को शोकमय पाता है। यही कवि की सहृदयता है। स्त्रियों के स्वभाव का युवराज कवि ने एक श्लोक में जो वर्णन किया है वह किसी दुर्बल हृदय नारी के चरित्र का चित्र हो सकता है। कुल-वधुओं पर वह चरितार्थ नहीं होता।

स्वार्थनिव निधाय चेतसि मुहुः प्राणेश्वरोऽयं ममे -
त्युद्घोषत्यनुर्वतते च पुरूषं तत्तत्प्रियाराधनैः।
नो जानाति कदापि तस्य तु हितं निष्किञ्चनत्वे पुन -
स्त्यक्त्वा तं भजतेऽन्यमीदृशदशः प्रायेण योषा-जनः॥ १

इसके अनुसार नारी - अपने चित्त में स्वार्थरत होकर यह मेरा प्राणेश्वर है – ऐसा रटती रहती है और मनोनुकूल सेवा द्वारा पुरुष की आराधना करती है। पर उसी पुरुष के दरिद्र हो जाने पर उसके हित की चिन्ता किये विना ही पता नहीं कब उसे त्याग कर वह दूसरे की सेवा में लग जाय – प्रायः ऐसी होती हैं स्त्रियाँ।"

स्त्रियों के लिये कवि की इस प्रकार की अविश्वासपूर्ण भावना वारवनिताओं के सहवास का परिणाम कही जा सकती है। भाणों में स्त्रियों के इस रूप के अगणित चित्र उपलब्ध होते हैं। कवि ने केवल नारी

---

१–रससदन ४०, पृ० ११.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



के धूर्त रूप को ही नहीं परखा है उसने रमणी की हार्दिक एवं शारीरिक मनोज्ञ शोभा को भी निकट से अच्छी तरह निरखा है। कालिदासादि प्राचीन कवियों की नख-शिख-वर्णन-पद्धति का भी युवराज ने सफलतापूर्वक अनुकरण किया है। रससदन भाण में युवती की सुषमा अत्यन्त निखरी हुई उपलब्ध होती है और प्रेमी उस पर आसक्त है—

पादाम्भोरूह - मन्दमन्दवसुधाविन्यासलीलाचल
द्दोर्दण्डाचलसंलांशुक - मुहुः- प्रत्यक्ष-वक्षोरूहम् ।
यातायात-विधायि बाहुलतिकाभूषाभरणत्कारितं
यातं मत्त-मदावलेन्द्र मधुरं सूते मुदं चेतसि ॥[१]

"मेरी प्रियतमा अपने चरणकमल धरती पर धीरे-धीरे रख कर चलती जा रही है। मन्द-गति के कारण उसकी साड़ी का आँचल हाथ के नीचे सरक गया है। उसके पयोधर अतिस्फुट हो रहे हैं, उसकी बाहुलता के चलायमान होने से आभूषणों की मधुर झंकार उठ रही है। इस प्रकार मत्त चाल से चलती हुई प्रिया चित्त में आनन्द की लहरियाँ उत्पन्न कर रही है।"

पूर्णेन्दु-प्रतिमानमाननमिदं नेत्रे [स्वतश्चञ्चले,
गण्डौ दर्पण-खण्डवत्सुविमलौ बिम्बप्रकाशोऽधरः।
वक्षोजौ मणिहेमकुम्भरूचिरौ श्रोणी भृशं विस्तृता,
पादौ पल्लवकोमलौ मृगदृशः सर्वं मनोमोहनम् ॥[२]

" यह मुख पूर्णिमा के चन्द्र का प्रतिमान है, आँखें प्रकृत्या चञ्चल हैं, कपोलप्रान्त दर्पण के समान निर्मल बिम्बोद्ग्राह्य हैं, अधरबिम्बफलसदृश लाल हैं। पयोधर मणिमय सुवर्ण-कलश के समान मनोहारी तथा उरु-प्रदेश विशाल हैं एवं चरण पल्लववत् सुकोमल हैं। सत्य तो यह है कि

---

१– रससदन ५२, पृ० १३.
२– रससदन २२७, पृ० ५५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



इस मृगलोचना का अंग-प्रत्यंग मनमोहक है। उत्तरमेघ में भी यक्षिणी का इससे ही मिलता जुलता रूप आलिखित है।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षामा चकितहरिणी-प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां,
या तत्र स्याद्युवति-विषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥[१]

इन शृंगारिक वर्णनों के अतिरिक्त इस लघु ग्रन्थ में संगीत के तत्वों से युक्त गीत भी अधिक मात्रा में मिलते हैं और उनके शब्दों की गूंज को सुनकर रसिक-मन-मयूर नाचने लगता है। किसी सुन्दरी की चारुता को देखकर नायक हर्षोन्मत्त हो गा उठता है।

धवलकुसुमधारिणी मृदुलहसितकारिणी............[२]

इस प्रकार विट ,वेशवनिताओं से मिलता हुआ हास्यशृंगारादि रसमिश्रित संगीत का श्रवण करता है। कहीं इन्द्रजाल-विद्या के प्रयोग देख कर वहुत प्रसन्न होता है।[३]

इन वर्णनों के प्रसंग में रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का विन्यास वहुत रुचिकर है। कवि की इस कृति पर कालिदास, माघ आदि कवियों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

सूत्रधारः—साधुगीतम्। साधुगीतम्। यतः।
संगीतेन तवामुना मुखविधौ पीयूषधाराभ्रमं,
कुर्वाणेन विपूर्णकर्णयुगलास्तद्भार-खिन्ना इव।
तिष्ठन्ति स्तिमिताः सुखोदयवशादालस्यमाविभ्रत-
श्चित्रन्यस्तनरा इव क्षणममी सर्वेऽपि सामाजिकाः ॥[४]

१– उत्तरमेघ (मेघदूत)
२– रससदन २३३, पृ० ५७
३– रससदन २०१-२०३, पृ० ५०
४– रससदन १६, पृ० ५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



तुलना कीजिये :—

सूत्रधारः—आर्ये साधु गीतम् ।
अहो राग-बद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतोरङ्गः ।[१]

## श्रृङ्गारतिलक

सत्रहवीं शताब्दी में कांचीपुर के वरदाचार्य ने जो अम्मालाचार्य भी कहे जाते हैं, वसन्ततिलक नामक भाण की रचना की । ये वैष्णव ब्राह्मण थे । द्रविण भाषा में अम्मा शब्द स्त्रियों के लिये आदरपूर्वक व्यवहृत होता है । रामभद्र दीक्षित के शिष्य[२] की यह इच्छा हुई कि अय्याभाण भी लिखा जाय। अय्य पद आर्य का विकृत रूप प्रतीत होता है । अय्या-भाण का नामान्तर है, श्रृंगारतिलक । इसके रचयिता का संक्षिप्त परिचय इस भाण की भूमिका में प्राप्त होता है ।

कौण्डिन्य गोत्रोद्भव श्रीरामभद्र मखीन्द्र का जन्म दक्षिण के कुम्भकोण नगर से सात कोस की दूरी पर स्थित कण्डरमनिक्यम् नामक ग्राम में चतुर्वेदी यज्वन् परिवार में हुआ था ।[३] ब्राह्मण-कुल-मणि रामयज्ञ दीक्षित इनके पिता थे । बचपन में ही इन्होंने अपने गुरू श्रीनीलकण्ठ मखी के चरणों में अध्ययन करते हुए काव्य, नाटक रसालंकार एवं लक्षणग्रन्थों में पाण्डित्य प्राप्त किया । अपने गुरु श्री चौक्कनाथ मखीन्द्र की ज्येष्ठ कन्या के साथ इन्होंने विवाह किया । श्री बाल-कृष्ण से इन्होंने अध्यात्मशास्त्र की विद्या प्राप्त की ।

तञ्जोर नगर के राजा शाहजी ने कावेरी नदी के तट पर कुम्भ कोण नगर से दो कोस दूर "तिरूविशल" नामक स्थान पर अपने ही नाम से शाहजीपुर नामक नगरी की स्थापना की । श्री महादेव कवि, तिप्पाध्वरी

---

१– अभिज्ञान शाकुंतल, प्रथम अङ्क पृ० ८
२– श्रृङ्गारतिलक ७.
३– श्रृङ्गार तिलक ५-६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



आदि शाहजी के सभापण्डितों में रामभद्र मखीन्द्र प्रमुख थे। इस विद्या-प्रेमी राजा ने १६८४ ईस्वी से १७११ ईस्वी तक (लगभग २७ वर्षों तक) राज्य किया। रामचन्द्र के शृंगारतिलक भाण के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाओं के नाम ये हैं—

१. अष्टप्रास २. चापस्तव ३. जानकीपरिणय (नाटक)
४. पतञ्जलिचरित (काव्य) ५. पर्यायोक्ति निष्यन्द
६. प्रसादस्तव ७. बाणस्तव ८. विश्वगर्भस्तव
९. तूणीरस्तव (अप्राप्त)

ये कृतियाँ इनके बहुमुखी पाण्डित्य को प्रमाणित करती हैं। मुकुन्दानन्द-भाण की तरह शृंगार-तिलक में भी यह बतलाया गया है कि प्रायः अभिनव कलाकार साहित्य-शास्त्र की प्राचीन परम्परा के कट्टर अनुयायी होते हैं। अतः वे सरस वस्तु का सर्जन नहीं कर सकते। पंडित रामभद्र की वाक्य-रचना श्रुति-कटु एवं समस्त पदों से रञ्जित होती है, अतः उनका अपनी सरस पदावली पर गर्व करना अनुचित सा लगता है। परन्तु शृंगार-तिलक की प्रस्तावना से यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि ये दो विरोधी बातें भी एक साथ घट[1] सकती हैं। यह शृंगार-तिलक रूद्रभट्ट के इसी नाम के श्रव्य-काव्य से सर्वथा भिन्न है। रूद्रभट्टीय शृंगार-तिलक में नायिकाओं के भेद और काम की विभिन्न अवस्थाओं में उनकी दशाओं का वर्णन मिलता है। रामभद्र की कृति दृश्य काव्य के अन्तर्गत भाणों की कोटि में आती है। कवि ने नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट नियमानुसार शीर्षक के अनुकूल ही शृङ्गार-रस में लिप्त मंगलमय श्लोकों द्वारा प्रस्तुत एकपात्रीय प्रेक्षणक का श्रीगणेश किया है। 'विवाह के अवसर पर श्रीराम के दृढ़ अनुरागमय नयनों के दर्शनमात्र से धरणीसुता नवोढा सीता की लजाई आँखें तुम्हारा कल्याण करें।' सदा रघुनाथ के चरणों का स्मरण करने वाले भक्त का पावन हृदय भी शिष्य प्रेम के कारण साधारण जनता के लिये रचे जाने वाले भाण की रचना में प्रवृत्त हुआ। इसमें साम्प्रदायिक प्रचार की भी भावना छिपी हुई है।

---

१– शृङ्गारतिलक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



शृंगार-तिलक में विट भुजंगशेखर और हेमांगी नामक वेश्या की प्रणय-कथा है। नायक नायिका के श्वशुरालय जाने के कारण दुःखी हो रहा है, परन्तु उसे पुनर्मिलन का आश्वासन दिया गया है। वेशवीथिका का पर्यटन करता हुआ, वह कल्पित-पात्रों से वार्तालाप करता जाता है। सपेरों के खेल, तथा जादू के खेलों का भी विवरण प्रस्तुत करता है। अन्त में वह हेमांगी से मिल जाता है। इसी में विट के मित्र मन्दारक तथा चित्रसेन के बीच हुए साहसिक कार्यों का भी उल्लेख है।

इसमें प्रसंगवश प्रस्तुत किये गये वासन्तिक सौन्दर्य, और प्रभात के मनोहर वर्णन रसिकों का मन हर लेते हैं। कहीं कहीं कामुक वेश्याविलासियों का विरह-वर्णन पाठकों के हृदय को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। प्रकृति का मादक रूप दिखलाने वाले इन पद्यमय विवरणों को पढ़ते समय माघ का तथा इसके गद्यांश को देखकर बाणभट्ट का स्मरण हो आता है—

क्वचिद्विकचचम्पकस्तवकगन्धबन्धुः—
..............................[1]

प्रकृति विरहाकुल विट को विरहविदग्ध नायिका की तरह आँसू बहाती हुई दृष्टिगोचर होती है। चाहे प्रभात का वर्णन हो या संध्या का, उसे हर जगह अपने करुण क्रन्दन की ध्वनि सुनाई देती है। कहीं चम्पक के गुच्छों और पुष्पों से निकलने वाली सुगन्ध तथा कहीं आम्र की नई मंजरियों की सुरभि से युक्त पवन प्रेमियों को सुखप्रद प्रतीत होता है और कहीं वसन्त की शोभा विरहियों को दुःखद लगता है। वर्षा-ऋतु में प्रकृति निरन्तर ठण्डी आहें भर कर वियुक्त दम्पती को भी रुलाती है। इस प्रकार संभोग के साथ-साथ विप्रलम्भ शृंगार का आभास कराते हुए कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है— "न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।

द्वयान्तं कालं वा प्रविकसित नीलोत्पलदृशं—
शशांक-स्वच्छन्दं रजनिमुपभुज्यापसरति।

---

१--शृङ्गारतिलक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



और भी—

दृष्ट्वा प्रोषितवल्लभां कमलिनीं तस्या मुषित्वाश्रियं—
दत्वा तां परिरम्भमूल्यविधया नीलोत्पलिन्ये निशि ।
प्राप्ते सांप्रतमात्तरश्मिपटले मानारूणे वारूणे
चन्द्रश्चोरवदस्तभू - धरमपि स्रस्तांशुको धावति ।।

अर्थात् - कमलिनी-रूपी प्रोषितवल्लभा नायिका को रात के समय अकेला पाकर उसकी कान्ति का अपहरण कर उस रात्रि को उसका उपभोग करने का मूल्य कमल के रूप में प्रदान कर सामने क्रोध से तमतमाते हुए लाल किरणों वाले सूर्य को आता देख चन्द्रमा मानों चोर की तरह पहाड़ से गिरता पड़ता भागा जा रहा है । यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा वेशगृह के व्यापार का सजीव चित्र कवि ने खींच कर रख दिया है । निम्नांकित पंक्तियों में विरहियों की दुर्दशा दिखाई गई है ।

सन्धारयन्ति तरवो मदनस्य बाणान्
गन्धाचलोऽपि रथमस्य परिष्करोति ।
उन्मीलति प्रियतमादृढविप्रयोग—
जन्मा च संप्रति विलासिजन-प्रलापः ।।

प्रेम मार्ग में कभी उद्देश्य की पूर्ति में सफलता मिलती है और कभी असफलता । लोक-व्यवहार में शरीर के अंगों के फड़कने से किसी शुभ या अशुभ समाचार के प्राप्त होने की सूचना मिलती है । शकुनशास्त्र के अनुसार प्रायः स्त्रियों के वामांग एवं पुरुषों के दक्षिणांग का फड़कना कल्याण-कर बतलाया जाता है । (अन्य नाटकों की तरह) इस भाण में भी अंगविशेष के स्पन्दन को प्रिय-सुख प्राप्त कराने वाला बतलाया गया है ।

स्पन्दते दक्षिणो भुजदण्डः । तन्मन्ये फलिष्यति मे मनोरथः ।

तुलना कीजिये -

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहु कुतः फलमिहास्य ।
अथवा भवितव्यानां भवन्ति द्वाराणि सर्वत्र ।।[१]

---

१- अभिज्ञानशाकुंतल अङ्क १

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्रेमियों को प्रतीक्षा की अवधि बहुत अखरती है। इस दुस्सह समय को व्यतीत करने के लिये बड़े नाटकों और भाण जैसे लघु रूपकों में प्रणयियों एवं वेशवनिताओं के वन या उपवन में जाने का विधान उपलब्ध होता है। चतुर्भाणी की तरह शृंगारतिलकादि उत्तरकालीन भाणों में भी इस प्रकार के चित्रण हैं। ऐसे प्रसंगों पर वन-उपवन की शोभा का चित्रण करने में कविगण अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर भी पाते हैं

पक्वानि प्रच्यवन्ते क्रमुकविटपिनामुच्छ्रितानां फलानि।[1]

यही श्लोक शृंगार-तिलक भाण के कर्ता की दूसरी कृति 'जानकी–परिणय' में भी मिलता है।

इस भाण में एक अतिरंजित विनोद किया गया है। जहाँ वेश्या द्वारा रति-शुल्क तत्काल न दे सकने पर लिखित पत्र पर प्रतिज्ञा प्रस्तुत की गई है।

स्वस्ति श्रीमति मन्मथे सति विभौ तन्नाग्नि संवत्सरे
इयमस्तु काञ्चनलता वत्सरमेकं कलत्रं मे।
इत्थं भुजङ्गशेखर-काञ्चनलतयोरनुज्ञया लिखितम्।[2]

इनके अनेक श्लोकों में कालिदास के मधुर छन्दों की प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है। कुछ पद्यों में मेघदूत के मन्दाक्रान्ता छन्द का स्वर गूंजता सुनाई पड़ता है।

## शृङ्गारसर्वस्व

इसके उपरान्त शृङ्गार-सर्वस्व नामक चार भाण संस्कृत रूपक-साहित्य में मिलते हैं, परन्तु इनके रचयिता भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। इनमें से एक रचना वेदान्ताचार्य की है, एक भूतिनाथ की तीसरी कृति अनन्तनारायण सूरि की तथा चौथी नल्लाबुध कवि की है। प्रथम दो भाणों के शीर्षक और लेखकों के नाम के सिवा उनके विषय में अन्य जानकारी प्राप्त नहीं है। शेष दो रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

---

१- शृङ्गारतिलक, २०५
२- शृङ्गारतिलक, १०९-११४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



"भारद्वाज-गोत्रसंभव अनन्तनारायण सूरि वरदराज शास्त्री के भागिनेय एवं उनके ही शिष्य भी थे। पाण्ड्य देश के कोरदणग्रामनिवासी और मलाबार के मानविक्रम राज के समसामयिक थे।"

रामभद्र दीक्षित के निकट सम्बन्धी नल्लाधुव कवि बालचन्द्र मखी के पुत्र थे। ये कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण चोल देश के कुम्भघोण नगर के निवासी थे। इन्होंने सुभद्रापरिणय नामक नाटक भी रचा। 'अद्वैतमंजरी' और उसकी "परिमला" नाम की व्याख्या भी इन्हीं की लिखी मिलती है। लगभग १७०० ईस्वी में इन्होंने शृंगार-सर्वस्व भाण की रचना की। इसमें अपनी प्रेमिका से बिछुड़े हुए विट की मनोदशा अंकित है। किसी मस्त हाथी की सहायता से दो प्रेमी पुनः मिल जाते हैं। हाथी को देख दूसरे लोग घबरा उठते हैं, परन्तु नायक उसे अपनी प्रार्थना पर सहायता के लिये शिव द्वारा भेजे गये गणेश भगवान के रूप में देखता है। इस सरल कथा को सरस आलंकारिक भाषा में सुन्दरतम रूप देने का कवि ने सफल प्रयास किया है। इस शृंगारप्रधान एकांकी रूपक में विट अपने मनोभिलाष को प्रकृति के क्षेत्र में प्रतिफलित पाता है। उसकी दृष्टि में सारा वातावरण विलासमय है। इसमें स्थान-स्थान पर कवि के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ज्ञान का भी परिचय मिल जाता है।भगवान सूर्य तक कामी के रूप में चित्रित किये गये हैं। जिस प्रकार शृंगार-तिलक एवं शृंगार-भूषण आदि भाणों में सूर्य का इसी रूप में चित्रण किया गया है उसी प्रकार इस भाण में भी दिवाकर की कामविलासिता चित्रित की गई है। देखिये -

पूर्वक्षमाधरशिखी — शिखराधिरूढो
लाक्षारसारुण - वपुर्भगवान्दिनेशः।
प्राचीमुखस्य परिकर्म - विशेष-लिप्सोः
कारमीर - पङ्कतिलकश्रियमातनोति ॥[१]

उदयाचल के शिखर पर सवार लाक्षारस के समान अरुण कान्तिमान् सूर्य पूर्व-दिशा-रूपी नायिका के मुख पर केसर द्वारा चित्रकारी कर रहा है।

---

१- शृङ्गारसर्वस्व, २३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



गच्छत्यस्त - मितम्बमम्बरथा - कुर्वन्क - रैश्चन्द्रमाः
संगच्छन्त्य इव प्रियैस्तत इतो निष्क्रम्य चक्राङ्गनाः ।
प्रच्छन्नाः कुलटा विटान् विजहति प्रायस्त्रियामात्ययात्—
नक्तं जागरणेन वारवनिता निद्रातुमुद्युञ्जते ॥[1]

चन्द्रमा के दृष्टांत द्वारा भाणकारों ने वेश-भवनों में रात्रियापन करने वाले कामुक विटों तथा कुलटाओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करने का स्थान-स्थान पर प्रयत्न किया है । उक्त पंक्तियों में इसका ज्वलन्त उदाहरण देखा जा सकता है । चन्द्रमा आकाश को त्यागकर अस्ताचल में प्रविष्ट हो रहा है ( रात भर अपनी प्रेयसी के साथ रमण करने के उपरान्त जा रहा है ) कुलटाएँ रात बीतने पर परपुरुषों का साथ छोड़ रही हैं और रात्रि में जागरण होने के कारण वेश-वधुएँ सोने का उपक्रम कर रही हैं ।

अभिनवबाण के शृंगार-भूषण की भाँति शृंगार-सर्वस्व की प्रस्तावना में भी शृंगार को उद्दीप्त करने वाले कामदेव की स्तुति की गई है जो कवि की साहित्यिक-प्रतिभा की ओर संकेत करती है । यथा—

वितन्वन्यत्कोणं विशिखमचिरादेव भगवा—
ननङ्गः केनापि त्रिभुवनमजय्यं विजयते ।[2]

भगवान् कामदेव जिसके कोण को बाण बनाकर क्षण भर में ही अजेय त्रिभुवन को जीत लेते हैं और जिसका कोमल प्रकाश युवकों का चित्त हर लेता है, वही हरिणाक्षियों का नेत्र-कटाक्ष हमारे शृंगार-सुख को बढ़ावे ।

इसके अतिरिक्त इस भाण में और भी शृंगार-परक मनोहारिणी गेय पदावलियाँ मिलती हैं । नायक स्त्री के सौंदर्य को निरख कर मुग्ध हो जाता है वह कहता है—

विद्युल्लतेव नवविद्रुममल्लिकेव.........[3]

---

१– शृङ्गारसर्वस्व, २१
२– शृङ्गारसर्वस्व, ४
३– शृङ्गारसर्वस्व,२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



"चपला की लता के समान, नवविद्रुमवल्ली-सरीखी चाँदनी के समान, रत्नों से निर्मित कृत्रिम पुतली के समान, कामदेव की माया के सदृश, और यह केतकी–दल के समान कौन गौरवर्णा लावण्यमयी नारी मेरे अनन्य पुण्यों के परिणामस्वरूप मेरे समक्ष उपस्थित हो गई है।"

नारी के विभिन्न अङ्गों के वैशिष्ट्य-प्रदर्शन के लिये कवि द्वारा प्रयुक्त उपमानों का विशेष पृथक् महत्त्व है। उपमानों की इस माला का उपयोग केवल कविता की शोभा–वृद्धि के लिए तो किया ही गया है साथ ही उनके सहारे कवि ने नैतिक दोषों के कुपरिणामों की ओर भी रसिकों का ध्यान आकृष्ट किया है।

जैसे—

"वलयनिकरं भग्नं वालेन्दु संहति-सुन्दरं,
करतलगते पात्रे कृत्वा वदन्परुषं वचः।
कपिरिव नवां मालां वालां स वाष्पविलोचना–
मयमभि - पतन्क्रुद्धो वलादनु - कर्षति ॥[1]

"हस्तरूपी पात्र में द्वितीया के चन्द्रसदृश सुन्दर भग्न कंकण रखे हुए, कटु वचन वोलता, वह क्रुद्ध पुरुष गिरता-पड़ता उस रोती हुई वाला के साथ ऐसी खींचा-तानी कर रहा है मानो कोई बन्दर नई माला को तोड़-मरोड़ रहा हो।"

त्रावणकोर के कार्तिक तिरूनाल रामवर्मा महाराज धर्मराज लोकप्रिय शासक थे। उन्होंने १७५८ ईस्वी से १७९८ ईस्वी तक राज्य किया। उनके राज्य में विद्वानों एवं कलाकारों को यथोचित सम्मान प्राप्त था। कुछ नाम ये हैं :—

(१) वालमार्तंडविजय नाटक के कर्त्ता, देवराज सूरि।
(२) वालरामवर्मयशोभूषण के लेखक, सदाशिव दीक्षित।
(३) अलंकार-कौस्तुभ के रचयिता, कल्याण सुब्रह्मण्य।

---

१– शृङ्गारसर्वस्व ४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



(४) वसुलक्ष्मी–कल्याण के प्रणेता और अप्पयदीक्षित के वंशज वेंकट सुब्रह्मण्य ।
(५) पद्मनाभविजय काव्य के कवि पण्तलम् सुब्रह्मण्य शास्त्री ।
(६) वैयाकरण इटवट्टिकाट्टु नारायणन् नम्बूद्रि ।

इन सभा-रत्नों में उनके ही भतीजे कवि अश्वतिराम वर्मा भी थे। उनका जन्म[1] १७५६ ईस्वी में रामवर्मा कोइल लम्पुरान के यहां हुआ। उन्होंने श्री शंकरनारायण से शास्त्रों का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त संगीत एवं अन्य ललित कलाओं में भी पटुता प्राप्त की। १७८४ ई० में वह महाराज के साथ रामेश्वरम् भी गये। राजकुमार मकायिराम तिरूनाल रवि वर्मा की मृत्यु के उपरांत १७८६ ई० में महाराज के भाई युवराज हुए। आठ वर्ष के बाद १७९६ ई. में वह भी स्वर्ग सिधार गये।

## शृङ्गार-सुधाकर

अश्वति तिरूनाल ने संस्कृत एवं मलयालम् काव्य में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। निम्नांकित रचनाएँ उनकी विद्वता को सिद्ध करती हैं। इनमें एक भाण रूपक भी है। यथा—

वांचि महाराज स्तव ( अपने चाचा धर्मराज की प्रशंसा में रचित ) कान्तावीर्यविजय प्रबन्ध, सन्तानगोपालप्रबन्ध आदि चम्पू काव्य तथा रुक्मिणी-परिणय नाटक एवं शृंगारसुधाकर भाण, पद्मनाभ कीर्तन ( श्री पद्मनाभ स्तोत्र ), दशावतार-दण्डनक और नरकासुरवध, पूतनामोक्ष, रुक्मिणी-स्वयंवरम्, पौण्ड्रक-वधम्, और अम्बरीशचरितम् ( आदि मलयालम कृतियाँ )। इनमें से पद्मनाभकीर्तन को छोड़कर प्रायः सब ग्रन्थ सुन्दर भाव तथा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं।

लक्षण-शास्त्रों में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार रचे गए शृंगारसुधाकर भाण में भी विट आकाशभाषित द्वारा घटनाओं के चित्र प्रस्तुत करता

---

१– शृङ्गारसुधाकरभाण, पृ० २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



है। वेश्या की प्रणय-कथा इसका विषय है और अंगी है शृंगाररस। इसमें वीररस का आभास नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त चतुर्भाणी के भाणों तथा इस प्रकार की अन्य कृतियों में भी वीररस लुप्त-प्राय है। वीर रस के साक्षात् दर्शन शायद ही किसी भाण में होते हैं। यह रस तो लक्षण[१] की ही वस्तु रह गया है। हाँ, शृंगार के पोषक के रूप में हास्य-रस का आस्वादन करने का अवसर यत्र-तत्र अवश्य मिलता है। वेश्या की माता के भय से बचने के लिये भागते हुए ब्राह्मण पुरोहित को देख कर दर्शकों की हँसी फूट पड़ती है।[२]

ताम्रश्मश्रुमुखः..................इत्यादि में वेश्या-रमण करने वाले श्रोत्रियों पर गहरा व्यंग्य भी है।

भो भोः श्रोत्रिययस्थविर। कुत आगम्यते। किं ब्रवीषि—"वेश-वीथ्या इति... ... ...[३]

भालू के आ जाने से उत्पन्न किया गया भयावह वातावरण इसके मुख्य रस में बाधक नहीं बनता।

लोलंलोल्लन्नयनयुगली-तारक सम्भ्रमेण,
... ...वाणिनीनां कलापः॥
... ...अयमये स्वच्छतारकच्छलादुत्पुच्छय्मातोऽ च्छभल्लभल्लो
मदमिमुखभागच्छति। वयमपि पलायामहे।[४]

जहाँ बीच बीच में इस प्रकार के रस का प्रयोग किया जाता है वहाँ इनकी अट्टूट कथाओं का प्रभाव प्रतीत होता है। इसका काव्य बहुत सुन्दर है और कहीं-कहीं इनके अद्भुत वर्णन शक्ति के दृष्टाँत भी उपलब्ध होते हैं।—

ज्योतिर्मयात्मजमहः- प्रकराम्बुवर्षै–
निश्शेषलोकतिमिरोत्कर-पङ्कपंक्तिम्।
संक्षालयन् दिनमणिर्द्रुतशातकुम्भः
कुम्भायते शिरसि पूर्वमहीधरस्य।[५]

---

१– सूचयेत्वीर-शृङ्गारौ शौर्य-सौभाग्य-संस्तवैः। दशरूपक.

२– शृङ्गारसुधाकर, २०

३– शृङ्गारसुधाकर २१, पृ० ८

४– शृङ्गारसुधाकर ६५ पृ० १६

५– शृङ्गारसुधाकर ११, पृ० ४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इनका शब्द-सञ्चय भवभूति एवं मुरारि का स्मरण कराने में समर्थ है। गद्यांश भी अन्य भाणों की तरह बाणभट्ट की याद दिलाता है। यद्यपि यह बाण के समकक्ष नहीं है तथापि इनके गद्यकाव्य को उच्च कोटि का कहा जा सकता है।

> डोलायितवाहु युगलझणझणायितपुरटकटकावलीकस्य काञ्चनमयाङ्क-चुलिका-संघर्षणमसृणीकृतविशङ्कट – स्तनतटघुसृणपत्राङ्कुरस्य, कठोरतरणि - किरणाव-मर्शाविष्कृतधर्मजल-कणिकालुप्तनिटिलफल तिलकस्य ... ... युवतीजनतल्लस्य परमहो रामणीयकम्।

कवि रामवर्मा की एक मौलिकता यह है कि इन्होंने वेश-युवतियों का परिचय देते समय जो नाम गिनाए हैं वे बड़े ही भले और नये प्रतीत होते हैं। अन्य भाणों में लगभग एक से ही नाम मिलते हैं, परन्तु यहाँ उसमें नवीनता है —वैजयन्ती, वल्लकीसल्लापा, निधुवनलम्पटा, चन्द्रलेखा, कर्पूरशलाकिका, केतकीशिखा, लावण्यतरंगिणी आदि अनेक सुन्दरियों के नाम विट ने गिनाये हैं।[1]

कोचूण्णिभूपालक ( कोचुण्णिथम्पुरान ) का सम्बन्ध कोचीन राज्य के कोटिलिंगपुर के एक राजवंश से जोड़ा जाता है। उनका वास्तविक नाम रविवर्मा था। इसी नाम और राजकुल के एक ज्योतिषी ( जिनका नाम वलिय कोचुण्णि थम्पुरान भी था ) से पृथक् करने के लिये इन्हें चेरीय कोचुण्णिथम्पुरान भी कहा जाता है। इनके अनंग-जीवन भाण की प्रस्तावना[2] से मालूम होता है कि इनकी माता का नाम इक्कावुथम्पुरानि था। कवि ने अपने गुरु कुंचुण्णि का भी नाम लिया है। इनसे पहले राजगुरु उण्णि आशन तथा इनके चाचा गोडवर्मा थम्पुरान ने इन्हें पढ़ाया था। को चुण्णि भूपालक ने संस्कृत एवं मलयालम में लगभग चालीस ग्रन्थ लिखे। अनंगजीवन भाण के अतिरिक्त "विटराज विजय" भी इन्हीं का एक और भाणरूपक है। इनके अलावा इस कवि की संस्कृत की अन्य रचनाएँ भी हैं। जिनके नाम

---

१– शृङ्गारसुधाकर, ४६-५२
२– अनंगजीवन ५, पृ० २, अनंगजीवन ६, पृ० ३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



हैं —वाणयुद्ध (चम्पू), विप्रसंदेश, श्री रामचरित पुराण काव्य, श्रीराम वर्मा, श्री रामपट्टाभिषेक नाटक, अन्यापदेश और सूर्योदय आदि ।

कोचुण्णि भूपालक के शृंगारप्रधान अनंगजीवन भाण में भी भाण–रूपक के सब लक्षण लक्षित होते हैं। इसमें शृंगारशेखर नामक विट मञ्च पर आकर अपने कार्यों का विवरण प्रस्तुत करता है। उसके सामने अपने मित्र राजा भद्रसेन तथा आनन्दवल्ली नामक वेश्या को मिलाने की समस्या है। ये दोनों एक दूसरे के प्रति आसक्त हैं। हमें यहाँ कामज्वर से पीड़ित राजा के दर्शन होते हैं। इसमें संभोग एवं विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृंगार का आभास मिलता है। इसका विषय लौकिक होने के कारण राजा के प्रणय-व्यापार की पूर्ति में कोई वस्तु बाधक नहीं बनती। मुख्य रस का अपकर्ष न करते हुए कवि ने कहीं-कहीं हास्य रस की धारा भी प्रवाहित की है। "किं वदसि ? भद्रसेनो राजाऽत्र महोत्सव-दर्शनार्थमागमिष्यतीति लोकवादः पुरा मया श्रुतः।......(स्वगतम्) हाधिक्। हाधिक्। पुरा अनेन राज्ञा आनन्द वल्लीदर्शनजातकामज्वरपीडितेन सखे। मद्रोगचिकित्सकः खलु भवानेव।[१]

एक वृद्ध वेश्या मनोरथ की पूर्ति के हेतु विट को अपने घर ले जाती है। यह स्थल हास्य के सर्जन में सहायक बनता है। इस प्रकार के और भी वर्णन प्राप्त होते हैं। वृद्धा वेश्या के कुरूप प्रेमी का चित्र भी बड़ा रोचक है।

" अपि कुशलं त्वत्प्रियाया घनरञ्जिन्याः।
किं वदसि। सा वार्धक्येन... त्यक्तप्रायेति।

० ० ० ० ० ०

अये इयं कामलोला वृद्धा तरूणीव तरुणजनमाकर्षयितुं भ्रमति मार्गेषु।"

इसके अतिरिक्त दोपहर का वर्णन बड़ा ही सजीव है। प्रभात तथा संध्याकालीन सुषमा भी देखते ही बनती है—

··· अये चण्डांशुश्चण्डतरः संवृतः। तथाहि ......[२]

---

१– अनंगजीवन पृ० ७.
२– अनंगजीवन ५८-५९. पृ० २०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



मधुर संगीत के प्रसंग में विट के मुख से कवि ने गीतों के अभ्यास से श्रान्त एवं क्लान्त वारवनिताओं का स्वाभाविक चित्रण करवाया है जो वृक्ष-सेचन से थकी-हारी शकुन्तला के वर्णन से मिलता जुलता है।

( श्रवणानन्दं नाटयन् ) अद्य हि संगीतसरणिः--
ईषल्लक्षितदन्तकुन्दमुकुला द्रागुन्नतं पार्श्वतः,
किञ्चिन्मीलितचारूलोचनयुगं व्यालोलनीलालकम् ।
नासाभूषणरम्यनर्तनकला मुग्धं मुखं बिभ्रती
गायन्ती मधुरस्वरं विरचयत्येषातितोषं मम ॥

० ० ० ०

(प्रकाशम् ।) सखि संगीतसरणि ! परिश्रान्तासि गानेन । तथाहि—
अति श्वसितमायतं विलुलितालकं चाननं
विलुप्त - मलिकस्थले तिलकमद्य घर्माम्बुभिः ।
समुन्नत - पयोधरद्वयमिदं च मुक्ताफल —
प्रभश्रमपयः - कणैः सुतनु ! भूषितं लक्ष्ये ॥

तुलना कीजिये —

स्रस्तांसावतिमात्रलोहित-तलौ बाहू घटोत्क्षेपणा —
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः ।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
वन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः ॥[१]

इस भाण के कतिपय वाक्यों को पढ़कर मृच्छकटिक के शकार का स्मरण हो आता है।

हन्तेयं रावणसहोदरी राममिव मामेवाभिपतति ॥[२]

अन्त में संध्या समय का वर्णन करता हुआ विट अपने अभिनय का अन्त करता है। सुन्दरी आनन्दवल्ली से मिलन होने पर राजा उसका लावण्य निहार कर ठगा-सा रह जाता है। इस सुन्दरी के दर्शनार्थ सहस्र नेत्र भी कम होते हैं।

---

१– अभिज्ञानशाकुन्तल अङ्क १, १७.
२– अनंगजीवन पृ० २५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



राजन् । अद्य संध्यासमयः सम्प्राप्तः । तथाहि –
भास्वन्मण्डल - चक्रमेष भगवानुद्यम्य नारायणो
व्योमाख्यस्त्रुटिताञ्जनोपलरुचिध्वान्तापुराणां गणम् ।
संछिद्याशु तदीयशोणित वसासङ्गादशुद्धं पुनः
किवा क्षालयितुं निमज्जयति तत् पूरेऽद्य वारान्निधेः ॥[१]

अनंगतिलक के बाद भी अनेक रूपककारों ने भाणपरम्परा को आगे बढ़ाया, यद्यपि पूर्वोल्लिखित एक-नट नाटकों की तालिका में संकेतित सब के सब भाण उपलब्ध नहीं हैं, तथापि हस्तलिखित पोथियों की वर्णनात्मक नाममाला में इनके जो खंडितांश प्राप्त होते हैं, उनके परिशीलन से इनके प्रणेताओं एवं उनकी लेखन-शैली का बहुत कुछ ज्ञान होता है। यहाँ उन पर एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा।

**मदनसञ्जीवन**

१८ वीं शताब्दी में मराठा सम्राट तुक्कोजी के मंत्री घनश्याम एक अद्भुत प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति हुए। इन्होंने बहुत थोड़ी अवस्था में पर्याप्त ज्ञानार्जन कर संस्कृत-साहित्य को १०१ रचनाएँ प्रदान कीं। श्रव्य एवं दृश्य काव्य के क्षेत्र में उनका समान अधिकार था। इनके प्रेक्ष्य-काव्यों में एक व्यायोग, मदनसञ्जीवन भाण, डमरूक प्रहसन आदि रचनाओं का उल्लेख मिलता है। इनका मदनसञ्जीवन भाण रसिकों का मन हरण करने वाला है। इसमें कवि के जीवन पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। इसी से यह भी ज्ञात होता है कि इनके "चम्बु काव्य" की अच्छी ख्याति थी। यथा–

(पुनर्नेपथ्ये) किं युद्धकाण्डनाम्नश्चम्बु काव्यस्य प्रणेता
घनश्यामः कविः।

शंकरनारायण का "रसिकामृतभाण" तिरूवैयारू उत्सव के अवसर पर रचा गया था। ये किसी गोद ली गई पुत्रिका से उत्पन्न हुए थे और ग्यारहवें वर्ष में कविताएँ रचने लगे थे। प्रस्तावना में इनका परिचय मिलता है।

---

१– अनंगजीवन – ६०, पृ० ३०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



'सूत्रधारः...सकल शास्त्रपारीणः शंकरनारायणः कविः कदाचिदपि भवतः श्रवसोः आयातः।"[1]

कोचीन राज्य के महिष-मंगल ने अपने ही नामाक्षरों से युक्त भाण रचा। कवि ने अपना नामोल्लेख नहीं किया है परन्तु इस भाण की अन्तिम पंक्तियों से सूचित होता है कि इसकी रचना कोचीन के राजा राजवर्मन् की आज्ञा से हुई। इस भाण से यह सूचना भी मिलती है कि इसके कवि कामाक्षी के अनन्य भक्त थे। इसके अतिरिक्त इस भाण में उल्लिखित इस वाक्य से – "श्री नीलकण्ठान्तेवासिना लिखितमेतद् भाणम्" कवि के नीलकण्ठ के सहपाठी होने का ज्ञान होता है। महिष-मंगल के नान्दी-श्लोक में स्थित भाव भट्ट-नारायण के वेणीसंहार में अंकित राधाचरण-युगल की स्तुति से मिलते-जुलते हैं।

केलीकोपदशासु तन्वति नत्ति चन्द्रार्धचूडामणौ
क्रीडाचन्द्रकलानुषङ्गकलया यद्दूयते कोमलम्।
यद् वा कर्कश-कासरासुरशिरो निष्पेषणे निर्दयं।
पायाद् वस्तदिदं गिरीन्द्रदुहितुः पादारविन्दद्वयम्।[2]

तुलना कीजिये –

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशित - पदस्योद्भूतरोमोद्गते–
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयिता दृष्टस्य पुष्णातु वः॥[3]

श्रीकण्ठ का मदनमहोत्सव भाण भगवान् विश्वेश्वर के कल्याण–महोत्सव के अवसर पर अंग, वंग, कलिंग एवं काश्मीर जैसे भारत के सुदूर राज्यों से पधारे हुए अतिथियों के प्रीत्यर्थ "बालव्याघ्रपुरी" में राजाज्ञा से खेला गया था। प्रस्तावना में कवि का जीवन-वृत्त संक्षेप में चित्रित है। कवि

---

१– सूत्रधारः॥ रसिकामृतभाण
२– महिषमंगल भाण
३– वेणीसंहार अङ्क १ पृ० २.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



ने अपनी कृति प्रस्तुत करते समय महाकवि कालिदास के सदृश विनम्रता प्रदर्शित की है —

> क्काहं मन्दमनीषः क्क नु वा सरसोक्ति-संमितो भाणः ।
> वागीश्वरीविलासो वसुधायां केन वर्णितुं शक्यः ।।[1]

तुलना कीजिये —

> क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्वचाल्पविषया मतिः......[2]

मदनमहोत्सव के प्रणेता श्रीकण्ठ आत्रेय गोत्र के शामाचार्य के पुत्र थे और परमेश्वराध्वरिन् नामक विद्वान् के शिष्य। रसिकों के चित्तानुरञ्जनार्थ श्रीनिवासाचार्य के पुत्र रंगनाथ ने "अनंगतिलकभाण" का प्रणयन किया। यह शेषनाग पर शयन करने वाले श्री रंगनाथ के चैत्रोत्सव यात्रा के[3] प्रसंग पर अभिनीत किया गया था। गोविन्ददेव का "गोपाललीलावर्णव भाण" अप्रकाशित है। इसमें कवि अपने को रंगाचार्य और सरस्वती का पुत्र बतलाते हैं। इनका जन्म स्थान एवं काल अज्ञात है। कांचीपुर के कश्यपगोत्रीय श्रीकण्ठ ने एकामरनाथ के वसन्तोत्सव के दर्शनार्थ उपस्थित अतिथियों के मनोरञ्जन के लिये "कन्दर्पदर्पण" नामक एकपात्रीय रूपक रचा। परन्तु अब तक प्रकाशित नहीं हो सका है।

## रसोल्लास

श्रीनिवास वेदान्ताचार्य के पुत्र और आत्रेयगोत्रीय वृषगुरू के पौत्र थे। इनके नाना हरिगोत्रीय रामानुज के वंशज भक्तार्तिहृत थे। श्रीनिवास वेदान्ताचार्य के रसोल्लास में कामशेखर एवं मुक्तावली की प्रेम-कथा वर्णित है। यह कृति अप्रकाशित है। इसकी प्रस्तावना से विदित होता है कि इसका अभिनय-स्थल भूतपुरी था।

---

१– मदनमहोत्सव

२– रघुवंश सर्ग – १

३– (नान्द्यन्ते) सूत्रधारः...साङ्गसङ्गीतरङ्ग-चिटविदूषकाचङ्गीकृतानङ्गशासना रङ्गनगरी। (समन्तादवलोक्य सपरितोषम्) अहो फलितमस्मन्मनोरथम्। यदिदानीं चतुर्मुख-पञ्चमुख-षण्मुखनिखिल सुरमुकुटतटमणि-किरणपुञ्जरञ्जित चरणकञ्जस्य,.......... श्रीरंगनाथस्य चैत्रोत्सवयात्रा प्रसंगेन. अनंगतिलक.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



## कालीकेलियात्रा

एक अज्ञातनामा कवि के कालीकेलियात्राभाण का नाम भी मिलता है जो कोटिलिंग में छोटे युवराज की आज्ञा से भद्रकाली के सम्मान में खेला गया था। इस भाण के नामार्थ में ही काली के[1] उत्सव की कथा छिपी हुई है। धनगुरूवर्य कौशिक गोत्र के वरदगुरू के पुत्र थे। ये भाष्य-संग्रह, सारार्थ संग्रह आदि ग्रन्थों के प्रणेता और कन्दर्पविजय भाण के कर्त्ता भी थे। श्रीरंगम् के प्रभु रंगनाथ के दोलोत्सव में इसका अभिनय हुआ था।

## रसरत्नाकर

नारायण के पुत्र जयन्त ने रसरत्नाकर भाण का प्रणयन किया। यह राजा वांचीभूपाल[2] की आज्ञा से त्रावनकोर में अभिनीत हुआ था। इसके अतिरिक्त श्रृंगारविलासभाण का नाम भी मिलता है। इसके रचयिता शाम्बशिव, श्रीवत्सगोत्रोद्भव कनकसभापति के ज्येष्ठ पुत्र थे। इस भाण के लेखक गोपालसमुद्रम् नामक गाँव में रहा करते थे। ये भरद्वाजगोत्रसम्भव अपादुधारण के पुत्र स्वामिशास्त्री के सुपुत्र थे। मानविक्रमहाराज की सभा के सामाजिकों के प्रीत्यर्थ इसका अभिनय हुआ था।

कतिपय शीर्षकहीन भाणों में से एक भाण के खण्डितांश को देखने से केरल के राजा रामवर्मा के नाम का पता चलता है।[3] इसी प्रकार की

---

१– तथापीदमस्तु –
श्रीकोटिलिङ्गनिलये सततं लसन्ती श्रीकण्ठदेवदुहिता परिपातु लोकान्।
क्षोणीतले च तुलितामृतसारवेणी वाणी विराजतु चिराय महाकवीनाम्॥
कालीकेलियात्रा

२– किं किं नैतत् केतु-द्वयम् पश्य ...
... वाञ्चीशस्य प्रतापानल ... राजच्छलेन। रसरत्नाकर.

३– किंच-यावत्खण्डेन्दुमौलिं श्रयति गिरिसुता यावदास्ते मुरारेः
वक्षस्यक्षीणहारेवहुमणिशवले देवता मङ्गलानाम्।
यावद्वक्त्रे (च) मैत्रींमुपनयति गिरामीश्वरी पद्मयोनेः
तावल्लक्ष्मीप्रसूतिः स्वयमवतु भुवं रामवर्मानरेन्द्रः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



एक अज्ञात कृति में राजा रविवर्मा का उल्लेख मिलता है।

भाणों के अन्तर्दर्शन एवं शास्त्रसम्मत लक्षणों के मनन के आधार पर संक्षेप में इसके ये लक्षण मिलते हैं।

(क) यह प्रकृत्या वर्णनात्मक होता था।
(ख) प्रायः इस प्रकार की रचना आदि से अन्त तक संस्कृतमय हुआ करती थी।
(ग) स्वरूप में यह एकपात्रीय रूपक होता था।
(घ) इसकी कथा-वस्तु कविकल्पित एवं धर्मनिरपेक्ष हुआ करती थी।

भाण साहित्य के सम्यगवलोकन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि शृंगारसाहित्य पर वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ चुका था। वाजसनेयी संहिता आदि प्राचीन ग्रन्थों में वेश्याकर्म के जो संकेत मिलते हैं वे मानो भाणों में साकार दिखाई देते हैं। नाट्यशास्त्र में भी विटों की ठीक ठीक व्याख्या नहीं हो पाई है। विट एवं वेशवधुओं के जीवन पर भाण साहित्य के अध्ययन से बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। यथा—वेश में प्रचलित सहपीति ( स्त्री के साथ शराब पीने की प्रथा ) तथा वेश-समाज की पद्धति की ओर कतिपय भाणों एवं वेश-सम्बन्धी काव्यों में संकेत किया गया है। भोग-विलासिता के कारण निर्धनता का उल्लेख भी एकनट नाटकों में है। बहुत से कामी दूसरे के साथ विलास में रत कामिनी को छोड़ बूढ़े विटों के सामने किसी गणिका को पराजित कर उससे दुगुना पैसा वसूल किया करते थे। कुट्टिनीमत[1] में बटोरक्रिया का उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार अपने प्रति अन्याय देख कर कोई भी विट मण्डप में पहुँच कर विट महत्तरों ( वृद्ध विटों ) को एकत्र करके अन्याय का फैसला करवाता था। पादताडितक

---

१– विभ्रमकियतस्तपसः फलमेतद्यदुपभुज्यते मदिरा
स्वकरेण पतिशेषा मदघूर्णित-मदनसेनयादत्ता ॥ कुट्टनीमत – पृ० ३५०.
उपितामापरेण समं वृद्धविटानां पुरः पराजित्य ।
पूजयतिस्म भुजङ्गः कश्चिद्गणिकां द्विगुणभाट्या ॥ कुट्टनीमत पृ० ७६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



में इस वटोर को विटसन्निपात कहा गया है।

संस्कृत साहित्य के पारदारिक-प्रणय-चित्रण ने विहारी जैसे हिन्दी के रीतिकालीन[1] कवियों को भी प्रेरणा दी थी।

कुंज भवन तजि भवन को चलिये नन्दकिशोर।
फूलति कली गुलाव की, चटकाहट चहुँ ओर॥
न करू न डरू सब जग कहत, कत बे काज लजात।
सो हैं कीजै नैन जो, साँची सौहें खात॥

मिलाइये —

रोमाञ्चमं दर्शयता कपोलदेशे विशालजघनायाः।
कर्णोत्पलेन कृत इव निरक्षरं चुम्बनोद्घातः॥[2]
निश्वासायासकर्ता न च न रतिकरस्तापनश्चेन्द्रियाणा-
मेकद्रव्याभिलाषी प्रतिनव इव ते चौरि कोऽयं विकारः॥[3]

भारतीय साहित्य में उपलब्ध इस प्रकार की सामग्रियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक युग में अनिवार्य रूप से विटवेश्याओं का अस्तित्व रहा है और इस वृत्ति ने हमारे सामान्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित किया था। इसकी पुष्टि के लिये चतुर्भाणी का उल्लेख पर्याप्त है। मनोज्ञतम वस्तु का प्रयोगातिरेक भी अनिष्टकारी सिद्ध हो सकता है। अतः कवियों ने भाण-साहित्य को इसके उपचार के हेतु दवा के रूप में अपनाया। इसका उद्देश्य समाज सुधार था। ये वेश्याओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन करते हुए इन नाट्यग्रन्थों में अपना कवित्व भी प्रदर्शित करते थे। इसकी पुष्टि में ऊपर अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा चुके हैं। कहीं-कहीं वेश-व्यापार में गुप्त व्यवहार के लिये कूट काव्य का भी प्रयोग किया गया है जिसके उदाहरण चतुर्भाणी एवं अन्य भाणों में भरे हैं। यथा—

---

१– बिहारी बोधिनी ३७४, पृ० १७३ एवं ४७६, पृ० १८६.

२– धूर्तविट संवाद १८, पृ० ७८.

३– पद्मप्राभृतक ३८, पृ०. ५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



दक्षात्मजा: सुन्दरि योगतारा:
किं नैक जाता: शशिनंभजन्ते।
आसह्यते वै सहकारवृक्ष:
किं नैकमूलेन लताद्वयेन ।।[१]

पद्मप्राभृतक में मूलदेव जब अपनी एक प्रेमिका को छोड़ दूसरी के पास जाने की बात कहता है तो उसकी पहली प्रेयसी उसे इन्हीं कूट वचनों के साहाय्य से दोनों के साथ निर्वाह करने की सलाह देती है। इसके अतिरिक्त भाणों में ऐसी लोकोक्तियाँ भी मिलती हैं जो वेश्याओं से सम्पर्क रखने वाले कामुकों एवं वारवनिताओं के जीवन का सार प्रकट करती हैं।

(१) गोपालकुले तक्रविक्रय: क्रियते ।
(२) न दीपेनाग्निमार्गणं क्रियते ।
(३) मदनीयं खलु पुराणं मधु ।
(४) मृतमपि पुरूषं संजीवयेद्वेश्यामुख-रस: ।
(५) शिरोवेदना नाम गणिकाजनस्य लक्ष-व्याधि यौतकम्
(६) संहितमिदं तप्तं तप्तेन ।
(७) सुमनसो मुसलेन माक्षौत्सी: ।
(८) पिता नाम खलु स यौवनस्य पुरूषस्य मूर्तिमान् शिरोरोग: ।
(९) लघुरूपोऽपिबलवान् मदनव्याधि:
(१०) अत्यन्त विषयाभिलाषिता नाम देहभाजामन्धकरणी काचन पिशाचिका
(११) नखलु शरीरान्तरमन्तरेण वयसा तादृशत्वं संभवति ।
(१२) सिद्धे पुनर्विचेष्टन्ते विपरीतं हि योषित: ।

उत्तरकालीन भाणों का कथानक, लेखनशैली, वर्णन–प्रकार बिल्कुल मिलते जुलते हैं। चतुर्भाणी की शैली इनसे भिन्न है। आगे चल कर भ्रष्ट शृंगार का वर्णन भी भाणों में होने लगा। अत: मौलिकता के अभाव को देख कर प्रेक्षक एवं पाठक इनसे ऊब उठे और इनका प्रचार कालान्तर में कम होने

---

१– पद्मप्राभृतक १४२, पृ० ५८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



लगा। फिर भी भाण साहित्य की वीथी एकदम सूनी नहीं रही। सन् १९३८ ई. में कुम्भकोणम् के सुदर्शन शर्मा ने श्रृंगारशेखर एवं सन् १९५१ ई. में वाइ. महालिंगशास्त्री ने "मर्कटमदलिका" नामक भाण रच कर इस परम्परा को २०वीं शताब्दी में भी जीवित रक्खा है।

कीथ के शब्दों में यह कहना उपयुक्त होगा कि "भले ही भाण और प्रहसन दोनों आधुनिक नाटकीय दृष्टि से उपयुक्त न हों, परन्तु शिल्प एवं सज्जा की दृष्टि से उनका अपना महत्व है।" विशेष कर आज के कार्य संकुल-युग में जब एकांकियों में भी एक-पात्रीय रूपकों का प्रचार विश्व-साहित्य में बढ़ रहा है। इसका अनुकरण वर्तमान चित्रपटों में भी किया जा रहा है। भारत में जो लोग इस प्रकार के प्रयोगों को अपनी मौलिकता समझते हैं उनके भ्रम को दूर करने में प्राचीन भाण-परम्परा समर्थ है, इसमें सन्देह नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID

# तृतीय अध्याय

## प्रहसन

"प्रहसन" इस शब्द से ही हास्य के भाव की सूचना मिलती है। हस् धातु में घञ् एवं ण्यत् प्रत्यय के योग से क्रमशः हास एवं हास्य पद बनते हैं। हास शब्द काव्य-शास्त्रीय भाषा में हास्य-रस का स्थायी भाव है जो एक सहज स्थिर प्रवृत्ति है।[1] इसका विभाव आचार, व्यवहार केश विन्यास, नाम तथा

---

१– अथ हास्यो नाम हास-स्थायिभावात्मकः। सच विकृतपरिवेषालंकार-धार्ष्ट्यलौल्य-कुहकासत्प्रलापव्यङ्ग्यदर्शन-दोषोदाहरणादिभिर्विभावैरुत्पद्यते।
......... द्विविधश्चायमात्मस्थः परस्थश्च। यदा स्वयं हसतितदाऽऽत्मस्थः।
यदा तु परं हासयति तदा परस्थः।

नाट्यशास्त्र. (गा. ओ. सी) अध्याय ६ पृ० ३१३.

तुलना कीजिये —

But laughter, a physiological phenomenon appears earlier in a definite and recognigable form and laughter is atleast closely connected with humour.

Stephen Leacock-Humour and Humanity Page. 19

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अर्थ आदि की विकृति है, जिसमें विकृत वेषालंकार, धार्ष्ट्य, चापल्य, कलह असत्प्रलाप, व्यंग-दर्शन , दोषोदाहरण आदि की गणना की गई है। ओष्ठदंशन नासा-कपोलस्पन्दन, दृष्टिसंकोचन, स्वेद, पार्श्वग्रहण आदि अनुभावों द्वारा इसके अभिनय का निर्देश किया गया है तथा व्यभिचारी भाव आलस्य, अवहित्य, (अपना भाव छिपाना) तन्द्रा, निद्रा, स्वप्न, प्रबोध, असूया (ईर्ष्या) आदि माने गए हैं। सामाजिक हृदय में संस्कार रूप से स्थित हास, स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर आस्वाद का विषय बन जाता है, तब उससे प्राप्त आनन्द "हास्यरस" कहलाता है।

जीवन को स्थिर रखने के लिये जैसे षड्रसमिश्रित भोजन अनिवार्य होता है, वैसे ही उसके जीवन की एकसारता अथवा नीरसता के निवारणार्थ हास्य की आवश्यकता होती है। द्विविध (दैहिक और भावात्मक) स्वाभाविक हास्य का जो मानवजीवन में महत्वपूर्ण योग होता है, वह कल्पनातीत है। दैहिक हास्य शरीर को गुदगुदाने में और भावात्मक अथवा साहित्यिक हास्य विचारविन्यास में प्रकट होता है। शारीरिक गुदगुदी से उत्पन्न हँसी की अपेक्षा मानसिक गुदगुदी का जिसकी शास्त्रीयसंज्ञा हास्यरस है, दर्जा अवश्य ऊँचा है। कारण, उसमें बुद्धि का योग होता है। इसका सम्बन्ध हास्यमय परिस्थिति के ज्ञान से होता है, जिससे एक अपूर्व भाव की सृष्टि होती है।

भारतीय रस-शास्त्र का प्राचीनतम इतिहास अग्निपुराण में उपलब्ध होता है। इस पुराण के अध्ययन से मालूम होगा कि आरम्भ में शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स, ये चार रस प्रधान थे जिनसे क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक–इन गौण भेदों की उत्पत्ति हुई। कालान्तर में गौण समझे जाने वाले ये चार रस प्रधान रसों के वर्ग में समा गए। साहित्य-शास्त्र के समीक्षात्मक-ग्रन्थों में रसों की संख्या पर पर्याप्त विवादमूलक विवरण प्राप्त होते हैं। उनकी आवृत्ति करने से यहाँ कोई विशेष लाभ नहीं। भरताचार्य के अनुसार मूलभूत रस आठ ही माने जाते हैं, जिनके नाम हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। काव्य में रस की स्थिति बड़ा महत्व रखती है।[१] उक्त आठ रसों में शृंगार को रसराजत्व प्राप्त है। काव्य

---

१– न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते। ना. शा. अध्याय ६, पृ० २७२.
वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। सा. द.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



से प्राप्त आनन्द का दूसरा नाम रस होता है।[१] अन्य रसों के आधारभूत अनुभव भी हो सकते हैं किन्तु हास्य का लौकिक और साहित्यिक अनुभव साक्षात् आनन्द ही होता है। मनोनुकूल अनुभव होने के कारण ही उसे शृंगार का सखा कहा गया है। भरत ने तो हास्य को शृंगार की अनुकृति कहा है।[२] नाट्य-शास्त्र के अनुसार यह चार उपरसों की कोटि में आता है। इसकी उत्पत्ति शृंगार से मानी गई है। हास्य से शृंगार में सम्पन्नता आती है और उसकी श्रीवृद्धि होती है। वह शृंगाररूपी आभरण का भी शृंगार है।

अधिक समय तक गंभीरवातावरण में रहने से मानव-चित्त स्वस्थ नहीं रह सकता। शरीर–विज्ञान में निष्णात चिकित्साशास्त्रियों तथा अनुभव-प्राप्त मनोवैज्ञानिकों ने भी नीरोग रहने के लिये प्रसन्नचित्त रहना आवश्यक बतलाया है। अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सा–शास्त्री वर्नार मैक्फैडन ने अपनी पुस्तक "वाइटैलिटी सुप्रीम" ( Vitality Supreme ) में हास्य को भी एक प्रकार की चिकित्सा माना है। काव्य–प्रकाश के परिशीलन से काव्य द्वारा मयूर कवि के कुष्ठ रोग से मुक्त होने की बात की तो पुष्टि होती ही है। हिन्दी के साहित्य–जगत् में भी तुलसी, पद्माकर जैसे कवियों के कविताकामिनी की सेवा के फलस्वरूप भीषण रोगों से छुटकारा पाने की चर्चा सुनने में आती है। इन सब बातों पर विचार करके देखने पर यह कहना ठीक ही लगता है कि साहित्यकार अपने युग के समाज का मनोवैज्ञानिक–चिकित्सक भी होता है। वह जब समाज में दुराचार और कुरीतियों की वृद्धि होते देखता है तब हास्य चिकित्सापद्धति को ही अपनाता है। जिस प्रकार "गुडजिह्विका न्याय" के अनुसार शहद–मिश्रित दवा खिलाकर रोगी को रोगमुक्त किया जाता है उसी प्रकार कुशल कवि हास्य के मधुर प्रयोग द्वारा अवगुण दूर करने में सफल होता

---

१– अक्षरं ब्रह्म परमं सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्॥
आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्कार रसाह्वया। अ. पुराण. ३३९। १,२

२– शृङ्गारानुकृतिर्यस्तु स हास्य इति संज्ञितः। ना. शा. ६, ४०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MDI



है। संस्कृत-नाट्य–साहित्य में प्रकरण, भाण एवं प्रहसन जैसे सामाजिक रूपकों की रचना समाज-कल्याण के उद्देश्य से ही होती थी।

संस्कृत–रूपकों में उपलब्ध हास्य के विभिन्न रूपों में एक रूप प्रासंगिक कथावस्तु के रूप में भी मिलता है। तदनुसार प्राचीन वृहन्नाटकों में नाटककार अपनी कल्पना-शक्ति से आधिकारिक कथावस्तु की आत्मा के अनुरूप हास्यात्मक प्रासंगिक कथावृत्त की सृष्टि करके उसे आधिकारिक कथानक के अन्तर्गत स्थान देते थे। इस प्रकार के दृश्य–प्रदर्शन का मुख्य लक्ष्य होता था आधिकारिक कथा–भाग के गांभीर्य को दूर करके उसके प्रति आदि से अन्त तक दर्शकों का आकर्षण बनाये रखना। यह कार्य विदूषक से भिन्न पात्रों द्वारा भी सम्पन्न हो सकता था। संस्कृत के अतुल भाण-भाण्डार की चर्चा करते समय यह कहा जा चुका है कि पहले 'प्रहसन" एवं "वीथी" नाटक की प्रस्तावना के अंग थे जिनका प्रयोजन था प्रेक्षकों का सामान्य मनोरंजन। कालान्तर में इन दोनों ने स्वतंत्र रूप ग्रहण कर लिया।

## रूप-निर्देश

पूर्ण नाटकों में प्रासंगिक कथावस्तु के रूप में हास्ययोजना के अति–रिक्त संस्कृत-साहित्य में स्वतंत्र रूप से हास्य-प्रधान एकांकी-लेखन की प्रणाली देखने में आती है। इस प्रकार का एकांकी रूपक "प्रहसन" कहलाता है जिसके नाट्य–शास्त्रकार भरत ने शुद्ध तथा संकीर्ण[1] ये दो भेद लक्षण–सहित बतलाये हैं। उनके मतानुसार शुद्धप्रहसन में पाखण्डी, सन्यासी, तपस्वी अथवा पुरोहित नायक की योजना होती है। इसमें चेट, चेटी, विट आदि निम्न–कोटि के पात्र[2] भी आते हैं। इसका बहुत कुछ प्रभाव वेश-भूषा और बोलने के ढंग से ही डाला जाता है। भाषा एवं कथानक को आद्योपान्त समानरूप से ढोंगी लोगों के यथार्थ-जीवन के अनुरूप नियोजित किया जाता है। इसके दूसरे

१– प्रहसनमपि विज्ञेयं द्विविधं शुद्धं तथा च संकीर्णम्। ना. शा. १८–पृ० ४४८.

२– ना. शा. १०३–१०६, अध्याय १८ पृ० ४४८–४४९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



भेद संकीर्ण प्रहसन में वेश्या, चेट, नपुंसक, विट, धूर्त, दुराचारिणी के अशिष्ट वेश, भाषा तथा चेष्टाओं का अभिनय प्रदर्शित होता है। इसमें हँसी, दिल्लगी की वहुत प्रधानता रहती है । नायक धूर्त होता है। प्रपञ्च, छल, अधिबल, नालिका, असत्प्रलाप, व्यवहार और मृदव आदि वीथ्यंगों का व्यवहार अधिकता से किया जाता है।

## विभिन्न-आचार्यों के मत

भरतमुनि के आधार पर धनंजय ने भी प्रहसन का यही लक्षण किया है और दशरूपक में भाण से मिलते जुलते इस रूपक के वैकृत एवं संकर नाम से दो भेद और बतलाकर आचार्य भरत के द्विविध प्रहसनों के स्थान पर इनके तीन[1] रूप कहे हैं। दशरूपककार के अतिरिक्त विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण में भाण[2] से साम्य रखने वाले इस प्रहसनात्मक एकांकी के तीन भेदों[3] के लक्षण लगभग एक से ही किये हैं। शारदातनय[4] और सर्वेश्वर के लक्षण–ग्रन्थों में भी त्रिविध प्रहसनों की चर्चा की गई है। भरत के समान नाट्यदर्पण[5] तथा सागरनन्दी[6] ने भी अपने रीति–ग्रन्थों में प्रहसन के दो ही रूप माने हैं। सागरनन्दी ने शुद्ध प्रहसन का उदाहरण शशिविलास प्रहसन को और संकीर्ण का भगवदज्जुकम् को वतलाया है । नाट्यशास्त्रकार के द्विविध प्रहसन और अन्य आचार्यों द्वारा प्रस्तुत इस रूपक-विशेष के त्रैविध्य पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता। आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पण से ज्ञात होता है कि इसके संकीर्ण रूप में ही विकृत प्रहसन

१– दशरूपक ५४–५५, तृतीय प्रकाश पृ० १६०.

२– सा. द. परि. ६. २६४–६५, पृ० २६२.

३– साहित्यदर्पण षष्ठ परिच्छेद, २६६, पृ० २६४.

४– भाणवत्स्यात्प्रहसनं तत्त्रिथाचपरिभिद्यते ।...शारदातनय ।

५– वैमुख्यकार्यं वीथ्यङ्गिख्यात-कौलीनदम्भवत् ।
हास्यांगि-भाण संध्यङ्कः वृत्तिःप्रहसनं द्विधा ॥ ना. द. २३, पृ० २३०.

६– तद्द्विविधं शुद्धं संकीर्णंच । आद्यं परिव्राट्तापसद्विजैरयैरपिहास्य-कुशलैराब्धम् । संकीर्णं वेश्याविटनपुंसकादिभूषितं प्रथमं शशिविलासादि द्वितीयं भगवदज्जुकादि । अस्य च द्वावङ्की भवतः । मुखनिर्वहण-संधी च –सागरनंदी.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



के अर्थ के प्रच्छन्न होने के कारण भरतमुनि ने इसकी पृथक् चर्चा[1] नहीं की।

शारदातनय[2] ने भावप्रकाश में प्रहसन की अंक-संख्या तथा संधियों का उल्लेख करते हुए इस एकांकी का विशदविवेचन किया है। उनके अनुसार इसमें एक ही अंक होता है और मुख एवं निर्वहण संधियाँ होती हैं। उन्होंने सागरकौमुदी को शुद्ध प्रहसन तथा सैरन्ध्रिका ( सौभद्रिक ) को संकीर्ण एवं शशिकला को विकृत प्रहसन के दृष्टान्त-स्वरूप प्रस्तुत किया है। दर्पणकार के अनुसार " कन्दर्पकेलि " शुद्ध और ' धूर्तचरित " संकीर्ण प्रहसन के उदाहरण हैं।

उक्त प्राच्य एवं नव्य मतों का समाहार करते हुए प्रहसन का लक्षण इन शब्दों में अंकित किया जा सकता है:—

(१) प्रहसन भाण से मिलता-जुलता हास्य-प्रधान एकांकी होता है।

(२) इसके विषय में प्राचीन एवं अर्वाचीन नाट्यसमीक्षकों में विशेष मतभेद लक्षित नहीं होता।

(३) प्रहसन के रूपविभाजन एवं इसकी अंक-संख्या के निर्धारण के प्रश्न पर भी उनमें मतैक्य है। सामान्यतया इसमें एक अंक की ही योजना की गई है।

(४) इसमें संकीर्ण रूप में दो अंकों की सत्ता अथवा एक अंक को दो दृश्यों में विभक्त करने की चर्चा साहित्यशास्त्रों में अवश्य उपलब्ध होती है।

---

१– मुनिस्त्वाह —
इदं तु संकीर्णेनैवगतार्थमिति मुनिना पृथङ्नोक्तम्। सा: द. ६. २६८ पृ० २६४.

२– सैरंध्रिका स्यात्संकीर्णा शुद्धा सागरकौमुदी
कलिकेलि प्रहसनं यत्तद्वैकृतिमीरितम्॥ भा. प्र. अष्टम अधिकार पृ० २४७.

टिप्पणी —

भावप्रकाश में कहीं-कहीं सैरंध्रिका के स्थान पर सौभद्रिकं और कलिकेलिप्रहसन के बदले शशिकला का पाठ भी मिलता है। इसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि सौभद्रिक 'सैरंध्रिका का' और शशिकला 'कलिकेलि' का नामान्तर होना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



इस प्रेक्ष्य काव्य के नाम से ही इसमें हास्य की प्रधानता सूचित होती है, फिर चाहे वह प्रहसन आंग्ल-भाषा में निबद्ध हो या विश्व के और किसी साहित्य में।

भरताचार्य[1] तथा प्राचीन नाट्यकला-कोविदों का अनुसरण करते हुए पंडितराज जगन्नाथ ने भी रस-गंगाधर में हास्य पर अपने विचार विस्तार से व्यक्त किये हैं। तद्नुसार, हास्यरस दो प्रकार का होता है—पहला आत्मस्थ और दूसरा परस्थ [2]। जो हास्य विभाव (हास्य के विषय) के दर्शनमात्र से उत्पन्न हो जाता है वह आत्मस्थ और जो दूसरों को हँसता हुआ देखने से फूट पड़ता है तथा जिसका विभाव भी हास्य ही होता है अर्थात् जो दूसरों के हँसने के कारण ही होता है, उसे रस के पारखी परस्थ हास्य कहते हैं। यह उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार के व्यक्तियों में उत्पन्न होता है, अतः इसकी तीन अवस्थाएँ होती हैं एवं उसके और भी छः भेद होते हैं यथा — उत्तम पुरुष में स्मित और हसित, तथा मध्यम पुरुष में विहसित और उपहसित एवं नीच पुरुष में अपहसित तथा अतिहसित होते हैं।

भावप्रकाश से स्पष्ट है कि इनका सर्वाधिक प्रयोग प्रहसनों में ही करने का अवसर मिलता है —"हास्यस्तु भूयसा कार्यः षट्प्रकारैस्ततस्ततः। इसके अतिरिक्त अन्य साहित्य-मीमांसकों ने भी इस रस-विशेष के भेदोपभेदों का निरूपण किया है।[3]

---

१– ना. शा.-गो. ओ. सी. संस्करण, अध्याय ६. ५१–५३, पृ० ३१४–१५.

२– आत्मस्थः परसंस्थश्चेत्यस्य भेदद्वयं-मतम्।
आत्मस्थो-द्रष्टुरुत्पन्नो विभावक्षेपमात्रतः॥
० ० ० ० ० ० ०
स्मितं च हसितं प्रोक्तमुत्तमेपुरुषे बुधैः।
भवेद्विहसितं चोपहसितं मध्यमे नरे॥ रसगंगाधर.

३– स्मितं च हसितं चैव विहसितं-चापहसितम्।
भवेत्प्रहसितं चाऽतिहसितं भवेत्।
षड्भावसंश्रितं हास्यमेवं षड्विधमुच्यते॥ जगद्धरः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इन प्रसंगों से इतना स्पष्ट है कि भारतीय रसिक-समुदाय शिष्ट एवं अशिष्ट हास्य के पार्थक्य से भली प्रकार परिचित था। हास्य-साहित्य के प्रणयनकाल में जरा-सी असावधानी से कोई सुन्दर काव्य-कृति अश्लीलता का रूप धारण कर लेती है। इस सूक्ष्म रहस्य को भी भारतीय साहित्याचार्य समझते थे। हास्य-प्रधान कृतियों में प्रयोक्तव्य पात्रों का वर्ग भी निश्चित था, जिसका संकलन जगद्धर ने अपनी रचना में किया है। यथा —

" स्त्रीनीचबालमूर्खादि-विषयो हास्य इष्यते ।
प्रहासश्चातिहासश्च धीराणां नैव दृश्यते ।।

रसों की मीमांसा के प्रसंग में भरतमुनि शृंगार से हास्य की सृष्टि मानते हैं।[1] शारदातनय के अनुसार हास्य चित्त का विकास है जो प्रीति का विशेष रूप है।[2] वह रजोगुण के अभाव और सत्वगुण के आविर्भाव से हास्य की सम्भावना घोषित करते हैं।[3] निस्संदेह, प्रिय-चित्तानुरञ्जक होने के कारण हास्य का शृंगार से निकटतम सम्बन्ध है। किन्तु इसका क्षेत्र संकुचित नहीं है। इसके विस्तृत सीमा-क्षेत्र को देख कर इसे केवल शृंगार में ही सीमित करना उचित नहीं। हास्य के विभागों के मूल में अनौचित्य ही एक कारण है और यह प्रायः सब रसों के विभाव, अनुभाव आदि में हो सकता है। अनौचित्यमूलक रसपरिपोषण से सर्वत्र हास्य उत्पन्न हो सकता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में इस तथ्य की ओर संकेत किया है।[4] उन्होंने सब रसों के आभास ( रसाभास ) से हास्य की उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार करुण, वीभत्स आदि रसों से भी विशेषपरि-स्थिति में हास्य की सृष्टि हो सकती है —

---

१- शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ॥ ना. शा. अध्याय ६, ३९ पृ० २९५.

२- प्रीतिर्विशेषः चित्तस्य विकासो हास्य उच्यते । भावप्रकाश.

३- ... ... स शृङ्गार इतीरितः
तस्मादेव रजोहीनत्वाद् हास्य-सम्भवः । भावप्रकाश.

४- अनौचित्यप्रवृत्तिकृतमेव हि हास्य-विभावत्वम् । ... ... ...
... ... ... सर्वपुरुषार्थेषु व्युत्पाद्यः । ना. शा. अध्याय ६, पृ० २९६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



" तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्वं सर्वेषु मन्तव्यम् । "

भरत ने कहा है कि दूसरों की चेष्टाओं के अनुकरण[1] से " हास " उत्पन्न होता है जो स्मित, हास एवं अतिहसित के द्वारा अभिव्यक्त होता है। भरत के त्रिविध हास को हास्य के स्थायी-भाव 'हास' से भिन्न समझना चाहिये। नाट्य को ही दूसरे शब्दों में अनुकरण कहते हैं और हँसी की जड़ है अनुकरण। भरत के इस कथन से हास्यप्रधान अभिनेय काव्य से नाटकों के प्रारम्भ होने की बात भी पुष्ट होती है। हास्य-युक्त अनुकृति अभिनय द्वारा अनुकार्य और अनुकर्त्ता की एकता प्रदर्शित करने से पूर्ण होती है तथा सुखात्मक होने के कारण लोकप्रिय भी। हमारे आचार्यों ने चार प्रकार के अभिनय बतलाये हैं—आंगिक, वाचिक, आहार्य ( वेश-भूषा धारण करके ) और सात्विक (सात्विक भावों का प्रदर्शन करने वाला)। हास्य इस चतुर्विध अभिनय में आश्रित है।[2] आंगिक अभिनय नकल के सिद्धांतों पर ही अवलम्बित है। वाचिक के अन्तर्गत वाग्वैदग्ध्य इत्यादि, तथा आहार्य में रहन-सहन की असम्बद्धता सम्मिलित है। अपकर्ष तथा विपर्यय द्वारा हास्य का उद्रेक किया जाता है। अनुकरण के द्वारा लौकिक वस्तु भी अलौकिक बन जाती है। वह साधारण लोक की परिधि से निकल कर कला का रूप धारण कर लेती है। इस नकल के कारण दोष भी आकर्षक बन जाता है।

विट-विदूषकादि अपनी हँसने-हँसाने की कला में दक्ष होते थे और जनता का मन बहलाने के साथ-साथ वेशवनिताओं को कामतन्त्र कला की शिक्षा भी दे सकते थे। विदूषक की लाल आँखों तथा लम्बे दाँतों आदि के द्वारा हँसी के मूल में प्रसिद्ध पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक हाब्स का सिद्धांत है—

" The passion of laughter is nothing else but sudden glory arising from sudden conception of

---

१– परचेष्टानुकरणाद्धासः समुपजायते।
स्मितहासातिहसितैरभिनेयः स पण्डितैः ॥ ना. शा. ७, १० पृष्ठ ३५१

२– भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः ।
आंगिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्विकस्तथा ॥ स. द. ६, २, पृष्ठ २७२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



some eminency in ourselves by comparing with the infirmity of other or with our own formerly.... ..."

भारतीय आचार्यों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने भी हास्य के तत्त्वों की विशद व्याख्या की है और उसके सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त निश्चित किये हैं। सत्रहवीं शताब्दी में "हास" के अनायास उत्कर्ष का विशेष महत्व रहा है। शरीर-विज्ञानवेत्ता अतिशय शक्ति के उद्रेक को ही हास का कारण मानते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के विख्यात मनोवैज्ञानिक स्पेन्सर ने असंगति के निरीक्षण को ही हास का कारण बतलाया है। इसका एक कारण विपर्यय भी माना जाता रहा है। इसमें परिस्थितियाँ विपरीत होती हैं। बच्चों को अपने वृद्ध गुरुजनों को पढ़ाते देख अनायास ही हँसी आ जाती है।

विकासवादियों का मत इससे कुछ भिन्न है। वे हास्य को हर्ष का व्यक्त रूप बतलाते हैं। आधुनिक फ्रांसीसी दार्शनिक बर्गसन का हास्य सिद्धान्त " आवृत्ति और विपर्यय " पर आधारित है। ये हास्य नामक मानवीय प्रवृत्ति की गति सम्पूर्ण जीवन में मानते हैं। अतएव जीवन के विकास के साथ ही हास्य के क्षेत्र में भी विकास हुआ है। इस प्रकार हास्य की उत्पत्ति के मूल कारण के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद उपलब्ध होता है। प्राचीन भारतीयों ने उसे राग से उत्पन्न माना है तो फ्रायड आदि आधुनिक पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों ने उसे द्वेष-भावना से निष्पन्न।

आंग्ल साहित्य में प्रहसनों का मूल विषय मनुष्य की मानवी भावनाएँ हैं। लोभ, गर्व, अहं-भावना, प्रतिहिंसा आदि को लेकर उत्तम प्रहसनों की रचना हुई है। अंग्रेजी नाट्यकार प्रायः सौन्दर्य, ज्ञान और धन का गर्व, मानसिक कुरूपता, असंगति, अनैतिकता, मूर्खतापूर्ण कार्य, मद्यपान, विदूषक आदि विषयों को प्रहसन के लिए उपयुक्त समझते हैं। गुण एवं उद्देश्य तथा उपकरण के अनुसार हास (Comic) के चार भेद माने गये हैं।–(१) शुद्ध-हास, (२) भ्रान्त-हास, (३) उपहास और (४) वाग्वैदग्ध्य। नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से अंग्रेजी-नाट्य-जगत् में चतुर्विध प्रहसनों का उल्लेख मिलता है–(१) परिस्थिति-प्रधान, (२) चरित्र प्रधान, (३) कथोपकथन प्रधान और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



(४) विदूषक प्रधान। चाहे जिस किसी दृष्टि से हास्य पर विचार किया जाय या हास्य-प्रधान रूपकों का विभाजन किया जाय, हम हास्य वृत्ति को असंगति से पुष्ट होता देखते हैं। यह वृत्ति आनन्द, आवेग, मात्सर्य, चापल्य आदि भावनाओं से पूर्ण रहती है। स्पेन्सर के अनुसार शरीर व्यापार में ज्ञान तन्तुओं की उत्साह शक्ति उच्छ्वसित हो उठती है। वह हास्य होता है।

"Laughter is merely an overflow of superfluous nervous energy."

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार हास्य के ये चार रूप होते हैं :—
(१) हास्य (Humour) (२) वाक्चातुरी (Wit) (३) व्यंग्य (Irony) (४) वक्रोक्ति (Satire)।

प्रहसन-साहित्य में हास्य के इन रूपों के दर्शन होते हैं। भारतीय साहित्याचार्यों के अनुसार प्रहसनकार को अपनी हास्य-प्रधान कृतियों में उपर्युल्लिखित छः प्रकार के हास्य हसित, उपहसित आदि का यथास्थान उपयोग करना चाहिये। साहित्य-शास्त्र में हास्य-विषयक विवेचन नर्म-वृत्ति के अन्तर्गत किया गया है। प्रपञ्च, वाक्केलि, नालिका आदि नामकरण करके उनके भेदोप-भेद की कल्पना और विवेचना की गई है। शब्दवैदग्ध्य मुख्यतः यमक, श्लेष आदि पर आश्रित रहता है। इस प्रकार साहित्यिक हास्य विचार-विन्यास में प्रकट होता है।

हास्य सर्वव्यापी होता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने भी इसकी व्यापकता पर नाट्यशास्त्र की टीका में यथास्थान प्रकाश डाला है। विश्व की विभिन्न भाषाओं (अंग्रेजी, फ्रांसीसी, संस्कृत, हिन्दी आदि) के व्यंग्य-विनोद साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से प्रत्यक्ष हो जाता है कि संसार के प्रहसन-लेखकों की विचार पद्धति में साम्य है। विश्व के समस्त साहित्य में विपरीतता, असंगति एवं असम्बद्धता ही हास्य का कारण मानी गई है। कलाकार को स्थान और काल की सीमाओं में बाँध कर नहीं रक्खा जा सकता। वह विपरीतता आदि से हास्य की सृष्टि करके जीवन को उदार आनन्द प्रदान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



करने की चेष्टा करता है ।[१] इस प्रसंग में अभिनवगुप्त द्वारा प्रस्तुत किये गये "अनौचित्य" [२] पद का स्मरण हो आता है। क्षेमेन्द्र और भरत भी सर्वत्र औचित्य के अभाव को हास्यास्पद बतलाते हैं। "विकृताकृति वाग्वि-शेषैरात्मनोऽथपरस्य वा" भरत के हास्योत्पत्ति विषयक इस कथन में पाश्चात्य एवं परवर्ती भारतीय आचार्यों के सब मतों का समावेश हो जाता है।

बहुत से विद्वानों के हास्य को व्यर्थ समझकर इसे धिक्कारने के उपरान्त भी मनोरञ्जन के साथ-साथ समाज में प्रचलित विकृतियों को दूर करने के लिए विश्व-साहित्य में प्रहसनों की रचना होती रही है। ऐसी कृतियों के आलम्बन के रूप में प्रायः असंगतियुक्त सामाजिक कुरीतियाँ ही उपलब्ध होती हैं। अन्तर केवल हर देश की समस्याओं में होता है, जिनका प्रभाव वहाँ के साहित्य पर पड़े बिना नहीं रहता। उदाहरणार्थ—हिन्दी प्रहसनों में घरेलू समस्याएँ अधिक मिलेंगी तो अंग्रेजी–नाट्य में सामाजिक। संस्कृत साहित्य राजाश्रय में पनपा जबकि सामाजिक स्थिति आज की अपेक्षा कहीं अधिक शान्त थी, इसलिए इसके प्रहसनों में हास्य-मिश्रित शृंगार का चित्र ही मिलता है।

असंगति, विपरीतता, अनौचित्य एवं असम्बद्धता से उत्पन्न होने के कारण यह नहीं समझना चाहिये कि हास्य सदा अश्लील वर्णन करता है अथवा प्रकृति के विपरीत बातें बतलाकर समाज का अहित करना चाहता है। वस्तुतः हास्य के आलम्बन में निहित विषमताएँ, विकृतियाँ एवं असंगतियाँ अनिष्टकारी नहीं होतीं। हास्य के देवता शिव के प्रथम गण माने जाते हैं और उनका वर्ण सित समझा जाता है[३]। जिस प्रकार शिव के भक्त-गण

---

१– Humour may be defined as the kindly contemplation of incongruities of life and artistic expression thereof...... Humour and Humanity. Stephen Leacock, Page 11.

२– अनौचित्य-प्रवृत्तिकृतमेव हि हास्यविभावत्वम् ।...
ना. शा. अध्याय ६, पृष्ठ २९६.

३– ना. शा. अध्याय ६, ४२-४४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



कवि जैसे कई अनुसंधानकर्त्ता वीणावासवदत्ता, दामकप्रहसन तथा चाण्डाल–रामायण को भी भास कवि के ही रूपक प्रमाणित करते हैं। म. म. वी. वेंकटरामशास्त्री विद्याभूषण द्वारा सम्पादित दो–तीन पृष्ठों की दामक प्रहसन नामक लघुरचना के लेखक के समय एवं नाम का सम्यक् परिचय अभी तक जनता को नहीं हो पाया है क्योंकि भास के अन्य नाटकों की भाँति इस छोटे से प्रहसन में भी कवि के निवास–स्थान तथा जीवनकाल का उल्लेख अप्राप्त है। इसके अतिरिक्त इसमें भी बोधायन कवि के भगवदज्जुक प्रहसन, महेन्द्रविक्रम के मत्तविलास तथा कल्याणसौगन्धिक ( व्यायोग ) की तरह भास के नाटकों की विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं, यथा –नान्दीपाठ के पहले ही 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इस वाक्य का तथा 'प्रस्तावना' के स्थान पर स्थापना का प्रयोग आदि।

इस लघु प्रहसन का सूत्रधार एवं नटी के हास्यमय वार्तालाप तथा अंगराज कर्ण के दामक नामक सखा के मधुर हाससिक्त स्वगत-भाषण के साथ आरम्भ होता है।

( नेपथ्याभिमुखमवलोक्य )
आर्य इतस्तावत्। ( प्रविश्य )
नटी–आर्य इयमस्मि, त्वयासहोद्यानवनं गन्तुकामा। कः कालस्त्वा–
मन्विष्य।
नन्विदानीमार्येण प्रक्रीडितुमिच्छामि।.........
सूत्रधारः–आर्ये तिष्ठतु तावदुद्यानगमनचिन्ता। इदानीं ब्रह्मदत्त–
नगरेऽस्मिन् काम्पिल्ये महाराज–सदसि मिलितेयं परिषद-
भिनवेन प्रयोगेणाराधनीयास्माभिः। तन्मया स्वेषु कार्येष्व-
संमूढ़ाः शैलूषा उदारनेपथ्यभृतः सज्जीकृताः।
नटी–अस्ति काम्पिल्यं नाम नगरम्। राजा च ब्रह्मदत्तो नाम।
सूत्रधारः–तदेवाभिप्रेतं मयापि, तव दर्शनात् कुतूहलेनास्मि संभ्रान्तः।

रावण के समान ऐश्वर्यशाली होते हुए भी वीरकर्ण त्रिलोकविजयी बनने की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित हो शास्त्रों की शिक्षा–ग्रहण करने के लिए परशुराम मुनि के आश्रम में पहुँचता है। इसकी सूचना उक्त प्रारम्भिक विव–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



रण द्वारा दर्शकों को दे दी जाती है। भगवान् परशुराम ब्राह्मणों को ही शिक्षा देते हैं, ऐसा जान कर्ण झूठ बोल कर गुरु से वह विद्या ग्रहण कर लेता है। एक बार उसकी असीम सहन शक्ति को देख कर गुरु कर्ण के क्षत्रियत्व को पहचान लेते हैं और समय पर छल से ली गई उसकी विद्या के व्यर्थ हो जाने का उसे शाप देते हैं। इस प्रसंग में थोड़ी करुणा भी प्रवाहित होने लगती है। इसके लघुतम रूप, हास्य के थोड़े तत्त्वों को देख कर तथा दामक के वक्तव्य को अन्य नाटकों के विदूषक की छाया मान कर डॉ० डे. इसे किसी की स्वतन्त्र रचना नहीं मानते। उनके अनुसार बड़े नाटकों के गांभीर्य को दूर करने के उद्देश्य से किसी के द्वारा यह दृश्य–खण्ड लिया गया होना चाहिये। परन्तु इसमें नान्दीपाठ, स्थापना और इसके अन्त में भरत वाक्य आदि की विधिवत् उपस्थिति को देखते हुए इसे केवल दृश्य खण्ड[1] कहना भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। यह एकांकी उत्तमकोटि का तो नहीं, मध्यम वर्ग का ही है तथा किसी का यह नाटक लिखने का प्रथम प्रयास हो, ऐसा प्रतीत होता है। कोई आश्चर्य नहीं कि यह भास की ही कृति हो। कारण, इसकी भाषा, इसमें प्रयुक्त लोकोक्तियाँ एवं सूक्तियाँ, इसकी वर्णनशैली आदि को देख कर भास, कालिदास आदि प्राचीन कवियों की कृतियों की याद आ जाती है। विशेषकर भास के कर्णभार और पञ्चरात्र में कर्ण की कथा के प्रति कवि का विशेष अनुराग स्पष्ट झलकता है। दामक प्रहसन में भी कवि ने दानवीर

---

१– We can not dismiss the Damak-Prahasana of unknown date and authorship, the main incident of which covers about three Printed Pages, as no one can seriously call the fragment a Prahasana or even a noteworthy work in any respect. The Damaka incident is one obvious unitation of usual Vidusaka episode of a normal drama while the two added pieces of a few lines are fragmentary and unconnected and have a no comic element in it. The slight work looks like a selection of scenes or half scenes containing verses called from well known works and compiled for some kind of diversion.

S. K. De, History of Sanskrit Literature Page 496.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



कर्ण की कथा का ही सहारा लिया है। इतना ही नहीं इसमें कर्णभार के वाक्य भी मिलते हैं।

प्रथमः – सखे दुर्मुख ! अपि ज्ञातम् ?

दुर्मुखः –किमिति किमिति ।

दुर्बुद्धिः– अस्माकं महाराजोऽङ्गराजः फलमूल–समित्कुशकुसुमाहरणाय गतवता गुरुणा जामदग्न्येनानुगतः । ततः स गुरु–वनपरिभ्रमण-परिश्रमात् महराजस्याङ्के निद्रामुपगतः ।

दुर्मुखः– ततस्ततः ।

दुर्बुद्धिः– ततश्च

क्षतो वज्रमुखेन नामकृमिणा दैवात्तदूरूद्वये ।
निद्राच्छेदभयादसह्यत गुरोर्वैर्यात्तदा वेदना ।
उत्थाय क्षतजानुतः स सहसा रोषानलोद्दीपितः
बुद्धवा तं च शशाप कालविफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति ।।
अहो कष्टमभिहितं तत्र भवता । गच्छावः[1]

तुलना कीजिये–

को भवान् किमर्थमिहागत इति[2]–( ततः प्रविशति परशुरामः )

कर्णः – भगवन् वन्दे ।

परशुराम – को भवान् ? किमर्थमिहागतः ?

कर्णः – अखिलानि अस्त्राण्युपशिक्षितुमिच्छामि ।

परशुरामः – ब्राह्मणेषूपदेशं करिष्यामि, न क्षत्रियाणाम् ।

कर्णः – नाहं क्षत्रियः ।

परशुरामः – तर्हि उपदिशामि ।[3]

कर्णः – ततः भगवन् अखिलान्यस्त्राण्युपशिक्षितुमिच्छामीत्युक्तवानस्मि ।

... ... ... ... ...

कर्णः – ततः उक्तोऽहं भगवता ब्राह्मणेषूपदेशं करिष्यामि न क्षत्रि–याणामिति ।[4]

शल्यः – अस्ति खलु भगवतः क्षत्रिय–वैश्यैः पूर्ववैरम् । ततस्ततः ।

---

१– दामक प्रहसन

२– कर्णभार-पृष्ठ ९.

३– दामक प्रहसन

४– कर्णभार- १०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



कर्णः – ततोनाहं क्षत्रिय इत्यस्त्रोपदेशं ग्रहीतुमारब्धं मया ।...ततः कतिपयकालातिक्रमे कदापि, समित्कुशकुसुमाहरणाय गतवता गुरूणा सहानुगतोऽस्मि ।

शल्यः – ततस्ततः ।

कर्णः – ततः स गुरुर्वनभ्रमणपरिश्रमान्मदङ्के निद्रावशमुपगतः ।

शल्यः – ततस्ततः ।

कर्णः – ततः —

कृत्तो बघ्रमुखेन नामक्रमिणा दैवात्तदूरुद्वये
निद्राच्छेदभयादसह्यत गुरोर्धैर्यात्तदा वेदना ।
... ... ...[1]

यह ठीक है कि दूतवाक्य, मध्यम व्यायोग आदि भासनाटक–चक्र में परिगणित नाटकों के समान काव्य–सौदर्न्य इसमें नहीं निखर पाया है नाट–कीय संविधान की दृष्टि से भी यह उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं है तथापि इसे भास की रचना मानने में कोई आपत्तिजनक बात प्रतीत नहीं होती । कोई भी कलाकार आरम्भ में ही किसी कला के क्षेत्र में नैपुण्य-लाभ नहीं कर लेता । अतः भास-नाटकचक्र के नाटकों की विशेषताओं से युक्त दामक-प्रहसन दूतवाक्यकार भास की प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है । यह पञ्चरात्र, कर्ण–भार आदि रचने से पूर्व की रचना मालूम होती है । ऐसा लगता है, कवि के मन में कर्ण के चरित्र को चित्रित करने की इच्छा लम्बी अवधि से रही होगी जो इस रूपक में धुंवली सी दिखाई देती है । आगे जाकर वही परिष्कृत एवं विकसित होकर कर्णभार एवं पञ्चरात्र में चमकी और पनपी है ।

प्रसंगवश कवि ने इसमें प्राचीन भारतीय गुरुकुल तथा आश्रमवासियों का तपोमय जीवन चित्रित किया है, जिस पर भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' की छाया स्पष्ट लक्षित होती है । भारत की तत्कालीन संस्कृति की यह अद्भुत झाँकी है । इसकी कतिपय पंक्तियाँ कालिदास की पंक्तियों से मिलती जुलती हैं ।

(परिक्रम्याश्रममवलोक्य)

भोः सर्वजनसाधारणमाश्रपदं नाम ।

---

१– कर्णभार-१० पृष्ठ ११.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



सन्तुष्टतपस्विजनोयमाश्रमाभोगः। अत्र खलु चीरवल्कलवसनाः
चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्गाः कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानाः
आश्रमवासिनः संयमिनः समित्कुशकुसुमादीनिस्वैरं वनादुपनयन्ति।
इह केचित्सलिलमवगाढा मुनिजनाः। अत्र हि प्रदीप्तोग्निर्भाति।
वैश्यदेवसंभूतश्च धूमो प्रविचरति मुनिवनम्।[१]

तुलना कीजिये –

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावृत्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥[२]

इसका नान्दी-श्लोक कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है।

सुवर्णपुष्पीं ब्रह्माणी ब्रह्माणं च कुशध्वजम्।
सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वांश्च तापसान्॥[३]

महेन्द्रविक्रमन् के मत्तविलास में भी इसके वाक्य मिलते हैं।

आ एष दुष्टकुक्कुरः अस्मादाश्रमभोगात् वल्कलं गृहीत्वा धावति।
दास्याः पुत्र! कुत्र गमिष्यसि। तव दन्तानहं भङ्क्ष्यामि।
रैभ्यसगोत्रो ब्रह्मबन्धुरहं यस्य कस्य भागिनेयः भीमसेनस्य घटोत्कच इव।[४]

तुलना कीजिये —एशे एशे दुट्ठ कुक्कले[५]

इस प्रकार दामक-प्रहसन एक प्राचीन कृति मालूम पड़ती है और श्री रामकृष्ण कवि ने भी इसे भास का चौदहवाँ नाट्य-ग्रन्थ माना है। इसे भास की रचना मान कर ही प्राचीनतम रूपक होने के कारण यहाँ इसकी सर्वप्रथम चर्चा की गई है। काव्य कला की दृष्टि से यद्यपि यह कोई अपूर्व रचना नहीं है तथापि प्राचीन प्रहसनों की प्रतिनिधि होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व है।

---

१– दामक प्रहसन
२– स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क १-१६ पृष्ठ ८७.
३– अर्थशास्त्रम् औपनिषदकं चतुर्दशमधिकरणम्. पृष्ठ २३२.
४– दामक प्रहसन पृ० १.
५– मत्तविलास प्रहसन (विद्याभवन ग्रन्थमाला –१३५) पृ० ३२-३३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अब तक के विवरण से स्पष्ट है कि संस्कृत नाट्य-वाङ्मय में प्रहसन-साहित्य का एक विशिष्ट स्थान है जिसमें समाज में रहने वाले ढोंगियों के मतों की खिल्ली उड़ाई गई है। उनके आक्षेपजनक सिद्धान्तों की बुराइयों की ओर जिनसे जनता में अनाचार फैलने की आशंका है, बड़े हृदय-स्पर्शी वाक्यों में संकेत किया गया है। इन प्रहसनों से तत्कालीन समाज तथा धर्म की स्थिति का ज्ञान होता है।

## मत्तविलास

ऐसे उपयोगी प्रहसनों में 'मत्तविलास प्रहसन' का नाम मुख्य है। इसके लेखक कांची के पल्लव-वंशीय सिंहविष्णु वर्मा के पुत्र महेन्द्रविक्रम वर्मा थे, जिनका समय सप्तमशतक का प्रथमार्ध माना जाता है। इनका संक्षिप्त नाम महेन्द्र प्रतीत होता है। इनके प्रहसन को पढ़ने से ज्ञात होता है कि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के कारण इन्हें शत्रुमल्ल और सकल गुणों की खान होने के कारण गुणभर एवं अवनि-भाजन आदि उपनामों से विभूषित किया गया था। त्रिचिनापल्ली की गुफाओं के दो शिलालेखों में भी लिखा मिलता है कि ये पल्लव-वंशीय राजा थे और उनकी एक उपाधि शत्रुमल्ल भी थी। स्थापनास्थित नान्दी-वाक्यावली से उनके मत्तविलास और गुणभर उपाधिधारी होने का बोध भी होता है।

महेन्द्र-विक्रमन् के मत्त-विलास प्रहसन में कापालिक शाक्यभिक्षु तथा पाशुपत का परस्पर संघर्ष बड़ी संयत-भाषा में दिखलाया गया है। इसकी कथा इस प्रकार है —

> मधुपान के कारण नशे में चूर किसी युवती और कापालिक के हाथ से एक कुत्ता उनका कपाल-भाजन छीनकर भाग गया। किसी दूसरे शाक्यभिक्षु के हाथ में उसी प्रकार का कपालपात्र देख कर वह मदमत्त युगल उसे चोर समझ कर उससे झगड़ पड़ता है। उनके साथ का विवाद और विवाद के निर्णयार्थ उनका पशुपति के आश्रम में जाना आदि बातें इस प्रहसन में बड़े सुन्दर ढंग से वर्णित हैं। इसकी कथावस्तु हास्य रस के अनुरूप ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



इस प्रहसन में कापालिक, पाशुपत, शाक्य भिक्षु, उन्मत्तक आदि अनेक दाम्भिकों की परिहास-केलि हास्यरस के परिपोषण में वर्णित है।

## मत्त-विलास में चरित्र-चित्रण

सदा कपाल ( खप्पर ) धारण किये रहने के कारण इसके प्रमुख पात्र का नाम कापालिक है। इसकी पत्नी का नाम देवसोमा है। कपाल के खो जाने पर वह उससे खेद के साथ पूछ उठता है —"केनाहमिदानीं कपाली भविष्यामि ? सुरापान के आदी कापालिक के लिए सुरा और स्त्री-समागम मानों मोक्ष का खुला द्वार है। उसके धार्मिक सम्प्रदाय के आद्य मार्गदर्शक भोलेनाथ शङ्कर ही हैं। इसीलिए वह भगवान् शिव की जयजयकार करता है— " दीर्घायुस्तु भगवान् स पिनाकपाणिः। " इसी सन्दर्भ में वह दुःखहेतुक मोक्ष का स्वरूप बतलाने वाले जिन-भगवान् को मिथ्यादृष्टि तथा " वराक " आदि शब्दों से सम्बोधित करता हुआ जिनदेव के अनुयायियों का उपहास भी करता है—

कार्यस्य निःसंशयमात्महेतोः  
सरूपतां हेतुभिरभ्युपेत्य।  
दुःखस्य कार्यं सुखमामनन्तः  
स्वेनैव वाक्येन हता वराकाः ॥[1]

कापालिक इनका नाम लेने के कारण अपवित्र हुई जिह्वा का प्रक्षालन सुरा द्वारा करने की इच्छा प्रकट करके जैनी तीर्थङ्करों की आचार-पद्धति पर भी आक्षेप करता जाता है।

वह परमशत्रु शाक्यभिक्षु द्वारा अपहृत कपाल के अभाव में भी अपना मानसिक संतुलन खो नहीं बैठता। अपनी प्रियतमा देवसोमा के कहने से विवाद को शक्त बनाने के लिए मदिरापान करते समय शाक्यभिक्षु की उपेक्षा नहीं करता। " शेषमाचार्याय प्रदीयताम् " इन शब्दों से उसकी शालीनता प्रकट होती है। खप्पर को एक पागल के पास से पुनः प्राप्त करके हर्षोन्मत्त

१– मत्तविलास, ८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



होकर भी पाशुपत के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना नहीं भूलता । इसका सारा श्रेय वह उन्हें ही दे देता है । उनका आदेश और सत्परामर्श पाकर अपने विरोधी के सामने अपराध स्वीकार कर लेता है । इस प्रकार इस प्रहसन के नेता कापालिक के जीवन-चरित्र में तद्युगीन सामाजिक तथा धार्मिक कटुता के साथ ही साथ सुव्यवस्थित शालीनता की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है ।

## पाशुपत

मत्तविलास प्रहसन के तृतीय दृश्य में कापालिक और बौद्धसन्यासी शाक्यभिक्षु के उग्र विवाद के समय निर्णायक के रूप में पाशुपत के दर्शन होते हैं । कापालिक तथा शाक्य-भिक्षु का सम्पूर्ण विवरण तत्परता-सहित सुनने के उपरान्त वह न्यायालय में जाकर दोनों का झगड़ा शान्त कराने का यत्न करते हैं । न्यायालय तक जाने से पहले ही एक पागल कापालिक को कपाल दे जाता है और इस प्रकार कलह के अनायास ही समाप्त हो जाने पर पाशुपत को यश प्राप्त हो जाता है । विरोधियों का विरोध प्रेम में परिणत हो जाता है । इससे उन्हें अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है और वह कापालिक के प्रति इन शब्दों में जीवन-सन्देश देते हैं—

विरोधः पूर्वसम्बद्धो युवयोरस्तु शाश्वतः ।
परस्पर-प्रीतिकरः किरातार्जुनयोरिव ।।[२]

यहाँ किरातार्जुनीयोरिव के प्रयोग द्वारा कवि ने भारवि की कीर्ति से अपना परिचय सिद्ध किया है । डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय के 'प्राचीन भारत का इतिहास' से भी यह ज्ञात होता है कि महेन्द्रविक्रम के पिता सिंहविष्णु वर्मा ने भारवि को अपने दरबार में सम्मानित किया था ।

## शाक्य-भिक्षु

विवेच्य प्रहसन के द्वितीय दृश्य में बौद्ध सन्यासी के रूप में नागसेन नामक शाक्य भिक्षु का मञ्च पर प्रवेश होता है । इनके भाषण से ज्ञात होता है कि ये स्त्री परिग्रह एवं सुरापान के समर्थक हैं और सभ्य-समाज से छिप कर

---

२– मत्तविलास, २२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



इनका उपभोग भी करते हैं। अपने धार्मिक ग्रन्थ "पिटक" में उक्त वस्तुद्वय का अभाव उन्हें बुरी तरह खटकता था और वह मूल पिटक ग्रन्थ का अनुसन्धान करके समाज को यह बतलाना चाहते हैं कि पिटक एवं ऐसे अन्य धार्मिक ग्रन्थों में सुरापान एवं दारसमागम विधान अनिवार्य रूप से रहा होगा, जो दुष्ट वृद्धों द्वारा युवकों के प्रति विरोध-प्रदर्शनार्थ इनमें से निकाल दिया गया होगा।

"कर्णि णु हु अविणट्ठमूलपाठं.........

स तदो सम्पुण्णं बुद्धवअणं लोए पलासअन्तो संघोवआरं करिस्सं।"[१]

भिक्षुजी महाराज अपने इस संशोधित रचनात्मक कार्य द्वारा संघ का उपकार करना चाहते हैं। कापालिक के साथ विवाद के प्रसंग में देवसोमा द्वारा उनके सामने सुरापात्र के बढ़ाने पर ये कृतकृत्य हो जाते हैं,किन्तु वृद्धजनों द्वारा देख लिए जाने का भय भी उनके मन में छिपा बैठा है- 'एतावान् दोषः। महाजनो-द्रक्ष्यति...' गुरुजनों से छिपकर भोग -विलास की सामग्रियों का उपभोग करना उनकी दृष्टि में पाप नहीं है। इस बौद्ध -भिक्षु को " अदिण्णादाणावेरमणं सिक्खापदं मुदावादा वेरमणं सिक्खापदं।" इत्यादि वाक्य कण्ठस्थ हैं, वह अन्य शैव साम्प्रदायिकों के समक्ष अपने को दोषमुक्त सिद्ध करने के लिए बुद्ध के इन आदेश -वाक्यों का उल्लेख किया करते हैं।

इस प्रकार शाक्य-भिक्षु के चरित्र से तत्कालीन बौद्ध सन्यासियों की चारित्रिक दुर्बलताओं का उद्घाटन होता है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी अवलोकनीय हैं। उन्मत्तक - कापालिक के कपाल को लौटाने वाले पागल का चरित्र अपने आप में पूर्ण है। इस उन्मत्त की उन्मत्तता का कवि की लेखनी से स्वाभाविक चित्रण हो सका है। मांसयुक्त खप्पर को कुत्ते से छीन कर वह अपने शत्रु के विषय में एरण्ड के वृक्ष से पूछता है, अपने कथन की पुष्टि में मेघ को साक्षी बनाता है और उसकी साक्षी की उपेक्षा करता है।

'एशे एशे दुट्ठ कुक्कुले।... कहिं गमिश्शिशि अइ एलण्डलुक्ख।
किं भणाशि – अलिअं अलिअंति। णं एशे मुशलशमविशाललम्ब-
हत्थे दुदुले मे शक्खी। ...

---

१- मत्तविलास -पृ० १६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इस प्रकार उन्मत्तक यहाँ विट और विदूषक का स्थानापन्न है, और हास्य के वातावरण को सजीव बनाता हुआ सफल अभिनय प्रदर्शित करता है।

कापालिक की भार्या है देवसोमा। आदि से अन्त तक पावन पातिव्रत का निर्वाह करती है। राम की आदर्श पत्नी सीता की तरह अपने पति के लिये कपाल की खोज में उसके साथ सारे काँचीपुर का पर्यटन करने को उद्यत रहती है। वाद-विवाद के प्रकरण में श्रान्त कापालिक की श्रान्ति को दूर करने के लिये शराब का प्याला पकड़ा देती है –

'ता दिणा गोसिंगेण सुरं पिविअजातवलो मविअ इमिणासह विवाइं करेहि...'

एक ओर वह कपाल को बलपूर्वक छीन लेने की सलाह देती है, और दूसरी ओर पाशुपत द्वारा न्यायालय में जाने की बात को सुन कर अपनी दरिद्रता के कारण डर भी जाती है और इन शब्दों के साथ न्यायाधीश के पास जाने से विवादियों को रोकती है। —

'भगवं। जइ एवं, णमो कवालस्स।'

न्यायालय में घूसखोर लोगों की ही बन आती है, उससे यह रहस्य छिपा नहीं है।* कापालिक की सहधर्मिणी होकर भी देवसोमा नारी-जाति के लिये गौरवपूर्ण आदर्श प्रस्तुत करती है। सुख-दुःख में समान रूप से अपने पति को उत्साहित करते रहना ही जीवन-संगिनी का कर्तव्य होता है, उसका चरित्र नारियों को यही शुभ संदेश देता है।

संस्कृत-नाट्यपरम्परा के अनुरूप ही इसके आदि और अन्त में क्रमशः नान्दी एवं भरत वाक्य हैं। यह प्रहसन लटकमेलक हास्यार्णव आदि कृतियों के समान विटवेश्यादि का अतिरंजित रूप प्रदर्शित नहीं करता। फलतः उनकी तुलना में अश्लीलता से परे होने के कारण यह एक अनुपम रचना है। इसकी

---

* आज देश के सभी क्षेत्रों में इस प्रकार के विकार फैले हुए हैं। यह व्यंग्यसाहित्य आज भी यत्किञ्चित् परिवर्तनों के साथ जनता को सुधारने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर अभिनीत हो सकता है अथवा ऐसे साहित्य के निर्माण की प्रेरणा साहित्यकारों को दे सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



शैली सरल एवं सरस है। निम्नांकित शंकरस्तुति एक हँसी भरी पिचकारी है। —

पेयासुरा प्रियतमा - मुखमीक्षितव्यं
ग्राह्यः स्वभावललितो विकृतश्च वेषः ।
येनेदमीदृश - मदृश्यत मोक्षवर्त्म
दीर्घायुरस्तु भगवान् स पिनाकपाणिः ।।

अर्थात - -

मदिरा का पान करना चाहिये, प्रियतमा के मुख का दर्शन करना चाहिये और स्वभावसुन्दर विकृत वेष धारण करना चाहिये। इस प्रकार के रहन-सहन का उपदेश देकर जो मोक्ष का मार्ग दिखलाते हैं वे शंकर भगवान् दीर्घायु हों। [१]

महेन्द्र-विक्रम की इस लघुकृति में विविध प्राकृतों का प्रयोग उपलब्ध होता है. जिनमें शारसेनी और मागधी की प्रधानता है। इस एकांकी की प्राकृत-भाषा भास-कवि की प्राकृत से बहुत सादृश्य रखती है। इन्होंने और भी ग्रन्थ लिखे परन्तु उनकी अनेक विरचित रचनाओं में से अब यही एक प्रहसन मिलता है।

## लटकमेलक

महेन्द्रविक्रम के "मत्तविलास प्रहसन" के लगभग ५०० वर्ष बाद १२वीं शताब्दी के आरम्भ में कान्यकुब्ज-नरेश गोविन्दचन्द्र के सभाकवि शंखधर कविराज ने एक प्रहसन "लटकमेलकम्" लिखा। इसके शीर्षक का शब्दार्थ होता है—'धूर्तों का सम्मेलन।" माण्टगोमरी[२] शिल्लेर ने अपनी बिब्लियो-

---

१– मत्तविलास.

२– देखिये –

(क) माण्टगोमेरी द्वारा प्रस्तुत प्रहसनावलि पृष्ठ १०४.
बिब्लियोग्राफी आफ दी संस्कृत ड्रामा.

(ख) Natakmelak prahsana mentioned in S. D. III 207, 537 Page 74.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



ग्राफी ग्राफ दी संस्कृत ड्रामा" में एवं श्रीमोनियर विलियम्स ने स्वकीय वृहद्-कोश में "नटकमेलकम्" नामक एक ग्रन्य प्रहसन का उल्लेख भी किया है। इसकी पुष्टि में इन विद्वानों ने साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद के एक श्लोक को भी याद किया है। किन्तु 'दर्पण' की पूरी छानबीन के उपरान्त भी मुझे इसमें "नटकमेलक" नाम के किसी नाटक का उल्लेख नहीं मिला। सर्वत्र "लटकमेलक" ही मिलता है। ग्रतः यह "लटकमेलक" का ही नामान्तर होना चाहिये ग्रथवा प्रतिलिपिकार का प्रमाद हो सकता है।

भीमदेव के पुत्र चालुक्यवंशीय हरिपाल गुजरात के ग्रभिनवपुर[1] के राजा थे जो 'विचार चतुर्भुज' भी कहलाते थे। इनकी प्रमुख रचना है, संगीत-रत्नाकर। इस षड्भाषाविद् ने विद्वन्मण्डली में बहुमत से "प्रहसन" के नाम से प्रख्यात 'लटकमेलक' को 'ईहामृग' कह कर सचमुच एक नई बात कह दी है। इन दो विभिन्न मतों को पढ़ कर स्वभावतः यह प्रश्न उठ सकता है कि शंखधर कविराज की उक्त रचना को किस वर्ग में रखना ग्रधिक उपयुक्त होगा। इस प्रश्न के स्पष्टीकरण के लिये 'प्रहसन' ग्रौर 'ईहामृग' नामक रूपकों के लक्षणों पर तुलनात्मक दृष्टि डालना ग्रप्रासंगिक न होगा। ग्रस्तु-ऊपर हम प्रहसन के लक्षणों पर विस्तार से विचार कर चुके हैं। तदनुसार प्रहसन भाण से मिलता जुलता हास्य-प्रधान एकांकी होता है[2]। इसके विपरीत ईहामृग[3] में चार ग्रंक होते हैं। इसका कथानक मिश्रित होता है ग्रर्थात ग्रंशतः प्रसिद्ध ग्रौर ग्रंशतः कवि-कल्पित। मुख, प्रतिमुख तथा निर्वहण संधियों की योजना होती है।

---

१– 'ग्रभिनवपुरनाथं हारिसंगीतविद्यं-प्रशमितविषवेदं स्पर्शनैः काञ्चनानाम्।
... ... ... ... ... ...
मुदमपेति सवेणुर्द्वारवत्यां मुकुन्दः
ऐन्द्रस्थानमुपाश्रितेषु कविषु प्राच्येषु भूमण्डलीमम्भः-कम्पनजृम्भदम्बुधिकृतवेष्टामिमां रक्षितुम्। षड्भाषारचितास्पदा रसगुणालङ्कारिणी – – जाता गिरां देवता'।
(भरतकोशस्य भूमिका में ग्रंकित म. प्र. रामकृष्णकवि के विचारों के ग्राधार पर)
भरतकोष-पृष्ठ ७

२– संध्यङ्गलास्याङ्गैर्विनिर्मितम्।
सा. द. ६, पृष्ठ २६२

३– स, द. ६, २४५–२४६; पृष्ठ ४३८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



इसके नायक और प्रतिनायक प्रसिद्ध धीरोद्धत नर या देवता होते हैं। वह किसी सुरांगना को चाहता है जो उसे नहीं चाहती। फलस्वरूप वह प्रकट रूप से उसके प्रति अपना प्रेम जता नहीं सकता और नायक उसको हर कर ले जाने की सोचता है। युद्ध की पूरी संभावना होती है किन्तु किसी वहाने से वह स्थिति टल जाती है। इतिहास में किसी महात्मा का वध विख्यात हो तो भी ईहामृग में उसे प्रदर्शित नहीं करना चाहिये। प्रायः प्राचीन, मध्ययुगीन एवं अर्वाचीन सब साहित्यालोचक तथा लक्षणकर्ता किंचित् हेरफेर के साथ इसकी यही परिभाषा बतलाते हैं।

इस प्रकार प्रहसन एवं ईहामृग में निम्नांकित बातों में भेद लक्षित होता है :—

| प्रहसन | ईहामृग |
|---|---|
| १. प्रहसन में एक अङ्क होता है जो दो दृश्यों में विभाजित हो सकता है। | १. इसमें चार अङ्क होते हैं। |
| २. यह शुद्ध, विकृत और संकर तीन प्रकार का होता है। | २. नायक उच्चकुल के नर या देवता होते हैं। |
| ३. इसमें साधु, सन्यासी के अतिरिक्त चेट, चेटी, वेश्या, विट आदि नीच पात्रों की योजना भी हो सकती है। | ३. इसमें नीच पात्रों का प्रवेश नहीं के बराबर होता है। |
| ४. यह हास्य-रस-प्रधान रूपक होता है जिसका मुख्य उद्देश्य होता है प्रेक्षकों को येन-केन प्रकारेण हँसाना। | ४. युद्ध होते होते रुक जाता है। |
| ५. इसमें प्रेमिका का प्रेम अलभ्य नहीं होता। | ५. नायिका का प्रेम दुर्लभ होता है। |
| ६. विषय साधारण होता है। | ६. ईहामृग व्यायोग नामक एकाङ्क रूपक का विकसित रूप प्रतीत होता है। |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए जब हम शंखधर कविराज के 'लटकमेलक' की समीक्षा करते हैं तब उसमें प्रहसन के लक्षण ही अधिक घटित होते देखते हैं। अतः इस कृति को प्रहसन की कोटि में रखना अधिक युक्तिसंगत होगा। ईहामृग की तरह इसमें नायिका का प्रेम दुर्लभ नहीं होता। इसमें किसी को पाने की मृग की तरह चेष्टा नहीं होती। यहाँ तो प्रेम को सब खरीद सकते हैं। प्रहसनकार प्रहसन के लिये सामग्री साधारण समाज से बटोरता है जबकि ईहामृग की कथा पुराणों से ली जाती है या कवि-कल्पित होती है।

साहित्य समाज की ही अभिव्यक्ति होता है। अपने समय के विषाक्त वातावरण से आच्छादित समाज को सुधारने की आशा से ही प्रसिद्ध प्रहसन 'लटकमेलक' की रचना हुई। कवि शंखधर इसमें अपने को कन्नौज-नरेश गोविन्द[1] के शासनकाल में उत्पन्न हुआ बतलाते हैं। इसका अभिनय वसन्त-काल में राजाज्ञा[2] से हुआ था। इसमें कन्नौज-नरेश गोविन्ददेव का संकेत तथा कुछ एक गाँवों के नामों का उल्लेख इसे बारहवीं सदी की रचना सिद्ध करते हैं। यथा-ढुढोलि[3] सुण्डिवाल, दरिहड, जो कन्नौज-नरेशकालीन भारत के ग्रामों की ओर संकेत करते हैं। लटकमेलक में मच्छरहट्टा[4] का नाम भी आया है जिसे पढ़कर इसी नाम के बनारस तथा पटनानगर के एक 'मच्छरहट्टा' नामक मुहल्ले की स्मृति हो आती है। इसमें प्रयुक्त 'राढीया' शब्द का सम्बन्ध बंगाल के राढ के से प्रतीत होता है। राढा[5] बंगाल के एक जिले का नाम है। उस स्थान से सम्बद्ध रीति-रिवाज या जाति 'राढीय' कहे जाने लगे। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के शासन काल में (१२वीं शताब्दी) दक्षिण भारत से आये हुए ब्राह्मणों को राढीय या राढी नाम दिया गया और उनकी

---

१- लटकमेलक ४, पृष्ठ २.

२- यदद्य वसंतसमय-समुचितेन कविराजश्रीशङ्खधरविरचितेन
लटकमेलकनाम्ना प्रहसनेनास्मान् विनोदयेति। लटकमेलक – पृष्ठ ३

३- लटकमेलक पृष्ठ ६-७, पृष्ठ ३६:

४- लटकमेलक पृष्ठ १२:

५- "गौडं राष्ट्रमनुत्तमं निरुपमा तत्रापि राढापुरी।" प्रबोध चंद्रोदय.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



परम्परा भी राढीय कहलाई[१]। इसमें प्रयुक्त इस शब्द को देखने से भी यह कृति १२वीं सदी की प्रतीत होती है।

साहित्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नियमों का उल्लंघन करते हुए कवि ने 'लटकमेलक' रचना द्वारा समाज का जीता-जागता चित्र अंकित कर दिया है। ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तुत महादेव की स्तुति से कवि की शिवभक्ति झलकती है।

गौरीचुम्बन चञ्चलाञ्चलवलच्चन्द्रप्रभामण्डलं
व्यावल्गत्फणिकुण्डलं रतिरसप्रस्विन्नगण्डस्थलम्।
प्रौढप्रेमपरम्परा - परिचयप्रोत्फुल्ल - नेत्राञ्चलं
शंभोरस्तु विभूतये त्रिजगतामुन्मत्तगं शिरः॥[२]

अपिच–

रक्षाशावलिमाः परित्यजजटाः कोऽयं मदप्रक्रमः
कौपीनं त्यज मुञ्च मुञ्च नखर-व्यापारमास्थानिकम्॥[३]

प्रस्तावना में ही अपने आश्रयदाता गोविन्ददेव की प्रशंसा भी की है जिससे उनकी राजभक्ति का भी परिचय मिलता है।[४]

धूर्तमण्डली की इस कथा में काव्य की छटा-प्रदर्शन का कवि को बहुत कम अवसर मिलता है। कवि ने धूर्तों के क्रियाकलापों का अतिरंजित एवं विस्तृत विवरण और इसमें निम्न समाज का नग्न-चित्रण करके अपनी इस कृति को आधुनिक युग के सस्ते-साहित्य की कोटि का अवश्य बना दिया है

---

१– फुंकटमिश्रः– वत्स मिथ्याशुक्ल-महामहोपाध्यायोऽसि। (सविमर्शम्) अहह।
ब्राह्मण्यं विनापि परमः प्रतिष्ठाप्रकर्षः। तथाहि राढीया वचन–रचना – –
एष व्याकरणं न वेत्ति न कृतः काव्येष्वनेन श्रमः
श्रुत्वाचामति भट्टवार्तिकगिरः स्नाति स्पृशंस्तद्विदः।
राढीयैरतिहर्ष – गद्गदगलैः प्राभाकरः श्रूयते॥ लटकमेलक, १६ पृष्ठ ३८.

२– लटकमेलक १, पृष्ठ १

३– लटकमेलक १, पृष्ठ १

४– लटकमेलक ३, पृष्ठ ५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



(कारण इसमें आदि से अन्त तक पात्रों के मूर्खतापूर्ण वार्तालाप ही आते हैं) तथापि यह प्रहसन-साहित्य का प्रतिनिधित्व करने वाला अपने समय की लोक-रुचि का द्योतक प्रहसन है, इसमें संदेह नहीं। आगे चलकर हम देखेंगे कि इस प्रकार की रचनाओं का अन्य परवर्ती प्रहसनकारों पर भी प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ पं० जगदीश्वर भट्टाचार्य विरचित हास्यार्णव का नाम उद्धृत किया जा सकता है। लटकमेलक तथा हास्यार्णव के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होगा कि दोनों रचनाओं की विषय वस्तु, वर्णनाशैली, यहाँ तक कि पात्रों के नाम एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। दोनों प्रहसनों का उद्देश्य है शास्त्र-सम्मत षड्विध हास्य के प्रयोग द्वारा हास्यमय वातावरण का निर्माण करना। शास्त्र के नियमों का पालन करते समय कवि शिष्टता को भी कहीं-कहीं भूल बैठा है—

यस्य कस्य तरोर्मूलं येनकेनापि पेषयेत्।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति ॥[1]
व्याधयो मदुपचारलालिता मत्प्रयुक्तमृतं विषं भवेत्।
किं यमेन सरू जांकिमौषधै रुजविहर्तरि पुरःस्थितेमयि ॥[2]

तुलना कीजिए—

नेत्रे तप्ता शलाका जठरगुरूगदे श्लीपदे छित्तिरंध्रे
रम्यायां नासिकायां वडिशमतिशितं तप्ततैलंचशूले।
हृद्रोगे यन्त्रदारुद्वयनिविडतरं दाढनं मुष्कदेशेऽ
प्येतैः रम्योपचारैर्नयति पितृवनं रोगिणं कं न चाशु ॥[3]

दोनों कृतियों में रोग के उपचार के लिये जो चिकित्सा-पद्धति वैद्य जी अपनाते हैं वह एक सी ही है। दोनों प्रहसनों में वैद्यजी महाराज वास्तव में महावैद्य ही हैं। दोनों को वैद्यकशास्त्र का रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है। हास्यार्णव के कवि का नाम तो ज्ञात है परन्तु इनके समय का पता नहीं चलता। अनुमान से यह चौदहवीं सदी के बाद की रचना प्रतीत होती है।

---

१— लटकमेलक २३ पृ४ १७
२— लटकमेलक २२ पृ४ १६
३— हास्यार्णव २८, पृ० २९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



'लटमेलक' में धूर्तों का सारा कार्यक्रम दन्तुरा नामक कुट्टिनी (दूती) के घर पर होता है। कामुक लोग उसकी सुन्दरी पुत्री मदनमंजरी के प्रेम को खरीदने के लिए आते हैं। मदनमंजरी के गले में हड्डी अटक जाती है। इससे उसे कष्ट होता है। लोग उसे जन्तुकेतु नामक वैद्यराज से इलाज करवाने की सलाह देते हैं। उनके आने पर हास्य से ओत-प्रोत वातावरण हो जाता है। हँसने से हड्डी अपने आप निकल जाती है। दूसरे दृश्य में कामियों का विवाह-संस्कार होता है। विवाह मानव-जीवन का एक आवश्यक संस्कार है। इसका मनुष्य से गहरा संबंध है। पहले सवर्ण जातियों से तो सम्बन्ध होता ही था, असवर्ण जातियों के साथ भी गाँठ जोड़ने की मनाही न थी। सभापति जी ने एक दिगम्बर का दन्तुरा के साथ विवाह कराया और स्वयं मदनमंजरी से बँध गए। इस पर गीता का प्रभाव भी है, परन्तु गीता के श्लोक विवाह के अवसर पर प्रसंग का विचार न करते हुए जहाँ तहाँ कहलवा दिए गए हैं, जो विचित्र हास्य की सृष्टि करते हैं।

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥[1]

और भी—

सभापतिः--दन्तुरे, त्वद्गुणाकृष्टोऽयं दिगम्बरस्त्वामभिलषति। त्वं चाद्यापि नवनवतिवर्षदेशीया युवतिः। तथाहि—

निविडितनूपुर-मधुराः कस्य निगूढा न सन्ति ते निधयः।
रिपुरिव यदि न विसर्पति करकिसलयवलय-झंकारः ॥[2]

विवाह के दृश्य के आधार पर कई लोग इस प्रहसन को दन्तुरापरिणय भी कहते हैं।

**हास्यार्णवः—**

श्री जगदीश्वर के हास्यार्णव में अनन्य सिन्धु राजा की कथा है जो

---

- लटकमेलक ३४, पृ० ४६.
- लटकमेलक २६, पृ० ४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



भोगलिप्सा में लिप्त रहने के कारण राजकार्य को देर से नहीं सँभाल सका है। अयथार्थवादी नामक नौकर को वह राजकार्य की गतिविधियों का पता लगाने के लिए भेजता है। अपना कार्य समाप्त करके वह राजा को यह सूचना देता है कि उनकी स्वेच्छाचारिता के फलस्वरूप जनता ने सब प्रकार की बुराइयों को त्याग कर अच्छाइयों को ग्रहण कर लिया है। नौकर के मुख से यह समाचार सुन कर राजा का क्रुद्ध हो जाना और इसके लिए नागरिकों को दण्ड देने के लिए उद्यत हो जाना आदि हास्यमूलक बातें हैं। इस प्रकार अनौचित्य एवं प्रकृतिविपरीत कथनों द्वारा कवि ने हास्य का सर्जन करने का प्रयास किया है।

चरः - (संस्कृतमाश्रित्य)
आलिङ्गन्ति निजाङ्गनां पर-वधूं हित्वा जनाः साम्प्रतं
नीचः सीव्यति सत्युपानहमहो सद्ब्राह्मणानां गणे।
वन्दन्ते द्विजमन्त्यजे निवसति व्रीडाविहीना जना
एवं मण्डल-वैपरीत्यमधिकं जातं महाभूपतेः॥

अपिच—नारीणां नयनेऽञ्जनं न जघने सिन्दूरभामण्डिते
सीमन्ते न च नूपुरो पदयुगे यावोऽपि नैवेक्षणे।
वक्षोजे मणिमंजरी न चरणे काञ्ची कटो नाघरे
चेत्थं वेशविपर्ययः प्रतिगृहं दृष्टः सकष्टं मया॥[1]

इसके अनन्तर वह मंत्री कुमतिवर्मा को बुलवाकर उसे मन्त्रणार्थ उचित स्थान निर्धारित करने की आज्ञा देता है। मंत्री मन्त्रणा के लिए शहर की वन्धुरा नामक कुट्टिनी वेश्या के मकान को इस कार्य के लिए उपयुक्त बतलाता है। राजा उसका समर्थन करता हुआ सबके साथ नियत स्थान पर पहुँचता है। वन्धुरा भी उन्हें अपने यहाँ आया देख प्रसन्न होती है और अपनी पुत्री मृगांकलेखा नामक वेश्या से राजा का परिचय करवाती है। कामुक राजा उसके सौन्दर्य को देख मोहित हो जाता है। वहीं मृगांकलेखा को कामशास्त्र पढ़ाने वाले गुरु महामहोपाध्याय श्रीविश्वभण्डजी अपने शिष्य कलहांकुर के साथ पहुँच जाते हैं। उन्हें टूटे आसन पर बैठा कर स्वागत किया जाता है।

---

१- हास्यार्णव ११-१२ पृ० १०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



विश्वभण्डजी बन्धुरा को प्रणाम कर उससे " मृगांकलेखा तुम पर प्रसन्न हो " यह आशीष ग्रहण करते हैं। इसी बीच राजा भी विश्वभण्ड को प्रणाम करता है और विश्वभण्ड की आज्ञानुसार कलहांकुर उन्हें अमङ्गलकारी शब्दों में आशीर्वाद प्रदान करता है जिसे सुनकर हँसी आए विना नहीं रहती।

कलहांकुर :–

शत्रोर्वृद्धिर्भियो वृद्धिर्वृद्धिर्व्याधेर्ऋणानसाम्।
दुर्गतेर्दुर्मतेर्वृद्धिः सन्तु ते सप्तवृद्धयः॥
(इति पठित्वा राजाशिरसिदूर्वाक्षतमर्पयति)[1]

यहाँ विलासी राजाओं पर गहरा व्यङ्ग्य किया गया है। कामी राजा के शत्रुओं में वृद्धि नहीं होगी तो और क्या होगा ? उसके राज्य में पापाचार के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ?

हास्य की प्रधानता होने के कारण गम्भीर काव्य के दर्शन तो यहाँ नहीं होते परन्तु प्रसंगवश वर्षाऋतु की शोभा का आनन्द प्राप्त कराने में समर्थ बन्धुरा की वृद्धावस्था तथा सब प्रकार के विलासों की आश्रयरूपा मृगांकलेखा के नखशिख सौन्दर्य का वर्णन करने में कवि अपने कवित्व-प्रदर्शन का मोह भी त्याग नहीं पाया है —

प्रलम्वित पयोधरा क्षतरजा विकरास्पदैः
सदाविगतहंसका तिमिरलुप्ततारारुचिः।
तिरस्कृत–निशाकरा गतवया इयं बन्धुरा
सदा सपदि दृश्यतां जलधरागमश्रीरिव॥[2]

विश्वभण्ड– (नायिकामवलोक्य) अहो। तरूण्या भावप्रकर्षः।
आलिंगत्यपरां तनोति चिकुर-प्रत्युतरं याचते
केयं कामकलाविलासवसतिर्लोलेक्षणा भाविनी॥[3]

" लटकमेलक " में भी मदनमञ्जरी की शोभा का ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है।

---

१– हास्यार्णव २१, पृ० २१.
२– हास्यार्णव २३, पृ० २२.
३– हास्यार्णव २५, पृ० २४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



मिथ्याशुक्लः – ( मदनमञ्जरीमवलोक्य ) – – –।
संसारसारमहह त्रिजगत्पवित्रं तद्रत्नमेतदुपसर्पति पङ्कजाक्षी ।।[1]

ऐसी रसभरी बातें सुन कर वन्धुरा को युवावस्था में की गई काम–क्रीडाओं की स्मृति कामज्वर का शिकार बना देती है । उपचारार्थ आतुरांतक के पुत्र व्याधिसिन्धु नामक महावैद्य बुलाए जाते हैं जो लटकमेलक के वैद्य के समान ही हैं, जिसका तुलनात्मक चित्रण हम ऊपर कर आए हैं । विशेष बात यह होती है कि वैद्यराज चिकित्सा करने के बदले स्वयं ही काम के शिकार बन जाते हैं, मृगांकलेखा का सौन्दर्य उन्हें मुग्ध कर देता है । इसी प्रकार रक्त कल्लोल नामक नाई ( अपनी कला से अनभिज्ञ ) मिथ्यार्णव नामक ब्राह्मण, महायांत्रिक नामक ज्योतिषी आदि पात्र मञ्च पर आकर अपने हास्य–परक आंगिक एवं वाचिक अभिनयों द्वारा लोगों का चित्तानुरञ्जन कर पाते हैं । इसके अतिरिक्त वसन्त ऋतु में प्रकृति की मोहक छटा का वर्णन कवि के प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है । रचना शैली सरस एवं सरल है । कहीं-कहीं समस्त पदावली के दर्शन भी होते हैं ।

इसी तरह "लटकमेलक" के दन्तुरा एवं मदनमञ्जरी के अतिरिक्त अन्य पात्र भी अपने ढँग के अनोखे हैं यथा –

सभासलि कौल ( शाक्त ) मत के अनुयायी हैं जिनकी पत्नी का नाम कलहप्रिया है । मदनमञ्जरी की परिचारिका दन्तुरा से उसकी खूब बनती है । उसके रूप-यौवन पर उनकी दृष्टि सदा लगी रहती है । दन्तुरा और मदन–मञ्जरी को सदा प्रसन्न रखने का यत्न करते हैं । वह कहीं सलाहकार के रूप में और कहीं अज्ञानराशि और दिगम्बरसूरिजी के बीच बकरी के वध के झगड़े का समाधान करते दिखाई देते हैं । कहीं प्रसव कार्य में भी हाथ बँटाते हैं । कामियों का विवाह भी कराते हैं । इस प्रकार धूर्त-मण्डली में ये महाशय व्यवहार-कुशल जान पड़ते हैं ।

फुंकटमिश्रजी एक दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठित किए गए हैं । इनकी दार्शनिकता एवं इनका पाण्डित्य अतुलनीय है । इनके बौद्धिक-प्रदर्शनपरक अनेक मनोरञ्जक श्लोक इसमें मिलते हैं ।

---

१– लटकमेलक १८, पृ० ४०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



गुरोर्गिरः पञ्चदिनान्युपास्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च ।
अमी समाघ्रात-वितर्कवादान् समागताः फुंकटमिश्रपादाः ।।

व्यसनाकर को 'बौद्ध' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो चमरसेन विहार का निवासी है। वह गुप्त रूप से किसी धोबिन से प्रेम करता है। इसी कारण मञ्च पर उपस्थित होते ही उसका चेतन मन उसे धिक्कारता है—

पृथुजघनया सूजक्या विना रजन्यां
समुत्खातनिधानस्थानमिव विभाति भवनम् ।

परन्तु जब उसे किसी निम्नजाति की स्त्री से सम्पर्क रखने के कारण दूषित ठहराया जाता है, तब वह चिढ़-सा जाता है। इसके प्रत्युत्तर में अपने समर्थन के हेतु बुद्ध भगवान् के वचनों का सहारा लेता है। जाति नामक पदार्थ, पदार्थों से भिन्न रूप में कभी भासित नहीं होता। उसके मत में सब पदार्थ ही क्षणभंगुर हैं। आत्मा भी स्थायी नहीं है।[1] इसलिये उसे धोबिन को छूने का दोष नहीं लग सकता। उसकी अनोखी तर्कशक्ति इस प्रहसन में देखी जा सकती है —

दन्तुरा-परिणय या लटकमेलक प्रहसन की शैली एवं भाषा सीधी-सादी किन्तु अपने ढंग की अनोखी है। संक्षेप में गंभीर चित्रण करने का दुष्कर कार्य भी कवि ने कर दिखाया है, जो श्लाघ्य है।

व्यसनाकरः — विनाशशीला भावा जायन्ते ।[2]

स्थान-स्थान पर समस्त-पदों का प्रयोग भी किया गया है, परन्तु उससे भाषा का प्रभाव अवरुद्ध नहीं होता। इस शैली के माध्यम से पंचमकार के उपासक शाक्तों के सामाजिक दुराचार, बौद्ध सन्यासियों के मिथ्या-विहार, दार्शनिकों के अभिमान और उनकी ज्ञानहीनता का कवि ने अत्यन्त सजीव भाषा में कलात्मक ढंग से रहस्योद्घाटन किया है। कवि ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि सन्तों और उनके अनुयायियों की कथनी एवं करनी में आकाश-पाताल का अन्तर है।

---

१- लटकमेलक २५, पृ० ४४.
२- लटकमेलक पृ० ४४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



चित्रं चरित्रं स्खलितव्रतानां शीलाकरः शङ्खधरस्तनोति ।
विद्वज्जनानां विनयानुवर्ती धात्रीपवित्रीकरणः कवीन्द्रः ॥[१]

कहीं-कहीं अनुप्रास, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों से भी कवि ने कविता का मंडन किया है। इसके गद्यांश तथा पद्यांश हास्यमय हैं।[२]

गलित यौवना कुट्टिनी चतुर्वेदी के परिहासपूर्ण उद्गारों में उत्प्रेक्षा के योग से कवि ने जान डाल दी है।[३]

लटकमेलक में धूर्तों के वार्तालाप में कहीं कहीं ग्राम्य अंश अवश्य देखने में आते हैं।[४] परन्तु कवि कुशलतापूर्वक 'चित्र चरित्रं स्खलितव्रतानां शीलाकरः' इत्यादि में निहित उद्देश्य की पूर्ति कर सका है, इसमें सन्देह नहीं।

शङ्खधर के इस प्रहसन के पात्रों की वेतुकी बातों ( जिनके नाम भी चतुर कवि ने हास्यरस के अनुकूल ही रखे हैं -- कुलव्याधि, जन्तुकेतु, सभासलि, दिगम्बर सूरि, अज्ञानराशि, मिथ्याशुल्क, फुंकटमिश्र, दन्तुरा मदनमञ्जरी आदि ) को पढ़ कर मृच्छकटिक के शकार की याद आ जाती है।

'दन्तुरा-परिणय' अथवा 'लटकमेलक' केवल लटकों की लटक झटक का संग्रह ही नहीं, अपितु तत्कालीन धर्म और समाज का सच्चा चित्र भी है। प्रस्तुत प्रहसन द्वारा कविकालीन भारत की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक अवस्था का एक निखरा रूप सामने आ जाता है। प्रस्तुत प्रहसन में भी वेश्याओं के परम्परागत-जीवन का चित्र दन्तुरा एवं मदनमञ्जरी के माध्यम से खींचा गया है। इसके अलावा सभासलिउपाध्याय, जैसे बड़े बड़े दार्शनिक और अन्य सभ्य लोग भी वेश में जाने में नहीं हिचकते थे।

भूमण्डल के चराचरों को स्वस्थ तथा दीर्घायु बनाने में बड़े बड़े वैद्यों का बड़ा योगदान रहा है। जहाँ गुप्त-कालीन धन्वन्तरि जैसे महानुभावों ने

---

१— लटकमेलक ७, पृ० ४.
२— लटकमेलक २०, पृ० ४१, १३ पृ० ८.
३— लटकमेलक अङ्क २, ३३, पृ० ४६.
४— लटकमेलक पृ० ४२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



वैद्यक-ग्रन्थों को जन्म दिया, जहाँ वाग्भट्ट, माधव-निदान, चरक समान ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं, जिनके साहाय्य से कोटि कोटि प्राण बचाए गये, वहाँ नीम हकीम खतरएजान वाली कहावत को चरितार्थ करने वाले वैद्य भी समाज में विद्यमान थे। लटकमेलक, हास्यार्णव तथा अन्य प्रहसनात्मक ग्रन्थों में चित्रित वैद्यों का चरित्र इसका प्रमाण है।

प्रस्तुत हास्य-प्रधान कृति अपने देश की समसामयिक धार्मिक स्थिति पर भी प्रकाश डालती है। लटकमेलक उस समय की रचना है जब भारत में धर्म की बागडोर गुरु, साधु, सन्यासियों के हाथ में थी। वे अपनी शक्ति का अनावश्यक लाभ उठाते तथा भोली जनता को भ्रमजाल में फँसाकर अपना मतलब साधते थे। इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि भारत के इस स्वर्ण-युग में बौद्धभिक्षु जैसे धर्म के रक्षक भी दुर्बलता के शिकार बन कर धर्मभक्षक बन बैठे। लोगों का चरित्र नित्यप्रति गिरने लगा था। देश की ऐसी स्थिति तो शुंग, सातवाहनों तथा गुप्त राजाओं के समयसे ही होने लगी थी। बौद्ध तथा जैन धर्म की अवनति तभी से होने लगी थी परन्तु उसका चरम सीमा को पहुँचा हुआ रूप ९वीं तथा १०वीं शताब्दी में देखने को मिलता है। बौद्ध एवं जैन जैसे पवित्र धर्म भी वासना एवं आडम्बर की दुर्गन्ध से घृणित हो गए। जटासुर, दिगम्बर और चमरसेन विहार के वासी व्यसनाकर बौद्ध का चरित्र इसका ज्वलन्त प्रमाण है। यह प्रहसन तत्कालीन विवाह की रीति पर किस प्रकार प्रकाश डालता है हम ऊपर ही देख चुके हैं।

प्राचीन संस्कृत-नाट्य-साहित्य के इतिहास के पृष्ठों के सम्यगवलोकन से श्री सुन्दरम् पिल्लई के इस कथन की सत्यता में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि दक्षिण-भारत का केरल प्रान्त मुस्लिम आक्रमणों से सुरक्षित रहने के कारण भारतीय नाट्य का उर्वर-स्थान रहा है। महाकवि भास के नाटकों के प्रकाश में आने से तथा इनकी रचनागत विशेषताओं से सम्पन्न मत्तविलासादि अन्य नाट्य-ग्रन्थों के दर्शन से यह बात और भी पुष्ट हो जाती है। मलाबार के विद्वान् श्री पी. अनुजन् अचन् के बोधायन-कवि रचित भगवदज्जुकम् या भगवदज्जुकीयम् की दो-तीन हस्तलिखित प्रतियों को प्राप्त कर इसका विद्वत्तापूर्ण सम्पादन करके संस्कृत-साहित्य में एक नवज्योति जगा दी है। अब तक के प्रकाशित प्रहसनों में प्रस्तुत विवेच्य प्रहसन सर्वोत्तम रचना है। पल्लवनरेश महेन्द्रविक्रमन् के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



मत्तविलास की तरह भास की काव्यगत विशेषताओं से विभूषित होने पर भी इन दोनों कृतियों में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। प्रमुख भेद यह है कि मत्तविलास में हास्यात्मक स्थिति का निर्माण पात्रों द्वारा हुआ है और 'भगवदज्जुकम्' में कथावस्तु के साहाय्य से हास्योत्पत्ति की गई है। अस्तु—

**भगवदज्जुकम् :—**

एक हिन्दू परिव्राजक और बौद्ध श्रमणक शाण्डिल्य योग-विषयक चर्चा करते हुए किसी उद्यान में आते हैं। वसन्तसेना नामक गणिका भी चेटी के साथ उसी स्थल पर पहुँचती है। पुष्पावचय करते समय यमपुरुष सर्प बनकर वसन्तसेना को डस कर उसके प्राणों को हर लेता है। संतप्त-हृदया चेटी शाण्डिल्य के पास गणिका के मृतक शरीर को छोड़कर उसकी माता को यह शोक समाचार देने चली जाती है। इस बीच गणिका के प्रेम में पागल शाण्डिल्य को विलाप-प्रलाप करते देख परिव्राजक योग-विद्या की सहायता से वसन्तसेना के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। अब वसन्तसेना का शव उठ कर परिव्राजक के समान बातें करने लगता है। चेटी और गणिका की माता जब आकर वसन्तसेना को एक तपस्वी के समान बातें करते सुनती है तो वे इसे विष का प्रभाव समझ कर वैद्य को बुलवाती हैं। इधर भूल से वसन्तसेना नाम की दूसरी नारी को मार कर आने के कारण यमपुरुष को मृत्युराज की फटकार सुननी पड़ती है। अपने स्वामी द्वारा भर्त्सित यम का अनुचर लौटकर निर्जीव वसन्तसेना के शरीर को चलता फिरता एवं बोलता देख आश्चर्यमग्न हो जाता है। अतएव वह वहीं पड़े परिव्राजक के शव में उस गणिका के प्राणों को डाल कर लौट जाता है। परिव्राजक के शरीर में प्रविष्ट वसन्तसेना एक गणिका के समान वार्तालाप करने लगती है। शाण्डिल्य इस मोहक दृश्य को देख कर कह उठता है 'अब यह न भगवान ही रहा और न अज्जुका— यह तो भगवदज्जुक' हो गया।

शाण्डिल्यः — भअवं। किं एदं......
णेव भअवो णेवाज्जुआ। भअवदज्जुअं णाम संवुत्तं।[1]

---

1— भगवदज्जुकम्, पृ० ८७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



यही इस प्रहसन के नामकरण का कारण है। शाण्डिल्य परिव्राजक को भगवान् कहा करता था और चेटी गणिका को अज्जुका के नाम से संबोधित किया करती थी। कवि ने इस इतिवृत को एक अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया है जिसे देखकर दर्शक हास्य के सागर में गोते लगाने लगते हैं। अन्त में यम की सहायता से दोनों आत्माएँ अपने-अपने शरीरों में चली जाती हैं। परिणामतः यह प्रहसन एक सुखान्त लघु नाटक का रूप धारण कर लेता है और कवि 'न दुःखान्तं नाटकम्', संस्कृत-नाट्य-शास्त्र के इस प्रमुख नियम का पालन न करने के दोष से मुक्त हो जाता है।

'मत्तविलास' में मद्यपान के कारण मदमस्त कापालिक और एक शाक्य भिक्षु के वाद-विवाद की कथा वर्णित है, जिसमें धोखे से वह भिक्षु को अपने कपाल-पात्र का चोर ठहराता है, जबकि उसका बर्तन एक कुत्ता ले भागा था। यहाँ भिक्षु का बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध भोगविलासमय जीवन चित्रित किया गया है। इसके विपरीत भगवदज्जुकम् का शाण्डिल्य जो पहले शाक्यश्रमणक था, एक मूर्ख पेट्ठ के रूप में दर्शाया गया है। इसे देखकर संस्कृत के वृहन्नाटकों के विदूषक का स्मरण हो आता है।

शाण्डिल्यः– भो।.पुठमं एव्व अहं करडुअसेससमिद्धेणिरक्खरप्पक्खित्तजीहे
कण्ठप्पसत्तजण्णोव वीदे बह्मण्णमत्त परितुट्ठे कुले पसूदो।
... ... आ। एसो दुट्ठलिंगी पादरसणलोहेण एआई
भिक्खं आहिण्डिदुं पुव्वं गदोत्ति तक्केमि।[1]

उक्त प्रहसन-द्वय की कथा के तुलनात्मक अध्ययन से प्रत्यक्ष हो जाता है कि मत्तविलासयुगीन भारत में बौद्ध धर्म पतन की ओर झुक रहा था। इसके विपरीत भगवदज्जुककालीन देश में उक्त धर्म की स्थिति इतनी गिरी हुई न थी जैसी कि प्रथम प्रहसन में देखने में आती है। इस प्रकार दोनों रचनाओं में नाट्य-संविधान, रचना-शैली आदि में कुछ साम्य होने पर भी बड़ा अन्तर स्पष्ट है। इसे ध्यान में रखते हुए बोधायन कवि के समय का

---

१– भगवदज्जुकीयम् पृ० ९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



सम्यक् निर्धारण न होने पर भी उनकी रचना मत्तविलास के पूर्व की प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त एक आत्मा का दूसरे के शरीर में प्रवेश करने का वृत्तान्त वैदिक धर्म के इतिहास से सम्बद्ध कई ग्रन्थों में प्राप्त होता है। योग-सूत्रों[1] में 'परशरीरावेशः' के प्रसंग में इसका उल्लेख मिलता ही है।

बन्धकारणे शैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः।

योगी की इस प्रकार की महासिद्धि से सम्बद्ध बहुत से दृष्टान्त महाभारत में भरे पड़े हैं। अपने गुरुदेवशर्मन् की पत्नी रुचि की इन्द्र से रक्षा करने के लिए विपुल का गुरुपत्नी के शरीर[2] में प्रविष्ट होना, महायोगी विदुर[3] का युधिष्ठिर के शरीर में प्रविष्ट हो जाना आदि उदाहरण उक्त कथन का समर्थन करते हैं। इस इतिहास के अतिरिक्त सोमदेव के 'कथा-सरित्सागर' में कथित योगानन्द[4] की कथा में तथा पञ्चतन्त्र की कई कथाओं में भी इसके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। श्री रामानुजाचार्य ने भी 'श्रीभाष्य' में इस प्रकार की कहानियों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। नाट्यकार ने इन्हीं स्थलों से प्रेरणा ग्रहण कर 'भगवदज्जुकम्' की रचना की है। संस्कृत रूपक-साहित्य में बोधायन कवि से पहले किसी अन्य कवि ने अपनी रचना में ऐसी घटना की ओर संकेत नहीं किया है। इसलिये भी इस प्रहसन पर प्राचीनता की छाप स्पष्ट लक्षित होती है। इसके अनुकरण पर रामपाणिवाद[5] जैसे परवर्ती नाटककारों ने भी अपनी कृतियों में इससे मिलती-जुलती कथा को स्थान दिया है।

'भगवदज्जुकम्' उस युग की रचना मालूम पड़ती है, जब बौद्ध धर्म पर से लोगों का विश्वास पूरी तरह नहीं उठ पाया था। बौद्धों एवं ब्राह्मण-

---

१- पातञ्जलयोगसूत्र पृ० ३-३९.

२- महाभारत-अनुशासन पर्व ५९, पृ० ४०३.

३- महाभारत, आश्रमवासिक पर्व ९६, पृ० ९७.

४- कथासरित्सागर – ९८-९९, पृ० ११.

५- देखिए- रामपाणिवाद के 'मदनकेतु-प्रहसन' की समीक्षा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



धर्मावलम्बी साधु सन्यासियों में विरोध अवश्य था. परन्तु एक युवक के लिए धर्म-परिवर्तन करना कोई सामान्य बात न थी।

यद्यपि प्रस्तुत एकांकी नाटक में इसके रचयिता के नाम एवं स्थिति-काल का उल्लेख नहीं मिलता तथापि इसी की एक टीका में टीकाकार ने इसे वोधायन[1] नामक किसी कवि की रचना घोषित किया है। इसके आधार पर वोधायन ही इसके निर्माता प्रतीत होते हैं। संस्कृत-समाज इस नाम के दो व्यक्तियों से परिचित है, जिनमें से एक कवि और दूसरे 'वादरायण' के सूत्रों के वृत्तिकार हैं। प्रो. विण्टरनित्ज़ ने इन दोनों को एक व्यक्ति माना है। परन्तु श्री अशोकनाथ भट्टाचार्य ने इलाहावाद ओरियण्टल कान्फ्रेन्स (सन् १९२६ में) में पढ़े गए अपने शोध-पत्र में इस पर आपत्ति उठाई थी।

> Would it not be rather ludicruous to assume that the great Vrittikar could really demean himself to write such a petty farce as this ?

उनके कथनानुसार एक वृत्तिकार प्रहसन जैसे हीनकाव्य की रचना करके जनता के उपहास का विषय कदापि नहीं बनना चाहेगा। परन्तु सत्य तो यह है कि सहृदय विद्याप्रेमियों के मानस-सर में किसी भी समय, किसी भी प्रकार की भाव-लहरियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। गम्भीर विचारार्णव में डूबा हुआ दार्शनिक भी कभी हास्य - व्यंग्य द्वारा अपना तथा अपने साथियों का चित्तरञ्जन करता मिल सकता है। एक ही व्यक्ति में ये दो विरुद्ध स्वभाव के द्योतक लक्षण एक ही काल में भले ही न मिलें परन्तु प्रसंगवश उनकी चित्तवृत्ति वदल भी सकती है। नाट्यकला में इनका ही प्रदर्शन किया जाता है।

गम्भीरता और विनोदवृत्ति एक दूसरे के सहायक हैं। मानसिक विश्रान्ति के लिये मनुष्य हास्य का मार्ग अपनाता है। महात्मा गाँधी जैसे संत

---

१- वोधायन कविरचिते, विख्यात भगवदज्जुकाभिहिते अभिनेयेऽतिगंभीरे, विशदानुना करोमि गूढार्थान् ॥ भगवदज्जुकीयम् (टीका) पृ० १.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



योगी पुरुष का जीवन इस तथ्य को प्रमाणित करता है। वह कहा करते थे कि यदि विनोद का महत्व न समझकर मैं उसकी उपेक्षा करता तो मेरा जीवन ही समाप्त हो गया होता।

इसी प्रकार मानव में बौद्धिक विकास होने या उसके अन्तस्तल में काव्य के बीज के प्रस्फुटित होने का भी कोई निश्चित समय नहीं होता। भारतीय-साहित्य के इतिहास तथा पतञ्जलि के महाभाष्य आदि ग्रन्थों का अवलोकन करने पर हमें वररुचि (वाररूचं काव्यम्) जैसे वैयाकरण के कवि होने का प्रमाण प्राप्त होता है। वररुचि का अकेला (दृश्य काव्य) उभयाभिसारिका शीर्षक एक-नट नाटक (भाण) मिलता है। भाण एवं प्रहसन लगभग एक ही कोटि के रूपक होते हैं। यदि वैयाकरण भाण की रचना कर सकता है तो एक वृत्तिकार के "भगवदज्जुकम्" जैसे प्रहसन के कर्ता होने में सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये। श्रीयुत वाचस्पति गैरोला के संस्कृत-साहित्य के इतिहास से ज्ञात होता है कि भगवदज्जुकम् ईसा की प्रथम दो शताब्दियों के आसपास लिखा गया एक प्राचीनतम प्रहसन है और पल्लवनरेश महेन्द्रविक्रमन् के एक शिलालेख में "मत्तविलास" प्रहसन के साथ उक्त प्रहसन का उल्लेख होने के कारण कुछ लोग उसे भी "महेन्द्रविक्रमन्" (७०० ई) की कृति मानते हैं। उक्त कथन के प्रथमांश में यह सत्यता अवश्य दिखाई देती है कि यह प्राचीनतम हास्य-प्रधान रचना है किन्तु यह महेन्द्रविक्रमन् की ही दूसरी कृति प्रतीत नहीं होती। कारण, 'भगवदज्जुकम्' के आमुख में रचयिता का नाम नहीं मिलता, जबकि मत्तविलास की प्रस्तावना में इसके लेखक महेन्द्रविक्रमन् का नाम उल्लिखित है। यदि भगवदज्जुकीयम् भी मत्तविलासकार की ही रचना होती तो इसमें भी गुणभर, मत्तविलासादि उपाधिधारी महेन्द्रविक्रमन् वर्मा का नाम होना चाहिये था। यहाँ उनके अपने नाम को गुप्त रखने का कोई कारण नहीं है।

इस विवाद में अधिक न पड़कर हम इसे इसकी टीका में निर्दिष्ट बोधायन कवि की रचना मानकर ही इसकी समीक्षा करेंगे। यद्यपि टीकाकार का नाम भी हमें ज्ञात नहीं है तथापि इनकी टीका में गुरुचरणों की स्मृति में उद्धृत अपने गुरु द्वारा रचित श्लोक के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि ये भगवदज्जुकीय के टीकाकार नारायणभट्ट के एक शिष्य थे। उसी श्लोक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



का "गुरूभरूत्पुराधीश्वर[1]" पद मलाबार के गुरूवायुर नामक मन्दिर के एक प्रसिद्ध देवता का नाम है।

इसी देवता की स्तुति के रूप में श्री नारायण भट्ट ने १५९० ई. में "नारायणीय" शीर्षक मन्त्रों की एक पुस्तिका लिखी थी। यह टीका भी १७ वीं शताब्दी के आरम्भ में इनके किसी शिष्य ने रची होगी। भवभूति के "उत्तर-रामचरित" नाटक पर इनके इसी शिष्य द्वारा रचित 'भावार्थ - दीपिका' टीका भी जयन्तमंगलम् की "पालीयम् मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी" में सुरक्षित है। इस टीका के अन्त में भगवदज्जुकम् प्रहसन का नाम भी निर्दिष्ट है।

इस लघु प्रहसन में कवि की विद्वत्ता पद-पद पर झलकती है। परिव्राजक और शाण्डिल्य के मुख से निःसृत जो वार्तालाप सुनाई देता है, उससे बोधायन कवि के सांख्य एवं योग-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित होने का पता चलता है।[2] इसमें सांख्य के सामान्य सिद्धान्त ही वर्णित हैं, अतः अन्य किसी प्रमाणिक एवं पुरातन ग्रन्थ में स्थित वाक्यों से उनकी तुलना नहीं की जा सकती। जहाँ शाण्डिल्य बौद्ध तथा सांख्य-सिद्धान्तों को पहचानने में भूल करता और अष्ट-प्रकृतियों, षोडशविकारों, आत्मा, पञ्चवायु, गुणत्रय, मनस् आदि की चर्चा करता है, वहाँ उसकी इस तालिका में गिनाए गए संचर और प्रतिसंचर ये दो अन्तिम पद सांख्यकारिका में उपलब्ध नहीं होते।

> शाण्डिल्यः- सुणादु भअवो। "अष्टौप्रकृतयः, षोडशविकाराः
> आत्मा, पञ्चवायवः त्रैगुण्यं, मनः, संचरः, प्रतिसंचरश्चेति।[3]

तत्व-समास में ये पद प्राप्त होते हैं, परन्तु यह कोई प्राचीन ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता। अतएव उक्त विवेचना से भी "भगवदज्जुकम्" के समय का ठीक-ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। परिव्राजक तथा शाण्डिल्य (गुरुशिष्य) की बातों में प्राचीन नैयायिकों की वेदवेदान्तविषयक शास्त्रीय चर्चा-शैली तथा गीता

---

१- भगवदज्जुकीयम् (टीका) - पृ० ४१.
२- भगवदज्जुकम् - पृ० ४५.
३- भगवदज्जुकम् - पृ० ५०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



के उपदेशों की छाप देखकर भी इसकी प्राचीनता का सहज अनुमान हो सकता है। यथा —

शाण्डिल्यः- जो अजरो अमरो अच्छेज्जो अभेज्जो सो अत्ताणाम।
जो हसेदि,हासेदि,सअदि,भुज्जदि,विलअं च गच्छदि सो कम्मत्ताणाम।[1]

तुलना कीजिये—

अच्छेद्यो ऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥[2]

इतना ही नहीं बोधायन की इस कृति की स्थापना में भास के नाटकों की तरह कर्ता के नाम तथा निवास-स्थान आदि के संकेतों के अभाव को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह रचना उस समय के बहुत पहले लिखी गई होगी जब से नाट्य-कार प्रस्तावना में अपने नाम एवं पते का निर्देश करने लगे थे। भरत के नाट्यशास्त्र में यह नियम लिखित है, परन्तु उसका पालन भास के परवर्ती कवियों ने ही किया। इन विशेष लक्षणों से लक्षित दृश्य काव्यों को श्री पिशरोतीजी किसी की स्वतंत्र रचना न मान कर एक संकलन मात्र(Compilation) कहते हैं। यहाँ तक कि भास के ख्याति-प्राप्त सुन्दर रूपकों के विषय में भी उनकी यही धारणा है। किन्तु भास-कवि के नाटकों की चारुता को देख कर उन्हें किसी के द्वारा किया गया संग्रह-मात्र मान लेना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार बोधायन कवि के इस उत्कृष्ट प्रहसन को भी ऐसा कहना ठीक नहीं मालूम देता।

सांख्य तथा योगदर्शन के पण्डित होने के साथ-साथ बोधायन कवि के नाट्य-शास्त्र-विद् होने का प्रमाण भी इसी रचना में उपलब्ध होता है। भारतीय-नाट्य-शास्त्र के नियम का पालन न करके इसकी स्थापना में कवि ने रचयिता के नाम का उल्लेख करने के स्थान पर सूत्रधार के मुख से एक प्रहसन का अभि-नय करवाने की सूचना दिलवाई है। इसी स्थान पर अङ्कित रूपक-भेदों की पुष्पिका[3] में नाटक और प्रकरण से विकसित होने वाले दशरूपकों के साथ

१- भगवदज्जुकम् पृ० ३१.
२- श्रीमद्भगवतगीता। २. २४.
३- भगवदज्जुकम् - पृ० ५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



'वार' और 'सल्लाप' को स्थान देकर परम्परया स्वीकृत रूपक के दस भेदों की संख्या बारह तक पहुँचा दी गई है। इसी सूची में सम्मिलित 'सल्लाप' का नाम तो उपरूपकों के साथ परिगणित होने के कारण परिचित-सा प्रतीत होता है, परन्तु 'वार' एक नया ही नाम प्रतीत होता है। इनमें कवि ने हास्यप्रधान प्रहसन को ही प्रमुख स्थान दिया है।

दार्शनिक विवेचन के आधिक्य के कारण यह ग्रन्थ कहीं कहीं गूढ़ सा हो गया है, किन्तु दर्शनशास्त्र के रूखे-सूखे वाक्य भी हास्यरस में डूबे होने के कारण नीरस नहीं प्रतीत होते।

परिव्राजकः – रागद्वेषयोर्मध्यस्थता । कुतः –
सुखेषुदुःखेषु च नित्यतुल्यतां
भयेषु हर्षेषु च नातिरिक्तताम्।
सुहृत्स्वमित्रेषु च भावतुल्यतां
वदन्ति तां तत्त्वविदो ह्यसंगताम् ॥[1]

+ + + +

ज्ञानमूलं तपः-सारं सत्त्वस्थं द्वन्द्वनाशनम्।
मुक्तं द्वेषाच्च रागाच्च योग इत्यभिधीयते ॥[2]

प्रसंगवश यत्र तत्र शृंगाररसमूर्च्छनात्मक गीतियाँ श्रोता का मन मोह लेती हैं जिससे कवि के कवित्व का परिचय प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ जब गणिका वसन्तसेना और चेटी उद्यान में मधुरसुरों में गाती हैं तो इस उद्यान में बसने वाले सहकार-रूपी शरीरधारी कामदेव के ज्याघोष के समान मधुर स्वर से मुनि का मन भी मुग्ध हो जाता है—

परभृत - मधुकरनाद –
ज्याघोषः काम एष उद्याने।
तिष्ठति सहकार-शरो
मुह्यति नूनं मनोपि मुनेः ॥[3]

---

१– भगवदज्जुकम् - पृ० २३.
२– भगवदज्जुकम् १५, पृ० ४८.
३– भगवदज्जुकम् १८, पृ० ५६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इतना ही नहीं, कामिनियों के कटाक्ष का सखा कामदेव (कन्दर्प) जिसे मधुमास वसन्त पर गर्व है प्रफुल्लित 'अशोक' रूपी शरों से योगियों के हृदय को भी घायल कर देता है।

मधुमास – जातदर्पः
कन्दर्पः कामिनीकटाक्षसखः ।
अपि योगिनामिह मनो
विध्यति फुल्लैरशोकशरैः ।।[1]

पुष्पोद्यान में प्रविष्ट शाण्डिल्य द्वारा उद्यान का वर्णन नाट्यकार की वर्णनाशक्ति का परिचायक है।

शाण्डिल्यः—(उद्यानं निरूप्य) ही। ही। चंपअज्जुणकदम्बणी-वणि
सिन्दुवारतिणए...सुहावहं अहो । रमणिज्जं खु इदं उउआणं ।[2]

सर्प द्वारा डसे जाने के वाद विष के प्रभाव से संतप्त गणिका द्वारा उसकी मानसिक एवं शारीरिक शिथिलता का वर्णन बड़ा ही मर्म-स्पर्शी है।

गणिका – सीददि विअ में सरीरं उव्भमन्ती विअ में दिट्ठी.
आउक्रिअं विअ में हिअअं, णिग्गच्छन्ति विअ में पाणा। सइदुं इच्छामि।[3]

इस प्रसंग में 'भगवदज्जुकीयम्' में चित्रित वैद्यजी का चरित्र भी विचित्र है। वैद्यराज लटकमेलकादि के वैद्य के समान अपने शास्त्रज्ञान से शून्य होने पर भी उनसे भिन्न है। इनकी भाषा संयत और शिष्ट प्रतीत होती है। उपचार करते समय 'पुस्तक पुस्तक' कह कर वैद्य अपना अज्ञान प्रकट करते हैं जो हास्य-जनक है।

---

१– भगवदज्जुकम् १६, पृ० ६०.
२– भगवदज्जुकम्, पृ० ३६.
३– भगवदज्जुकीयम् - पृ० ६७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



गणिका – मूर्ख ! वैद्य ! वृथावृद्ध ! प्राणिनामन्तकमपि न जानीषे। कतमेनेयं सर्पेण व्यापादितेति दद।

० ० ० ० ० ० ०

गणिका – ब्रूहि, ब्रूहि, वैद्यशास्त्रम्

वैद्यः – सुणादु भोदी।
वातिकाः पैत्तिकाश्चैव श्लै – श्लै – अविहा।
पुत्थअं, पुत्थअं।[1]

इस प्रहसन में गणिका की कथा आती है। इसका सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह कृति शुद्ध प्रहसन की कोटि में रक्खी जा सकती है। कारण, इसकी गणिका वसन्तसेना भी शूद्रक के मृच्छकटिक में चित्रित वसन्तसेना की तरह कुलजा नारी है। उसका रामिलक के प्रति प्रेम भी वैसा ही निष्कपट है जैसा मृच्छकटिक में चित्रित वसन्तसेना का चारुदत्त के प्रति। उसके आचार-विचार लटकमेलक, हास्यार्णव, नाटवाट आदि प्रहसनों में आलिखित वेश्याओं से भिन्न हैं। उसका स्थान कहीं अधिक उच्चस्तर का है। इसमें (हेमचन्द्रादि लक्षण-शास्त्रियों के अर्थ में) विकृत भाषा का कहीं प्रयोग नहीं मिलता। नाट्य-शास्त्र के अनुसार शुद्ध-प्रहसन में भगवत्, तापस आदि को स्थान मिल सकता है।[2] भवदज्जुकीयम् में शाण्डिल्य एवं गुरु परिव्राजक को भगवत् माना जा सकता है। शिष्य उसे इस सम्वोधन से सम्वोधित भी करता है। इसलिये श्री मनकड[3] भी इसे शुद्ध-प्रहसन मानते हैं।

इसमें आदि से अन्त तक सरल किन्तु सरस भाषा में हास्य-व्यंग्य प्रस्तुत किए गए हैं। इसके पात्र भी विशिष्ट लक्षणान्वित हैं और कवि ने बड़ी निपुणता से इसे मञ्च के उपयुक्त बनाया है। अब तक के प्रकाशित प्राचीन प्रहसनों में सर्वोत्कृष्ट रचना होने के कारण इसे 'प्रहसनरत्नम्' ठीक ही कहा गया है। इसके कवि की गणना भी उत्कृष्ट कवियों में की जा सकती है।

---

१– भगवदज्जुकीयम् - पृ० ६०,

२– ना. शा. अध्याय १८, १०३-१०४, पृ० ४४८-४४९.

३– Types of Drama, D. R. Mankad.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इसकी विलक्षणता ने बहुत से उत्तरवर्ती कवियों को प्रभावित किया है जिनमें रामपाणिवाद का नाम प्रमुख है ।

## मदनकेतु प्रहसन

मदनकेतु चरित नामक प्रहसन में सूत्रधार की पंक्तियों[1] में मद्रास के केरल प्रान्त के विख्यात कवि रामपाणिवाद को इसका रचयिता बतलाया गया है। इन्होंने १८वीं शताब्दी के आरम्भ में अपनी कृतियों के रूप में संस्कृत-साहित्य को बहुत कुछ दिया है। इनकी लीलावती एवं चन्द्रिका नाम की दो और रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं जो वीथी (रूपक) की कोटि की हैं । अनुसंधान-कर्ताओं में इस विषय पर मतभेद है कि प्रस्तुत प्रहसन के रचयिता रामपाणि-वाद और कुछ मलयालम् रचनाओं एवंतु ल्लल कथाओं के लेखक 'कुंचन नप्पियार' दोनों एक ही व्यक्ति हैं। यह समस्या अब तक हल नहीं हो पाई है।

नव युग की नई कृति होने के कारण, कवि को अपनी योग्यता पर विश्वास नहीं है या यों कहिए कि वह बहुत विनयशील है। उदारतावश इन्हें पुराने विद्वान रसिक-कवियों की रचना के बाद अपनी वस्तु प्रस्तुत करते समय संकोच होता है जो इसकी प्रस्तावना में स्थित सूत्रधार एवं पारिपार्श्विक के वार्तालाप[2] तथा ग्रन्थ के अन्त में लिखित वाक्यों[3] से स्पष्ट झलकता है। इन वाक्यों से कवि में आत्मविश्वास का अभाव भी स्पष्ट प्रतीत होता है। इससे कवि की अयोग्यता नहीं, अपितु विनम्रता ही प्रकट होती है। उसकी निपुणता तो ग्रन्थ को सुन्दर ढंग से आरम्भ करने में ही फूटी पड़ती है। सरस्वती के चरणों में श्रद्धा के दो पुष्प अर्पित करने को व्याकुल कवि इसे सहृदयसमाज के समक्ष प्रस्तुत कर ही देता है। कारण, जो सज्जन हैं वे

---

१- सूत्रधारः – मारिष । अपि शृणोषिमंगलग्रामवास्तव्येन रामपाणिवादेन विरचितं मदनकेतुचरितं नाम प्रहसनमस्मद्वशे वर्तत इति । मदनकेतुचरित पृ० २

२- स पुनर्यथानैपुणं क्रियत एव । किन्तु आधुनिकानां निबन्धान्यवधून्वन्ति सन्त इति केवलमुदास्यतं । मदनकेतुचरित पृ० २.

३- प्रहसनलक्षणलेशैः स्पृष्टं चेत् प्रहसनाभिधां लभताम् ॥
नो चेत् पुनरन्यदिदं विनोदं रामपाणिवादस्य ॥ मदनकेतु प्रहसन पृ० ५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



कवि के नए काव्य में यदि गुण का अणुमात्र भी देख लेते हैं तो उसके छिद्रों की परवाह नहीं करते । ऐसे लोगों के सामने बच्चा भी स्वकीय कृतियों द्वारा अपनी प्रगति का परिचय दे सकता है । देदीप्यमान चन्द्रमा के सामने भी क्या तारागण नहीं चमकते ? चन्द्र के साथ उनका भी अस्तित्व होता है ।

बालोऽप्यात्मकृतिप्रकाशनविधौ शक्नोति तेषां पुरो
दीप्तिं विन्दति किं न चन्द्रमहसामग्रेऽपि तारागणः ।।[१]

उदारमना रामपाणिवाद को इस प्रकार ग्रन्थारम्भ करते देख हमें कवि कालिदास की याद आ जाती है, जिनके मन में मालविकाग्निमित्र को जनता को भेंट करते समय ऐसे ही भाव उत्पन्न हुए थे ।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद् भजन्ते
मूढ़ः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ।।[२]

उनके अनुसार कोई काव्य पुराना होने पर ही उत्तम तथा ग्राह्य नहीं होता और न नया होने पर वह त्याज्य ही होता है । वस्तुतः विद्वान् उसकी सम्यक् परीक्षा एवं समीक्षा करके उसके गुण तथा अवगुण अलग करके बतला देते हैं । इसके विपरीत मूर्ख दूसरों की कही हुई बातों का अन्धाधुन्ध अनुकरण करते हैं । किसी भी कवि की कृति को कसौटी पर कसने वाले विवेकशील पाठक या दर्शकों का एक अलग समाज होता है । तदनुसार मदनकेतु को नव-युग की नवीन रचना होने के कारण बिना सम्यक्विवेचन के अवर मान लेना कवि के साथ अन्याय करना होगा । एतदर्थ इसका परिशीलन आवश्यक प्रतीत होता है । अस्तु—

इसमें बौद्ध भिक्षु विष्णुमित्र, शिवदास, राजा मदनकेतु, चन्द्रलेखा, अनंगलेखा आदि की प्रणयलीला वर्णित है । मदनकेतु लंका का प्रसिद्ध राजा

१– मदनकेतुचरित पृ० २.
२– मालविकाग्निमित्र.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



है जिसने कलिंग पर विजय प्राप्त करके अपने कनिष्ठ भ्राता मदनवर्मा को वहाँ का राजा बना दिया।

लंका में विष्णुमित्र नामक बौद्ध-भिक्षु अपने धर्म के विपरीत आचरण करने लगता है। वह अनंगलेखा नामक वेश्या के प्रति अनुरक्त है और उसके प्रेम में अन्धा हो रहा है।

'कथमपि नयाम्येष दिवसान्'

\+ \+ \+ \+ \+ \+

ध्यायं ध्यायं प्रियां तां पदमपि नोत्सहे किं करोमि ॥

इस प्रकार के प्रलापों से उसका चरित्र जनता के सामने आता देख अपने राज्य में नैतिक पतन हो जाने की चिन्ता से आकुल राजा राज्य में धर्म की सुरक्षा के लिए अद्भुतयोगविद्या के ज्ञाता कापालिक शिवदास का सहारा लेता है और शिवदास को भिक्षु विष्णुमित्र की चारित्रिक बातों से अवगत कराकर इसका प्रतिकार करने का सविनय आदेश करता है। अपने मित्र कलिंगराज मदनवर्मा के अनुरोध पर लंकानरेश मदनकेतु के दरबार में पहुँचकर शिवदास उससे स्वयं मिलता है। बातों ही बातों में मदनकेतु के मन में स्थित द्रविड देश की रूपवती गणिका चन्द्रलेखा से प्रेम की बात को जानकर शिवदास उसकी प्रणयलीला में सहायक पीठमर्द का कार्य सम्पादन करने का वचन देता है।

राजा – (सहर्षमुत्थाय) सखे कथयामि ते भूतार्थम्।

......चन्द्रलेखेति प्रख्यातं किमपि गणिकारत्नमनुश्रूयते। तथाहि–

प्रत्यङ्गमङ्गनायास्तुङ्गकुचाभोगभुग्नमध्यायाः

विचरद्विहरतिसततंविरहय्यानङ्गइनंमाम् ॥[१]

कंचुकी राजाज्ञा से भिक्षु को राजा के समक्ष उपस्थित करता है। अनंगलेखा की वृद्धामाता उसे खींचे जाते हुये देखती है। उसकी शिकायत यह है कि विष्णुमित्र उसकी पुत्री अनंगलेखा के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध

१– मदनकेतुचरित २१, पृ० ११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



बलात्कार करता पाया गया। उसे उचित दण्ड मिलेगा, इस आशा से आश्वस्त होकर वृद्धा लौट जाती है। कामुक भिक्षु बुरी तरह से ताड़ित होने पर भी, इसलिये प्रसन्न है कि इस बहाने उसे अपनी प्रेमिका के साथ कुछ क्षण व्यतीत करने को मिलेंगे–

कुट्टिन्या दृढमुष्टिकुट्टिकशतैर्निष्पिष्टसन्धीन्यपि
प्रायो नातिरुजं भजन्ति विकसच्चित्तस्य गात्राणि मे।[१]

विष्णुमित्र दरबार में बतलाता है कि वह रानी श्रृंगार-मञ्जरी की आज्ञा से अनंगलेखा को बुलाने के लिये गया था, कारण रानी को अनंगलेखा के नाम से संबोधित करने से राजा का उसके प्रति अनुराग झलकता था। राजा रानी की चाल को समझ कर उसके विनोदी स्वभाव की सराहना करना नहीं भूलता।

संस्कृत-साहित्य में योगियों एवं ऐन्द्रजालिकों द्वारा अद्भुत वस्तुओं का प्रदर्शन करने की परम्परा दिखाई देती है। राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी तथा हर्ष की रत्नावली में इस प्रकार के आश्चर्यजनक वर्णन मिलते हैं। उदाहरणार्थ कर्पूरमञ्जरी सट्टक में राजा भैरवानन्द नामक कौतुक-प्रदर्शनकर्ता ऐन्द्रजालिक से कोई आश्चर्यजनक वस्तु दिखाने का अनुरोध करता है। भैरवानन्द वहीं असम्भव को भी सम्भव कर दिखाता है –

दंसेमि तंपिससिणं वसुहावइण्णं
थंमेमि तस्य वि रविस्स रहं णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ
तं णत्थि भूमिवलए मह जं ण सज्झं॥
अतः —(भैरवानन्दो ध्यानं नाटयति)
राजा – अह ह, अच्छरिअं अच्छरिअं.........
आणीदा इअमम्भु देवकजणणी जोई सरेणाभुणा॥[२]

---

१- मदनकेतुचरित पृ० १३.
२- क. मं. १, २५-२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



योगीश्वर के इस चमत्कार को देख दर्शक आश्चर्य में डूब जाते हैं। इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए यहाँ कवि ने योगिराज शिवदास का सहारा लिया है। ध्यानस्थ शिवदास चन्द्रलेखा को राजा के सामने उपस्थित कर दर्शकों को एक जादूनगरी में पहुँचा देता है।

अवतरतु धरित्रीमेव राका-शशाङ्कः
पिवतु बकचकोरश्चन्द्रिकामेतदीयाम्।
अपि च विकचपुष्पा मल्लिका जङ्गमत्वं
व्रजतु भजतु चैनामुत्सुको भृङ्गराजः ॥[1]

ध्यान-मग्न शिवदास द्वारा सुन्दरी चन्द्रलेखा के नैसर्गिक सौन्दर्य को न देख सकने के कारण राजा को उस कापालिक पर दया भी आती है। उसकी मनोहारिणी छवि का चित्रण करने वाले श्लोक कवि की वर्णनाशक्ति एवं प्रकृति के सूक्ष्म-निरीक्षण के परिचायक हैं। यथा—

सखे शिवदास! मुधा खलु विफलयासि सभाधिनिमीलनेन लोचन-युगलम्[2]।... पश्य पश्य

संस्कृत-नाटकों में राजमहिषी राजा के प्रणय-व्यापार में बाधक के रूप में प्रदर्शित की जाती रही है। विक्रमोर्वशीय, कर्पूर-मञ्जरी एवं रत्नावली आदि रूपकों के परिशीलन से इसकी पुष्टि होती है। रामपाणिवाद के मदनकेतुचरित में भी राजा की धर्मपत्नी शृङ्गार–मञ्जरी की उपस्थिति प्रेम-विह्वल राजा एवं चन्द्रलेखा के मिलन में बाधा डालती है। चन्द्रलेखा द्वारा यह संकेत किये जाने पर भी कि महारानी की ओर से इसका विरोध होगा, प्रेमान्ध राजा चिरप्रतीक्षित प्रिया के साथ मिलन के सुख को त्याग नहीं सकता।

राजा – प्रिये। मा मैवम् । कुतः
देवीविरोधमनुशङ्क्य तवाङ्गसङ्ग –
सौख्यं चिराभिलषितं कथमुज्जहामि।
व्यालीभयेन मलयाचलकन्दरस्थं
को वा पटीरतरूसारमपाकरोति ॥[3]

---

१– मदनकेतु प्रहसन २५, पृ० १५.
२– मदनकेतु प्रहसन २७, पृ० १७.
३– मदनकेतु प्रहसन ३१, पृ० १९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



प्रेमिका की आशंका को निर्मूल सिद्ध करने के लिये वह मलय पर्वत की कन्दराओं में स्थित नागिनों के साथ रह कर भी अपनी स्वाभाविक शीतलता को न छोड़ने वाले चन्दन वृक्ष का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार चन्दन को प्राप्त करने वाला सर्प के डर से मैदान छोड़कर भाग नहीं सकता उसी प्रकार कामासक्त राजा भी रानी शृंगार-मञ्जरी के भय को त्याग कर चन्द्रलेखा के रूपलावण्य के सामने अपने घुटने टेक देता है। इस प्रसंग में राजा के मुख से निकले हुए उद्गार कुमारसंभव में पार्वती के कठोरतप के आगे हारे हुए शिवजी के वचनों से मिलते हैं।

सुन्दरि !
विव्वोकद्रविणेन केवलमहं क्रीतोऽस्मि दासोऽस्मि ते।[१]

यद्यपि कुमारसंभव में कालिदास का उद्देश्य भिन्न है, उससे रामपाणि-वाद की तुलना नहीं की जा सकती तथापि यहाँ कवि में कालिदास का अनु-करण करने का प्रयास स्पष्ट लक्षित होता है।

"अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मिदासः क्रीतस्तपोभिरिति ।।"

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। खम्भे के पीछे छिप कर राजा तथा चन्द्रलेखा की कामकेलि को देख लेने के कारण क्रोध से बौखलाती हुई रानी को देख राजा के सामने महान् संकट उपस्थित हो जाता है।

राजा (सविलक्षं स्वगतम्) — हन्त। महति संकटे पतितोऽस्मि।
(इति चन्द्रलेखां मुञ्चति)

अब कामोन्मत्त राजा का व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है। वह चौंककर चन्द्रलेखा को दूर कर देता है। इस दृश्य से शृंगारमञ्जरी के हृदय में सपत्नी के प्रति जागी हुई ईर्ष्या का कवि ने मार्मिक चित्रण किया है।

देवी मा खु मा खु वालीमएण चन्दणरसं मुंचेहि ।।[२]

---

१– मदनकेतु प्रहसन ३०, पृ० १८.

२– मदनकेतु प्रहसन पृ० २०

( इस स्थल को पढ़ते समय विक्रमोर्वशीय के कुछ प्रसङ्गों तथा रत्नावली की वासवदत्ता के सागरिका के प्रति ईर्ष्या-भरे व्यवहार का स्मरण हो आता है। )

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



राजा के रँगे-हाथों पकड़े जाने के कारण यह स्थल दर्शकों के लिये मनो-विनोद का विषय बन गया है। कापालिक शिवदास के समझाने-बुझाने पर रानी शृङ्गारमञ्जरी मान जाती है और चन्द्रलेखा के साथ भगिनीवत् व्यवहार करने लगती है। अन्तःपुर में उसको अलंकारों से मण्डित भी किया जाता है, जहाँ वह मदनकेतु की प्रतीक्षा करती है।

शिवदास के चमत्कार को देखकर भिक्षु विष्णुमित्र प्रभावित हो जाता है। वह उसके सामने अपने मनोरथ की पूर्ति में विलम्ब के कारण उत्पन्न व्याकुलता को प्रकट करता है। काम के वश में पड़े हुए भिक्षु को-जो कर्तव्याकर्तव्य तथा औचित्यानौचित्य के विवेक से शून्य था, देख कर शिवदास को कलिंग नरेश मदनवर्मा को धर्म की सुरक्षा में साथ देने का-दिया हुआ वचन याद आ जाता है।[1]

इसके लिये वह कोई नई चाल चलना चाहता है। वह विष को विष से ही मारने का यत्न करता है। 'कण्टकं कण्टकेनैव' के अनुसार वह बौद्ध भिक्षु को विषय–वासना में लिप्त करके इतना छका देना चाहता है कि वह भविष्य में इस मार्ग पर चलने का साहस ही न कर सके।

साधूक्तं मदनवर्मणा। (विचिन्त्य) भवतु। चापल्यस्य परां काष्ठां मयायमनुभाव्यते ।। ततस्संसारभोगेषु विरक्तिं प्रापयिष्यते ।।[2]

वह भिक्षु को मद्य से विमुख करने के लिये मद्य का गुणगान करता है और उसे मद्य पिलाकर पूर्ण तृप्त करने का यत्न करता है। पहली बार भिक्षु के मना करने पर भी 'साक्षात्परिव्राडिति युक्तमेतत्' इत्यादि कहता हुआ उसे पान करा ही देता है।[3]

---

१– मदनकेतु प्रहसन ३७, पृ० २३, १७, पृ० ६,

२– मदनकेतु प्रहसन पृ० २३.

३– मदनकेतु प्रहसन ३६, पृ० २४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



यहाँ गूढ़ व्यंग्य छिपा हुआ है। भिक्षु के धर्म–विरुद्ध व्यापार पर कटाक्ष किया गया है। विष्णुमित्र जैसे दूसरे ढोंगियों पर भी यह बात लागू होती है। इसी प्रसंग में राजा भी राज्य में साधु-सन्तों को मद्यपान करने एवं वेश्यागामी होने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। राजा की यह घोषणा असंगत होने के कारण हास्य की सृष्टि करती है।[1]

शिवदास अनंगलेखा द्वारा यह कार्य सम्पादित करवाना चाहता है। गणिका का काम ही लोगों को शृंगार में लिप्त कर बहकाना होता है। वेश्या धन-लोलुप होती है। लखपति ही गणिका का प्रियतम होता है। चाहे वह अन्धा, लूला, लँगड़ा ही क्यों न हो?[2]

"यतो वित्तापत्तिः स खलु गणिकानां प्रियतमः ॥"

जब अनंगलेखा विष्णुमित्र को रास्ते पर लाने को तैयार नहीं दिखती तो शिवदास भिक्षु को उसके आश्रम की पवित्रता और वेश-गृह की अपवित्रता में भेद बतलाता हुआ इसे कलुषित मार्ग को छोड़ देने की सलाह देता है॥[3]

"क्वासौ संसारसिन्धोस्सुतरणतरणिर्योगिनामाश्रमस्ते"

अर्थात —

कहाँ संसार-सागर को सरलता से पार करा देने वाला योगियों का आश्रम और कहाँ चन्द्रोदय की शोभा से रंजित रात्रि के समान वेश-वधुओं के सग का क्षणिक सुख? (दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है)। अतः अपने कल्याण की कामना करते हुए सज्जनों की उज्जवल सभा के बीच वास करो, तीर्थों का स्नान करके इस दुराशा से मलिन हुए मन का परिष्कार करो।

शिवदास योगविद्या से अनंगलेखा के शरीर में प्रविष्ट होकर भिक्षु के मन में वैराग्य उत्पन्न करके सपरिवार राजा को दिखलाना चाहता है। आग ही अग्नि का मूल कारण होती है।

---

१- मदनकेतु प्रहसन ४०, पृ० २४

२- मदनकेतु ४५, पृ० २६.

३- मदनकेतु ६०, पृ० ३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



स्त्रीमूलस्योपतापस्य स्त्रिय एव प्रतिक्रिया ।
वह्निश्च वह्निमूलस्येत्यामनन्ति मनीषिणः ।।[1]

वह अपनी यौगिक शक्ति से अनंगलेखा को सर्प से डँसवा कर उसकी आत्मा को किसी जन्तु में डाल देता है । इस घटना से त्रस्त होकर भिक्षु रक्षणार्थ राजा के पास पहुँचता है । इसी बीच शिवदास की आत्मा से युक्त अनंगलेखा के शरीर को चलता-फिरता देख राजा-रानी आदि आश्चर्य में डूब जाते हैं । इस स्थल पर बोधायन कवि के भगवदज्जुकीय का प्रभाव स्पष्ट है । यहाँ भी कथावस्तु द्वारा हास्योत्पादन किया गया है । अनंगलेखा भिक्षु के प्रति अपना प्रेम प्रकट करने लगती है । उसका प्रेम प्रकाशन अपनी सीमा को पार कर इतना बढ़ जाता है कि भिक्षु को भरी सभा में उसके इस व्यवहार से लज्जित होना पड़ता है । वह लज्जा से गड़ जाता है । इतना होने पर भी वह अनंगलेखा को हृदय से चाहता है । परन्तु अनंगलेखा के व्यवहार में नर्युचित कुल, शील तथा लज्जा के अभाव को देख कर वह ऊब जाता है । वीभत्स-रस का संचार होने के साथ -साथ उसकी बातों से ग्रामीणता भी टपकने लगती है । इसके फलस्वरूप पहले जो कामुक था, अनंगलेखा पर प्राण देता था, वही उसका तिरस्कार करने लगता है ।

" वीभत्सन्ते जगति युवतिम्यः सुमतयः। [2]

तिरस्कृत होकर शिवदास की आत्मा से युक्त अनंगलेखा का शरीर भागना चाहता है । राजा मदनकेतु भी रुष्ट होकर उसे दण्डित करने की धमकी देता है । उसी क्षण प्रविष्ट होने वाले डाम्भक के हाथ में शिवदास के शव को देख दर्शक योगिराज की आकस्मिक मृत्यु पर दुःख प्रकट करते हैं । शिवदास की आत्मा अनंगलेखा का तन त्यागकर अपने शरीर में पुनः प्रविष्ट हो जाती है। माता को पुत्री के लिये दुःखी देख शिवदास उसे भी पुनर्जीवित कर देता है । इस प्रकार अनंगलेखा द्वारा दिखलाए गए ग्रामीण व्यवहार का रहस्य भी खुल जाता है ।

---

१- मदनकेतु ६५, पृ० २३.
२- मदनकेतु पृ० ४०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



भूमौ यत्किल संचिनोति दुरितं धर्म्यात् पथः प्रच्युतो,
लोकस्तत् खलु भूपतौ परिणभत्यम्भो यथाम्भोनिधौ ।
इत्यालोच्य हिताय ते यतिममं दुर्मार्गपातोन्मुखं
तत्वं बोधयितुंतुभवाधिजलधेरेष प्रयत्नो मम ।[1]

इस प्रकार कवि ने शिवदास नामक पात्र द्वारा एक उच्च उद्देश्य की पूर्ति करवाई है जिसमें जन-कल्याणकारिणी भावना छिपी है ।

परिषदमाराधयितुं प्रयतेथाः सर्वथा दुराराधाम् ।
गणिकामनङ्गलेखां भिक्षुरसौ विष्णुमित्र इव ।।[2]

वैदर्भी रीति में रचित मदनकेतु प्रहसन अपने ढँग का निराला है। १८ वीं शताब्दी की रचना होने पर भी इसमें १२ वीं शताब्दी के लटकमेलकादि प्रहसनों में चित्रित समाज का ही चित्र अंकित किया गया है। लटकमेलकादि की भाँति कहीं-कहीं अश्लील वर्णनों से युक्त होने पर भी रचयिता ने इसे इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि इसमें अन्य मध्ययुगीन प्रहसनों की अपेक्षा अभद्रता-सूचक दृश्य कम आये हैं ।

इसमें कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो पूर्णतया काल्पनिक हैं तथा अद्भुतरसात्मक (Romantic) जगत् का निर्माण करते हैं —जैसे योग-विद्या का अतिरञ्जित चित्र । भारत में योग-विद्या का प्रभाव प्राचीनकाल से रहा है, परन्तु आधुनिक युग की दृष्टि से इसे अस्वाभाविक माना जा सकता है । फलतः आज के विचारक इसे अवर रचना मान सकते हैं । आंग्ल-साहित्य में भी शेक्सपियर ने इस प्रकार के कृत्रिम रोमान्टिक और काल्पनिक-तत्वों का सहारा लिया है-उदाहरणार्थ मैकबेथ, हेमलेट, ' मिडसमरनाइट्स ड्रीम ' आदि में प्रेतात्माओं का प्रवेश कराया गया है । चलचित्र जगत में आज भी दर्शकों को जादूनगरी में पहुँचा देने वाले दृश्य दिखलाए जाते हैं, जिन्हें जनता बड़ी रुचि से देखती है । इससे स्पष्ट है कि आधुनिक युग में भी ऐसी बातों का सम्मान होता है ।

---

१– मदनकेतु ११० पृ० ५४.

२– मदनकेतु ५. पृ० ३; मदनकेतु ११४, पृ० ५५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



कारण, अप्रिय सत्य की अपेक्षा कल्पना से रञ्जित असत्य चित्रण अधिक प्रभावोत्पादक हुआ करता है।

इस प्रहसन में मुख्यतः बौद्ध-भिक्षु विष्णुमित्र और शिवदास की कथा वर्णित है। फिर भी इसका शीर्षक 'मदनकेतु' रक्खा गया है। नाट्याचार्यों ने नाटक-सम्बन्धी जो नियम बतलाये हैं, उनका पालन न करके कवि ने राजा के नाम पर ही इसका नामकरण कर दिया है [1]

यहाँ दो प्रकार के राजाओं का चित्र उपलब्ध होता है। एक है रात दिन भोगविलास में रत रहने वाला लंका का राजा मदनकेतु, जो प्रेम मार्ग में विश्वासघात करता है। उसकी बातों से उसकी छलियावृत्ति और नारी की मोहिनी-शक्ति के आगे उसकी पराजय झलकती है।[2]

"नम्रालापैरमृत – मधुरैरन्यमाह्लादयन्ती
नारीनाम्ना जयति हि जगन्मोहिनी कापि शक्तिः ॥

कबि ने उस पर गहरा व्यंग्य कसा है। रानी की उपस्थिति में वह उसे त्रैलोक्य-रत्न बतलाता है और रानी के चले जाने पर शिवदास से चन्द्र-लेखा के प्रति अपने प्रेम की बात व्यक्त करता है।[3]

## मदनकेतु पर भगवदज्जुकम् का प्रभाव

इसके विपरीत दूसरा राजा है कलिंगराज मदनवर्मा, जो सदा राज्य में धर्म संस्थापना की चिन्ता में लीन रहता है। योग-विद्या द्वारा एक महान् उद्देश्य की पूर्ति करने की कवि की कल्पना निस्सन्देह उत्कृष्ट है। यह प्रेरणा कवि ने बोधायन के 'भगवदज्जुकीयम्' प्रहसन से ली होगी, ऐसा भासित

---

१– नामकार्यं नाटकस्य गर्भितार्थ-प्रकाशम्। यथा – 'रामाभ्युदयः'। नायिकाख्यानात्संज्ञा-प्रकरणादिषु। यथा मालतीमाधवादि। नाटिकासट्टकादीनां नायिकाभिविशेषणम्। यथा –रत्नावली कर्पूरमञ्जरी।
साहित्यदर्पण.

२– मदनकेतु पृ० ४५.

३– मदनकेतु १३५, पृ० ७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



होता है। मदनकेतु प्रहसन एवं भगवदज्जुकीयम् के तुलनात्मक अनुशीलन से दोनों कृतियों में निम्नांकित साम्य दिखाई देता है यथा —

| भगवदज्जुकीयम् | मदनकेतु प्रहसन |
|---|---|
| (क) यहाँ वसन्तसेना की मृत्यु का कारण सर्पदंशन है। | अनंगलेखा के मरण का हेतु भी सर्प है। |
| (ख) भगवदज्जुकम् में परिव्राजक वसन्तसेना के शरीर में प्रविष्ट होता है। | यहाँ शिवदास अनंगलेखा के शरीर में प्रवेश करता है। |
| (ग) हास-परिहास के पोषक के रूप में किसी स्त्री-पात्र को योगी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। | रामपाणिवाद भी अपनी कृति में हास्य की पुष्टि के लिये योगी के द्वारा एक नारी-पात्र को स्थान दिलवाते हैं। |
| (घ) प्राकृत-भाषी पात्र कभी-कभी संस्कृत बोलते हैं जैसे वसन्तसेना[1] उसकी चेटी कामदेव की स्तुति करते समय संस्कृत में गीत गाती है। | चन्दनिका नामक दासी संस्कृत में बोलती है।[2] शिवदास के तन में प्रविष्ट अनंगलेखा[3] प्राकृत में भाषण करती है परन्तु कभी-कभी संस्कृत बोलना आरम्भ कर देती है। |

नाटकीय संविधान की दृष्टि से उक्त प्रहसनद्वय में कुछ अन्तर भी दृष्टिगत होता है। भगवदज्जुकम् में भास के नाटकों की विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। यथा नान्दी का अभाव, स्थापना में नाटककार के नामोल्लेख की अनुपस्थिति और मञ्च पर वध दिखलाना आदि बातें भासनाटकचक्र के नाटकों के समान ही बोधायन कवि की रचना में उपलब्ध होती हैं। इसके विपरीत मदनकेतुप्रहसन में इनका अभाव है। भास के बाद के रूपककारों का तरह रामपाणिवाद ने भी प्रस्तावना में अपने नाम-धाम का परिचय दिया

१- भगवदज्जुकम् श्लोक १८-१६, पृ० ५६-६०.
२- मदनकेतु ४३, पृ० २५
३- मदनकेतु ६५, पृ० ४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



है। नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार मञ्च पर वध के दृश्य भी ( दो चार क्षणों तक रहने वाली मरणावस्था को छोड़ कर ) नहीं प्रदर्शित किए हैं।

इस प्रहसन में कवि ने पहले के व्यंग्य-रूपकों की भाँति लोगों को केवल हँसाने का ही प्रयत्न नहीं किया है अपितु काव्य की साहित्यिक छटा का सुन्दर प्रदर्शन भी किया है। प्रसंगानुसार कवि लेखन-शैली बदलने में भी पटु है। भिक्षु द्वारा प्रातःकालीन सूर्य की किरणों का वर्णन उत्कृष्ट कल्पना का दृष्टांत है।[१] मदनवर्मा द्वारा मदनकेतु को प्रेषित सन्देश में अपने दरबार के सामन्त राजाओं की राजभक्ति का प्रभावोत्पादक वर्णन है।[२]

विषयानुकूल दीर्घसमासयुक्त लम्बे वाक्यों का वाहुल्य भी इस प्रहसन में मिलता है। कहीं-कहीं कवि की गीत्यात्मक शैली दर्शक के हृदय में माधुर्य का सञ्चार करती है।[३]

श्रृंगार-वर्णन के प्रसंग में भाषा संगीतमय एवं भावात्मक हो उठी है। प्रेमी प्रेमिका के प्रेम में विभोर होकर उसके चरणों में अपना सिर रख देता है।

जननयनचकोरी – चन्द्रिके, चन्द्रलेखे !
विसृज सुतनु ! मौनं मादृशो नापराधी।
इति निपतति जल्पन् पादयोस्ते प्रमादा -
दधिभुवि लिखितायाश्चित्त–संकल्पितायाः ।।[४]

इस प्रकार रामपाणिवाद के मदनकेतु प्रहसन में नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार सन्धि, सन्ध्यङ्ग, लास्याङ्ग, और अङ्कों द्वारा सम्पादित बौद्ध भिक्षु विष्णुमित्र जैसे निन्दनीय पुरुष का कवि-कल्पित वृत्तान्त है। यह रामपाणिवाद का केवल विनोद ही नहीं, प्रत्युत प्राचीन आचार्यों की रूढ़ि को न तोड़ते हुए इस क्षेत्र में उनका सफल प्रयास है।

---

१– मदनकेतु १०, पृ० ६.
२– मदनकेतु १४, पृ० ८.
३– मदनकेतु ३४, पृ० २३.
४– मदनकेतु २६, पृ० १७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



## हास्य-चूडामणि प्रहसन

चतुर्भाणी की विवेचना करते समय वत्सराज के कर्पूरचरित भाण का उल्लेख किया जा चुका है । यहाँ उनके हास्यचूड़ामणि प्रहसन की चर्चा की जायगी । इस प्रहसन में भागवत सम्प्रदाय के किसी आचार्य के अध्यापन के विचित्र ढँग तथा उनके केवलीविद्यागत ज्ञान का अतिशय हासिक शब्दों के प्रयोग द्वारा उपहास किया गया है । वहीं गुरु-शिष्य के वेश्यागत प्रेम पर भी आक्षेप किया गया है ।

ज्ञानराशिः – अयि । कण्ठ-गतौ श्लोकौ तवेमौ संवृत्तौ ?
शिष्यः – णाणरासे । उवरगदाविमे संवुत्ता ।
ज्ञानराशिः – (सक्रोधम्) मूर्ख नामग्रहणेन मां व्याहरसि ?

\+ \+ \+ \+

शिष्यः – नमस्ते पाण्डुरैकाक्ष । नमस्ते विश्वतायन ?
नमस्तेऽस्तु मृषाकोष महापुरुष कूर्च्चक ।
ज्ञानराशिः – (सक्रोधं) आः क्षुद्र ! पाण्डुराक्ष इति मामुपहससि ।
(इति हन्तुमुपक्रमते)

\+ \+ \+ \+

ज्ञानराशिः – (स्वगतम्) मर्मज्ञोऽयम् । संग्रह एवास्य श्रेयान् ।
(प्रकाशम्) वत्सकौण्डिन्य एह्येहि ।
शिष्यः (सोद्वेगम्) ण आगम्मिस्सं चण्डसीलो सु सुमं ।

\+ \+ \+ \+

शिष्यः – ण अ तुमुं जाणसि केवली विज्जा ।
ज्ञानराशिः – मूर्ख । अहमेव केवलीं जाने किन्तु.........

कवि के भाण और प्रहसन तथा इसी कोटि के अन्य ग्रन्थों में अधिकतर शिव की स्तुति की गई है ।

कल्याणं वितरन्तु वः पृथुजटाजूटाग्र–विस्तारिणः
ते चूडाशशिनः शिरः सुरधुनीधारानुकाराः कराः ।
यानुत्प्रेक्ष्य मदोष्मभार - विधुरे शुण्डारदण्डं मृषा
हेरम्बे घटयत्यनारतमभूदुल्लासिहासो हरः ।।[१]

---

१- हास्यचूडामणि १.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अपि च –

भूयिष्ठाः परिरम्भकेलिषु भुजाः सोत्कण्ठमालोकने
नेत्राणि प्रचुराणि चुम्बनविधौ भूयांसि वक्त्राणि ते ।
इत्थं भूरिवधूविलास–घटनासज्जस्य काऽहं तव
प्रोक्तः क्रोध-विरूद्धयेति शिवया स्मेरो हरः पातु वः ।।[1]

इन्हें देखकर ऐसा भासित होता है कि ऐसी हास्यपरक रचनाओं के रचयिता शैव और शाक्त सम्प्रदाय के अनुयायी रहे होंगे । इनमें तथा श्रव्य-काव्य के कतिपय रूपों में प्राप्त धूर्तों का चित्र एवं वैशिक-वर्णन का आधिक्य इस बात की ओर संकेत करता है कि मध्ययुगीन भारत में वेश्याओं और कपटी लोगों की संख्या बहुत बढ़ गई थी । संभवत बड़े नगरों और राज–धानियों में इस प्रकार की जनवृद्धि का कारण रहा होगा छोटे-छोटे राज्यों का अतिविलासी होना । परिणामस्वरूप तत्कालीन साहित्य में अंकित प्रकृति–नटी भी ठगोंका-सा आचरण करती पाई जाती है । वत्सराज के एकांकी प्रहसन हास्य-चूड़ामणि में आचार्य ज्ञानराशि की कुछ हँसी उड़ाई गई है जो 'केवली' विद्या के ज्ञान के सहारे गड़े हुये धन तथा खोई हुई पुरानी निधि का सहज ही पता लगा लिया करता था । अपने धार्मिक कृत्यों को छोड़कर लौकिक कार्यों में उसकी अनुरक्ति को ही कवि ने व्यंग्य का शिकार बनाया है ।

हास्यचूडामणि में प्रकृति का चौर-कर्म दर्शनाय है —

पत्तं णिअ सम्पत्ति परिमुसिअं विसमतिमिरचोरेण
एसाऽम्बर – लक्ष्मीर्भगवन्तं सूरमनुसरति ।[2]

अर्थात् रात्रि के घोर तिमिर रूपी चोर द्वारा अपहृत सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिये यह अम्बर-लक्ष्मी उषा भगवान् सूर्य का पीछा करती चली आ रही है ।

इस प्रकार कवि ने सामाजिकों का चित्तानुरञ्जन करते हुए उनके मनो-विकारों का परिष्करण करने का सुन्दर प्रयास किया है ।

---

१– हास्यचूडामणि २.
२– हास्यचूडामणि ६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIB



## धूर्तसमागम

मिथिला नरेश हरिसिंह देव के राजकवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर के धूर्त-समागम प्रहसन का भी नामोल्लेख महत्वपूर्ण है। ज्योतिरीश्वर ने वर्णन रत्नाकर[1] (मैथिल भाषा में) और पंचसायक नामक अलंकार ग्रन्थ भी लिखे। नैपाली जनता ने नाट्यकला के साहित्यिक रूप को इन्हीं से ग्रहण किया। ज्योतिरीश्वर के काल एवं स्थान के विषय में मतैक्य नहीं है। 'धूर्त-समागम' की प्रस्तावना में वर्णित मिथिला–नरेश और इतिहासप्रसिद्ध तुगलकवंश के मुसलमान राजा गयासुद्दीन तुगलक के बीच हुई लड़ाई की ओर संकेत किया गया है। वहीं कवि ने अपनी वंशावली पर भी प्रकाश डाला है। तदनुसार ये मिथिला के धीरेश्वर कुलोद्भव रामेश्वर के पौत्र तथा धनेश्वर के पुत्र थे। कवि के इस प्रहसन की किसी प्रति में उनके आश्रयदाता का नाम हरिसिंह देव और किसी में नरसिंह देव मिलता है। यही भेद विद्वानों में प्रचलित ज्योतिरीश्वरठाकुर के कालविषयक मतभेद का प्रमुख कारण है। इस आधार पर जर्मनविद्वान लासेस ने अपने एन्थोलोजिया संस्कृतिका (बरेल १८३८ ई०) में ज्योतिरीश्वर को विजयनगर के नृपति नरसिंहदेव का, जिनका समय १४८६ से १५०८ ई. तक बताया जाता है, दरबारी कवि माना है। हरप्रसाद शास्त्री नेपाल दरबार पुस्तकालय से प्राप्त धूर्त-समागम की एक प्रति के अनुसार इनके आश्रयदाता का नाम हरिसिंह देव (१३२३ ई.) ही मानते हैं। अत: उनके अनुसार कवि का समय तेरहवीं शताब्दी होना चाहिये। श्री कृष्ण जी (बबुआ जी मिश्र) छठे कर्णाटवंशीय राजा हरिसिंह देव के शासनकाल में प्रारम्भ की गई मिथिला की पंजी में कवि के नामोल्लेख को न पाकर उन्हें हरिसिंह देव का पूर्ववर्ती मानते हैं। तदनुसार भी कवि का समय तेरहवीं शती ही प्रतीत होता है। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'वर्णनरत्नाकर' का सम्पादन करते हुए उसकी भूमिका में कवि के काल-विषयक उद्गार अंकित किए हैं। उनसे ध्वनित है कि इनका समय चौदहवीं शती रहा होगा। कतिपय आधुनिक आलोचकों ने पंजी में भी ज्योतिरीश्वर के नाम को ढूंढ निकालने का यत्न किया है और उन्हें विद्यापति

---

१– सम्पादक श्री सुनीतिकुमार चटर्जी तथा पं० बबुआजी मिश्र (श्रीकृष्ण मिश्र) प्रकाशक –एशियाटिक सोसाइटी. बंगाल (कलकत्ता) –१९४० ई०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



का वंशज सिद्ध किया है।[1]

धूर्तसमागम में एक दुष्ट परिव्राजक विश्वनगर और उसके शिष्य दुराचार के बीच एक सुन्दरी वेश्या अनंगसेना के लिये कलह का चित्रण किया गया है। अनंगसेना से शिष्य पहले मिला था परन्तु गुरु उसे अपने लिये चाहता था। उस युवती के परामर्श से इसका निर्णय सज्जाति नामक ब्राह्मण को सौंपा जाता है जो बन्दर तथा दो बिल्लियों की लड़ाई की कथा के आधार पर इस झगड़े का निर्णय करता हुआ वेश्या को अपने लिये रख लेता है। इसकी कथा लटकमेलक एवं हास्यार्णव के समान ही आदि से अन्त तक श्रृंगाररस में पगी हुई है। पञ्चसायक नामक कामतन्त्रविषयक ग्रन्थ के रचयिता ज्योतिरीश्वर के लिये काममय प्रहसन लिखना कोई बड़ी बात नहीं थी।

## कौतुक–सर्वस्व

गोपीनाथ चक्रवर्ती का कौतुक-सर्वस्व दुर्गा–पूजा के उत्सव पर लिखा गया उत्तरकालीन प्रहसन है इसमें अश्लील-तत्व अपेक्षाकृत कम और मनोरंजक तत्व अधिक प्राप्त होते हैं। भंगेड़ी, लम्पट और सब प्रकार से दुर्व्यसनी राजा कलिवत्सल पुण्यात्मा ब्राह्मण सत्याचार के प्रति दुर्व्यवहार करता है। सत्याचार राज्य में फैली हुई गड़बड़ी को देखता है। लोग परपीड़न में शूरता, झूठ बोलने में कुशलता और धर्मशील लोगों को घृणा की दृष्टि से देखने में अपनी सज्जनता समझते हैं। तलवार से मक्खन की टिकिया काटने की एवं मच्छर की उपस्थिति से उसको काँपता देख दर्शक सेनापति के वीरत्व का सहज अनुमान कर सकते हैं। पुराणों में वर्णित अनैतिकता की इस प्रहसन में हँसी उड़ाई गई है। ऋषियों ने पाप की चर्चा करते हुए उन्हीं बातों का निषेध किया है जिनका वे स्वयं वृद्धावस्था के कारण उपभोग नहीं कर सकते। राजा स्वच्छन्द प्रेम की घोषणा करता है, परन्तु स्वयं गणिका-विषयक किसी अन्य विवाद में व्यस्त हो जाता है। उसे रानी के पास बुला लिया जाता है। इस

---

१– देखिये –वर्णन रत्नाकर –लेखक लक्ष्मणप्रसाद
दी जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी –१६५०.
जिल्द ३४, भाग ३-४ पृ० १७५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



घटना से गणिका इतनी त्रस्त होती है कि सब लोग उसे आश्वासन प्रदान करने के हेतु दौड़े आते हैं। राजा गणिका की प्रसन्नता के लिये विवश होकर सब ब्राह्मणों को राज्य से निकाल देता है।

## कौतुक रत्नाकर

वंगाल के वाणीनाथ के पुत्र अज्ञातनामा (कवितार्किक उपाधिधारी) राजपुरोहित की एक अनुपम हास्य-प्रधान कृति मिलती है, जिसका शीर्षक है 'कौतुकरत्नाकर।' नोआखाली में स्थित भूलूपा के लक्ष्मणमाणिक्य कवि की यह सोलहवीं शताब्दी की रचना है। इसमें पुण्य-वर्जित नगर के धुरितार्णव नामक मूर्ख राजा की हँसी उड़ाई गई है जिसने दुष्टों द्वारा हरी गई अपनी रानी को ढूँढ लाने का कार्य धूर्तों को सौंपा था। रानी पुलिस-विभाग के प्रधान कर्मचारी सुशीलान्तक के पास सुरक्षित थी। वह वसन्तोत्सव से एक रात पहले भगा ली गई थी। राजा अपने मन्त्री कुमतिपुंज, पुरोहित आचारकालकूट ज्योतिषी अशुभचिन्तक, अन्तःपुर के प्रहरी चचण्डशेफ एवं अपने गुरु अजितेन्द्रिय आदि की सलाह के अनुसार सारे कार्य सम्पादित करता है। राजा अनंग–तरंगिणी नामक वेश्या को रानी के स्थान पर वसन्तोत्सव के दिन रख लेता है। इसी बीच कपटवेशधारी नामक धूर्त ब्राह्मण रानी के हर्ता के रूप में प्रकट होता है। अन्य प्रहसनात्मक रचनाओं की तरह इसमें भी पात्रों के आचार-विचार, उत्तर-प्रत्युत्तर अशिष्टतापूर्ण हैं। अतिशयोक्ति तथा ग्रामीणता भी इसमें दृष्टिगत होती है जिसके कारण इसका व्यंग्य एवं हास्य फीका पड़ गया है।

## धूर्तनर्तक

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नरहरिविन्दुपुरेन्द्र के पुत्र एवं दामाचरित नाटक तथा अन्य कविताओं के निर्माता सामराज दीक्षित का धूर्तश्रीनर्तक भी दो संधियों में विभक्त एकांकी प्रहसन है। यह भगवान् विष्णु के अभिनन्दन समारोह के अवसर पर रचा गया था। इसमें मुख्यतः शैव अवधूतों का उपहास किया गया है। साधु पुरेश्वर एक नर्तकी के प्रेम में पड़ा था किन्तु उसने अपना प्रेम अपने शिष्यों से गुप्त रक्खा था। इसके दोनों शिष्य उसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्रणय-व्यापार राजा पापाचार के समक्ष उद्घाटित कर देते हैं। इस कृति में पूर्ववर्ती प्रहसनों की अपेक्षा अशिष्टतापूर्ण चित्र कम पाये जाते हैं। फिर भी इसमें साहित्यिक दृष्टि से सराहनीय कुछ भी दिखाई नहीं देता।

पूर्वोल्लिखित प्रहसनावली में परिगणित कृतियों में कुछ अप्रकाशित हैं। इनका ज्ञान हमें हास्य-रचनाओं की आंशिक पाण्डुलिपियों के अध्ययन से होता है। ऐसी कृतियों में काश्यप-गोत्रोद्भव[1] कीर्तिदेव के वंशावतंस श्री विश्वनाथ देव के पौत्र और गोविन्ददेव के पुत्र सुन्दरदेव वैद्य द्वारा दो सन्धियों में रचित 'विनोदरङ्ग' नामक प्रहसन भी है। इसकी रचना वसन्तोत्सव के समय उपस्थित सामाजिकों[2] के अनुरक्षरार्थ हुई थी। इसमें परम्परा के अनुसार धूर्तों एवं रागमंजरी वेश्या का चरित्राङ्कण किया गया है। इसका अन्त भरत-वाक्य से होता है।

## उन्मत्तकविकलश

भोंसलवंशावलि चम्पू काव्य एवं सभापतिविलास शीर्षक नाटक के रचयिता वेंकटेश्वर कवि ने भी उन्मत्तकविकलशप्रहसन लिखकर प्रहसनसाहित्य को समृद्ध करने का यत्न किया।[3] उक्तरूपकद्वय तथा चम्पूकाव्य की हस्त-लिखित पोथियों की तालिका से विदित होता है कि हमारे नाट्यकार दक्षिण-भारत

---

१- काश्यपगोत्रपवित्रकीर्तिदेव-वंशावतंस-श्री-विश्वनाथ-देवात्मज-गोविन्ददेवसुत-सुन्दरदेव-वैद्य-संस्कृते विनोदरङ्गप्रहसने द्वितीय-संधौ प्रथमोऽङ्कः।
समाप्तमिदं प्रहसनम्।

२- नान्द्यन्ते सूत्रधारः -अलमतिविस्तरेण।
यदद्यवसन्तोत्सव-समयानुकूलं श्रीकविराज-सुन्दरदेव-वैद्य-विरचिते विनोदरङ्गनाम्ना प्रहसनेन सामाजिकानुपास्यामः। (नेपथ्ये) कः कोऽत्र भोः वाचाट इव पण्डित सभासु।
विनोदरङ्ग प्रहसन।

३- सूत्रधारः (विचिन्त्य सहर्षम्) हस्तगतमणिमाणिक्यमापणे मृग्यते। मनु निर्दिष्टगुण-विशिष्टमस्मद्वश एव कवेरकुमारिकातरलतरङ्गताण्डवितशीकरासार-शीतलोपशल्य-मणलूराग्रहारहारनायकभणेः षड्दर्शनी-सागरनिशाकरस्य षड्भाषा-सार्वभौमस्य प्रतिदिन-प्रबन्धनिर्माणपरमेश्वरस्य धर्मराजमनीषिणो भागधेय-परिणामेन वेङ्कटेश्वरकविना गृहीत-वस्तु - विरचित-विरचितमुन्मत्तकविकलशनामकृतं सकलहृदयानन्दविकसनम् प्रहसनम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



के भोंसल-नृपेन्द्र शरभोजि प्रथम के आश्रित कवि थे। शरभोजि महाराज का शासन काल १७११ ई. से १७२८ तक माना जाता है। नैध्रुवकाश्यपगोत्रीय धर्मराज के पुत्र वेंकटेश की ये कृतियाँ अब तक अप्रकाशित हैं। ये विद्वद्वंश के थे। इनका उन्मत्तकविकलशप्रहसन आंग्लसाहित्य के प्रहसनों (Farce) से से बहुत-कुछ मिलता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रेक्षकों को हँसाना है। फलस्वरूप इसमें कहीं-कहीं अभद्रता के दर्शन होते हैं। विट-सभा में स्थित सामाजिकों के हृदयावर्जनार्थ इसे प्रस्तुत किया गया था। यहाँ भी नाट्य-शास्त्र के नियमानुसार नान्दीपाठ का सम्यक्पालन किया गया है।

## वेंकटेश्वर कवि

वेंकटेश्वर नामक एक दूसरे महानुभाव के भानुप्रबन्धप्रहसन का नाम भी प्रहसनावली में मिलता है। ये कवि उन्मत्तकविकलश प्रहसन के रचयिता वेंकटेश या वेंकटेश्वर जी से सर्वथा भिन्न व्यक्ति हैं। यह कृति अपने सम्पूर्ण रूप में तो नहीं मिलती किन्तु इसके कुछ अंशों का निर्देश पाण्डुलिपियों की सूची में अवश्य मिलता है। ये रामभद्रदीक्षित के पतञ्जलि-चरित काव्य के व्याख्याकार थे। इस व्याख्या में और इसके अन्त में इन्होंने स्वयं को रामभद्रदीक्षित[1] का शिष्य और श्री दक्षिणामूर्ति का पुत्र घोषित किया है। भानुप्रबन्ध[2] के भरतवाक्य में भी इनके पिता का नाम उल्लिखित हैं। इस प्रहसन के अन्तिम

---

१- इति कौण्डिन्यकुलतिलकदक्षिणामूर्तिवेङ्कटेश्वरशास्त्रिविरचितायाँ पतञ्जलिचरितव्याख्यायाँ ललिताख्यायां प्रथमः सर्गः।

० ० ० ० ० ०

व्याचष्टे किल रामभद्र मखिनस्तस्याप्तशिष्यः कृती,
भौमीन्द्रं सहिवेङ्कटेश्वरकविः यस्यांनिबद्धं यशः ॥ पतञ्जलिचरित व्याख्या–४।

२- भूपाः पुण्यपथे चरन्तु भवतु क्षेमं नृणां सर्वतः
कालेष्वोषधयः फलन्तुकवयः खेलन्तु राज्ञां प्रियाः।
कौण्डिन्यान्वयभण्डनायजनित - श्रीदक्षिणामूर्तिना
काव्यस्यास्य च वेङ्कटेश्वर-कविः कर्ता चिरं जीवतु ॥
॥ श्री गुरुभ्योनमः ॥ भानुप्रबंध प्रहसन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



श्लोक से कवि का तंजौर के दरबार से निकट सम्वन्ध भी विज्ञापित होता है।[1]

## सोमवल्ली योगानन्द प्रहसन

चित्तौड़ जिले के विद्वत्परिवार में उत्पन्न कवि अरुणगिरिनाथ के सोमवल्ली योगानन्द प्रहसन का नाम भी मिलता है।[2] इसके कवि ने महाकवि कालिदास की कृतियों पर प्रसिद्ध टीकाएँ भी लिखी हैं। यह प्रहसन प्रकाशित होकर जनता के सामने नहीं आ सका है। इसमें एक योगी की किसी कुमारी कन्या के साथ प्रणय-लीला का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त काश्मीर के निवासी गोविन्दश्रीवत्साङ्क उपनामधारी वासुदेव कवीन्द्र का सुभगानन्द प्रहसन भी लिखा गया था। प्रस्तुत प्रहसन के अन्तिम श्लोक से ज्ञात होता है कि वे काश्मीर[3] के राजा भी थे। यह कृति भी प्रकाश में नहीं आ पाई है।

किसी अज्ञातनामा कवि ने भी 'पलाण्डुमण्डन' नामक प्रहसन लिखकर प्रहसनसाहित्य को समृद्ध करने में योगदान किया। यह प्रहसन अब नष्ट हो चुका है।

---

१- आनंदवल्लिदेव्याः करुणारसमेदुरा कटाक्षोर्मिः।
भोंसलकुलमणिदीपं सुखयतु शाहाधियं नित्यम्॥

२- अस्ति (ख) लु परेन्द्राग्रहार नायकमणेः सामवेदसागर-सांयांत्रिकस्य अष्टभाषाकविता-सौराज्याभिषक्तस्य कलावरस्य कटकविकुलगर्वपर्वतपवेः नागणकविनागकेसरिणः श्रीमतः कविप्रतोः पौत्रः पुत्रः श्रीराजनाथदेशिकस्य ब्रह्माण्डभाण्डपिचण्डमण्डलितडिण्डमखचण्डिम्नः श्रीकण्ठागमशिखण्डमण्डनमणेः श्रीडिण्डमप्रभो दौहित्रः श्रीमदभिरामनायिकास्तन्धयः सभापतिभट्टारकार्यं भागिनेयः श्राडिण्डिमकवि-सार्वभौम इति प्रथितविरुदनामधेयः सुलभभागधेय.सरस्वतीप्रसादलब्धकविताप्रसादः श्रीमानरुणगिरिनाथो नाम। तेन (प्रणीतेन) सोमवल्लीयोगानंद-नाम्ना प्रहसनेन सभानियोगमनुतिष्ठामि। योगानंद प्रहसन.

३- काश्मीरीयण्डीयरायदौहित्रमल्लत्रिविधवीरचूडामणिरायगोत्रगोविद-श्रीवत्साङ्कापरनामधेय-श्रीवासुदेव-नरेन्द्र-विरचितं सुभगानंदं नाम प्रहसनं सम्पूर्णम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD



तंजोर के तुक्कोजी महाराज प्रथम के मन्त्री घनश्याम १८वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में बहुमुखी प्रतिभा मे सम्पन्न कवि हुए हैं। इन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत में अनेक ग्रन्थों की रचना की और प्रत्येक ग्रन्थ में अपने विद्वत्तापूर्ण जीवन पर प्रकाश डाला है। इनकी विलक्षण बुद्धि का ज्ञान समय-समय पर उन्हें प्रदान की गई विभिन्न उपाधियों को देख कर होता है। वह स्वयं अपने को वश्य-वचस्, सर्वज्ञ, और सरस्वती कहा करते थे। प्रबोधचन्द्रोदय पर अपनी संजीवनी टीका में भी उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया है।[१] ये महादेव और काशी के पुत्र थे तथा इनके भाई का नाम चिदाम्ब्रयति एवं बहिन का शाकम्भरी था। इनकी सुन्दरी और कमलजा नामक दो विदुषी पत्नियाँ थीं। इन्होंने राजशेखर-कृत विद्धशालभञ्जिका की टीका में स्वकीय कृतियों की तालिका भी प्रस्तुत की है। चन्द्रशेखर और गोवर्धन इस महाकवि के दो पुत्र-रत्न थे। चन्द्रशेखर ने अपने पिता के काव्य डमरूक पर और दूसरे पुत्र गोवर्धन ने घटकर्पर काव्य पर टीका लिखी।

## डमरूक (चित्रावली)

इनके 'डमरूक' को कई लोगों ने प्रहसन की कोटि में रक्खा है परन्तु वस्तुतः यह रचना शास्त्रसम्मत प्रहसन कहलाने योग्य नहीं है। इसमें हीन पात्रों का चरित्र नहीं प्रदर्शित किया गया है। इसमें हास्य का प्राधान्य भी दिखाई नहीं देता। राजानुरञ्जन, कलिदूषण, सुकविसञ्जीवन, कुकविसंतापन, अबोधाकर, शाब्दिक भञ्जन, पण्डित-खण्डन, जातिसंतर्जन, प्रभुत्व और अखण्डानन्द, इन दस छोटे-छोटे अलङ्कारों में यह अभिनेय प्रबन्ध विभक्त है। प्रत्येक अलङ्कार के वर्णनकर्ता दो भिन्न भिन्न पात्र हैं। कवि ने स्वयं इसे निबंध की संज्ञा दी है।[२] प्रबन्ध, रूपक और वस्तु-अभिधान कोषों में निबन्ध ये तीन अभिधाएँ कही गई हैं। इस पद्यमय अभिनेय रूपक को लिख कर कवि ने निस्संदेह संस्कृत-नाट्य के क्षेत्र में एक नई धारा प्रवाहित की है। इसकी गणना अन्य आधुनिक एकाङ्की नाटिकाओं के साथ की जा सकती है। कारण कवि के पुत्र चन्द्रशेखर ने भी इसकी व्याख्या में इसे प्रहसन न कह कर चित्रा-

१- डमरूक ६, ४.

२- डमरूक पात्रसूचनायाम् पृ० २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



वली[1] कहा है। इसके अतिरिक्त घनश्याम की पत्नियों द्वारा रचित राजशेखर की विद्धशाल-भञ्जिका की टीका में इनकी कृतियों का वर्गीकरण करके इनके शीर्षक स्पष्ट लिखे गये हैं किन्तु डमरूक के आगे भाण या प्रहसन जैसा कोई विशेष पद नहीं लिखित है। इस विवेचन से इसका प्रहसन होना प्रमाणित नहीं होता।

प्रहसनों की पाण्डुलिपितालिका में इनके 'चण्डानुरंजन' प्रहसन का नाम भी आता है। इसमें हास्य की प्रमुखता है। यह कृति अपूर्ण और अप्रकाशित है।

## नाटवाट प्रहसन

मदनमहोत्सव के अवसर पर अभ्यागतों के मनोविनोदार्थ वासुदेव-चयनिसुत यदुनन्दन द्वारा विरचित नाटवाट[2] प्रहसन का नाम भी आता है। कवि का जन्म सारस्वत कुल में हुआ था। शिवजी की अर्चनाविषयक पद्यावलि से इनका शिवभक्त होना सूचित होता है। इनका काल अब तक अनिश्चित-सा ही रहा है। संस्कृत-साहित्य के इतिहास लेखकों एवं नाट्य-समीक्षकों ने इसे बहुत पुराना न कह कर ही संतोष कर लिया है। गोपाल-नारायण कम्पनी से १८९१ ई. में प्रकाशित इसकी एक प्रति के अन्त में 'पुस्तक-लेखक-लेखः' के नाम से उद्धृत श्लोक से इस रचना के रचनाकाल पर कुछ प्रकाश पड़ता है।[3] तदनुसार यह रचना आज (शक संवत् १८८७) से १०६ साल पूर्व की अर्थात् १९वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। नवयुग की रचना होने पर भी इसमें मध्य-युग के समाज का चित्र दृष्टिगत होता है। इसमें एक

---

१– डमरूकव्याख्यानम् ३, पृ० ३३.

२– नाटवाटप्रहसन ५, पृ० २, नाटवाट प्रहसन पृ० ७.

३– इति वासुदेवचयनिसुतयदुनंदन विरचितं नाटवाट प्रहसनं-सम्पूर्णम्। पुस्तकलेखक लेखः-
सर्पेभ-मुनिशाकेभूवत्सरे च क्षयावहे।
आश्विने शुक्लपक्षे नवम्यां सौम्यवासरे॥
काशीकरोमिधानस्त्र्यम्बको व्यलिखिन्मुदा।
नाटवाट-प्रहसनं यतये तत्समर्पितम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



तंजोर के तुक्कोजी महाराज प्रथम के मन्त्री घनश्याम १८वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कवि हुए हैं। इन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत में अनेक ग्रन्थों की रचना की और प्रत्येक ग्रन्थ में अपने विद्वत्तापूर्ण जीवन पर प्रकाश डाला है। इनकी विलक्षण बुद्धि का ज्ञान समय-समय पर उन्हें प्रदान की गई विभिन्न उपाधियों को देख कर होता है। वह स्वयं अपने को वश्य-वचस्, सर्वज्ञ, और सरस्वती कहा करते थे। प्रबोधचन्द्रोदय पर अपनी संजीवनी टीका में भी उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया है।[1] ये महादेव और काशी के पुत्र थे तथा इनके भाई का नाम चिदाम्बरयति एवं बहिन का शाकम्भरी था। इनकी सुन्दरी और कमलजा नामक दो विदुषी पत्नियाँ थीं। इन्होंने राजशेखर-कृत विद्धशालभञ्जिका की टीका में स्वकीय कृतियों की तालिका भी प्रस्तुत की है। चन्द्रशेखर और गोवर्धन इस महाकवि के दो पुत्र-रत्न थे। चन्द्रशेखर ने अपने पिता के काव्य डमरूक पर और दूसरे पुत्र गोवर्धन ने घटकर्पर काव्य पर टीका लिखी।

## डमरूक (चित्रावली)

इनके 'डमरूक' को कई लोगों ने प्रहसन की कोटि में रक्खा है परन्तु वस्तुतः यह रचना शास्त्रसम्मत प्रहसन कहलाने योग्य नहीं है। इसमें हीन पात्रों का चरित्र नहीं प्रदर्शित किया गया है। इसमें हास्य का प्राधान्य भी दिखाई नहीं देता। राजानुरञ्जन, कलिदूषण, सुकविसञ्जीवन, कुकविसंतापन, अबोधाकर, शाब्दिक भञ्जन, पण्डित-खण्डन, जातिसंतर्जन, प्रभुत्व और अखण्डानन्द, इन दस छोटे-छोटे अलङ्कारों में यह अभिनेय प्रबन्ध विभक्त है। प्रत्येक अलङ्कार के वर्णनकर्ता दो भिन्न भिन्न पात्र हैं। कवि ने स्वयं इसे निबंध की संज्ञा दी है।[2] प्रबन्ध, रूपक और वस्तु-अभिधान कोषों में निबन्ध ये तीन अभिधाएँ कही गई हैं। इस पद्यमय अभिनेय रूपक को लिख कर कवि ने निस्संदेह संस्कृत-नाट्य के क्षेत्र में एक नई धारा प्रवाहित की है। इसकी गणना अन्य आधुनिक एकाङ्की नाटिकाओं के साथ की जा सकती है। कारण कवि के पुत्र चन्द्रशेखर ने भी इसकी व्याख्या में इसे प्रहसन न कह कर चित्रा-

---

१– डमरूक ६, ४.

२– डमरूक पात्रसूचनायाम् पृ० २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



वली[1] कहा है। इसके अतिरिक्त घनश्याम की पत्नियों द्वारा रचित राजशेखर की विद्धशाल-भञ्जिका की टीका में इनकी कृतियों का वर्गीकरण करके इनके शीर्षक स्पष्ट लिखे गये हैं किन्तु डमरूक के आगे भाण या प्रहसन जैसा कोई विशेष पद नहीं लिखित है। इस विवेचन से इसका प्रहसन होना प्रमाणित नहीं होता।

प्रहसनों की पाण्डुलिपितालिका में इनके 'चण्डानुरंजन' प्रहसन का नाम भी आता है। इसमें हास्य की प्रमुखता है। यह कृति अपूर्ण और अप्रकाशित है।

## नाटवाट प्रहसन

मदनमहोत्सव के अवसर पर अभ्यागतों के मनोविनोदार्थ वासुदेव-चयनिसुत यदुनन्दन द्वारा विरचित नाटवाट[2] प्रहसन का नाम भी आता है। कवि का जन्म सारस्वत कुल में हुआ था। शिवजी की अर्चनाविषयक पद्यावलि से इनका शिवभक्त होना सूचित होता है। इनका काल अब तक अनिश्चित-सा ही रहा है। संस्कृत-साहित्य के इतिहास लेखकों एवं नाट्य-समीक्षकों ने इसे बहुत पुराना न कह कर ही संतोष कर लिया है। गोपाल-नारायण कम्पनी से १८९१ ई. में प्रकाशित इसकी एक प्रति के अन्त में 'पुस्तक-लेखक-लेखः' के नाम से उद्धृत श्लोक से इस रचना के रचनाकाल पर कुछ प्रकाश पड़ता है।[3] तदनुसार यह रचना आज (शक संवत् १८८७) से १०६ साल पूर्व की अर्थात् १९वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। नवयुग की रचना होने पर भी इसमें मध्य-युग के समाज का चित्र दृष्टिगत होता है। इसमें एक

---

१– डमरूकव्याख्यानम् ३, पृ० ३३.

२– नाटवाटप्रहसन ५, पृ० २, नाटवाट प्रहसन पृ० ७.

३– इति वासुदेवचयनिसुतयदुनंदन विरचितं नाटवाट प्रहसनं-सम्पूर्णम्। पुस्तकलेखक लेखः-
सर्पेभ-मुनिशाकेभूवत्सरे च क्षयावहे।
आश्विने शुक्लपक्षे नवम्यां सौम्यवासरे॥
काशीकरोमिधानस्त्र्यम्बको व्यलिखिन्मुदा।
नाटवाट-प्रहसनं यतये तत्समर्पितम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



पूरी कथा आदि से अन्त तक नहीं मिलती। किसी नगर के संभवतः कर्णाटक[१] के किसी शहर में नाटवर्ग के (नर्तक या नट) राहगीरों का वार्तालाप इसमें सुनने को मिलता है। इन यात्रियों की शास्त्रविरुद्ध एवं प्रकृति-विपरीत अनर्गल बातें सुनकर तथा इनके पात्रों के विचित्र नामों को देख कर लटकमेलकादि प्रहसनों की याद आ जाती है।[२]

यहाँ भी उपर्युक्त प्रहसनों की भाँति प्रेक्षक समाज को येन-केन-प्रकारेण हँसाने का प्रयत्न किया गया है। इसके वैद्य ज्योतिषी आदि पात्र पूर्ववर्ती हास्यात्मक-कृतियों में अङ्कित पात्रों की तरह अपने-अपने शास्त्र-ज्ञान से शून्य ज्ञात होते हैं।[३]

दो संधियों में विभक्त इस लघु प्रहसन की कथा में तारतम्य के अभाव और प्रथम संधि के कतिपय पात्रों की द्वितीय संधि में अनुपस्थिति को देख बहुत से समीक्षक इसे शास्त्रीय प्रहसन की कोटि में रखने में संकोच करते हैं। इसमें नेपथ्ये, ततः प्रविशति, मनोदूती, आकर्ण्य आदि मञ्चीय निर्देशों तथा पात्रों की बड़ी संख्या पर दृष्टिपात करने से भासित होता है कि यह रूपक मवाई, रामलीला जैसे लोकशैली के नाट्यों के अनुकरण पर अभिनयार्थ रचा गया होगा। इसमें सूत्रधार द्वारा नान्दी पाठ के प्रसङ्ग में एकाङ्की अभिनय पर संस्कृत के प्राचीन भाणों की छाया प्रतिबिम्बित है।[४] साहित्यिक दृष्टि से नाटवाट प्रहसन का विशेष महत्व प्रतीत नहीं होता।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में प्राचीन काल से प्रहसनों की रचना होती रही है। भाणों की तरह उत्तरकालीन प्रहसनों में भी निकृष्ट समाज के चित्र उपलब्ध होते हैं। भगवदज्जुकीयम्, मत्तविलासादि प्रहसन साहित्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। शेष मध्ययुगीन हास्यप्रधान रूपक लगभग एक

---

१- अभिधानकोशों में नाट का अर्थ कर्णाटक का एक शहर भी बतलाया गया है।

२- नाटवाट प्रहसन ३६, ४४ पृ० १५.

३- नाटवाट प्रहसन ३६-४७, पृ० १६.

४- नाटवाट प्रहसन ४-८ पृ० १-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



से ही प्रतीत होते हैं। दक्षिण भारत, बंगाल आदि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में राजाज्ञा से समय-समय पर मनाये जाने वाले त्यौहारों के अवसर पर प्रेक्षकों के मनोविनोद के लिये इस प्रकार के साहित्य की सृष्टि हुई। बारहवीं सदी से लेकर सत्रहवीं सदी तक पर्याप्त संख्या में शृंगारसिक्त हास्य-व्यंग्य–प्रधान रूपकों की रचना हुई। साहित्य के अन्य क्षेत्रों की भाँति उत्तरयुगीन प्रहसनों में भी मनोरञ्जन के साथ साथ पाण्डित्य-प्रदर्शन कवियों का उद्देश्य रहा है। आज के विद्वान् अब भी प्रहसन-परम्परा को जीवित रखने का प्रयत्न कर रहे हैं।

१५८८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD

# चतुर्थ अध्याय

# व्यायोग

## संस्कृत में व्यायोग

### परिचय

व्यायोग एकांकी रूपक का ही एक प्रकार है। इसकी कथा-वस्तु पुराण से ली हुई या इतिहासप्रसिद्ध होती है, किन्तु इसका नायक धीरोद्धत, राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष होता है। इसमें कैशिकी-वृत्ति का प्रयोग निषिद्ध है। शेष तीन भारती, आरभटी और सात्वती वृत्तियाँ प्रयुक्त होती हैं तथा गर्भ एवं विमर्श को छोड़ कर मुख, प्रतिमुख और निर्वहण नामक सन्धियों की योजना होती है। व्यायोग में हास्य एवं श्रृंगार का प्रयोग वर्जित है। करुण, भयानक, वीर, रौद्र एवं वीभत्स नामक रसों का प्रयोग किया जा सकता है। श्रृंगार[1] और हास्य से रहित (जो कैशिकी वृत्ति का गुण है) होने के कारण ही स्वभाव से कोमल स्त्रियों को इस रूपक में स्थान नहीं दिया गया। आचार्य

---

१- शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्वत्यारभटी पुनः।
रसे रौद्रे च वीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती ।। सा. द. — ६-१८२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में स्पष्ट कह दिया है कि इसमें नायिकाएँ[1] नहीं होती। स्त्रियों में केवल दासियों को ही स्थान दिया जा सकता है। पुरुष पात्रों का इसमें बाहुल्य होता है। व्यायोग शब्द का अर्थ है जिसमें विविध व्यक्ति युक्त हों।

नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ने इस नाट्य-प्रकार में 'बहवस्तत्रच पुरुषाः' अर्थात अनेक पुरुष पात्रों के रहने के कारण ही इसका नाम व्यायोग रक्खा होगा। आचार्य अभिनवगुप्त ने इसे अपनी टीका में स्पष्ट करने का यत्न भी किया है।[2] उनका मत है कि युद्ध में पुरुषों के नियुक्त होने के कारण इसे व्यायोग कहा जाता है। यह दीप्त-रस-युक्त नाट्यभेद व्यायाम भी कहा गया है।[3] वीर–भयानकादि रसों से ओत-प्रोत होने के कारण युद्ध, नियुद्ध (द्वन्द्व युद्ध) एवं संघर्ष भी इसमें प्रस्तुत किये जाते हैं, किन्तु ये युद्ध स्त्रियों के कारण नहीं होते। इसमें एक दिन का वृत्तान्त चित्रित किया जाता है। शेष सब बातों में व्यायोग डिम के समान ही होता है।

भरतमुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक जितने भी नाट्यमीमांसक हुए हैं, उन सबके लक्षण-ग्रन्थों का सम्यगालोडन करने पर ज्ञात होता है कि

---

१– व्यायोगस्तु विधिज्ञैः कार्यः प्रख्यातनायक-शरीरः।
अल्पस्त्रीजनयुक्तः
एवं विधस्तु कार्यो व्यायोगो दीप्तकाव्यरस-योनिः।
(टीका :– अल्पश्च स्त्रीजनश्च तेन युक्तः चेटयादिना न तु नायिका दिभिः कैशिकी-हीनत्वात्।) काव्यानुशासन (निर्णयसागर संस्करण) पृ० ३८७:

२– व्यायोगस्तु डिमस्यैवदोषभूते दिव्यनायकाभावात्। केवलमत्रोदात्तस्य राजादेर्नायकता। अपित्वमात्यसेनापतिकृतेर्दीप्तरसस्य। दिव्यैर्देवैर्नृपैऋषिभिश्च नायकैः न निबद्धोऽयं भवतीत्यर्थः। ननु कस्मादयं व्यायोग इत्याह। युद्ध नियुद्धेति। व्यायामे युद्धप्राये नियु–ज्यन्ते पुरुषा यत्रेति व्यायोग इत्यर्थः। सङ्घर्षेति। शौर्य-विद्याकुलरूपादिकृता स्पर्धा। दीप्तं काव्यमोजो-गुणयुक्तम्। दीप्तरसाद्याः वीररौद्राद्याः। तदुभयं योनिः कारणमस्य।
अभिनवगुप्त।

३– व्यायामस्तु विधिज्ञैः कार्यः प्रख्यातनायकशरीरः। काव्यानुशासन – पृ० ३८६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD



इन सब नाट्याचार्यों ने प्रकारान्तर से व्यायोग का यही लक्षण किया है ।[१] कहीं-कहीं थोड़ा हेर-फेर अवश्य है ।

अभिनवगुप्त के मतानुसार देवता, नृपति अथवा ऋषि व्यायोग का नायक नहीं होना चाहिये । परन्तु आचार्य विश्वनाथ ने अभिनवगुप्ताचार्य से मतभेद प्रकट करते हुए इसका नायक प्रख्यात धीरोद्धत राजर्षि अथवा दिव्य-पुरुष माना है और अपने ही नामधारी किसी कवि के सौगन्धिकाहरण को इसके उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया है । 'राजर्षिरथदिव्यो वा भवेद्धीरोद्धतश्च सः'। संभवतः, आचार्य विश्वनाथ ने भास के 'दूतवाक्य' व्यायोग के नायक श्रीकृष्ण को ध्यान में रख कर ही प्राचीन आचार्यों से मतभेद प्रकट करने का साहस किया होगा । इस प्रत्यक्ष प्रमाण को देख कर हमें मोक्षादित्य के भीमविक्रम-व्यायोग के सम्पादक द्वारा किये गये निम्नाङ्कित आक्षेप पर पुनः विचार करने को बाध्य होना पड़ता है ।[२]

शारदातनय के अनुसार पात्रों की संख्या दस से अधिक नहीं होनी चाहिये ।[३] सागरनन्दी के व्यायोग को 'ऋषिकन्यापरिणययुक्त' कहने से ध्वनित होता है कि किसी युग में व्यायोग में तापस-कुमारियों के विवाह के चित्र अङ्कित किये जाते रहे होंगे और उसमें गाम्भीर्य को हल्का करने के लिये थोड़ा बहुत अवकाश रहता होगा । परन्तु इसके उदाहरण अब अप्राप्त हैं ।[४]

---

१– ना. शा. ६१-६२ अध्याय १८ ; दशरूपक–३, प्रकाश, ६०–६१, नाट्यदर्पण ७२–७३

२– "Mankad seems to be wrong when he says that the hero may be divine person or a king, since neither Natya-sastra referred to by him, nor Natya-darpana support a divine hero" Introduction, Bhima Vikrama Vyayoga G. O. S. No, 151 Page 9.

३– अस्त्रीनिमित संग्रामो व्यायोगः कथितो बुधैः
नायकास्त्रिचतुष्पञ्च भवेयुर्न दशाधिकाः । भावप्रकाश ८, २४८,

४– प्रख्यात-नायकविषयः । ऋषिकन्यापरिणययुतः सम्भोगमुक्तो वा एकाङ्कः। निषुद्धयुद्धबहुलः दीप्तवीररौद्ररसः विदितकथः संस्फोटवान् मुखनिर्वहणसन्धियुक्तः नातिकरुणश्रृङ्गारः कथ्यते सद्भिः । सागरनन्दी (भरतकोश) से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



नाट्य-शास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थों के शास्त्रीय विवेचन को देख कर प्राचीन काल में व्यायोगों के प्रचलन का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही साहित्य के इतिहासों में दी गयी इनकी नामावलि तथा हस्त-लिखित पोथियों की सूची में प्रदर्शित व्यायोग-तालिका से संस्कृत-साहित्य में इस प्रकार के लघु-रूपकों की लोकप्रियता सिद्ध होती है। भारत के अन्य भाषाविदों ने भी संस्कृत व्यायोगों का अनुवाद करके इनके प्रति अनुराग प्रकट किया है।[१]

एकांकी साहित्य का गवेषणात्मक अध्ययन करते समय मुझे अब तक जिन व्यायोगरूपकों के नाम मिल पाए हैं उनकी सूची आरम्भ में दी जा चुकी है। उनमें से कुछ तो प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ अभी तक तिमिराच्छन्न हैं। इस तालिका में निर्दिष्ट रचनाओं के अतिरिक्त भास-नाटक-चक्र में परिगणित दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरूभंग को भी कतिपय इतिहासविदों ने व्यायोग के वर्ग[२] में रक्खा है। वस्तुतः भासप्रणीत ये नाटक ऐसे हैं जिनमें उत्सृष्टिकांक[३] नामक रूपक के लक्षण भी घटते हैं और व्यायोग के भी। इनका सम्यक् अध्ययन करने पर उक्त रूपकत्रय में उत्सृष्टिकांक के लक्षण अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। अतः श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय आदि इतिहास-लेखकों[४] ने इन्हें उत्सृष्टिकांक ही बतलाया है।

---

१– देखिये – काञ्चनपण्डित के धनञ्जय-विजय व्यायोग का बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हिन्दी में अनुवाद।

२– व्यायोग रचनाओं में भासकृत मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरूभङ्ग प्रमुख हैं ...वाचस्पति गैरोला। संस्कृत साहित्य का इतिहास–वृहद्–संस्करण – पृ० ८२४. डॉ० कीथ के अनुसार भी दूतघटोत्कच एक व्यायोग है।

३– उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः।
रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्री-परिदेवितम्।
प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुद्ध्या प्रपञ्चयेत्।
भाणवत्सन्धिवृत्यङ्गान्यस्मिञ्जयपराजयोः।
युद्धं च वाचा कर्तव्यं निर्वेदवचनं बहु। सा. द.

४– कर्णभार... यह एक उत्सृष्टिकाङ्क है ...दूतघटोत्कच और उरुभङ्ग ये दोनों एकांकी उत्सृष्टिकाङ्क हैं। (संस्कृत साहित्य की रूपरेखा) – पृ० ६४.
ले. श्रीचन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डॉ० एन. बी. व्यास।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



दूतघटोत्कच में अभिमन्यु के वध के बाद शोकसन्तप्त अर्जुन के पुत्रवध का बदला जयद्रथवध द्वारा लेने की प्रतिज्ञा करने पर श्रीकृष्ण हिडिम्बा से उत्पन्न भीम के पुत्र घटोत्कच को दुर्योधन के पास भेजते हैं। यहाँ उद्धत वीर घटोत्कच का दौत्यकर्म नाटकीय ढँग से वर्णित है। कर्णभार में कर्ण द्वारा ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र को अपना कुण्डलकवच दान में दे देना दिखलाया गया है। उरूभंग में भी अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लेने के लिये पाण्डवों की प्रतिज्ञा के फलस्वरूप भीम और दुर्योधन के बीच गदायुद्ध में असफल दुर्योधन की दयनीय मृत्यु का चित्रण है। इस रूपक में विशेष बात यह है कि एक अंक में ही लगभग छयासठ (६६) श्लोक मिलते हैं। संस्कृत नाट्य-परम्परा में मृत्यु का वर्णन करने वाले भास के ही रूपक मिलते हैं। स्व० पाण्डेयजी "संस्कृत-साहित्य में दुःखान्त-नाटकों का नितान्त अभाव है –" इस कथन का खण्डन करते हुए कर्णभार, उरूभंग और भट्टनारायण[1] के वेणी-संहारादि का दुःखान्त के उदाहरण-स्वरूप स्मरण करते हैं। परन्तु वास्तव में दुःख-प्रवण नाटक (ट्रेजेडी) हमारे नाट्य–सिद्धान्तों के सर्वथा-विरुद्ध है। स्व० पाण्डेयजी इनके दृष्टान्तस्वरूप संस्कृत की जिन नाट्यकृतियों का नामोल्लेख करते हैं, उनमें दुष्टों का वध हुआ है। दुष्टों की मृत्यु से दुःख नहीं होता और न मरनेवाले के प्रति सहानुभूति ही होती है। यह तथ्य सार्वजनीन है कि दुष्टात्मा की मृत्यु किसी के दुःख का कारण नहीं होती, किन्तु पाश्चात्य दुःख-प्रवण नाटकों में नेता की मृत्यु दिखाई जाती है जो प्रेक्षक की सहानुभूति का पात्र होता है। अतः उपर्युक्त रूपकों को पाश्चात्य ट्रेजडियों का स्थानापन्न नहीं माना जा सकता।

नाट्यरचना-विधान की दृष्टि से ये रूपकत्रय उत्सृष्टिकाँक के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। बहुत से अन्य विद्वानों ने भी इन्हें व्यायोग न मानकर उत्सृष्टिकांक[2] ही माना है। अतएव इन संदिग्ध-रूपकों की यहाँ विस्तृत चर्चा नहीं की जा रही है।

---

१– संस्कृत नाटक प्रायः सुखान्त होते हैं किन्तु यह कथन युक्तिसङ्गत नहीं कि संस्कृत में दुःखान्त नाटकों का नितांत अभाव है। ...निश्चित रूप से दुःखांत नाटक माने जाने चाहिये। संस्कृत साहित्य की रूपरेखा–पृ० २२६, स्व० पाण्डेय तथा डॉ० व्यास.

२– भास –ए स्टडी –पुसालकर.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



रामायण और महाभारत सदा से परवर्ती साहित्य के उपजीव्य रहे हैं। व्यायोग-पटल के परिशीलन से प्रतीत होता है कि इनके रचयिताओं को दीप्तरसयुक्त रूपकों के लिये उपयुक्त सामग्री महाभारत से ही मिल सकी है। इस प्रकार की अधिकांश कृतियाँ महाभारत पर ही आधारित हैं। केवल कृष्ण कवि का "विक्रान्त राघव" और जीवन्यायतीर्थ का "कैलासनाथ विजय" रामायण पर आश्रित हैं। इन महाकाव्यों में से किसी एक सूत्र को लेकर कविगण अपनी मौलिक प्रतिभा प्रदर्शित करते आए हैं।

कवि कुलगुरु कालिदास द्वारा सम्मानित महाकवि भास ने भी जो केवल संस्कृत-नाट्य-साहित्य के आदिसृष्टा ही नहीं हैं, अपितु सर्व प्रथम एकांकीकार भी हैं, अपनी कृतियों के लिये उपयुक्त इतिवृत्त महाभारत से ही चुना। यहाँ पर कुछ उपलब्ध व्यायोगों में से प्रमुख का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा। संस्कृत-साहित्य में नाटकों की सजीव एवं मूर्त परम्परा के अनुवर्तक भास कवि के दूतवाक्यनामक व्यायोग से ही हम इस चर्चा का प्रारम्भ करेंगे।

## दूतवाक्य

भास-नाटक-चक्र के अन्तर्गत दूत-वाक्य व्यायोग का नाम सबसे पहले लिया जाता है। इसकी कथा-वस्तु महाभारत के उद्योग-पर्व से ली गई है।[१] पाण्डवों ने बारह वर्षों का वनवास समाप्त करने के उपरान्त इन्द्रप्रस्थ पहुँच कर कौरवों से, सन्धि की शर्तों के अनुसार, आधा राज्य माँगा।

> " अहं तु तव तेषां च श्रेयइच्छामि भारत !
> धर्मादर्थात् सुखाच्चैव राजन् मा नीनशः प्रजाः ॥[२]

तुलना कीजिए —

> अनुभूतं महद् दुःखं सम्पूर्णः समयः स च ।
> अस्माकमपि धर्म्यं यद्दायाद्यं तद् विभज्यताम् । ॥[३]

---

१– महाभारत – अध्याय ८२, ४३-६० उद्योगपर्वणि भगवद्यान पर्व ।
२– महाभारत – अध्याय ८२, ६० (उद्योगपर्वणि भगवद्यान पर्व)
३– दूतवाक्य २०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



पांडवों ने युद्ध के भयङ्कर दुष्परिणामों से संसार की रक्षा के लिये सन्धि के प्रस्ताव के साथ श्रीकृष्ण को दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजा। महाभारत की यही कथा दूतवाक्य में भास के कवित्व से निखर उठी है। कवि ने इसमें सर्वथा विरुद्ध-प्रकृति के दो पात्रों को चुना है। एक ओर धीर-गम्भीर सफल राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण हैं, जो त्याग एवं शान्ति की साक्षात् मूर्ति हैं। दूसरी ओर ईर्ष्यालु दुर्योधन है, जिसे कर्तव्याकर्तव्य का कुछ भी ध्यान नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण सारगर्भित उक्तियों एवं प्रत्युक्तियों द्वारा ज्येष्ठ कौरव को समझाने का यत्न करते हैं, परन्तु सब व्यर्थ होता है। उनका दुर्योधन की सभा से निराश होकर लौटना इस अभिनेय काव्य में वर्णित है।

## मध्यम व्यायोग

संस्कृत-व्यायोग-कानन का दूसरा पुष्प है – मध्यम-व्यायोग। यह भी भास की ही कृति है। इसका नायक महाभारत का प्रमुख पात्र कौन्तेय भीमसेन है। पाण्डवों में इसका स्थान तीसरा था, इसलिये इसे मध्यमपाण्डव भी कहते हैं।

मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सिक्तानां च मध्यमः।
मध्यमोऽहं क्षितौ भद्र! भ्रातृणामपि मध्यमः ॥[१]

मध्यम-व्यायोग में महाभारत में उल्लिखित बकासुर और ब्राह्मण-परिवार की कथा का आश्रय लिया गया है।

लाक्षागृहदहन के समय हिडिम्बा राक्षसी से मध्यम-पाण्डव का सम्पर्क होने के कारण भीम के घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। पारस्परिक वचन के अनुसार पुत्र-दर्शन होते ही हिडिम्बा और भीम का साथ छूट गया। भास के प्रस्तुत व्यायोग के अनुसार जहाँ हिडिम्बा रहती थी, उसी जंगल से केशवदास ब्राह्मण का परिवार एक यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये जा रहा था। मार्ग में उसका सामना घटोत्कच से हुआ जिसे माता के भोजनार्थ

---

१- मध्यम व्यायोग २८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



मनुष्य ढूंढ लाने का आदेश था। ब्राह्मण के तीन पुत्रों में से एक की उसने याचना की। पुत्र-प्रेम के कारण केशवदास ने अपने आपको और पतिव्रता ब्राह्मणी ने पति के प्राणों की रक्षा के लिये स्वयं को इस कार्य के लिये समर्पित किया किन्तु घटोत्कच ने वृद्ध होने के कारण ब्राह्मण को तथा स्त्री जानकर ब्राह्मणी को भोज्य बनाना उचित नहीं समझा। ज्येष्ठ सन्तान पिता को और कनिष्ठ माता को प्रिय होती है। फलतः मध्यम-ब्राह्मण के राक्षस ले चला। तृषार्त मध्यम ने रास्ते में जलाशय से जल-ग्रहण करने की आज्ञा माँगी। घटोत्कच की स्वीकृति पाकर जलपानार्थ गये ब्राह्मण-पुत्र के लौटने में विलम्ब होता देख, राक्षस ने 'मध्यम-मध्यम' कह कर जोर से पुकारा। उसकी पुकार सुन अकस्मात् ब्राह्मण के स्थान पर मध्यम-पाण्डव भीमसेन पहुँच गया। घटोत्कच के मुख से वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण की रक्षा के हेतु उसने राक्षस की माता का आहार बनना स्वीकार कर लिया। सामने आने पर हिडिम्बा पवन-पुत्र भीम को पहचान गई। पिता-पुत्र का मेल हुआ और ब्राह्मण परिवार का उद्धार। यही इस व्यायोग की संक्षिप्त कथा है। मध्यम पाण्डव द्वारा मध्यम ब्राह्मण की रक्षा की गई। इसलिये इसका नामकरण 'मध्यम-व्यायोग' रखा गया है।

सफल नाटक के लिये निम्नांकित षड्गुण आवश्यक होते हैं (१) घटनाओं का ऐक्य (२) घटनाओं की सार्थकता (३) घटनाओं की घात-प्रतिघात गति (४) कवित्व (५) चरित्र-चित्रण (६) स्वाभाविकता। भास के नाटकों में इन सब गुणों का समावेश उपलब्ध होता है। दूतवाक्य एवं मध्यम व्यायोग के अनुशीलन से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। इन रचनाओं में भास की सरल, सरस एवं सुन्दर शैली का परिचय मिलता है।

भास अपनी दोनों ही कृतियों में महाभारत की छोटी-छोटी कथाओं को मौलिक रूप प्रदान करने में सफल उतरे हैं। इनका अध्ययन करते समय भास को, हम एक अनुभवी व्यक्ति, राजधर्म में निष्णात पण्डित, उत्कृष्ट कोटि के नाटककार एवं विष्णु के अनन्य उपासक के रूप में देखते हैं। दूतवाक्य में कृष्ण का दौत्यकर्म वर्णित है, जिसमें दुर्योधन और कृष्ण के संवाद में नाटकीयता का पर्याप्त निदर्शन है। दोनों की ओर से एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न होता है। भास ने आरम्भ में ही पाण्डवों के दूत के आने का समाचार सुनाते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



हुए जो वाक्य कहा है वह उपमालङ्कार एवं यमक का सुन्दर दृष्टान्त है।

प्राप्तः किलाद्य वचनादिह पाण्डवानां
दौत्येन भृत्यइव कृष्ण-मतिः स कृष्णः
श्रोतुं सखे त्वमपि सज्जय कर्ण कर्णौ,
नारी–मृदूनि वचनानि युधिष्ठरस्य ॥[१]

यहाँ पाण्डवों के प्रति कौरवों के हृदय में स्थित कुत्सित भाव भी झलकते हैं।

भास की रचना-शैली प्रसाद एवं ओज के साथ-साथ माधुर्यगुण से ओत-प्रोत है। इस अपूर्व शैली में रचे गये नाटकों के संवाद बड़े चुभते हुए संक्षिप्त एवं सुबोध हैं जो भास की नाटकीयता को पुष्ट बनाने में सहयोग प्रदान करते हैं। गद्यपद्यमयसंवादों का भास का ढंग अनोखा है। श्रीकृष्ण और दुर्योधन की गर्वोक्तियों को पढ़ कर कवि का भाषा पर अधिकार, उसकी वाक्पटुता एवं राजनीतिज्ञता का परिचय प्राप्त होता है। विपक्षी का समुचित उत्तर न दे सकने पर दुर्योधन का कृष्ण-जैसे योगी पुरुष के लिये भी अपशब्द कहना नितान्त स्वाभाविक है।

दुर्योधनः – कथं कथं दायाद्यमिति। भोः...तदाप्रभृत्येव सदारस्पृहः परमात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत् ?

वासुदेवः – पुराविदं भवन्तं पृच्छामि –
विचित्रवीर्यो विषयी विपत्तिं क्षयेणयातः पुनरम्बिकायाम्।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्यं जनकः कथं ते ?

दुर्योधनः – भो दूत। न जानाति भवान्राज्य-व्यवहारम्।

लोक कल्याण की कामना करने वाले दूत के रूप में श्रीकृष्ण का संयत शब्दों में नैतिक-उपदेश करना उनकी उदारता का परिचायक है और मूढ दुर्योधन का अशिष्ट व्यवहार उसकी पामरता का।

---

१– दूतवाक्य १३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



वासुदेवः -- कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो, विस्मर्त्तव्या गुणेतराः ।
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयाँल्लोकयोरुभयोरपि ।।

दुर्योधनः – भो गोपालक ...

दुर्योधनः – गच्छ गच्छ पशुखुरोद्धतरेणुरूषिताङ्गो व्रजमेव । विफलीकृतः कालः ।

पारस्परिक वार्तालाप के बीच श्रीकृष्ण का मायावी रूप दिखलाकर कवि ने इस रूपक में चार चाँद लगा दिये हैं। सर्वत्र अद्भुतरस का संचार है। दुर्योधन तो ऐसे मायामय दृश्य को देखकर भ्रम में पड़ ही जाता है, दर्शक या पाठक भी इससे प्रभावित हो मुग्ध हो जाते हैं। महाभारत में भी वाद-विवाद के प्रसंग में क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण ने अपना भयंकर विश्वरूप दिखलाया है। इस प्रकार दो विरुद्ध स्वभाव के चरित्रों का मनोहर रूप दूतवाक्य में प्राप्त होता है।

दुर्योधनः – भो दूत् । ... ... ... आःतिष्ठेदानीम् । कथंन दृष्टःकेशवः अयं केशवः ...अहोहस्वत्वं केशवस्य.. अयं केशवः। सर्वमन्त्रशालायां केशवा भवन्ति। ......किमिदानीं करिष्ये ? भवतु दृष्टम् ... भो भो राजानः। एकैनैकः केशवो वध्यताम् ।[१]

तुलना कीजिए –

एवमुक्तवा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा
– – –
शंखचक्रगदाशक्तिशङ्गलाङ्गलनन्दकाः ।
– – –
नाना बाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः ।
– – –
ते दृष्टवा परमात्मानं केशवस्य महात्मनः ... ...
... न्यमीलयन्त नेत्राणिराजानंस्त्रस्तचेतसः ।[२]

---

१– दूतवाक्य.
२– महाभारत अध्याय ११८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: Mi



मध्यम-व्यायोग में भी भीमसेन एवं घटोत्कच की दर्पोक्तियों के माध्यम से दो वीरों का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। भीमसेन के मुख से ब्राह्मण को छोड़ देने की बात सुन कर घटोत्कच उसे मुक्त न करने की जिद पकड़ लेता है। बातों ही बातों में दोनों अपनी शक्ति की परीक्षा करने पर तुल जाते हैं।[1] भीमसेन इस व्यायोग का नायक है और नायकोचित बल-पराक्रम से युक्त धीर-वीर पुरुष है। घटोत्कच की वीरता देखकर उसे आनन्द होता है।

भीमसेनः –( नियुद्धवन्धमवधूय )

व्यपनयवलदर्पं दृष्टसारोऽसि वीर।
नहि मम परिवेदोविद्यते बाहुयुद्धे ॥[2]

भीमसुत घटोत्कच भी बड़ा वली है। वह वीर-प्रेमी भी है। 'बलीबलं वेत्ति' के अनुसार दूर से वीर भीमसेन की दर्शनीय आकृति को देखकर एक पराक्रमी के लिये उसके हृदय में आदर-भाव उमड़ पड़ता है।

घटोत्कचः –न खल्वयं ब्राह्मणबटुः। अहो दर्शनीयोऽयं पुरुषः

सिंहाकृतिः कनकयष्टिसमानबाहु –
मंध्येतनुर्गरूडपक्षविलिप्तपक्षः
विष्णुर्भवेद्विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो
नेत्रममाहरतिबन्धुरिवागतोऽयम् ॥[3]

वीर होने के साथ ही साथ वह गुरुभक्त भी है। घटोत्कच के मुख से माता के प्रति भक्ति-भावना-मिश्रित विचार सुनकर भीम को भी मातृ-भक्ति के फलस्वरूप प्राप्त पाण्डवों की वर्तमान दुर्दशा की याद आ जाती है।

भीमसेनः ( आत्मगतम् ) – कथं मातुराज्ञेति । अहो गुरुशुश्रुषुः खल्वयं तपस्वी।

माताकिल मनुष्याणां देवतानां च दैवतम्।
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य वयमेतां दशां गताः ॥[4]

---

१– मध्यम व्यायोग ३६.
२– मध्यम व्यायोग ४६.
३– मध्यम व्यायोग २७.
४– मध्यम व्यायोग ३७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDP



भीम उसकी गुरुसेवा-परायणता की सराहना करता है। दीन-ब्राह्मणों के प्रति भी उसके हृदय में पर्याप्त सम्मान और सहानुभूति है। राक्षस होने पर भी शूरवीर घटोत्कच में मानवीय गुण विद्यमान हैं।

रूपं सत्वं बलं चैव पितृभिः सदृशं बहु।
प्रजासु वीतकारूण्यं मनश्चैवास्य कीदृशम्॥[1]

उसका मातृ-प्रेम निराला है। ब्राह्मणों के प्रति दयाभाव होते हुए भी वह माँ की आज्ञा को टाल नहीं सकता।[2]

गुरु-भक्त पिता की झूठी निन्दा को सहन न कर प्रतिद्वन्द्वी से लड़ने को तैयार हो जाता है। अन्त में रहस्योद्घाटन होने पर आज्ञाकारी पुत्र पिता से क्षमा-याचना करता है। भीम भी उसे क्षमा प्रदान कर अपने हृदय की विशालता तथा पितृत्व का परिचय देता है और पुत्र पराक्रमी होने का आशीर्वाद ग्रहण करता है।

हिडिम्बा राक्षसी होकर भी, द्रौपदी, गान्धारी आदि की तरह एक सती साध्वी पतिव्रता है।

कौरव्यकुलदीपेन पाण्डवेन महात्मना।
सनाथा या महाभाया पूर्णेन घौरिवात्मना॥[3]

भीमसेनः – (विलोक्य) का पुनरियम्? अये देवी हिडिम्बा।
अस्माकं भ्रष्टराज्यानां भ्रमतां गहने वने।
देवि! सन्तापो नाशितस्त्वया॥
जात्या राक्षसी। न समुदाचारेण

वह जाति से ही राक्षसी है, आचरण से नहीं। बहुत दिनों के बाद वह अपने पति से मिल कर कृतकृत्य हो जाती है और उसका एक भारतीय नारी की

---

१– मध्यम व्यायोग ३९.
२– मध्यम व्यायोग –९.
३– मध्यम व्यायोग ३२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



तरह अभिवादन करती है। आदर्श माता की तरह घटोत्कच को उसकी भूल का ज्ञान कराती हुई पिता का अभिनन्दन करने की आज्ञा देती है। वह किसी देवी से कम नहीं।

इस तरह भास पात्रों के व्यक्ति-वैचित्र्य द्वारा कथा को सजीव बनाने में निष्णात हैं। उनके पात्र स्त्री हों या पुरुष, सामान्य भूमिका पर ही दृष्टिगत होते हैं। वे कल्पनालोक के प्राणी नहीं हैं। उनके पात्र चाहे दिव्य हों या राक्षस, मानवीय गुणों से मंडित होते हैं। उनके विचारों एवं कार्यों में कोई असाधारण बात नहीं देखी जाती। जब हम पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र-विकास की परीक्षा करते हैं तब पाते हैं कि भास आधुनिक युग के नाटककारों के साथ ही हैं। उनके गुण की श्री मीरवर्य जैसे सहृदयों ने मुक्त कण्ठ से सराहना की है —

"In Psych ological subtlety, Bhasa is almost modern."

महाभारत पर आधारित रूपकों के चरित्र-चित्रण में यद्यपि भास स्वतन्त्र न थे, तथापि उनके द्वारा चित्रित श्रीकृष्ण, दुर्योधन, भीम आदि उदात्त भावनाओं को उत्पन्न करने में पूर्णतया समर्थ हैं और वे प्रदर्शकों की सहानुभूति भी प्राप्त कर लेते हैं। संक्षेप में, भास के पात्र कालिदास, बाण, भवभूति आदि के पात्रों की तरह केवल कल्पनानगरी में विचरण करने वाले भावना के पुतले नहीं हैं। वे भट्टनारायण जैसे ओजः-प्रधान भी नहीं हैं और न वे शूद्रक की तरह हँसोढ़ ही हैं। इनमें प्राचीन कवियों के पात्रोंकी-सी कामुकता तथा भावुकता नहीं दिखाई देती। इनमें यथार्थता के दर्शन होते हैं।

भास के नाटकों की अनेकता एवं विविधता से भास की मौलिकता तथा नाट्यकला में निपुणता स्वतः सिद्ध है। नाट्य-शास्त्र का अक्षरशः पालन न करने पर भी उनकी अभिनेय कृतियाँ श्रेष्ठ एवं रोचक सिद्ध हुई हैं। इतिहास-पुराणादि से लिये गए इतिवृत्त भी कवि की अनूठी कल्पना से मनोज्ञ बन गए हैं। भास के रूपकों की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण उनकी अभिनेयता है। इनमें समय और स्थान की अन्विति का सफल निर्वाह हुआ है। जहां संस्कृत के बहुत से नाटक अभिनय के लिये अनुपयुक्त प्रतीत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



होते हैं, वहाँ भास के नाटक रङ्गमञ्च के सर्वथा उपयुक्त हैं। दक्षिण भारत में चाक्यारों द्वारा सैकड़ों वर्ष पूर्व से इनके नाटकों का अभिनय होता रहा है।

विकटबन्ध, क्लिष्ट कल्पना और दीर्घ-समासों का अभाव ही कवि की रचनाओं की रोचकता का मुख्य कारण है। भास की वैदर्भी शैली को ही कालिदास ने ग्रहण किया। भाषा की सरलता को देख कर विदित होता है कि ये नाटक तत्कालीन सामान्य जनता को ध्यान में रख कर ही रचे गये होंगे। प्रस्तावना में ही मुद्रालंकार की सहायता से नाटक के प्रमुख-पात्रों का परिचय कराने की कवि की पद्धति निराली है। भास ने उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा जैसे सरल अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। रस तथा प्रसङ्ग के अनुरूप शैली में परिवर्तन कर देना कवि के बाँए हाथ का खेल है। वाग्विस्तार के स्थान पर शब्दों के परिमित प्रयोगों से ही भावों की मर्मस्पर्शी व्यञ्जना करने में भास निपुण हैं। कवि की लेखनी के प्रभाव से कई स्थल बड़े ही प्रभावोत्पादक एवं हृदयग्राही बन गए हैं। उदाहरणार्थ– मध्यमव्यायोग में बिछुड़े हुए पिता–पुत्र का बड़े दिनों बाद हुआ मेल बड़ा ही हृदयस्पर्शी है।

भीमसेनः – एह्येहि पुत्र। व्यतिक्रमकृतं क्षान्तमेव। (परिष्वज्य) धार्तराष्ट्र–वन–दवाग्निः पुत्रापेक्षीणि खलुपितृहृदयानि। पुत्र। अतिबलपरा–क्रमो भव।[1]

इसी प्रकार राक्षसी के आहारार्थ मध्यम-पुत्र को विदा करते समय माता-पिता का हाल देख कर आँसू नहीं रोके जा सकते।

वृद्धः – हा पुत्र ! कथं गत एव।
तरुण। तरुणतानुरूपकान्ते। नियमपराध्ययन-प्रसक्त-बुद्धे।
कथमिहि गजराजदन्तमग्न – स्तरूरिव यास्यसि पुष्पितो विनाशम् ॥[2]

---

१- मध्यम व्यायोग
२- मध्यम व्यायोग २४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



मध्यम-पुत्र की उपेक्षा होते देख ऐतरेय ब्राह्मण का 'शुनःशेप आख्यान' याद आ जाता है ।

तस्य ह त्रयः पुत्राः आसुः ।...
स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान उवाच – नन्विममिति नो एवेममिति ।
कनिष्ठं माता । तौ ह मध्यमे संपादयाञ्चक्रतुः शुनःशेपे ।[1]

तुलना कीजिए –

वृद्धः – ज्येष्ठमिष्टतमं न शक्नोमि परित्युक्तम् ।
ब्राह्मणी – यथार्थो ज्येष्ठप्रिच्छति, तथाहमपि कनिष्ठमिच्छामि ।
द्वितीयः – पित्रोरनिष्टः कस्येदानीं प्रिवः ?
घटोत्कचः – अहं प्रीतोऽस्मि, शीघ्रमागच्छ ।[2]

उसमें भी यज्ञ में बलिदान देने के लिये अपने तीन पुत्रों में से एक का त्याग करते समय पिता ने ज्येष्ठ को और माता ने कनिष्ठ पुत्र को छाती से लगा लिया था । मँझली सन्तान की यह दुर्दशा सदा से ही होती आई है । उसके प्रति पाठकों की पूरी सहानुभूति होती है । इस प्रकार वीररस के सफल नाटककार ने प्रणय, करुण एवं विस्मय का सुन्दर निर्वाह किया है ।

भास ने सांसारिक बातों का सूक्ष्म निरीक्षण कर लोगों को उनसे लाभान्वित करने के लिये बहुत सी नैतिक बातें लोकोक्तियों में पिरो दी हैं। इन लोकोक्तियों द्वारा उन्होंने गागर में सागर भर दिया है ।

आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते ।[3]
रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं घर्षयेद्वने ।[4]

उनके संश्लिष्ट चित्र नाटक के कथानक की श्रीवृद्धि करते हैं ।

---

१– ऐतरेय ब्राह्मणस्य हरिश्चंद्रो प्राख्यानम्.
२– मध्यम व्यायोग.
३– मध्यम व्यायोग, १९.
४– मध्यम व्यायोग ४४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



पादः पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सवः सवः।
व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखेन खे।[1]
दौत्येन भृत्यइव कृष्णमतिः स कृष्णः।
श्रोतुं सखे! त्वमपि सज्जयकर्णं। कर्णौ
— — —
भवतु चपला चक्रं कालचक्रं तवाद्य।
— — —
तरुण तरुणतानुरूपकान्ते [2]

कहीं कहीं समस्त पदों और दीर्घ वाक्यों का प्रयोग भी वे प्रसङ्गवश करते हैं किन्तु वह वाक्य काव्य-सौंदर्य की वृद्धि में सहायक होता है, बाधक नहीं।

कृष्णापराभवभुवा रिपुवहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य।[3]
मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालैः।[4]

## धनञ्जयविजय व्यायोग

भास के पश्चात् लगभग १२०० ई. में काञ्चनाचार्य ने धनञ्जय-विजय व्यायोग रचा। इसकी कथावस्तु महाभारत के विराट-पर्व के गोग्रहण-पर्व से ली गई है। दुर्योधन की शर्तों के अनुसार पाण्डवों को तेरह वर्ष तक वन में वास करना था जिसमें एक वर्ष की अवधि अज्ञातवास की थी। पाण्डव द्रौपदी-सहित भिन्न-भिन्न वेशों में राजा विराट के संरक्षण में रह कर अज्ञातवास की अवधि पूरी कर रहे थे। एक वर्ष के पूर्ण होने में तेरह दिन शेष रहे तब कौरवों ने कीचक का वध हो जाने से विराट को निर्बल जान कर उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया। वे उनकी एक लाख गाएँ हर ले गए। ऐसी विषम

१- दूतवाक्य
२- मध्यम व्यायोग
३- दूतवाक्य -१४.
४- दूतवाक्य -४१.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



परिस्थिति में भीम, अर्जुन आदि ने अपना पराक्रम दिखला कर कौरवों से गाएँ वापस ले ली। धनञ्जय-विजय में गोरक्षा की यही कथा वर्णित है। चन्द्रावली (जोधपुर) के परमार राजा धारावर्ष के भाई प्रह्लादनदेव[1] ने १२०६ ई. में पार्थपराक्रम नामक व्यायोग की रचना की। इसका विषय भी गोरक्षण कर्म का चित्रण करना है।[2] यथा –

अर्जुनः (स्वगतम्) (साहंकारम्) कृतमिदानीं कर्तव्यान्तरेण।
वात्सानामहमुत्सवं विरचयाम्युच्चैर्मुहुः क्रन्दतां
निष्क्रीणामि विराटकुट्टिमसुखावस्थानमानीय गाः।

## पार्थपराक्रम और धनञ्जयविजय की तुलना

उक्त दो कवियों की रचनाओं के एक ही कथावस्तु पर आश्रित होने पर भी इनके रचयिताओं के विचारों और उनकी भाषा में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है। सबसे पहला भेद तो रूपक के शीर्षक का ही है। दूसरे, पात्रों की संख्या में भी पार्थक्य है।

| धनञ्जय-विजय | पार्थपराक्रम |
|---|---|
| अर्जुन | अर्जुन |
| अमात्य | उत्तरा ... ... विराटराजपुत्री |
| विराटकुमार | द्रौपदी |
| इन्द्र | उत्तर नामक कुमार |
| विद्याधर | |
| दुर्योधन | पुरुष एवं जयसेन |
| प्रतिहारी | द्रोण |
| सूत (इन्द्र का) | भीष्म |
| भीम (मध्यम पाण्डव) | सुषेण |

१– नट :– भाव ! अस्त्येव युवराजश्रीप्रह्लाददननिर्मितः पार्थपराक्रमनामा व्यायोगः
पार्थपराक्रम पृ० २.

२– पार्थपराक्रम ३४, पृ० १३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



युधिष्ठिर
दुर्योधन
सूत
वासव

---

भास ने अपने नाटकों में भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमों का उल्लङ्घन करने का साहस किया है, परन्तु काञ्चनपण्डित एवं प्रह्लादनदेव जैसे परवर्ती कवियों ने अपनी कृतियों में नाट्य-सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए वीररस–प्रधान रूपक के अनुरूप विष्णु भगवान् के नानारूपों तथा शक्तिदायिनी माता चण्डी (दुर्गा) की स्तुति के उपरान्त इस व्यायोग के प्रमुख विषय का बड़े कलात्मक ढंग से परिचय करवाया है।

हरेर्लीलावराहस्य दंष्ट्रा–दण्डः स पातु वः।[1]
देवः स वः शिवशतानि तनोतु शौरि –
यः शैशवेऽपि तुलयन्नतुलं नगेन्द्रम्।
लज्जां विजित्य परिहृत्य भियं गुरूणां
गोपीजनैः सरभसं परिरभ्यते स्म ॥[2]
तद्वः प्रमार्ष्टु विपदः प्रणतार्तिहन्त्र्या
न्यस्तं पदं महिषमूर्धनि चण्डिकायाः।
वैरी यदीय – नखरांशुपरीत – शृङ्गः
शक्रायुधाङ्कित – नवाम्बुधर – प्रभोऽभूत् ॥[3]

## काव्य की चारुता

इसके अतिरिक्त इन रस-सिद्ध कवियों ने प्रभातकालीन एवं शरत्कालीन प्रकृति की मोहक छटा तथा श्रीकृष्ण द्वारा हाथ में उठाए नन्दनपर्वत की शोभा

---

१– धनञ्जयविजय
२– पार्थपराक्रम
३– धनञ्जयविजय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



का वर्णन कर अपने कवित्व का चमत्कार भी प्रदर्शित किया है।[1]

स्थापकः – (पुरोविलोक्य) अहह । चारिमा हिमाचलनन्दनस्य
नन्दिवर्द्धनस्य । तथा हि –
नीले मौलिप्रणयिति घने वल्गुवल्गद्वलाके,
विभ्रत्युच्चैर्विकचकुसुमोद्भासिध - म्मिलशोभाम् ।
पाताघातक्षतरयपयः सीकरोद्गारहार,
स्फारस्फातिर्वितरतिरतिं कस्य नाऽसौनगेन्द्रः ।।[2]

यद्यपि दीप्ति-रसों वाले व्यायोग में कविता का रमणीय रूप दिखाने का कवियों को बहुत कम अवसर मिलता है तथापि प्रस्तावना में ही देवी-देवताओं की स्तुति के व्याज से वे अपनी कविता का मनोरम चित्र प्रस्तुत कर ही देते हैं। अस्तु –

रमणीयप्रभात का शोभनीय रूप काञ्चनाचार्य की इन पंक्तियों में अङ्कित है –

दाराणां मुरवैरिणो रतिपतेर्मातुस्त्रिलोकीजितः
स्फारत्पङ्कज-कोटरोदरजुषो निद्राविरामे श्रियः ।
प्रत्युद्बुद्धमरालपक्ष — पटहध्वानप्रबन्धानुगं
भृङ्गी मंगलगायिकेव सततं प्रोत्कूजति प्राङ्गणे ।।[3]

मुर के शत्रु त्रिलोकीनाथ विष्णु भगवान् की नींद पूरी हो जाने पर कामदेव की माता लक्ष्मी जाग उठती है। कमल के भीतर बन्द भ्रमरी प्रभात-काल में कमल के खिलते ही पंख फड़फड़ाती हुई मानो तुरन्त जागे हुए पटहादि बजाने वाले लोगों के तालबन्ध (तबले के ताल के पीछे)पीछे चलती हुई मंगल-गान गाने वाली नायिका के समान आंगन में निरन्तर कूज रही है।

शरत्काल में प्रकृति का अनुपम रूप दर्शक का मन मोह लेता है। शरत्कालीन प्राकृतिक छटा देखने के लिये स्वयं विष्णु भगवान् अपनी योगनिद्रा

---

१– ...प्रह्लादनस्य कविता वसतिः प्रसत्तेः... पार्थपराक्रम, ४

२– पार्थपराक्रम, २.

३– धनञ्जय विजय ४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



को शिथिल कर देते हैं तो साधारण लोगों का क्या कहना ?

निष्कम्पा पृथिवी, सशाद्वललता, निर्दुर्दिनं चाम्बरं,
सुव्यक्तामलतारकेन्दुसरितः काशप्रसूनाङ्किताः ।
तोयं वीत–विषं सरांसि विकसत्पद्मानि शुभ्रा दिशो ।
द्रष्टुं सप्रतिशारदीं श्रियमिमां मन्ये प्रवुद्धो हरिः ।।[१]

"चांद तारों से जड़े आकाश,निर्मल नदनदी, खिले हुए काश, एवं निर्मल सरोवरों में विकसित कमलों से सुशोभित दिशाओं वाली शान्त (निष्कम्प) पृथिवी का शरत्कालीन-लावण्य देखने के लिये ही मानो विष्णु भगवान् जाग उठे हैं। –

यह अंश उत्प्रेक्षालङ्कार का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। ऐसी सुन्दर तथा सरस भूमिका के उपरान्त कवि काञ्चनाचार्य अज्ञातवास की अवधि के पूर्ण होने का आभास कराते हुए अपनी रचना का बीजन्यास बड़े कलात्मक ढँग से करते हैं।

सूत्रधारः – चिरमज्ञातः समयवशात्कोऽपि तेजसो निचयः ।
प्रकटी भवति विवस्वानेष किरीटीव समयमुत्तीर्णः ।।
(ततः प्रविशति विराटामात्येन सहार्जुनः)

अर्जुनः–(सोत्साहम्) अनुकूलं दैवं लक्ष्यते । यतः –
या लतान्विष्यते सैव लग्ना सम्प्रति पादयोः ।
कुरुराजोऽभियातव्यः स्वयमेव समागतः ।।[२]

पार्थपराक्रमकार ने भी इसी पद्धति का अनुसरण किया है। –
(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टोऽर्जुनः)

अर्जुनः – अहो समुचितः खल्वेष विधिरस्माकम् । यतः –
पाञ्चाली – चिकुराम्बरापकर्षं दृष्टैवमेव स्थिताः
सम्भूता अपि भूभुजामपि जने कर्मारिणकुर्मोऽन्यतः ।
तामद्याप्यरिमन्दिरे कृतपदां लक्ष्मीमुपेक्षामहे
तत्पुंस्त्वं परिहृत्य हन्त चरतां युक्तैव वः क्लीवता ।।[३]

---

१– धनञ्जय विजय ६,
२– धनञ्जय विजय १४-१५.
३– पार्थपराक्रम १०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



अर्जुनः – (सानन्दमात्मगतम्)
हन्त पल्लवितमथवा फलितमेव मे च मनोरथपादपेन ।
यदयं कालपाशाकृष्ट इव धृतराष्ट्रसूनु र्मम दृष्टिपथमवतरति ।[1]

अर्जुन गोरक्षा के बहाने बड़ी सुगमता से द्रौपदी के अपमान का बदला लेने का अवसर प्राप्त हुआ जानकर प्रसन्न होता है । अब तक वृहन्नला के रूप में अपनी क्लीवता को देख कर उसे ग्लानि होती थी । इसी प्रकार इन कवियों ने महाभारत की कथा को नाटकीय रूप प्रदान कर व्यायोग-साहित्य की सेवा की ।

धनञ्जय विजय में दुर्योधन और अर्जुन के बीच के संवाद में एक दूसरे को ललकारने की बातें पढ़ कर पाठक के हृदय में ओजपूर्ण भाव उत्पन्न होते हैं । कई एक स्थलों पर भास जैसे कवियों का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है ।

नायकः – अपसर कुरूनाथ द्यूतमन्यादृशं तद् –
द्रुपदनृपति-पुत्री यत्र दासीकृतासीत् ।
इह हि शरशलाकापातपूर्वं सगर्वं
प्रति – नृपतिशराक्षैः क्षत्रियद्यूतकेलिः ।।[2]

तुलना कीजिये–

घटोत्कचः — अक्षान्विमुञ्च शकुने । कुरूबाणयोग्य
मष्टापदं समरकर्मणि युक्तरूपम् ।
न ह्यत्र दारहरणं नच राज्यतन्त्रं
प्राणाः पणोऽत्र रतिरूग्रवलैश्चबाणैः ।।[3]

## धनञ्जयविजय की टीका

शाण्डिल्य गोत्रोद्भव स्वामी सूरि के पुत्र लक्ष्मीकान्त ने वसन्तराजीय

---

१– पार्थपराक्रम पृ० ५.
२– धनञ्जयविजय ४७,
३– दूतघटोत्कच ४६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



नाट्यशास्त्र, भारतीय नाट्यशास्त्र तथा दशरूपक का अध्ययन करके काञ्चनाचार्य के वनञ्जयविजय व्यायोग पर टीका लिखी जो "लक्ष्मीकान्तीयम्" कहलाती है।[1] इसका ज्ञान हमें तमिल एवं संस्कृत की हस्तलिखित पोथियों की तालिका को देखने पर होता है। इस टीका से सकलकलाप्रवीण काञ्चन–पण्डित की रचना का अर्थ समझना सुकर हो सकता है। कनकाचार्य के धनञ्जयविजय का वर्ण्य-विषय भी गोरक्षण कार्य है।

## सौगन्धिकाहरण

प्राप्त व्यायोग ग्रन्थावलि में कवि विश्वनाथ के सौगन्धिकाहरण का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ और सौगन्धिकाहरण के रचयिता विश्वनाथ के नामाक्षरों में साम्य देखकर संस्कृत प्रेमी विद्यार्थियों के समक्ष यह प्रश्न स्वभावतः उठ खड़ा होता है कि क्या ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं ? उक्त रूपक के अन्तः परीक्षण से पहले इस विवादमूलक प्रश्न पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु–

वाचस्पति गैरोला ने लिखा है कि 'राजा प्रताप सहदेव के आश्रित कवि विश्वनाथ ने सौगन्धिकाहरण जैसे नाटकों की रचना करके अपने विद्वद्वंश का परिचय दिया"। इसी प्रकार वे अलंकार-शास्त्री विश्वनाथ को भी विद्वद्वंश सम्भव बतलाते हैं। वस्तुतः यह बात अन्तः साक्ष्य एवं वहिःसाक्ष्य से नहीं सिद्ध हो पाई है कि रूपककार विश्वनाथ राजा प्रताप सहदेव के दरबार में आश्रय पाते थे। गैरोलाजी तथा डॉ. कीथ कवि का समय १७७३ वि. संवत् अर्थात् १३१६ ई. मानते हैं। आलंकारिक विश्वनाथ तथा सौगन्धिकाहरण के कर्ता का समय बलदेव उपाध्याय १३०० से १३५० ई. के बीच का निर्धारित करते हैं। इससे भी उक्त प्रश्न हल नहीं होता। राजा प्रताप सहदेव की चर्चा का सौगन्धिकाहरण में सर्वथा अभाव है। दर्पणकार विश्वनाथ का समय चौदहवीं

---

१– दृष्ट्वा वसन्तराजीयं भारतं दशरूपकम् ।
व्यायोगं काञ्चनप्रोक्तम् व्याकुर्वे स्फुटभाषितैः
शाण्डिल्य-गोत्र-सद्रत्न-स्वामि-सुतोत्तरः ।
लक्ष्मीकान्तोऽम्बते टीकांलक्ष्मीकांतीय-संज्ञिताम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: Mi



(१४ वीं) शताब्दी है। दोनों विद्वानों ने जो अपने कुल का स्वयं परिचय दिया है वह एक दूसरे के विवरण से सर्वथा भिन्न है। साहित्याचार्य विश्वनाथ ने अपना परिचय साहित्यदर्पण[१] के अन्त में दिया है। उसके अनुसार यह चन्द्र–शेखर कवि के पुत्र तथा नारायणदास के पौत्र थे। यह संभवतः उड़ीसा (उत्कल-देशीय) के थे। इसके विपरीत सौगन्धिकाहरण के लेखक अपना परिचय देते हुए अपना सम्बन्ध राजा प्रतापरुद्र[२] के दरवार से जोड़ते हैं तथा अपने कुल का वर्णन करते समय अपने मामा अगस्त्य का नाम आदर के साथ लेते हैं जिससे व्यञ्जित होता है कि कवि ने अपने मामा से ही शिक्षा–दीक्षाग्रहण की होगी।

राजा प्रतापरुद्र (द्वितीय) त्रिलिंग देश का शासक था। वारंगल के काकतीय वंश में सबसे प्रभावशाली राजा गणपति हुआ। गणपति ने ११९९ ई. में साम्राज्य का शासन सूत्र अपने हाथ में लिया और १२६१ ई. तक राज्य किया। उसके मरने के उपरान्त उसकी इकलौती बेटी रुद्राम्बा राज्य की उत्त-राधिकारिणी बनी। इसी का उपनाम रुद्रदेव महाराज जगत् में प्रसिद्ध हुआ। इसके भी कोई पुत्र न होने के कारण उसका दौहित्र राजा प्रतापरुद्र राज्य का उत्तराधिकारी बना। कालान्तर में यही काकतीय वीरभद्रराजा प्रतापरुद्र (द्वितीय) के नाम से विख्यात हुआ। इसके ही शासन काल में आलंकारिक विद्यानाथ हुआ जो अगस्त्य भी कहलाता था। संभवतः ये अगस्त्य उपनाम–धारी विद्यानाथ ही सौगन्धिकाहरणकार विश्वनाथ के मामा रहे हों।

---

१– चन्द्रशेखर महाकवि चन्द्रसुनुः – श्रीविश्वनाथ कविराजकृतं प्रबन्धम्।
साहित्यदर्पणममुं सुधियो विलोक्य साहित्यतत्त्वमखिलं सुखमेववित्त॥
यावत्प्रसन्नेन्दुनिभानना श्रीनारायणस्याङ्गमलङ्करोति।
तावन्मनः संमदयन् कवीनामेष प्रबंधः प्रथितोऽस्तु लोके॥ सा. द. ९९–१००.

२– सूत्रधारः ...राजाप्रतापरुद्रेण ...सबहुमानमादिष्टोऽस्मि –
विश्वनाथ इतिख्यातः कविरस्ति यदुक्तयः। अकाञ्चनमरत्न च विदुषां कर्णभूषणम्॥ –
वाचस्तस्यकवेरुदारमधुरा इत्यत्र चित्रं किमु –
प्रख्यातः सकलासुदिक्षु गुणिषु श्रेयानगस्त्यः सुधीः।
वेपश्चन्द्रमुखीकराङ्गुलिदलासङ्गकणद्वल्लको –
वाचोयुक्तिसहोक्ति-दर्शित-सुधाजन्मा स यन्मातुलः।

सौगन्धिकाहरण, ४४ पृ० २.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDH



इसके अतिरिक्त अन्य कारण हैं जो दोनों विद्वानों को एक दूसरे से भिन्न सिद्ध करते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ अपने ग्रन्थ में जहाँ कहीं भी उदाहरण देते हैं वहाँ यह स्पष्ट लिख देते हैं कि अमुक अंश कहाँ से लिया गया? यदि वे अपनी कृति में से ही कुछ उद्धृत करते हैं तो गर्व का अनुभव करते हुए उल्लास के साथ लिखते हैं– यथा 'मम नरसिंहविजये।' इसी प्रकार साहित्य–दर्पण के षष्ठ परिच्छेद में सन्ध्यङ्गों का वर्णन करते समय प्रतिबन्ध के उदा–हरण में अपनी रचना प्रभावती का स्मरण करते हैं – यथा मम प्रभावत्यां विदूषकं प्रति प्रद्युम्नः – "सखे कथमिह एकाकी वर्तसे ? इत्यादि।

अपने पिता की कृति का उल्लेख करते हुए भी गर्व के साथ कहते हैं– "यथा मम तातपादानाम्... इत्यादि। परन्तु व्यायोग के लक्षण करने के बाद उदाहरण प्रस्तुत करते समय वह कहते हैं यथा – "सौगन्धिकाहरणम्।" यदि यह साहित्याचार्य की ही स्वकीय कृति होती तो यहाँ भी वे स्पष्ट लिख देते जैसा अन्यत्र किया है। फिर मनुष्य का स्वभाव है कि जब अपनी कृति विद्यमान हो तो वह परकीय रचना से लेकर दृष्टान्त रखना पसन्द नहीं करेगा। इतना ही नहीं, दर्पणकार विश्वनाथ षोडश-भाषा-वारविलासिनी भुजङ्ग हैं। इसके अतिरिक्त साहित्याचार्य द्वारा निर्मित प्रबन्धों की तालिका पर दृष्टिपात करने से भी दोनों विद्वानों के व्यक्तित्व में भिन्नता स्वतः सिद्ध हो जाती है। गैरोलाजी ने भी आलंकारिक विश्वनाथ के जिन ९ ग्रन्थों का उल्लेख किया है, उनमें सौगन्धिकाहरण का नाम नहीं लिया है।[१] यह ग्रन्थ–पटल इनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है जब कि रूपककार का एक अकेला सौगन्धि-काहरण ही उपलब्ध है। दर्पणकार के इन नौ ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख नहीं है। श्री पी. वी. काणे ने भी दर्पणकार की कृतियों में इसे स्थान नहीं दिया है। इन दोनों की शैली भी भिन्न है। जहाँ साहित्याचार्य विश्वनाथ की भाषा माधुर्य तथा प्रसाद गुणों से मण्डित है वहाँ नाटककार की भाषा अभि–नव–शब्द–विन्यास तथा जटिल–समस्त–पदों से युक्त एवं व्याकरण के अनुशा–सन में पूर्णतया जकड़ी हुई है। इस प्रकार दोनों पण्डितों के व्यक्तित्व में भेद

---

१- देखिए – लक्ष्मीटीकासहित साहित्यदर्पण की भूमिका और संस्कृत साहित्य का इति–हास (बृहत्संस्करण) गैरोला –पृ० ९६२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में कालिदासों एवं विक्रमादित्यों की कमी नहीं है उसी प्रकार विश्वनाथों का अभाव भी नहीं है। इन दो विश्वनाथों के अतिरिक्त संस्कृत जगत् में प्रसिद्ध अन्य विश्वनाथों की सूचना भी मिलती है जो निम्नाङ्कित सूची में निर्दिष्ट है। सौगन्धिकाहरण के रचयिता इन सबसे भिन्न व्यक्ति हैं।

| कवि | रचना | प्रकार |
|---|---|---|
| १. विश्वनाथ | मृगाङ्कलेखा | नाटिका |
| २. विश्वनाथभट्ट | शृङ्गार वाटिका या शृङ्गार वापिका | |
| ३. तर्कपञ्चानन विश्वनाथ | | |
| ४. विश्वनाथ(टीकाकार) | राघवपाण्डवीय पर टीका | टीका |

लक्षणकार एवं रूपककार विश्वनाथ के व्यक्तित्व में ही अन्तर नहीं है, उनके कथन में भी भेद हैं। साहित्याचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में सौगन्धिकाहरण का नाम व्यायोग के लक्षण करते समय उदाहरण - स्वरूप लिया है[1]। परन्तु इस रूपक के रचयिता ने इसकी प्रस्तावना और अन्त में इसे प्रेक्षणक की संज्ञा दी है।[2] अतः "सौगन्धिकाहरण" व्यायोग है या प्रेक्षणक ? यह प्रश्न भी संस्कृत साहित्य की विवादग्रस्त समस्याओं में से एक बन गया है। इस प्रश्न पर विचार करने से पहले व्यायोग और प्रेक्षणक के लक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन करना अनुचित न होगा।

१– ख्यातेतिवृत्तो व्यायोग: स्वल्पस्त्रीजनसंयुत: ।

.........

यथा सौगन्धिकाहरणम् सा. द. परि. ६.

२– तेन कविना प्रणीतमभिनवं सौगंधिकाहरणं नाम प्रेक्षणकमस्मास्वभिनीतपूर्वमास्ते ।
समाप्तमिदं सौगंधिकाहरणं नाम प्रेक्षणकम् । सौगंधिकाहरण पृ० २.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



## व्यायोग और प्रेक्षणक का तुलनात्मक विवेचन

व्यायोग में कथा-वस्तु पुराण-प्रसिद्ध या इतिहास-प्रसिद्ध होती है। इसका नायक धीरोद्धत राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष रहता है। इसमें पात्रों का बाहुल्य तो होता है परन्तु स्त्री-पात्रों का अभाव सा रहता है, युद्ध होता है किन्तु स्त्री के कारण नहीं। इसका विस्तृत लक्षण आरम्भ में ही दिया गया है। प्रेङ्खण प्रेक्षणक का पर्याय प्रतीत होता है। इसका लक्षण साहित्य दर्पण में दृष्टिगत होता है। प्रेक्षणिक, प्रेक्षणीयक आदि पद अभिधानकोशों एवं विभिन्न साहित्याचार्यों के लक्षण–ग्रन्थों में रूपक के एक भेद के अर्थ में प्राप्त होते हैं।[1] इनके अनु–सन्धान से प्रेङ्खण प्रेक्षणक का ही स्थानापन्न प्रतीत होता है। शारदातनय, भोज एवं सागरनन्दी इसे नृत्तरूपक मानते हैं—"प्रेक्षणिकं नृत्त रूपकम्।......"

व्यायोग एवं प्रेङ्खण के लक्षणों को ध्यान में रख कर जब हम सौगन्धिकाहरण का अध्ययन करते हैं तो इसके व्यायोग होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। कारण, इसकी कथा वस्तु का आधार, वन–पर्व के अन्तर्गत तीर्थयात्रा के समय की कथा का वह भाग है जहाँ स्नान करती हुई द्रौपदी को गन्धमादन पर्वत की ओर से उड़ कर आया हुआ "सौगन्धिक" नाम का कमल मिलता है। इस प्रकार के और भी, फूल लाने का आग्रह द्रौपदी धीरोद्धत नायक भीमसेन से करती है।

भीमसेनः -

सौगन्धिकं किमपि गन्धवहोपनीत मालोक्य कौतुकवताहृदयेन कृष्णा।
अन्यानि याचितवती किल तादृशानि सजस्तदाहृति–विधौ मम बाहुरेषः ॥[2]

इसके सहायक पुरुष पात्रों में हनुमान, कुबेर कञ्चुकी, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव आदि हैं। स्त्रियों में केवल द्रौपदी के ही दर्शन होते हैं। इसमें कुबेर के साथ युद्ध स्त्री-निमित्तक नहीं है, प्रत्युत सौगन्धिकपुष्प के कारण हुआ है।

---

१– देखिए – भरतकोष में प्रेक्षणक का अर्थ एवं विवरण।

२– सौगंधिकाहरण ८, पृ० ३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



इसमें शृंगार रस से सम्बन्ध रखने वाली कैशिकी वृत्ति का आश्रय न लेकर आरभटी का प्रयोग किया गया है। वीर एवं अद्भुत रस मुख्य-रस के रूप में विद्यमान हैं। इस प्रकार दर्पणकार द्वारा लक्षित व्यायोग के सब लक्षण इस में वर्तमान हैं।

फिर भी रूपककार विश्वनाथ के उपर्युक्त वाक्यों ने सबको भ्रम में डाल दिया है। डॉ. दशरथ ओझा ने अपनी एक पुस्तक में संस्कृत में एकांकी विषय पर चर्चा करते हुये सौगन्धिकाहरण की गणना प्रेङ्खण-कोटि के रूपकों के साथ की है[१] जबकि प्रेङ्खण का एक भी लक्षण इसमें लक्षित नहीं होता। कारण, इसमें नायक नीच होता है, गर्भ तथा विमर्श सन्धियों का अभाव होता है, प्रवेशक और सूत्रधार को भी इसमें स्थान नहीं दिया जाता। नियुद्ध (बाहुयुद्ध), सम्फेट (सरोषभाषण) आदि के चित्र इसमें मिलते हैं तथा सब वृत्तियाँ होती हैं। प्ररोचना तथा नान्दीपाठ नेपथ्य से प्रसारित होते हैं। इस लक्षण को ध्यान में रखते हुए प्रेङ्खण के उदाहरणस्वरूप बालिवध को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। डॉ. ओझा प्रेक्षणक के लक्षण करते हुए आगे एक बड़े नाटक के अन्तर्गत आने वाले दूसरे नाटकों को भी प्रेङ्खण की संज्ञा देते हैं।[१] इस प्रसंग में उन्होंने राजशेखर को याद किया है। सौगन्धिकाहरण किसी बड़े नाटक के बीच में भी नहीं खेला गया है। यह तो एक स्वतन्त्र लघु नाटक है। अतः इसे कर्टेनरेजर मानकर भी

---

१– भास्करकवि का 'उन्मत्त राघव', लोकनाथ भट्ट का 'कृष्णाभ्युदय', विश्वनाथ का सौगंधिकाहरण प्रेङ्खण की कोटि में आते हैं – हिंदी नाटकः उद्भव और विकास पृ० ३२६.

२– जब एक नाटक के अंतर्गत दूसरा नाटक आ जाता है तो वह प्रेङ्खण कहलाता है। राजशेखर के बालरामायण नाटक के अंतर्गत एक प्रेक्षणक पाया जाता है।...... ...सौगंधिकाहरण प्रेङ्खण की कोटि में आते हैं। यह एकाङ्की संस्कृत का एक प्रकार से कर्टेनरेजर कहा जा सकता है – हिंदी नाटक उद्भव और विकास पृ० ३२५. अंग्रेजी में बड़े नाटकों के साथ साथ जिन नाटकों का अभिनय होता था, वे कर्टेनरेजर कहलाते थे। उन्हीं का विकसित रूप आधुनिक एकाङ्की है। प्रेक्षणक संस्कृत वृहद्नाटकों के मध्य में अभिनीत होते थे। संभव है इनका विकास वहीं से हुआ हो।

हिंदी नाटक उद्भव और विकास पृ० ३२६:

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्रेक्षणक (प्रेङ्खण) की कोटि में रखने में संकोच होता है। डॉ. कीथ एवं कृष्णमाचारी जैसे इतिहासकारों एवं साहित्य के समीक्षकों ने भी इसे व्यायोग के नाम से ही अलंकृत किया है। श्रीकृष्णमाचारी जी ने इस पुस्तक का नामान्तर 'परिणय व्यायोग' भी बतलाया है। उन्होंने अन्य उपरूपकों की पटलिका प्रस्तुत करते समय प्रेङ्खण के दृष्टान्त-स्वरूप सौगन्धिकाहरण का नाम न लेकर शारदातनय एवं सागरनन्दी जैसे प्रामाणिक लक्षणकारों का अनुसरण करते हुए त्रिपुरमर्दन, नृसिंह-विजय और वालिवध का ही नाम लिया है। अब विचारणीय प्रश्न यह रह जाता है कि जब सौगन्धिकाहरण व्यायोग है तो इसके रचयिता ने इसके लिए प्रेक्षणक नामक भ्रामक शब्द क्यों चुना जिससे लक्षणकार तथा रूपककार के कथन में भेद प्रकट होता है।

विविध ग्रन्थों के रचयिता होने के कारण सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्याचार्य विश्वनाथ का सौगन्धिकाहरण को व्यायोग कहना उनका प्रमाद था, ऐसा कहने का दुस्साहस बिना विचारे नहीं किया जा सकता। अतएव यदि हम एक मात्र सौगन्धिकाहरण के कर्ता विश्वनाथ की कृति में प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से प्रेक्षणक पद आ पड़ा होगा–ऐसा कहें तो दोनों विद्वानों को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुँचती। प्राचीन भारत में मुद्रण की प्रथा नहीं थी। उस युग के कवियों की स्वहस्तलिखित प्रतियाँ अब नहीं मिलती हैं। जो देखने में भी आती हैं वे परहस्तलिखित होती हैं। अतः संभव है, यह प्रतिलिपिकारों की उपेक्षा का ही प्रसाद हो।

अभिधान कोशकारों ने भी प्रेक्षणक शब्द के विभिन्न अर्थ बतलाए हैं। उनमें से इसका एक अर्थ सामान्य रूपक भी मिलता है। परन्तु यहां सौगन्धिकाहरण में उल्लिखित प्रेक्षणक के आधार पर इसे सामान्यरूपक मान लेने पर अतिव्याप्ति दोष की संभावना है। अतः इसे पाठान्तर मानने में कोई हानि प्रतीत नहीं होती।

## काव्य सौष्ठव

इस विवादमूलक प्रश्न के समाधान के पश्चात् सौगन्धिकाहरण में प्रदर्शित कवि के कवित्व पर संक्षेप में विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



महाभारत की जिस कथा का संकेत ऊपर दिया जा चुका है, उसमें कवि विश्वनाथ ने अपनी कल्पनाप्रसूत प्रतिभा द्वारा आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन कर दिया है जिससे इसकी चारुता एवं रोचकता में वृद्धि हो गई है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही प्रस्तावना में विषय-प्रवेश की सुन्दर-पद्धति को देखकर कवि की निपुणता का परिचय मिलता है।

इनकी पंक्तियों को पढ़ कर कालिदास के पात्र प्रवेश द्वारा वीजन्यास[1] की पद्धति का स्मरण हो आता है।

तवास्मि वीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।
एष राजेव दुष्यन्तः सारंगेणातिरंहसा॥

जिस प्रकार कालिदास के शाकुन्तल में देर होने का कारण नटी के मधुर गीत को वतलाया गया है उसी प्रकार विश्वनाथ ने भी फूलों के लाने में विलम्ब होने को ही अभिनय में देर होने का कारण वतलाया है।

कृत्यं कियन्मात्रमिदं भवत्याः सद्यः प्रसूनान्यहमाहरामि।
देव्याः कृतेऽसौ द्रुपदात्मजायाः सौगन्धिकानीव समीरसूनुः॥

"जिस प्रकार पवनतनय भीम द्रौपदी के लिये सौगन्धिक पुष्प ला देता है ठीक उसी प्रकार मैं आपके लिए फूल ला देता हूं।" यहां भीम की उत्पत्ति वायु से हुई थी, इसका संकेत है। महाभारत में भी उसे पवनात्मज कहा गया है।[2]

कवि ने महाभारत की कथा में परिवर्तन कर, उसे नाटकीय रूप देकर सौगन्धिकाहरण की श्रीवृद्धि की है। महाभारत में भीमसेन युधिष्ठिर के पीछे जाकर सरोवर से फूल वलपूर्वक लेते हैं किन्तु यहां भीम धर्मराज द्वारा रोके जाने के भय से इस कार्य के सम्पादनार्थ चुपचाप निकल पड़ते हैं, जिससे गुरुजनों की आज्ञा का उल्लङ्घन होने से मर्यादा का भंग भी नहीं होता और प्रिया की इच्छा की पूर्ति भी निर्विघ्न हो जाती है।

१- अभिज्ञान शाकुंतल.
२- महाभारत -अरण्यपर्वणि तीर्थयात्रा -१२१ -अध्याय ३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



'ध्रुवं प्रियायाः प्रणयः क्षतिं व्रजेद् विपर्यये स्याद् गुरूवागतिक्रमः ।।'

नायक भीम को अपने प्रति द्रौपदी के अखण्ड प्रेम को देखकर गर्व और उल्लास का अनुभव होता है, कारण द्रौपदी प्रेम के छल से उसकी भुजाओं के बल की परीक्षा भी करना चाहती है। वीरविलासिनी पत्नी पति को काम सौंप कर तत्क्षण प्रचण्ड विरह वेदना से पीडित हो डबडबाई आँखों से भीम को विदा करती है। शुभ-घड़ी में अश्रुदर्शन से अनिष्ट होने की संभावना रहती है, इसे ध्यान में रख कर मानव-जगत् के सूक्ष्मनिरीक्षक कवि ने भीम द्वारा क्षत्रियाणी को कातर न बनने का आदेश किया है। भीम को अपने बाहुबल पर पूर्ण विश्वास है। वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये प्रस्थान करता है। सुगन्धयुक्त वायु जिस ओर वह रही थी, उसका अनुसरण करते हुए भीम को वनश्री देखने का अवसर मिलता है। यहाँ कवि का वर्णन महाभारत के प्रकृति चित्रण से उच्चकोटि का प्रतीत होता है।

दर्पोद्रिक्त शरारुपातसुलमातङ्कद्रवद्रङ्कवः
पाकोद्गन्धिकपित्थघस्मरकपिक्रीडासहिष्णुद्रुमाः ।
दृश्यन्ते च रतोत्सुकाकुलशुकव्यापार –वीक्षादर–
स्मेरान्योन्य-विषक्तदृष्टिशबरस्त्रैणा वनक्षोण्यः ।।[1]

तुलना कीजिये—

पुंस्कोकिलनिनादेषु षट्पदाभिरुतेषु च
बद्धश्रोत्रमनश्चक्षु जंगामामितविक्रमः ।।
जिघ्रमाणो महातेजास् सर्वर्तुकुसुमोद्भवम् ।
गन्धमुद्दामकामोऽसौ वने मत्त इव द्विपः ।।[2]

इसी प्रसंग में उत्प्रेक्षा द्वारा कवि बाँस के अन्दर से निकलने वाले पदार्थ बंशलोचन का उल्लेख करते हुए वन की शोभा अङ्कित करते हैं। ये बाँस के पेड़ काँटों के अग्रभाग में लगे हुए चमर मृगों के मुलायम बालों से ऐसे

---

१- सौगंधिकाहरण १५.

२- महाभारत –अरण्यपर्वणि तीर्थयात्रा २१-२६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: Mi



सुशोभित हो रहे हैं, मानों पक जाने के कारण फटी गाँठ के भीतर से निकला मोती की किरणों का व्यतिकर हो । चमरनामक जंगली पशु-विशेष का उल्लेख कालिदास के मेघदूत में भी मिलता है । इस प्रकार कवि द्वारा प्रकृति के सूक्ष्मनिरीक्षण का परिचय उपलब्ध होता है ।

गन्धमादन पर्वत के समीप आते ही भीम को अपने भाई पवन-तनय हनुमान् की याद आ जाती है । वहीं हनुमान् के दर्शन भी होते हैं । महाभारत में हनुमान् भीम को चारों युगों का महत्व अलग अलग समझाते हुए भक्त-वत्सल राम के जीवन का वृत्तान्त सुनाते हैं । विश्वनाथ कवि ने यह प्रसंग सौगन्धिकाहरण में छोड़ दिया है । वन में भीम को आया देख हनुमान् उसके हित में रास्ता रोक कर लेट जाते हैं और कौतुहलवश अपना परिचय गुप्त रख कर भीम से विवाद करते हैं । यहां कवि की उच्च कोटि की भावाभिव्यञ्जना का दृष्टान्त मिलता है । इस अंश को पढ़ते समय भास-कृत मध्यम-व्यायोग में घटोत्कच और भीम के बीच हुए संवाद का स्मरण आ जाता है ।[1] जब हनुमान् भीम की परीक्षा लेने के लिए पवनतनय की बुराई करते जाते हैं तब कुमार-सम्भव के शिवजी का स्मरण हो आता है, जिनका बढ़ता हुआ दोषप्रदर्शन देख पार्वती का चेहरा क्रोध से तमतमा उठता है । रहस्योद्घाटन होने पर दो भाइयों के मिलन का चित्र मध्यम व्यायोग के पिता पुत्र के मेल से मिलता-जुलता प्रतीत होता है ।

भीमसेनः – आर्यलौकैक – सुभट, भीमसेनोऽभिवादयते
हनूमान्-वत्स चिरनिबद्धोऽयं परिरम्भणमनोरथः पूर्यतामस्य जनस्य ।
तुलना कीजिये—

भीमसेनः – एह्येहि पुत्र (परिष्वज्य) पुत्रापेक्षीणि खलु
पितृ-हृदयानि । पुत्र ! अतिबलपराक्रमो ।[2]

यह कवि की मौलिक उद्भावना है । इसके अतिरिक्त कुबेर के साथ भीम के युद्ध का दृश्य पाठकों के हृदय में ओजस्विता के भावों का संचार

१– मध्यम व्यायोग ४३., तुलना कीजिए –सौगंधिकाहरण –७ पृ० १६.
२– मध्यम व्यायोग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



करता है। कुछ एक सुन्दर वाक्यों में कवि का भाषा पर प्रभुत्व दृष्टिगत होता है।

हनूमान् (सस्नेहं भूयः समाश्लिष्य पार्श्वे उपवेशयन्)
अहो, सौभ्रात्रं नामसर्वातिशायिनश्चित्त-निर्वृत्तिनिधेः प्रणयप्रसरस्य पराकाष्ठा। किंच। यं कश्चिदपि भावमात्मनिर्वेशादेव लोकः प्रमाणयति

\+ \+ \+

कुबेरः – भोः किमेतावताप्यपराधः।
ननु मानरूचेरयं गुणः सहतेऽसौ परगर्जितं न यत्।
निशमय्य घनाघनध्वनिं निभृतस्तिष्ठति किं नु केसरी ॥[1]

इस प्रकार सौगन्धिकाहरण में एक सफल नाटक के गुण वर्तमान हैं। नीलकण्ठ कवि ने भी महाभारत की इस कथा पर आधारित "कल्याण–सौग–न्धिक" नामक व्यायोग रचा था। ये संभवतः केरल के कुलशेखरवर्मन् के समकालीन थे।

## नरकासुर-विजय व्यायोग

विश्वनाथ के सौगन्धिकाहरण के बाद १५ वीं शताब्दी (ईसोत्तर) के धर्मसूरि-रचित नरकासुर बध(नरकासुरविजय) नामक एकाङ्की व्यायोग भी महत्व-पूर्ण है। इसके रचयिता को धर्मसुधी और धर्मभट्ट भी कहा जाता है। कृष्णा-नदी के तट पर अवस्थित "पेडपल्लितरू" नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था। कुछ एक सूत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि वह तेनाली के पास मद्रास राज्य के गुनतुर जिले के कठेवेरा नामक स्थान के निवासी थे। वह हरित–गोत्रोद्भव तैलंग ब्राह्मण पर्वतनाथ और येलम्बा के पुत्र थे। एक लम्बी अवधि तक बनारस में रहने के कारण इनके अनुवंशज वाराणसी परिवार के नाम से विख्यात हैं।[2]

---

१– सौगंधिकाहरण १३१ पृ० ३६.

२– नरकासुर विजय पृ० ५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



राम के अनन्य उपासक होने के फलस्वरूप इनके दार्शनिक ग्रन्थों में राम प्रमुख देवता के रूप में चित्रित हैं। इनकी दार्शनिकता इनके काव्य तथा अलंकार के मार्ग में बाधक नहीं थी। नरकासुर–विजय व्यायोग में इन्होंने प्रसङ्गानुसार दर्शन शास्त्र के अगाध-ज्ञान के साथ साथ अपने मानस-सर में हिलोरें लेने वाले साहित्यानुराग की लहरों को भी बड़े सुन्दर ढँग से चित्रित किया है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में तपाने वाला सूर्य ही वर्षाकाल में अपनी किरणों द्वारा अमृत वर्षण करने वाला सिद्ध होता है,[१] उसी प्रकार धर्मसूरि की "निरन्तर कर्कश तर्करता वाग्वैखरी" काव्य–प्रणयन–काल में माधुर्य की वर्षा करती है।

"नरकासुरव्यायोग" के अतिरिक्त निम्नाङ्कित रचनाएँ भी धर्मसूरि की ही हैं।

१. सूर्यशतक २. साहित्यरत्नाकर ३. कृष्णस्तुति ४. बालभागवत
५. रत्नप्रभा ६. हंस–सन्देश ७. कंस–वध*

## नरक राक्षस का परिचय

पुराणों[२] तथा इतिहासों में वर्णित दनु एवं कश्यप के पुत्र नरकासुर की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। यह दैत्य प्राग्ज्योतिषपुर (वर्तमान आसाम) का राजा था जो पृथ्वी का पुत्र होने के कारण भौम (भौमासुर) भी कहलाता था। इसकी माता भू–देवी ने विष्णु भगवान को प्रसन्न करके इसके लिये वैष्णवास्त्र प्राप्त किया था।[३] इस कारण विष्णु भगवान् के सिवाय इस अवध्य राक्षस को दूसरा कोई नहीं मार सकता था। फलतः वह निर्भय होकर पापाचार में रत

---

१– नरकासुरविजय पृ० ६.

* इस लघु रूपक में कृष्ण द्वारा कंस का वध वर्णित है। परन्तु इसके एकाङ्की होने के निश्चित प्रमाणों के अभाव के कारण एकाङ्कियों के साथ इसकी चर्चा नहीं की गई है।

२– श्रीमद्भागवत दशम स्कंध, अध्याय ५९. पृ० ४६७

३– बभूव च सुतस्तस्या नरको नाम विश्रुतः।...
नास्यावध्योऽस्ति लोके ऽस्मिन् मदन्यः कश्चिदर्जुन।
तस्मान्मया कृतं ह्येन्मा तेऽभूद् बुद्धिरन्यथा॥
महाभारत, द्रोण पर्व, अध्याय २८ श्लोक संख्या २५-२९ पृष्ठ १७०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



हो गया। उसके दिन प्रति दिन बढ़ते हुए अत्याचारों से भूतल काँप उठा। कृष्णावतार में नारायण ने उसका वध किया था।

धर्मसूरि के नरकासुर–विजय व्यायोग में इस इतिहास–प्रसिद्ध कथा का सफल नाटकीकरण किया गया है। तदनुसार वराह के रूप में विष्णु भगवान् ने जब पृथ्वी को लीलावश अपने दाँतों पर उठाया था, उस समय धरा से सम्पर्क होने के कारण कृष्ण के नरक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। सन्ध्या समय तक उनके इस पुत्र नरक ने राक्षसी तन धारण करके स्वर्ग तथा इह–लोक के लोगों को सताना आरम्भ कर दिया। इन्द्र एव नारद के मुख से यह वृत्तान्त सुन कर सामने उपस्थित हुए दारूक से नरक के दुराचारों की वार्ता सुनने के उपरान्त केशव ने अपने पुत्र का भी परवाह न करके उसे मारकर लोक रक्षण करने की प्रतिज्ञा घोषित की[1]। प्रस्तुत एकाङ्की के इसी स्थल पर श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा के नरक नामक दारुण राक्षस का परिचय जानने की इच्छा प्रकट करने पर भगवान् कृष्ण के सारथि दारुक ने इस दैत्य के जन्म का रहस्योद्घाटन किया।[2]

## साहित्यिक समीक्षा

प्रस्तुत एकाङ्की व्यायोग में शास्त्रीय नियमों का सम्यक् पालन करते हुए श्रीकृष्ण द्वारा अपने ही पुत्र नरक के वध का वर्णन किया गया है। इसमें पिता पुत्र के युद्ध का हेतु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में स्त्री नहीं है। यहाँ तो श्रीकृष्ण-नरकासुर-संग्राम का कारण विशुद्धरूपेण लोक–रक्षण ही है। जब कि भास के मध्यम-व्यायोग तथा विश्वनाथ के सौगन्धिकाहरण जैसे व्यायोगों में प्रत्यक्ष रूप से युद्ध का हेतु स्त्री की प्राप्ति न होने पर भी

---

१– कृष्णः – अपत्येभ्योऽपि भक्ता ये रक्षणीया विशेषतः।
तनूत्पन्नान्यपत्यानि भक्तास्तु तनवो ममः ॥३४॥
नरकासुर-विजय व्यायोग –पृष्ठ १६.

२– दारुकः – पुरा खलु सकल-नारावार-पून्तरितां धरित्रीं महावराहरूपमवलम्ब्य समु–द्धरता आयुष्मता तस्यां निजाङ्गसङ्गतायामेकमपत्यमुत्पादितम्, ततःसंध्यासमयसमुत्पन्न-तया तादृशीम् आसुरीं तनुमाश्रितव्। नरकासुर–विजय पृष्ठ १५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



क्रमशः माता के लिये मांस लाना एवं अपनी भार्या के लिये सौगन्धिक पुष्प लाना है। शास्त्र के नियम-पालन के समय सचेत रहने पर भी कवि कुछ एक विचारशील आलोचकों को खटकने वाली बातें लिख ही गये हैं। सर्व प्रथम विष्णु भगवान् की शृङ्गार–मय लीलाओं से रञ्जित नान्दी–पाठ की पंक्तियाँ ही वीररस प्रधान–व्यायोग के अनुकूल नहीं प्रतीत होती हैं।

कस्तूरी परिदिग्धमुग्धकमलावक्षोजबुद्ध्या ध्रुवं
नीलाद्रैः शिखरेषु नित्यकुतकी दैत्यारिरव्यात् स नः।
प्रत्यङ्गाभरणेषु दीप्तवपुषः सेवासु देवः स्फुटं
भस्माशेषसुरात्मता विदधते चन्द्रार्ध–चूडादयः ॥[1]

दूसरे सूर्योदय का वर्णन करते समय कवि पुनः अपने आदर्श को भूल कर अपने काव्य का लालित्य दिखलाने के लिये भगवान् भास्कर की कामुकता का चित्रण करने को मचल उठते हैं–देखिये–(पुनर्विलोक्य साश्चर्यम्)

उदितः खलु भगवान् भक्त–श्रेयस्करो भास्करः। नूनमयमधुना कामपि कामुक परिपाटीमाटीकते। यदिदानीम् –

नीतक्षयः क्वचिदधः कृतजीवनाया
रागान्वितस्तुहिन वाष्पमुचौ नलिन्याः।
लीनश्रियो विगलितालिगिरो विवस्वान्
पुष्णाति पादपतनेन पुरः प्रहर्षम्।[2]

अर्थात्—घर के बाहर कहीं दूसरे स्थान पर रात बिताने के कारण भयभीत नत–मस्तक रवि तुहिनरूपी (ओसकण) अश्रु (वाष्प) त्याग करती हुई अनुराग भरी नलिनी को उसके चरण पकड़ कर (क्षमा याचना करके) प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहा है।

ऐसे स्थलों की काव्य छटा मनोहर होने पर भी मान्य नहीं मालूम

---

१– नरकासुर विजय पृ० १.
२– नरकासुर विजय, ५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



देती। यह शृङ्गार–प्रकरण भाण तथा प्रहसन के लिये अधिक उपयुक्त लगता है। इसके बचाव में यही कहा जा सकता है कि इनकी सूचना प्रस्तावना में संकेत द्वारा दी गई है।

## प्रकृति चित्रण

इसके अतिरिक्त प्राभातिकी–वनलक्ष्मी की छवि भी प्रथम दृष्टि में तो बड़ी भली लगती है परंतु विचार–तुला पर तौलने पर उपमा एवं उपमेय में साधर्म्य स्थापना का अभाव यहाँ रसिक–हृदय को खल सकता है। यहाँ निशा को कवि धूपछाँहीं वस्त्रान्विता बतलाना चाहते हैं। किन्तु शशिनिशोरिव, ताम्बूलयोरिव इत्यादि स्थलों पर द्विवचन का प्रयोग भावाभिव्यञ्जना में कवि की अक्षमता को प्रकट करता है; यथा–

सूत्रधारः (सकौतुकं सर्वतोऽवलोक्य) अहो, प्रमदयति मम हृदयं प्राभातिकी वनलक्ष्मीः।

शय्याम्बरं शशिनिशोरिव भाति लाक्षा
ताम्बूलयोरिव रसैररुणाभ्रलेशैः।
हारैः प्रसूननिकरैरिव तारकैश्च
चूर्णैः पटीरनिवहैरिव चन्द्रिकांशैः॥

शय्याम्बर अर्थात् नीलाकाश लाक्षा एवं ताम्बूल के रस से लाल तथा तारकरूपी फूलों के गुच्छों, हारों और चन्दन के चूर्ण की तरह चन्द्रिका के अंश समूह से युक्त होने के कारण शशि एवं निशा के समान शोभित हैं।

लगता है, यहाँ हमारा दार्शनिक कवि दर्शन एवं काव्य के क्षेत्र में समान योग्यता के प्रदर्शन के लिये दार्शनिक विचारों में मग्न है। ध्यान टूटने पर वह वीररस के अनुकूल समस्त लोक को आलोकित करने वाले तेजोमय भानु की स्तुति में रचे गये कतिपय श्लोकों में अपनी कविता की महिमा एव मधुरिमा की झाँकी प्रस्तुत करता है। इनमें कतिपय पद्यात्मक एवं गद्यात्मक पंक्तियों की भाषा नानालङ्कार–मण्डिता होने के कारण अति रुचिर प्रतीत होती है। इस एकाङ्की में अधिकतर उत्प्रेक्षा, अनुप्रास और उपमा का प्रयोग किया गया है। जैसे–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



श्यामीभूता सुरपथवनी वासरेष्वातपेन
सृष्ट्वा धात्रा निशि विरचितैर्दोहदैर्ध्वान्तधूपैः ।
सद्यस्ताराकुसुमरुचिरा मण्डलेनास्य भानोः
संप्रत्येषा भवति फलिता पल्लविन्यंशुभिश्च ॥[1]

यहाँ उषा–काल में भूतल पर फैलती हुई सूर्य की किरणों की शोभा का सुन्दर चित्रण है । रात्रि में विधाता द्वारा निर्मित अन्धकाररूपी दोहद के फलस्वरूप उषाकाल में तारकरूपी पुष्पों से भरी हुई यह सुरपथ की वनमाला मानों फलवती होती दिखाई दे रही है ।

जिस प्रकार दाडिम के वृक्षों के नाचे धूपादि द्वारा दोहद कर्म करने पर फल लग जाते हैं उसी प्रकार यहाँ वनमाला ध्वान्तरूपी दोहद से पुष्पित एवं पल्लवित होती वर्णित है ।

कवि ने भगवान् विष्णु के सम्मान में मनाये जाने वाले शरत्कालीन उत्सव में पधारे हुए अतिथियों के मनोरञ्जनार्थ अभिनीत[2] व्यायोग का इस प्रकार बीजन्यास किया है ।

भीतिं विपक्षजनताजनितां जहीहि
देवेश मुञ्च नगरीं न गरीयसीं स्वाम् ।
रक्षोबलेन सहसा सह साहसाग्नौ
हव्यं करोति नरकं नरकण्टकं तम् ।[3]

अर्थात् हे इन्द्र ! अपनी गौरवान्विता नगरी को मत छोड़ो । अपने विपक्ष की जनता से जनित भीति का सर्वथा त्याग कर दो । सम्पूर्ण राक्षस सेना के साथ मनुष्यों के मार्ग के कण्टक स्वरूप नरकासुर को मैं अपने बाणों की अग्नि से भस्म कर दूँगा ।

## धर्मसूरि पर माघ का प्रभाव

इन पङ्क्तियों के पश्चात दारूक द्वारा श्रीकृष्ण को सुनाए गए नरकासुर

---

१– नरकासुरविजय–६
२– नरकासुरविजय पृ० ३.
३– नरकासुरविजय, १८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



के कुकर्मों से माघकाव्य के प्रथम सर्ग का ध्यान हो आता है, जहाँ महर्षि नारद देवकीनन्दन को शिशुपाल के दुष्टाचरण का हाल सुनाते हैं जिसको सुन कर श्रीकृष्ण शिशुपाल का वध करने का निश्चय घोषित करते हुए अपना पाञ्च-जन्य फूँकते हैं।[1]

"ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्यवाचो
नभनभस्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं विभ्रति।
शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति, व्रिभृति
व्योनिव भृकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्" ॥

श्रीकृष्ण के छिपे हुए क्रोध को भड़काने के लिए दारुक के मुख से त्रिलोक के देवताओं एवं ग्रह नक्षत्रों के समाचार सुनवाने के व्याज से भी कवि ने अपने कौशल का प्रदर्शन किया है, जिस पर माघ एवं भारवि के महा-काव्यों की प्रतिच्छाया स्पष्ट लक्षित होती है। जिस प्रकार माघ काव्य के शिशुपाल दैत्य से हम सूर्य, चन्द्र और अन्य देवताओं को त्रस्त पाते हैं, ठीक उसी के समान "नरकासुर-विजय" के प्रतिनायक भौमासुर से सुरगणों को दुःख पाता देखते हैं। नारद के मुख से सुने हुए नरक के दुर्वृत्त से इसकी पुष्टि हो जाती है। यथा-

अव्याजं मुहुरावृणोति नगरीमव्याहतो वासवीं
दिव्यानि प्रसभं वनानि हरते भव्यानि कल्पद्रुमैः।
हव्यानि ज्वलने हुतानि मुनिभिः कव्यानि चात्ति स्वयं
क्रव्यादः कनकाद्रिकूटकटकात् स व्याप्य संक्रीडते ॥[2]

बड़ी सरलता से बार बार इन्द्रपुरी को घेर कर भव्य कल्प–वृक्ष मय उपवनों से सुन्दर वस्तुओं का हरण करता हुआ अद्रिकूट पर्वत पर मुनियों द्वारा यज्ञाग्नि में समर्पित हव्य पदार्थों और मुनिजनों के शरीरों के कच्चे मांस का भक्षण करता हुआ अपने सहचरों के साथ क्रीडाएं करता है।

तुलना कीजिये--

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥

---

१- शिशुपाल वध प्रथम सर्ग पृ० २३६.
२- नरकासुरविजय २०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि घनाश्च कञ्चुकाः ।
स्वरूप-शोभैक-फलानि नाकिनां गणैर्यमाशङ्क्य तदादि चक्रिरे ॥[१]

नरक से आतंकित सूर्य और चन्द्रमा की दशा भी दयनीय है

तद्धाटीबल – धूलिधूसरतनुस्तस्य प्रतापाग्निना
सन्तप्तस्तद सिक्षतारिनिकरै र्निर्भिन्न बिम्बो मुहुः ।
वाराशौ विनिमज्जनेन रजनीष्वात्मानमाश्वासयन्
कालं यापयति त्विषामधिपतिः कृच्छ्रेण साकं ग्रहैः ॥
चन्द्रमास्तु तन्निग्रहानुग्रहाभ्यामुपचयापचयौ मुहुः प्रतिपद्यते

अर्थात्-पराक्रमी नरक द्वारा किए गए आक्रमणों (घाटी) में तलवारों के तेज प्रहारों एवं उसके तेज से संतप्त सूर्य रात भर ठण्डी आहें भरता हुआ किसी प्रकार अपना समय व्यतीत कर रहा है। चन्द्रमा तो पूर्णरूपेण उसकी कृपा का पात्र हो चुका है ।

तुलना कीजिये-

स्पृशन् सशङ्कः समये शुचावपि स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः
अघर्मघर्मोदकविन्दुमौक्तिकैरलंचकारास्य वधूरहस्करः ॥
कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कमितुं पटीयसा
विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना ॥[२]

धर्मसूरि के "नीलसुन्दरगिरि" के वर्णन के प्रसंग में पर्वत को गरुड मानने की कल्पना माघ कवि के चित्रण की याद दिलाती है जिसके कारण वह कवि समुदाय में "घण्टा-माघ" के नाम से सम्मानित हुए थे। भारवि के किरातार्जुनीय में भी ऐसे दृष्टान्तों का प्राचुर्य है ।

उदयति विततोर्ध्व-रश्मि रज्जावहिमरुचौ हिम-धाम्नि याति चाऽस्तम्
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वय-परिवारित-वारणेन्द्रलीलाम् ।[३]

---

१- शिशुपाल वध सर्ग १, ५१, ४५ पृ० १५५
२- शिशुपाल वध प्रथम सर्ग ५८, ५९.
३- शिशुपाल वध चतुर्थ सर्ग.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



चाम्पेयसान्द्रवनराजिविराजमान-पार्श्वद्वयस्तुहिनपाण्डुर-तुङ्ग-भृङ्गः।
निष्पन्दमान विततायत-हेमपक्ष भ्राजद्‌वलक्ष-मुखतार्क्ष्यधियं तनोति ॥[1]

चम्पा-पुष्प के वन से युक्त एवं बर्फ से ढंके होने के कारण पीले एवं सफेद भृङ्ग वाले पर्वत के दोनों पार्श्व मानों गरुड के फैले हुए निष्कम्प (स्थिर) सुनहले पंख ही हैं। तात्पर्य यह कि यह पर्वत गरुड की शोभा पा रहा है।

इस रूपक के गद्यात्मक संवाद भी वीररसोचित तथा प्रभावोत्पादक एवं कवि के भाषागत अधिकार को पुष्ट करने में समर्थ हैं। इन एकाङ्कियों की भाषा पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालने से संस्कृत के एकाङ्की साहित्य पर हीनता का आरोप लगाने वाले मीमांसकों का आरोप निर्मूल सिद्ध होता है। योद्धाओं के बल को देखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए इन्द्रसुत जयन्त के भाषण को इसके प्रमाण-स्वरूप यहाँ उद्‌धृत करना पर्याप्त होगा।

जयन्तः- (रक्षो-बलमवलोक्य) अहो सर्वोत्कृष्टं खल्विदमस्य सैन्यम्। तथाहि-सर्वेऽपि सिन्धुराः कुलगिरिबन्धुराः, पद्‌मकसंभिन्ना, प्रभिन्नाश्च निखिलाश्च गन्धर्वा सगर्वा आजानेया विनेयाश्च।

## एकाङ्कियों में रस

कुछ लोग कहते हैं कि मुक्तक जैसे छिटपुट काव्यखण्डों की तरह एकाङ्की कृतियों में भी रस का परिपाक सम्भव नहीं हो सकता। तब इनका परिगणन रूपकों के अन्तर्गत कैसे किया जा सकता है? यह समस्या समीक्षकों के समक्ष उपस्थित होती है। भरतमुनि एवं उनसे अनुप्राणित साहित्याचार्यों द्वारा प्रस्तुत विशद रसमीमांसा पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने पर इस समस्या का समाधान स्वयमेव हो जाता है। संस्कृत नाटकों में रसनिष्पत्ति और भावुकता को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। रसविहीन काव्य का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं। दशरूपकों में से नाटक के प्रत्येक रूप में किसी न किसी रस अंगी होने की बात देखने में आती है। यहाँ तक कि लब्धप्रतिष्ठ ध्वनिशास्त्रवेत्ता

---

१- नरकासुर विजय, पृ० ४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक में मुक्तक, खण्ड काव्य, आख्यायिका जैसे श्रव्य काव्य एवं एकाङ्की जैसे दृश्य काव्य के लघु रूपों में भी रस का स्वाद प्राप्त कर सकने के प्रमाण विद्यमान हैं[१]। व्यायोग तथा अङ्क-साहित्य में कवि वीर और करुण रस का आभास प्रस्तुत करते हैं।

## वीर रस का शास्त्रीय विवेचन

शृङ्गार की तरह हमारे यहाँ वीर रस का भी विशेष महत्व रहा है। ऋग्वेद से इसकी उत्पत्ति होने के कारण इसकी प्राचीनता भी स्पष्ट है।[२] इस रस में डूबे हुए व्यायोग साहित्य में जो ग्राम्य शब्द प्रयुक्त दिखाई देते हैं वे दोष नहीं माने जा सकते। कारण, अपने विपक्षियों के प्रति मानव की प्रवृत्ति "जैसे को तैसा" उत्तर देने की होती है। क्रोधान्ध के मुख से निकले शब्द अपशब्द होने पर भी एक सहृदय की दृष्टि में अभद्र नहीं होते। अतः व्यायोगें में रसाभास के दर्शन का अवसर भाणों तथा प्रहसनों की अपेक्षा कम मिलता है। श्रृंगार रस के रतिभाव की तरह वीररस का उत्साह भी सर्वत्र व्यापक दिखाई देता है। जहाँ श्रृंगार रस हृदय की कोमल भावनाओं को तृप्त करता है वहाँ वीर-रस हृदयस्थ भावनाओं की तृप्ति के साथ कर्मनिष्ठता भी जागरित करता है। श्रृंगार केवल सहृदय के आभ्यन्तर पक्ष को तुष्ट करके छोड़ देता है। वीरता का प्रदर्शन केवल समरभूमि में ही नहीं किया जाता, आदर्श समाज की स्थापना भी धीरे-धीरे पुरुष ही कर सकते हैं। यह ओछे दिल वाले और दुर्बल व्यक्तियों के बस का काम नहीं है।

साहित्य-शास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन एवं मनन से वीररस के साथ सब रसों की अच्छी तरह व्यञ्जना हो सकने का ज्ञान भी हमें होता है।

---

१– तत्र मुक्तकेषु रसबंधाभि निवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम् : यथा ह्यमरूकस्य कवेर्मुक्तकाःश्रृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबंधायमानाः प्रसिद्धा एव। ...सन्दानितकादिषु तु विकटनिबंधनौचित्यान्मध्यमसमास दीर्घसमासे एव सङ्घटने। प्रबंधाश्रयेषु यथोक्तप्रबंधौचित्यमेवानुसर्त्तव्यम् ॥ ध्वन्यालोक –तृतीय उद्योत पृ० २४८-४६

२– श्रृङ्गार उदभूत्साम्नो वीरोऽभूद्वितितो ऋचः।
अथर्ववेदतो रौद्रो वीभत्सो यजुषः क्रमात् ॥ भावप्रकाश तृतीय अधिकार, पृ० ५४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



आलम्बन में क्वचित् समानता के कारण वीररस से साम्य रखने वाले रौद्र तथा अद्भुत रस तो दिखाई देते ही हैं, अभिनव भारती में वीर-रस से शृंगार रस की सिद्धि भी बतलाई गई है।[१] वीर की विजय से जो प्रसन्नता होती है उसमें दर्शकों को सात्विक हास के दर्शन हो सकते हैं और प्रतिपक्षी के लड़ने के अनुचित ढँग को देखकर प्रेक्षक के मन में उसका उपहास करने की इच्छा भी प्रकट हो सकती है।

रसों के वर्ण और देवताओं का उल्लेख करके भरत मुनि ने भाव के मूर्तरूप और उसके प्रभाव आदि का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढँग से करने का प्रयत्न किया है। वीररस का वर्ण गौर और देवता महेन्द्र बतलाए गए हैं।[२] इससे वीररस की प्रकृति और गुण को सुगमता से समझा जा सकता है। जिस प्रकार सोना शुद्धता, चमक एवं गुरुत्व (भार) के कारण धातुओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है उसी प्रकार वीर भी हृदय की शुद्धता, तेजस्विता और गुरुता के कारण सर्वोत्तम एवं सब कार्यों की सिद्धि करने वाले माने जाते हैं। त्रिलोक के स्वामी इन्द्र नीति, शक्ति, प्रताप, यश, गर्व आदि गुणों से सम्पन्न होने के कारण वीररस के देवता ठीक ही माने गए हैं। इस प्रकार भरताचार्य ने इस रस के अमूर्त भाव को मूर्त रूप दिया है। व्यायोगकारों ने इसका साक्षात् चित्र ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

धर्मसूरि के नरकासुर विजय में भी कहीं कहीं वीररस मूर्तिमान् खड़ा दिखाई देता है। नरक की दर्पोक्तियों के उत्तर में श्रीकृष्ण द्वारा उच्चरित वीरोचित वाक्यावलि को सुनकर श्रोता के मन में वीर-रस प्रवाहित होने लगता है। यहाँ वीर एवं वीभत्स का व्यतिकर भी देखने को मिलता है यथा-

त्वन्मांसाशनलोलुपा ध्वजशिखापर्यन्त – सचारिणः
कङ्काद्यास्तव सूचयन्ति विहगा दुष्टापसर्गान् बहून्।
मत्काण्डैर्दलितोऽत्र कण्ठविलुठत्प्राणो रणप्राङ्गणे
मज्जासृक्-पिशितास्थिभाजि नरकत्वं साम्प्रतं द्रक्ष्यते॥[३]

---

१– अभिनव भारती अध्याय ६·

२– गौरो वीरस्तु विज्ञेयः ......
वीरो महेन्द्रदेवः स्यात् ना. शा. अध्याय ६, ४३–४५

३– नरकासुरविजय ७२, पृ० ३२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



हे नरक ! तुम्हारे माँस के लोभी ध्वजा की शिखा तक उड़ते हुए गिद्धादि को अपने (भावी नाश की सूचना देने वाले) अपशकुन समझो, निकट भविष्य में मेरे बाणों से दलित तथा पिष्ट अपने माँस एवं हड्डियों को तुम इस रणक्षेत्र में गिरता देखोगे ।

पिता-पुत्र की लड़ाई में नरकासुर द्वारा छोड़े गए बाणों के स्पर्श से श्रीकृष्ण अपनी ही किरणों की छाया पड़ने से जलते हुए भास्कर के समान भासित हो रहे हैं । वीर कृष्ण की यह शोभा इन पङ्क्तियों में देखी जा सकती है ।

आत्मीया स्त्रेणा सुरेणोज्झितेन
स्पष्टोऽत्यर्थं भाति नारायणोऽयम् ।
प्रारम्भेऽह्नः पावके नोज्झितेन
स्वीयेनैव ज्योतिषा तिग्मभानुः ॥[1]

प्रस्तुत व्यायोग में अनेक स्थलों पर 'घाटी' शब्द के प्रयोग को देखकर इस शब्द-विशेष पर कवि का अधिक अनुराग स्पष्ट लक्षित होता है । ऊपर वरुण की दुर्दशा का चित्रण करते हुए घाटी शब्द हमें मिल ही चुका है । सुरसेना की प्रशंसा करते समय भी कवि इसका मोह नहीं त्याग सका है[2] ।

यथा—आक्रमणों के समय पटुता दर्शाने वाली - घोड़ियों के तीक्ष्ण खुरों से कठोर परिपाटी का निर्माण करने वाली तथा रण में धूल उड़ाती हुई युद्ध-क्रीड़ा करने वाली घोड़ों की ये पङ्क्तियाँ सजी खड़ी हैं ।

व्यायोगों में सेना की शोभावृद्धि करने के अतिरिक्त घोड़ों को हम रथ खींचते हुए भी देखते हैं । पुरातनकाल से भारत में द्रुतगामी वाहन के रूप में रथ का प्रयोग होता रहा है । वैदिकसाहित्य में आत्मा को रथी बतलाकर आद्य

---

१- नरकासुरविजय ८४, पृ० २७.
२- नरकासुरविजय ५३; पृ० २३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



मन्त्रद्रष्टाओं ने भी इससे अपना परिचय बतलाया है। इसके अतिरिक्त इनके खींचने वाले घोड़ों का स्वाभाविक चित्रण भी वेदों में देखा जा सकता है। लौकिक साहित्य में भास एवं कालिदास की नाट्यकृतियों में नायक तथा उसके सहायक उच्चवर्ग के पात्रों को हम आखेट के लिये वन जाते अथवा रणभूमि के लिये प्रस्थान करते या वनिताहरण के समय अभिनेताओं को रथ का उपयोग करते देखते हैं। इस प्रसंग में हवा से बातें करने वाले धूल उड़ाकर अपने सामने की चेतन-अचेतन, सुन्दर-असुन्दर वस्तुओं को पीछे छोड़ कर दौड़ने वाले स्वस्थ घोड़ों से युक्त रथ-वेग का स्वाभाविक चित्रण करके इन कवियों ने कुशलता प्रदर्शित की है। धनञ्जय-विजय, नरकासुर-विजय आदि एकाङ्की व्यायोगों में भी हम नाट्यकारों को रथवेग का चित्रण करते देखते हैं जिसके तुलनात्मक वाचन से विदित होगा कि इन कवियों ने एक ही भाव को भिन्न-भिन्न ढँग से चित्रित किया है। रथवेग का वर्णन भी कवि जगत् में नगर-वर्णन, ऋतु-वर्णन आदि की भाँति रूढ़ हो गया था, ऐसा भासित होता है।

भरतः – (रथवेगं निरूप्य) अहो नु खलु रथवेगः। एते ते
द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बु निपतति महीनेमिविवरे।
वनव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥[1]

माधव-भट्ट विरचित 'सुभद्राहरण' नामक श्रीगदित में रथवेग का ऐसा वर्णन तो नहीं मिलता परन्तु उसके कतिपय वाक्यों से रथ की तीव्र-गति का सहज अनुमान किया जा सकता है।[2]

---

१- प्रतिभा –अङ्क ३, २, पृष्ठ ७१. इसके तुलनात्मक अध्ययन के लिए मिलाइए – अभिज्ञानशाकुंतल अङ्क १, ८; विक्रमोर्वशीय, प्रथम अङ्क ३, ३७. धनञ्जय विजय (व्यायोग) –२३, ४; नरकासुर-विजय - पृ० १६, वही श्लोक ३६-३७, पृ० १७.

२- सुभद्राहरण –पृ० ३२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: Mi



## वत्सराज

भाणों तथा प्रहसनों पर विचार करते समय कालिंजर नरेश परमार्दि-देव के अमात्य महाकवि वत्सराज तथा इनकी कृतियों से हमारा परिचय हो चुका है। इस महाकवि को महीधर के पुत्र तथा राजा कीर्तिदेव के मन्त्री अथवा संवत् १२५२ में विष्णु भगवान् के किसी मन्दिर के निर्माता परमार्दि-देव के मन्त्री संलक्षण के पितामह वत्सराज से भिन्न व्यक्ति समझना चाहिये। अन्य कवियों की सूक्तियों की तरह कवि वत्सराज का भी एक श्लोक जल्हण की सूक्ति-मुक्तावली में मिलता है।[१] परन्तु गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़ के अन्तर्गत 'रूपकशतक' के नाम से प्रकाशित छै वत्सराजीय रूपकों में से किसी भी नाटक में वह श्लोक प्राप्त नहीं होता। इनके छै रूपकों में एक व्यायोग भी है। रूपकशतक में संकलित किरातार्जुनीय व्यायोग त्रैलोक्यवर्मदेव तथा शेष पाँच नाटक उनके पिता परमार्दिदेव की आज्ञा से खेले गये थे।[२]

इन कृतियों में उल्लिखित राजा परमार्दिदेव का शासनकाल सन् ११६३ ईसोत्तर से लेकर १२०३ ईसोत्तर तक माना जाता है जबकि इनके पुत्र त्रैलोक्य-वर्मदेव का राज्यकाल तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध था।

वत्सराज के आश्रयदाता परमार्दिदेव सिद्धराज द्वारा पराजित गुर्जर-नरेश मदनवर्मा के उत्तराधिकारी थे। परमार्दिदेव 'परमाल' और कोपका-लानल' उपाधियों से भी विभूषित किए गए थे।[३] प्रबन्ध चिन्तामणि और चन्दरवरदाई के रासो (महोवा समय) में इनके पृथ्वीराज द्वारा पराजित होने की घटना का वर्णन मिलता है। पृथ्वीराज की आज्ञा से उसकी पराजय का विवरण छोटे-छोटे शिलालेखों में सुरक्षित रक्खा गया था।[४] इनके दरवारी कवि वत्सराज की कृतियों से इनकी विलास-प्रियता, उदारता तथा विद्या-

---

१– वीररसैकवासनावासितोऽयं कालञ्जराधिपतिस्त्रैलोक्यवर्मदेवः कविःवत्सराजरचितं किरा-तार्जुनीयम् नाम व्यायोगमभिनेतुमादिशते । किरातार्जुनीय पृ० १.

२– हास्यचूडामणि. पृष्ठ ११८. ; कर्पूरचरित भाण. पृ० २३.

३– अथ परमर्दिनामा नृपो... ...भक्तकाराणांवर्गैनिषेव्यमाणः कोपकालानल इति विरुदं बभार।

४– प्रबंध चिन्तामणि पृ० २२६.-३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



विलासिता की सूचना भी मिलती है।[१]

इन सूत्रों से व्यञ्जित होता है कि हमारे कवि का समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा १३वीं शती का पूर्वार्द्ध रहा होगा। अपने नाटकों के लिये कवि ने पुराणों एवं लोक-जीवन से विषय का चयन किया है। भाण एवं प्रहसन का विषय लौकिक है और व्यायोग, डिम, या ईहामृग की कथाएं नियमानुसार पुराण-प्रसिद्ध ही हैं।

भारविकृत किरातार्जुनीय के एकादश सर्ग से लेकर अष्टादश सर्ग तक की वर्ण्यवस्तु ही वत्सराज के किरातार्जुनीय का विषयाधार है।

इसके आरम्भ में शक्तिदायिनी अम्बिका की स्तुति के साथ अन्य कतिपय वीररसानुविद्धपदों का पाठ किया गया है, जिनमें कवि की रसिकता प्रतिबिम्बित है।

सा पातु वस्त्र्यम्बकचुम्बितायाः
कपोल-पाली चिरमम्बिकायाः।
प्रगल्भ – रोमाञ्चभरेण यस्याः
पुष्पा युधोऽभूत्क्षण – मङ्कुरास्त्रः ॥[२]

इनकी कृतियों में महादेव के स्तुति-परक श्लोकों के प्राचुर्य को देख कर इनकी अटूट शिव-भक्ति का सहज अनुमान किया जा सकता है।[३] कवि का परिचय देते समय इनके आश्रयदाताओं के जीवनवृत्त पर ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है, प्रस्तुत व्यायोग की कतिपय पङ्क्तियों से त्रैलोक्यवर्मनृपति के प्रति इनकी श्रद्धा का भी आभास मिलता है।[४]

---

१– अनारतादानपरम्पराभिर्निर्वेदमायाति कदाचिदुर्वी।
विभर्ति तत्पूर्वमिव प्रहर्षं मुहुः प्रदानैः परमर्द्दिराजः। त्रिपुरदाह अङ्क १.४
तुलना कीजिए–समुद्रमंथन पृ० १५०; हास्यचूडामणि - १.४,

२– किरातार्जुनीय १.

३– किरातार्जुनीय ६, पृ० १

४– किरातार्जुनीय ३. पृ० २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



औपचारिक कवि-कर्म के उपरान्त पाशुपत अस्त्र-प्राप्ति के हेतु इन्द्रकीलपर्वत पर घोर तपस्या में लीन अर्जुन के प्रवेश के साथ इस व्यायोग की मुख्य कथा का श्रीगणेश होता है।[1]

## व्यायोगों में मनोविज्ञान और अन्तर्द्वन्द्व

मनोविज्ञान और अन्तर्द्वन्द्व के दर्शन भी व्यायोगों तथा अन्य एकाङ्कियों में किए जा सकते हैं। इनके विशद चित्रण का अवसर संस्कृत के नाटक, प्रकरण, सट्टक अथवा नाटिका में मिल सकता है। भाण, प्रहसन एवं अन्य एकाङ्की रूपकों में आकार-संकोच के कारण तीव्र अन्तर्द्वन्द्व और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिये विशेष अवकाश नहीं होता। इन सीमाओं में बँधे हुए अन्य भाषाओं के एकाङ्कियों में भी, जिन्हें हम पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित भारतीय प्रादेशिक भाषा के एकाङ्की कहते हैं, बड़े नाटकों की अपेक्षा मनोविज्ञान एवं अन्तर्द्वन्द्व की तीव्रता आसानी से नहीं दिखाई जा सकती। आज के एकाङ्की केवल मनोरञ्जन एवं शिक्षण के लिये ही नहीं रचे जाते। अब उनकी रचना बड़े नाटकों के स्थानापन्न के रूप में होने लगी है। कारण, आज के नाटककार का उद्देश्य स्वल्पकाल में जनता को प्रसन्न करना है। आज के शिष्ट नागरिक मनोरञ्जन में अधिक समय नष्ट नहीं कर सकते।

संस्कृत नाटकों में रसनिष्पत्ति एवं भावुकता की विशेष महत्ता होती है। अतः भिन्न-भिन्न रसों के प्रकरण के अनुसार उनके चित्र बदलते रहते हैं। ईर्ष्या, हर्ष, क्रोध आदि जिन मानवीय संवेदनाओं की चर्चा आधुनिक साहित्य में आती है वे संस्कृत साहित्य-शास्त्र में अङ्कित 'भावों' के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। रस-विवेचन का आधार मनोविज्ञान ही है। वीर-रस से सिक्त व्यायोगों में युद्ध-नियुद्ध का वर्णन हुआ करता है। दर्शकों के हृदय में मानसिक संघर्ष तथा विस्मय के प्रदर्शन के लिये नायक और उनके प्रतिद्वन्द्वी छद्मवेश में प्रदर्शित किए जाते हैं। दोनों एक दूसरे को न पहचान सकने के फलस्वरूप कभी-कभी क्रोधावेश में किसी सम्मानित पात्र के साथ अनुचित क्रोध करते

---

१- किरातार्जुनीय ४-५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



भी देखे जाते हैं।[1] पुनः रहस्योद्घाटन होने पर सहृदय पात्र अपने किए पर पश्चात्ताप भी करते हैं और दर्शक आनन्दमग्न होते हैं।

अर्जुनः – (सहसोत्थाय शिरसि बद्धाञ्जलिः।) भगवन् पीयूष-मयूखशेखर! नमस्ते, नमस्ते–,

भवसि सुकृतपाकैः स्तेनकस्यापि साक्षात्
नहि नहि तव रूपाणामनीशोऽस्ति कश्चित्।
किमिति निकृतिमेनां नाथ! कृत्वा विचित्रां
क्षणमनुचितकारः सेवको वञ्चितोऽहम्॥

युद्ध के प्रसंग में क्रोध एवं ईर्ष्याग्नि से जलते हुए योद्धाओं की गर्वोक्तियाँ जहाँ वीर रस की सरिता बहाती है, वहां बदले हुए वेष में भक्तवत्सल भगवान् द्वारा प्रकट एवं अप्रकट रूप से कठोर तप में लीन भक्तों की की गई रक्षा आनन्द की वर्षा करने वाली भी होती है। तप की इस अवधि में आशा और निराशा के सागर में गोते लगाते हुए तपस्वी के प्रति प्रेक्षकों की सहानुभूति भी उमड़ पड़ती है। पुराण, तथा रामायण एवं महाभारत पर आधारित वीर-रसान्वित व्यायोग-साहित्य में प्रायः ऐसा ही चित्र मिलेगा। तेरहवीं शताब्दी के हरिहर कवि का शङ्खपराभव नामक व्यायोग अवश्य अपवाद है।

बालवीर पूज्य जनों के प्रति अपना पराक्रम दिखाने में प्रायः सङ्कोच करते हैं और उत्साह-प्रेमी वृद्धजनों का वर्ग उनका बल देखने का आग्रह करता है। इसकी पूर्ति के लिये वे शिशुओं के सुषुप्त-उत्साह को नाना प्रकार से उभाड़ने का यत्न करते हैं।

हरकिरातः – (स्वगतम्) कथं सावज्ञः पार्थो न प्रकाशयति मयि पौरुषम्। न चाविज्ञात पौरुषनिकषाय देयमिदं महास्त्रम् तदहं। दुर्योधनरूपमास्थाय परीक्षे पौरुषमस्य। ( इति दुर्योधन–रूपं नाटयति )

× × × × ×

---

1- किरातार्जुनीय ५९-६०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



अर्जुनः – ( स्वगतम् सक्रोधम् ) आः कथमयं दुरात्मा कुरूवंश–पांसनः ! किं कुतोऽपि राक्षसादेः शिक्षितमायाक्रमः किरातवेषच्छद्मना दुर्योधनो मां द्रष्टुमायातः ? तत्किमत्रोचितम् । (प्रकाश सोपहासम्) रे रे कुरु कुलकलङ्क !

दुर्योधन ! भवानेव जानान्युचितमात्मनः ।
यत्पातकमयं रूपं कैरातमुररीकृतम् ।।[१]

कभी कभी पापियों के अत्याचार से पीड़ित जनता के रक्षणार्थ भगवान् के क्रोध को जगाने का प्रयत्न किया जाता है, जिसका उल्लेख धर्मसूरि के नरकासुर विजय में किया गया है। शत्रु हों या मित्र, सच्चे वीर सदा वीराकृति के दर्शनमात्र से प्रसन्न होते हैं ।[२]

"हरकिरातः – ( स्थानं निरूप्य ) अहो माहात्म्यं क्षात्रस्य तेजसः । तथाहि एकःकरः कलयति स्फटिकाक्षमालाम् ... ... ..."

संस्कृत-नाट्य साहित्य में ऐसे वर्णनों का बाहुल्य है। भास के सौगन्धिकाहरणादि में इसकी सार्थकता हम देख ही चुके हैं। वत्सराजीय व्यायोग में भी इस कोटि के चित्र दुष्प्राप्य नहीं हैं।

## शङ्खपराभव व्यायोग

मन्दिर-निर्माण और मूर्ति-स्थापन, जैन धर्म का एक मुख्य अंग समझा जाता रहा है। इन मन्दिरों में (विशेष कर गिरनार पर्वत पर निर्मित) बड़े बड़े लेखों के साथ प्रशस्तियाँ भी खुदवा दीं गई थीं, जो इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्व की हैं। ऐसे ही मन्दिरों में स्थित किसी शिलालेख से विक्रम संवत् की तेरहवीं शताब्दी के गुजरात के अणहिलपुर (वर्तमान पाटण) नगर के चालुक्य-वंशीय राजा वीरधवल के चरित्र पर कुछ प्रकाश पड़ता है। कुछ एक लेखकों द्वारा इसकी कृतियों के उल्लेख से उसके सुकवि एवं पण्डित होने का भी पता चलता है।

---

१– किरातार्जुनीय ४७ पृ० १६.

२– किरातार्जुनीय ३६, पृ० १४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



विक्रम संवत् १२८२ के एक शिलालेख में वस्तुपाल की दानशीलता का उल्लेख मिलता है।[१]

शार्ङ्गधर-पद्धति में भी वस्तुपाल के नाम से कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं।

संप्रति न कल्पतरवो न सिद्ध्यो नापि देवता वरदाः।
जलदत्वयि विश्राम्यति सृष्टिरियं भुवनलोकस्य ॥[२]
(वस्तुपालस्य)

इसके अतिरिक्त हरिहर द्वारा नैषधीयचरित की एक प्रति के वीरधवल के दरबार में लाए जाने पर धवल के महामन्त्री वस्तुपाल की ही सहायता से इस महाकाव्य का गुजरात में प्रचार हुआ और वहीं इस पर विद्याधर द्वारा 'साहित्यविद्याधरी' तथा चण्डु पण्डित (धोलका के एक विख्यात नागर ब्राह्मण विद्वान्) द्वारा टीकाएं लिखी गईं। अध्ययन के प्रति वस्तुपाल के गाढानुराग का यह भी एकप्रमाण है।

धवल का प्रधान मन्त्री वस्तुपाल दानी और ज्ञानी कवि था। ख्रिस्ताब्द १३०६ के मेरुतुंग के प्रबन्ध-चिन्तामणि एवं राजेन्द्र सूरि के प्रबन्ध कोश के कतिपय प्रबन्धों में गुजरात के राजालवणप्रसाद तथा वीरधवल के तेजपाल और वस्तुपाल नामक मन्त्रियों का विवरण प्राप्त होता है। राजेन्द्र सूरि के प्रबन्ध में विद्यानुरागी वस्तुपाल के सहवासी कवियों में जैन आचार्य हेमचन्द्र एवं श्रीहर्ष आदि के साथ हरिहर कवि का नाम भी उल्लिखित है। उसी विवरण से यह भी ध्वनित होता है कि गौडदेशीय हरिहर श्रीहर्ष के ही वंशज थे।[३] शङ्खपराभव व्यायोग से भी उनके गौडदेशीय होने की बात प्रमा-

---

१– भित्त्वा भानुं भोजराजे प्रयाते श्रीमुञ्जेऽपि स्वर्गसाम्राज्यभाजि।
एक: सम्प्रत्यर्थिनां वस्तुपालस्तिष्ठत्यश्रुस्पन्दनिष्कंदनाय ॥४॥
पुरापादेन दैत्यारेर्भुवनोपरिवर्त्तिना
अधुना वस्तुपालस्य हस्तेनाधः कृतो वलिः ॥८॥

२– श्लोक संख्या ७७६ पृ० ११८.

३– "श्रीहर्षवंशे हरिहरो गौडदेश्यः।"
नैषधीयस्य प्रथमं पुस्तकं हरिहरो गुजरातेतिख्यातदेशं वीरधवलनामनि राजनि वसुमतीं शासत्यानयत्। तत्पुस्तकंच वीरधवल-प्रधानामात्यो वस्तुपालो नामाऽन्यदेकं पुस्तकमवतारयामास।" इति प्रबंधकोश (हरिहर प्रबंध)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: Mi



णित होती है।[१]

उपर्युक्त प्रबन्धकोश से ही यह भी ज्ञात होता है कि हरिहर कवि का गुर्जर देश में पहुँचने पर वीरधवल तथा उनके मन्त्री वस्तुपाल द्वारा धोलका (अहमदाबाद) में उचित स्वागत किया गया। चालुक्य वंश के परम्परागत राजपुरोहित सोमेश्वर का उनके साथ अच्छा वर्ताव नहीं रहा, परन्तु पीछे दोनों के मित्र बन जाने की बात भी कवि सोमेश्वर की उक्तियों से ही मालूम होती है। अपने ऐतिहासिक काव्य कीर्ति–कौमुदी के प्रथम सर्ग में उन्होंने इस कवि को "कवीनां पाकशासनः" कहा है और सुरथोत्सव नामक महाकाव्य में दूतांगद नामक छाया–नाटक के निर्माता सुभट एवं हरिहर को कविप्रवर कह कर सम्मानित किया है। शार्ङ्गधर–पद्धति में हरिहर के नाम से बिखरे हुए श्लोकों से तथा प्रबन्ध कोश[२] में हरिहर के काव्य के अमृत से भी मधुर कहे जाने से तत्कालीन काव्यसंसार में इनके फैले हुए कीर्तिकलाप का सहज अनुमान किया जा सकता है। पुरातन प्रबन्ध–संग्रह के दर्शन से मदन कवि के साथ उनकी प्रतिद्वन्द्विता की कथा भी ज्ञात होती है।

डॉ. बी. जे. संदेसरा द्वारा सम्पादित तथा ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा से सद्यः प्रकाशित हरिहर के "शङ्खपराभव व्यायोग" को देख कर गुजरात के इस ख्यातिप्राप्त कवि की स्मृति पुनः ताजी हो गई है। कवि की मौलिकता तवा कवित्व–शक्ति इसमें स्पष्ट झलकती है।

एकेनैव दिनेन यः कवयितुं शक्तः प्रबन्धेषु य –
द्वाचः कर्कशतर्क-शाणनिशिताश्छिन्दन्ति वैतण्डिकान्।
येनानेक नरेन्द्रवन्दितपद – द्वन्द्वेन बन्दीकृता
विद्वांसः, सुकृतैकभाजनमसावस्मिन् प्रबन्धे कविः ॥[३]

---

१ – शङ्खपराभव पृ० ३.

२ - मुधा मधु मुधा सीधु मुधा कोऽपि सुधारसः।
आस्वादितं मनोहारि यदि हारिहरं वचः॥ प्रबंधकोश पृ० ५८.
जल्हण की सूक्ति – मुक्तावलि में भी इनके श्लोक देखे जा सकते हैं जिनहर्ष के "वस्तुपाल-चरित" में भी हरिहर कवि की उक्तियाँ हैं।

३– शङ्खपराभव ६, पृष्ठ ३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



## शङ्खपराभव का ऐतिहासिक महत्व

तेरहवीं शती की यह रचना प्राचीन शास्त्रीय लक्षणों से युक्त होने पर भी इस कोटि की अन्य रचनाओं से कुछ भिन्न प्रतीत होती है । इसकी कथा-वस्तु ऐसे ही प्राचीन व्यायोगों की तरह पुराण या महाभारत से नहीं ली गयी है । यह गुजरात की एक विख्यात ऐतिहासिक घटना पर आधारित है । इसमें लाट देश (गुजरात) के राजा सिंधुराज के पुत्र शङ्ख और वस्तुपाल (वीरधवल के मन्त्री) के बीच हुए युद्ध में शङ्ख का पराजय वर्णित है । इसके शीर्षक का शाब्दिक अर्थ भी यही है ।

स्तम्भतीर्थ नामक बन्दरगाह पर लाटनरेश का बहुत पहले से अधिकार था परन्तु जब शङ्ख देवगिरि के यादवराव सिंहण से लड़ने में व्यस्त था तब वीरधवल द्वारा यह अपहृत कर लिया गया । अतः जिस समय उस पर वस्तुपाल का अधिकार था (राज्यपाल के रूप में) उसी क्षण गुर्जरराज पर उक्त आरोप करते हुए शङ्ख ने स्तम्भतीर्थ (बन्दर) को घेर लिया ।

कम्बे के पास स्थित वटकूप अथवा वड़वा नामक स्थान पर दोनों पक्षों के बीच युद्ध हुआ । अन्त में शङ्ख की हार हुई और उसे लाट की राजधानी भडोंच की ओर भागना पड़ा । प्रस्तुत व्यायोग की प्रस्तावना सूचित करती है कि इसी विजय समारोह के उपलक्ष में वस्तुपाल की आज्ञा से इसका अभिनय किया गया था ।सर्वशक्तिमान् शिव की स्तुति तथा नान्दी पाठ के अनन्तर वीर-रस एवं विजयसमारोह के समयानुकूल गद्यपद्यमय वर्णन से इसका प्रारम्भ होता है ।[१]

इसी प्रसङ्ग में कवि ने अनुप्रास की छटा दिखलाते हुए यह बतला दिया है कि जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड तपन के बाद ही अमृत-सा वर्षण होता है, उसी प्रकार युद्ध की भयंकरता के दर्शन और उससे उत्पन्न कठिनाइयों को सहने के बाद ही विजयी जनता को महोत्सव मनाने का अवसर मिल पाता है ।

१- शङ्खपराभव १, २ पृ० १ ; शङ्खपराभव ३, पृ४ १.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



द्वारं तोरणमालिकातरलितं, तद्भित्तयश्चित्रिताः,
सम्मूर्छन्त्यजिरेषु शालिदलने वामभ्रुवां गीतयः ।
धूमैराज्यविपाकसौरभशुभैः प्रत्यालयं दीव्यते,
तत्किं नाम महोत्सवोऽयमभितो येनैष शङ्खध्वनिः ।।[१]

हरिहर काव्य (व्यायोग) का विशेषता यह है कि इसमें कवि ने प्राचीन कवियों की भाँति कविता का श्रृंगारमय मनोहर रूप देवताओं की स्तुति या और किसी व्याज से आरम्भ में ही न करके युद्धविराम के वाद गीतनर्तनादि में मग्न जनता का चित्रण करते हुए उपस्थित किया है जो विचारशील रसिक को प्रसङ्गानुकूल होने के कारण बड़ा भला लगता है ।

इसके अतिरिक्त प्राप्तमनोरथ नागरिक एकल्लवीरा नामक पुरदेवता की पूजा के प्रसङ्ग में भी संगीत-नृत्यादि का आयोजन करते दिखलाए गए हैं। इस महोत्सव की रमणीयता के चित्रण भी बड़े काव्यमय एवं सालङ्कार हैं। यहाँ विजयीपक्ष का हर्षोन्माद देखते ही बनता है ।[२]

श्रेष्ठिकः (सानन्दम्) दिष्ट्या वर्धामहे । प्रसन्ना भगवतीयमस्माकं क्षेत्रदैवतं दुर्गा, यदयं गूर्जराधीश्वरस्य वीरधवलस्य सचिवशेखरेण वसन्तपालेन शङ्खपराभवो निर्वाहितः । तदेनामर्चयितुमुपस्थितोऽय मानन्दपरवशो नृत्यन्नुन्मदिष्णुरिव पौरलोकः ।

पौरलोकः - (निरूप्य) अहो। महोत्सवस्य रामणीयकम् ?

आनन्द-विभोर जन-समुदाय के बीच कुलटाओं का नर्तन भी लोगों को देखने को मिल जाता है । उनकी क्रीड़ाओं की ओर जनता आकृष्ट तो होती है परन्तु समाज में उनका पद माननीय न होने की बात के ध्यान में आते ही वह शास्त्रीय नृत्यगीतादि में पारङ्गत नर्तकियों की ओर बरबस खिची चली आती है ।

इस वर्णन में कवि की सूक्ष्म-निरीक्षण एवं वर्णन की शक्ति छिपी है ।

---

१- शङ्खपराभव, ४.

२- शङ्खपराभव, पृ० २०-२१ ; वही ७१-७५ ; पृ० २१-२२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID



यहां कैशिकी वृति को स्थान देकर कवि ने व्यायोग के नियमों का उल्लघन अवश्य किया है, परन्तु उनके समर्थन में यही कहा जा सकता है कि इसकी सूचनामात्र दी गयी है और वह भी युद्ध-समाप्ति के बाद विजयोत्सव के प्रसङ्ग में। अतः यहाँ केवल 'सात्वत्यारभटी' वृत्ति से युक्त रहने वाले व्यायोग में कैशिकी की छाया-मात्र दिखला देना अस्थाने न होने के कारण आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होता। दुर्गा के मन्दिर के निकट पहुँचते ही सब लोग भगवती की नानाविधोपचार पूजा में लग जाते हैं, जिसकी कृपा से गुर्जराधिप श्रीवीरधवल अपने वसन्तपाल एवं तेजपाल नामक मन्त्रियों के साथ राज्य करते हैं। जीर्णोद्धार किए गए जैन-मन्दिरस्थ शिलालेखों में उल्लिखित ऐतिहासिक-पात्रों के नाम इस व्यायोग में भी यत्र-तत्र मिलते हैं। यथा–

साद्धं जैतल्लदेव्या सकलमपि कलाकोशमुल्लासयन्त्या
राज्यं निष्कण्टकोर्वीभरमुपनतया, वस्तुपालेन साकम्।
तेजःपालेन च श्रीकरण - परिणतप्राति - भेनानुयातो
धत्तां श्रीवीरशक्रः क्षितिवलयमयं यादनाम्भोजभानुः ॥[१]
(इति सर्वे नानाविधोपचारैः प्रविश्य भगवतीपूजां नाटयन्ति।)

कुछ शङ्खव्यायोगेतर व्यायोगों में पौरुषप्रदर्शन के फलस्वरूप नाटक के अन्त में विजयीकुल को कोई कन्यारत्न पुरस्कार के रूप में देने के दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं,[२] परन्तु यहाँ भगवती के प्रसाद को ही पारितोषिक समझ लिया गया है, जिससे निर्वहण सन्धि का भी सुन्दर निर्वाह हो गया है।[३] धूप-दीप-फूल-फल तथा मोदकों से भरी पूजा के प्रसाद की थाली देखकर एक बार दर्शकों का मन ललचा उठता है और युद्ध का गम्भीर वातावरण सरस हो जाता है।

इस स्थल को देखकर कालिदास की यह पङ्क्ति 'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते' कानों में गूंजने लगती है। फल पाकर भक्तवत्सला देवी के चरणों में भाव-भक्ति के फूल चढ़ाने वाली भक्त-मण्डली के दर्शन कराकर कवि ने अपनी सहृदयता का परिचय दिया है जो भारतीय संस्कृति के सर्वथा

---

१– शङ्खपराभव, ७६, पृ० २२.
२– धनञ्जयविजय ८२, पृ० ६७,
३– शङ्खपराभव पृ० २३:

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



अनुकूल है। शेष बातों में इस व्यायोग की रचना शैली परम्परागत व्यायोगों के समान ही है : प्रस्तावना के अन्त में, बन्दिराज नामक प्रधान मागध वस्तुपाल के सेवक माधव-वृन्द के साथ प्रवेश करता है। उनकी बातों से हमें विदित होता है कि शंख द्वारा आक्रमण की तैयारी की बात सुन कर वस्तुपाल ने उसे युद्ध के लिये ललकार दिया है।

\+ \+ \+

बन्दिराजः - रे रे नग्नमागधा मदनुयायिनः। सत्वरं परिक्रम्यताम् यदयमस्माकं स्वामी महाराजश्रीवीरधवलसचिवो वसन्तपालः —

पृष्ठे कृत्वा स्तम्भतीर्थं, विदित्वा चारद्वारा शङ्खवीराभियोगम्।
आह्वातुं तान् सत्वरं संगरोत्कः शत्रूनस्मान् प्रेषयामास भट्टान् ॥[१]

इनके ही संवादों से वस्तुपाल तथा वीरधवल की इतिहास-प्रसिद्ध वीरता तथा दानशीलता की बात भी पुष्ट होती है।

नेपथ्य से शोर-गुल के बीच से सुनाई देने वाले योद्धा खङ्खख का स्वर शत्रुओं के प्रति उसकी प्रलेप भावना को प्रकट करता है। शङ्ख का संदेश बन्दिराज स्वामी वस्तुपाल (वसन्तपाल काव्यगत नाम) को सुना दिया जाता है। इस प्रकार दोनों पक्षों में युद्ध आरम्भ हो जाता है। संस्कृत के नाट्य-शास्त्रगत नियमों के अनुसार युद्ध के दृश्य मञ्च पर प्रदर्शित करना वर्जित है, अतः इस रूपक के पात्रों के द्वारा युद्ध-भूमि का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उसका सजीव चित्र प्रेक्षकों के समक्ष उपस्थित हो जाता है।[२]

इस प्रसंग में कवि ने ओजःकान्तिमती गौड़ीया रीति का प्रयोग किया है। मध्याह्न में सूर्य का चित्रण करने के बहाने कवि ने दोनों सैन्य-दलों द्वारा निर्मित क्रोध के वातावरण का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।[३]

भुवनपाल और शङ्ख के बीच हुए ओजपूर्ण संवाद से भी वीररस की बूंदें टपकती हैं।[४] अगणित शत्रुओं की हत्या के उपरान्त भुवनपाल के मारे

१- शङ्खपराभव श्लोक ६, १०, ११, १४ –पृष्ठ ४-६:
२- शङ्खपराभव १६-२०: पृ० ७.
३- शङ्खपराभव २६-३० पृ० १०.
४- शङ्खपराभव ५०-५२, पृ० १५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



जाने के समाचार के श्रवण और शङ्ख द्वारा प्रेषित भुवनपाल के हस्तखण्ड के दर्शन से शोकविह्वल वस्तुपाल की हृदयद्रावक मनोदशा देखकर प्रेक्षकों की नायक के प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ती है। यहाँ करुण रस की धारा में डूबा हुआ भी वस्तुपाल मृतवीर की वीरता को भूल नहीं पाता।[1] उसकी वीरता की अमिट कहानी उसके हृदय-पटल पर स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। शोक-विह्वल वस्तुपाल के मन में शत्रु के प्रति उद्दाम क्रोध भड़क उठने के कारण शङ्ख की पराजय के आसार स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। कुछ ही क्षणों के युद्ध के उपरान्त शङ्ख (संग्रामसिंह) के रणभूमि से भाग खड़े होने के समाचार भी प्राप्त हो जाते हैं।

इसी प्रसंग में देवगिरि के यादवराज सिंहण पर वीरधवल की विजय का द्योतक श्लोक भी सुनाई देता है।[2] तदनन्तर श्रेष्ठिक एवं अन्य नागरिक उत्सव की तैयारी का वर्णन करते सुनाई देते हैं। इसका उल्लेख ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका है।

जिस प्रकार पार्थपराक्रम व्यायोग में भरत-वाक्य का प्रयोग नायक अर्जुन से न करवा कर नाट्य के अन्त में मञ्च पर प्रविष्ट होने वाले वासव (इन्द्र) से करवाया गया है उसी प्रकार शङ्खपराभवकार ने भी अपने व्यायोग का भरतवाक्य नायक वस्तुपाल के मुख से उच्चरित न करवा कर श्रेष्ठिक से करवाया है, जो नाटक के अन्त में दर्शकों के सामने उपस्थित हुआ है।[3]

श्री चिमनलाल डी. दलाल द्वारा सम्पादित पार्थ-पराक्रम-व्यायोग की भूमिका से हमें ज्ञात होता है कि संस्कृत में लगभग छः सौ नाटक लिखे गये थे। इस नाट्यकोश को पूर्ण करने में गुजरात के नाट्यकारों का भी योगदान रहा है। इन कृतियों में व्यायोगों की संख्या गुजराती नाटककारों की लेखनी से

---

१- शङ्खपराभव ५६-५८ पृ० १७-१८

२- शङ्खपराभव ६३-६४, पृ० १६.

३- शङ्खपराभव ८१ पृ० २३.
तुलना कीजिए –
पार्थपराक्रम ६१. पृ० २४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: Mi



निःसृत अन्य नाट्यभेदों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है। इसके प्रमाणस्वरूप यथेष्ट उदाहरण दिये जा सकते हैं, इनमें प्रह्लादनदेव के 'पार्थपराक्रम' तथा हेमचन्द्राचार्य के परमप्रिय शिष्य रामचन्द्र के 'निर्भय भीम' के नाम प्रमुख हैं। गुर्जर-भूमि के कवियों के परिश्रम से प्रसूत व्यायोगों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मध्ययुगीन गुजरात मे दीप्तरसान्वित व्यायोग-साहित्य का अच्छा प्रचार था।

## भीमविक्रम

तेरहवीं शताब्दी में मोक्षादित्य ने भीम-विक्रम नाम वीररसरञ्जित एकाङ्की की रचना की। इनके स्थिति काल एवं निवास-स्थानादि के विषय में इस एकाङ्की नाटक की प्रस्तावना से जितना कुछ परिचय प्राप्त होता है उससे अधिक प्रामाणिक सामग्री अद्यावधि और कहीं से उपलब्ध नहीं हो सकी है। तदनुसार भीमविक्रम के रचयिता भीम के पुत्र तथा कवियों में ख्याति-प्राप्त हरिहर कवि के शिष्य थे। उनके पिता श्री भीम का परिचय भी अज्ञात है। ईसोत्तर १५ वीं शती में रचित वल्लभदेव की सूक्तिमुक्तावलि में भीम के नाम से कतिपय श्लोक अवश्य मिलते हैं परन्तु उन्हें बिना किसी छानबीन के निश्चयपूर्वक मोक्षादित्य के पिता भीम की पङ्क्तियाँ मान लेना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। यहाँ एक प्रश्न स्वभावतः उठता है कि क्या मोक्षादित्य के गुरु हरिहर और शङ्खपराभव-व्यायोग के प्रणेता अभिन्न व्यक्ति हैं?

सौराष्ट्र के प्राचीन पोरबन्दर राज्य में स्थित विक्रम संवत् १३२० के किसी शिलालेख में अङ्कित महाकालेश्वर प्रशस्ति के अनुसार वस्तुपाल तथा उल्लाघराव कीर्ति - कौमुदी आदि कृतियों के कर्ता गुजराती कवि हरिहर के पिता का नाम भी मोक्षादित्य व्यास था किन्तु डॉ. बी. जे. संदेसरा के अनुसार यह गौडदेशीय एवं नैषधकार श्रीहर्ष के ही अनुवंशज थे। गुजरातियों का व्यास उपनाम अति परिचित है। उक्त महाकालेश्वर-प्रशस्ति में मोक्षादित्य के साथ भी व्यास उनके कुलनाम के रूप में युक्त हैं। दूसरे, भीमविक्रम व्यायोग के सम्पादक श्री उमाकान्त प्रेमानन्दशाह डेप्युटी डायरेक्टर, ओरियण्टल इन्स्टीट्–यूट, एम. एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा को इस रचना की दोनों पाण्डुलिपियाँ (Manuscripts) गुजरात से ही उपलब्ध हो सकी है जिनमें से एक ओरि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



यण्टल इन्स्टीट्यूट से और दूसरी प्रति विक्रम संवत् १४७३ ( सन् १४१६ ईसोत्तर में तैयार की गई थी ) दक्षिणी गुजरात के वलसाढ[1] से मिल पाई है। इन बातों के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि भीमविक्रमकार गुजरात के निवासी रहे होंगे। यह भी संभव है कि वस्तुपाल के समकालीन कवि हरिहर सन् १२७५ (ईसोत्तर) में जीवित रहे हों और तरुण मोक्षादित्य हरिहर की वृद्धावस्था में उनके शिष्य बन गये हों। ऐसी अवस्था में शङ्खपराभवकार हरिहर और कवि मोक्षादित्य के गुरुदेव का एकही व्यक्तित्व प्रमाणित हो जाता है। इसी प्रकरण में इस बात का उल्लेख करना अनुचित न होगा कि मोक्षादित्य ने हरिहर को "कवि–निवह–धुरन्धर" और हरिहर के समसामयिक कवि सोमेश्वर ने उन्हें "कीर्ति-कौमुदी" में "कवीनां पाकशासनः" कह कर सम्मानित किया है।

श्री दलाल ने मोक्षादित्य के व्यायोग का शीर्षक "भीमपराक्रम" बतलाया है, परन्तु इस नाटक की प्रकाशित प्रति में यह भीमविक्रम[2] नाम से अभिहित है। इसी नाम का वीररसप्रधान एकाङ्की शतानन्द सूनु ने भी लिखा था जो त्रिवेन्द्रम-संस्कृत ग्रन्थ-माला (सं. १७३) के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुका है। यह अब अनुपलब्ध है। दोनों रचनाओं का वर्ण्य-विषय (भीम द्वारा जरासन्धका वध) एक होने पर भी वस्तु-विधान (प्लाट) की दृष्टि से इन दोनों रूपकों में महदन्तर है। महाभारत के सभा पर्व के १५ से २४ अध्यायों में वर्णित विषय का सहारा मोक्षादित्य ने प्रस्तुत व्यायोग में लिया है। नाटककार ने व्यायोग के लक्षणों के अनुसार महाभारत में कथित लम्बी कथा को यत्कि-

---

१– सम्वत् १४७३ वर्षे शाके १३४७ प्रवर्तमाने भाद्रवा शुद्ध १० दशम्यां तिथौ सोमदिने मूलनक्षत्रे धनस्थे चन्द्रे अधे (द्यै) ह वलसाद्यां (ड्यां) महाराजधिकार श्री जाईदेव-विजयराज्येअमात्य श्री वारडजेसापञ्चकुलप्रतिपतौ कायस्थन्या (ज्ञा) तीय महंवुलासुत माहंकाह्नैया अध्ययनार्थं पुस्तिका भीमविक्रम महानाटस्य व्यायोगो लिखितः।......
ओरियण्टल इंस्टीट्यूट से प्राप्त पाण्डुलिपि में इसका परिचय इस प्रकार दिया गया है।
कृतिरियं व्यास श्रीमोक्षादित्यस्य ॥ १ ८ ३ ५
शराष्टरामशीतांशौ विक्रमादित्य-वत्सरे ।
व्यासेन मोक्षादित्येन व्यायोगोऽयं विनिर्मितः ॥

२– भीमविक्रम पृ० ३:

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



ञ्चित परिवर्तनों के साथ संक्षिप्त करके एक दिन में प्रदर्शित करने योग्य बनाने का सफल प्रयास किया है। भीम का आचरण धीरोद्धत नायक के समान दिखलाया गया है। सूत्रधार और पार्श्वक के प्रस्तावनागत संक्षिप्त सवाद के बाद नायक भीमसेन का श्रीकृष्ण के साथ प्रवेश होता है। उनकी बातचीत से ज्ञात होता है कि इन्द्रप्रस्थ से प्रस्थान करने के उपरान्त वे गिरिव्रज पहुँच चुके हैं। अर्जुन द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर श्रीकृष्ण के लोकप्रसिद्ध आख्यान पर आधारित जरासन्ध के जन्म की कथा तथा उसकी वीरता की गाथा सुनाते हैं। तदनुसार वह वृहद्रथ का पराक्रमी पुत्र था।[१] उसने अपने खण्डित शरीर से इस धरती पर जन्म ग्रहण किया था परन्तु जरा नामक राक्षसी ने उन खण्डों को जोड़ दिया। इस कारण इस पात्र-विशेष का नामकरण किया गया जरासन्ध। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह मगध और चेदि का राजा बन बैठा। जब युधिष्ठिर राजसूययज्ञ कर रहे थे तब कृष्ण, अर्जुन और भीम गुप्तवेश में ब्राह्मण बन कर जरासन्ध के राज्य में उसे मारने के लिये गये थे। वहाँ जाकर उन्होंने बन्दियों को मुक्त करने की प्रार्थना की। परन्तु उसके मना करने पर भीम ने द्वन्द्व-युद्ध के लिये उसे ललकारा। ललकार को स्वीकार कर जरासन्ध लड़ पड़ा और भीम द्वारा मारा गया। श्रीकृष्ण भीम के पराक्रम की स्तुति करते हुए इस नाटक की मुखसन्धि की समाप्ति करते हैं।[२] वीर भीम को अपने प्रतिद्वन्द्वी के शौर्य तेज की कोई चिन्ता नहीं है।

गौतमाश्रम के पास सिद्धेश्वर के पूजनार्थ श्रीकृष्ण-सहित अर्जुन के गमन के साथ प्रतिमुखसन्धि प्रारम्भ होती है। इस बीच भीम जरासन्ध के अत्याचारों से पीड़ित वङ्गराज जयवर्मन् को अग्नि में जल मरने को तैयार पाते हैं।

भगवन्मृत्युञ्जय ! मन्दभाग्येन निरन्वयनामासि।
भीमः- (श्रुत्वा) कोऽयमृत्युञ्जयमुपालभते । भवतु, जानामि।
(इत्युत्थाय परिक्रम्याऽवलोक्य च) अहो राजकुमार इवायम्।
विटपान्तरितः परीक्ष्याम्येनम्। (तथा कृत्वा निरूप्य च)

---

१- जरया सन्धितोऽयमिति जरासन्धः हरवरेणाऽयमशस्त्रनिधनश्च ॥ भीमविक्रम व्यायोग पृ.४

२- भीमविक्रम, पृ० ५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



कश्चित्कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रतकरणकृशः शुक्लचैलं दधानः,
स्नानातिक्लिन्नकेशः करयुग - विलसद्दर्भकोऽनर्मकोऽयम् ।
श्रौतैर्मन्त्रैश्च जुह्वन् ज्वलति हुतवहे हव्यमव्याहतेच्छः
स्वस्थोऽयं क्षत्रपुत्रो यजति गतसुखस्त्र्यम्बकं साम्बुनेत्रः ॥[1]

यहां कवि की वर्णन शक्ति भी देखने को मिलती है। जरासन्ध ने उसे पुरुषमेध में बलिदान के हेतु वन्दीगृह में वन्द कर रक्खा था। इस राजकुमार की माता और पत्नी मञ्च पर आकर भीम से क्रमशः अपने पुत्र तथा पति को आत्महत्या करने से रोकने के लिय विनय करती हैं। भीम ऐसा ही करते हैं और राजकुमार को अन्य वन्दियों को मुक्त करवाने का वचन भी देते हैं। इस स्थल पर भीम का उदात्तचरित निखर उठा है।[2] मरने को तैयार राजकुमार के रक्षणार्थ उद्यत भीम को देखकर भास के मध्यम-व्यायोग के ब्राह्मण कुल के उद्धारक मध्यम-पाण्डव भीम की याद आ जाती है। थोड़ी देर के लिए करुण रस का आनन्द लेने का अवसर भी सहृदयों को मिल जाता है।

(प्रविश्य सवधूका)
जयश्रीः- (उपसृत्य पुत्रं करेधृत्वा) ताद ।
वीरः (अम्ब !) मयेह बहु तपस्तप्तं तन्मोक्षणाय ।
जयश्रीः- ता कहिं अताणयं वावा (द) यसि ?
वीरः- निष्फलतपस्त्वात् । किंच । प्रातः किल
निखिलनियतनरपतीनां हरतोषाय होमो भविता ।
जयश्रीः- (सास्रम्) हा वङ्गराय कुलणंदन । हा सत्वं (त्त)
गुणरयण भण्डार ! हा महाराय जयवम्भ । हा अज्जउत्त ।
कहिंसि देखु मे किंकरीए पडिवयणं ।
(इति मूर्च्छां नाट्यति)[3]

पुत्र-प्रेम-विह्वला माता पहले अपनी मौत चाहती है और पतिव्रता भार्या पति से पहले स्वयं मरना चाहती है। इस दृश्य को देख कर भी दर्शकों का हृदय

१- भीमविक्रम २१, पृष्ठ ६.
२- भीमविक्रम २३, पृ० ७.
३- भीमविक्रम पृ० ८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



द्रवित हो जाता है। इनके वार्तालाप के प्रसंग में कवि ने प्राकृत पर भी अपने अधिकार का प्रदर्शन किया है।[१]

नान्दी-श्लोक में ही पुराणप्रसिद्ध भक्त प्रह्लाद और भीमाकृति वाले नरसिंह के रुप में अवतीर्ण भगवान् विष्णु की लीलाओं के वर्णन के व्याज से कुशल कवि ने इस व्यायोग में जरासन्ध के अत्याचारों से पीडितों की रक्षा करने वाले धीरोद्धत नायक भीमसेन का गुणगान भी किया है।

देवस्याऽनुचरो विरञ्चिजरूषा भूमावभूद् दानवः
षट्पुत्रैः सह पूर्वदे (दै) वतवृतो यो विष्णुना वैरकृत्
तंयं (यो) विश्वरिपुं हिरण्यकशिपुं हन्ति स्मदोर्लीलया
भूयाद्वो नरकेसरी भवभवध्वंसी स भीमाकृतिः ।।[२]

इसके अतिरिक्त कवि के कवित्व के दर्शन, भीम और जरासन्ध के संवाद तथा एक ओर से जरासन्ध की एवं दूसरी ओर से श्रीकृष्ण तथा भाम की सम्मिलित बातों में किए जा सकते हैं।[३]

कवि ने वहाँ भी एक नया चमत्कार दिखलाने का यत्न किया है, जहाँ श्रीकृष्ण अर्जुन और भीम सहित गिरिव्रज में प्रविष्ट होकर हैडम्बेय (घटोत्कच) की सहायता से नगर की रक्षिका, जरा राक्षसी का हरण करने का विचार करते हैं। इस स्थल पर अद्भुत और वीभत्स का व्यतिकर भी देखा जा सकता है।[४] जरासंव की राजधानी गिरिव्रज में पहुँच कर श्रीकृष्ण के मुख से जो उस नगरी की शोभा का वर्णन कराया गया है वह भी मोक्षादित्य की काव्य-कला का परिचायक है।[५]

भीमार्जुनौ - कृष्ण ! पश्यपश्य, निजरिपुनगरम् ।

---

१– भीमविक्रम २८-२९ पृ० ८-९.
२– भीमविक्रम, पृ० १.
३– भीमविक्रम ६३-६५, पृ० १९-२०:
४– भीमविक्रम, पृ० १० (जी. ओ. एस.)
५– भीमविक्रम, ३४-३५ पृ० ११-१२. (जी. ओ. एस.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



कृष्णः - तदिदं समकलधवलगृहव्रजं गिरिव्रजम् । पश्य
शुक्लांगां कलधौतैर्निर्मित-महा-प्रासादपङ्क्तिम्

पितृभक्त घटोत्कच के प्रताप से जरा जैसी भयंकराकृति वाली राक्षसी क्षण भर में दूसरे दूरवर्ती पर्वत पर पहुँचा दी जाती है।[1] उस वीर के वाक्यों से वीरता टपकती है। इस नाट्य में प्राचीन-पद्धति का अनुसरण करते हुए कतिपय विस्मयोत्पादक स्थल भी दिखलाये हैं जिससे इसकी शोभा बढ़ गई है। यथा -

राजशेखरः - चक्रधरधवलौपश्यतम्

रम्याद्यावयवो दुकूलसकलो मुक्ताफलैरुज्ज्वलै-
र्हीरैरब्विसमः सुगन्धिकुसुमः श्रीखण्डकस्तूरिकः ।
सच्छस्त्राणि निशाणयन् क्रयिकुलार्थिभ्यश्च कामं ददत्
धीरो वीर इवापणः कलकलत्युन्मत्तलोकैर्वृतः ।।

गिरिव्रज पहुँचकर भीम आचार्य राजशेखर के वेश में मगध की समृद्धि का वर्णन करते हैं। वहाँ के बाजार की किसी वीर से तुलना की गई है।[2]

श्रीकृष्ण और अर्जुन भी चक्रधर और धवल का नाम धर कर नगर में प्रवेश करते हैं। वे तीनों ब्राह्मण के रूप में मार्ग में आने वाली दूकानों को लूटते भी जाते हैं। इस प्रकरण में उनके मुख से 'सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदम्' इत्यादि कहलवाकर मोक्षादित्य ने हास्य की सृष्टि करके काव्य के गाम्भीर्य को कुछ हल्का हरने का यत्न भी किया है।[3] ब्राह्मण वेशधारी अपने शत्रु-पक्ष के तीन सदस्यों को भूल से अतिथि समझ कर जरासन्ध उनका खूब सत्कार करता है।[4] परन्तु उसका यह भ्रम बहुत समय तक स्थिर नहीं रहता। उनकी पहचान करते समय उसकी तर्क-वितर्क पूर्ण मनोदशा का भी कवि ने स्वाभाविक चित्रण किया है।

---

१- भीमविक्रम, ३१-३२ पृ० १०
२- भीमविक्रम, ३६, पृ० १२:
३- भीमविक्रम, ३७, पृ० १२.
४- भीमविक्रम ३५-४६, पृ० १५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: Mi



जरासन्धः - (सखेदम्) तत्रभवन्तः के यूयम् ?
राजशेखरः - द्विजातयो वयम् ।
जरासन्धः - (सर्वान् सम्यङ् निरूप्य स्वगतम्) नूनममी नः (न) ब्राह्मणा मयि विषयदृष्टयश्च । (प्रकाशम्) भो ! द्विजातयः ।
के यूयं सत्यमेव प्रवदत न मृषावादिनः क्षत्रिया हि ॥[1]

रहस्योद्घाटन के पश्चात् तनातनी के साथ द्वन्द्वयुद्ध आरम्भ हो जाता है । संस्कृत - नाट्य के नियमों के अनुसार यहाँ भी यह युद्ध मञ्च पर नहीं दिखलाया गया है । नेपथ्य में युद्ध चलता है और दर्शकों को श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के मुख से इसका विवरण सुनवा दिया जाता है । प्रस्तुत व्यायोगकार ने द्वन्द्व-युद्ध का इतना सूक्ष्म चित्रण किया है कि उससे उनका इस कला में पाण्डित्य स्पष्ट भासित होता है । इस प्रसंग में ओज गुण से युक्त गौडी शैली अपनाई गई है ।[2]

इस स्थल पर दृष्टि पड़ते ही भास के प्रसिद्ध उत्सृष्टिकाङ्क "उरुभंग" की याद आ जाती है । इस अङ्क में जैसे गदायुद्ध के समय श्रीकृष्ण ने अपनी जंघा को हाथों से थपथपाते हुए भीम को संकेत दे दिया था वैसे ही इस रूपक में भी द्वन्द्व-युद्ध के प्रसंग में केशव ने योद्धानायक को संकेतात्मक वचनों द्वारा जरासन्ध को मारने की चाल बतला दी है । यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि महाभारत के सभापर्व में इस घटना के समय श्रीकृष्ण ने संयत एवं गुप्त-भाषा में इस कार्य को सम्पादित किया जबकि भीमविक्रम-व्यायोग में अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट-भाषण हुआ है ।
तुलना कीजिये -

तं राजानं तथा क्लान्तं दृष्ट्वा राजन्जनार्दनः ।
उवाच भीमकर्माणं भीमं सम्बोधयन्निव ॥
क्लान्तः शत्रुर्नकौन्तेय लभ्या पीडयितुं रणे[3]
पीड्यमानोहि कार्त्स्न्येन जह्याज्जीवितमात्मनः ॥

---

१- भीमविक्रम ४७, पृ १६.
२- भीमविक्रम ७२-७५. पृ० २२.
३- महाभारत, सभापर्व, अध्याय २१, १६-२१ अध्याय २२, ११६-२०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



तृतीयः- एष संज्ञया समाश्वासितो मारूतिः।[१]

— — —

भूभौ पाणितले निघृष्य तरसा वाहू प्रमृज्याधिकं
सन्दष्टौष्ठपुटेन विक्रमवलात् क्रोधाधिकं गर्जता।
त्यक्त्वा धर्मघृणां विहाय सभयं कृष्णस्य संज्ञासमं
गान्धारीतनयस्य पाण्डुतनयेनोर्वोर्विमुक्ता गदा॥

तुलना कीजिये -

कृष्णः-(नेपथ्यं प्रति) पाण्डुनन्दन। किमप्युन्मत्त इव चेष्टसे।
नाऽयमतिकदर्थितोऽपि मर्मभेदभृते जीवितं मुञ्चति।[२]

प्राचीन युद्ध-पद्धति में ऐसी चालों का सहारा लिया जाता रहा है। इसके यथेष्ट उदाहरण भारतीय साहित्य की वीररस प्रधान रचनाओं में प्राप्त होते हैं। भट्टनारायण के वेणी-संहार में भी ऐसे दृश्य देखने को मिलते हैं।

राक्षसः - (सानन्दमात्मगतम्) अत्रैव मे यत्नः। (प्रकाशम्) यदि त्ववश्यं कथनीयं तदा संक्षेपतः कथयामि। न युक्तं वन्धुव्यसनं विस्तरेणावेदयितुम्।

\+ + +

राक्षसः - श्रूयताम्।

तस्मिन् कौरवभीमयोर्गुरूगदा - घोरध्वनौ संयुगे
सीरी सत्वर मागतश्चिरम - भूत्तस्याग्रतः संगरः।
आलम्ब्य प्रियशिष्यतां नु हलिना संज्ञा रहस्याहिता
यामासाद्य कुरूत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारेः गतः॥

युधिष्ठिरः - हा वत्स वृकोदर! (इति मोहमुपगतः)[३]

उन्होंने पाण्डव-पक्ष को अपने पथ से विचलित करवाने के लिये कौरव--पक्ष की ओर से एक राक्षस को भेजकर भीमसेन के मर जाने का झूठा समाचार सुनवाया जिससे वह वन्धुवर्ग थोड़ी देर के लिये शोक-सागर में डूब जाता है।

---

१- उरूभङ्ग २४, पृ० ५३-५६.
२- भीमविक्रम, पृ० २३.
३- वेणीसंहार अङ्क ६, २६, पृ० १४४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



वेणी-संहार में भीमसेन की मृत्यु के झूठे समाचार से राक्षस द्वारा वञ्चिता द्रौपदी अपने पति के पराक्रमों को याद करके रोती है। यहाँ भीमसेन ने जितने भी वीरतापूर्ण कार्य किये थे उनका संकलित-रूप भट्टनारायण ने द्रौपदी के मुख से प्रस्तुत करवा दिया है।

इन व्यायोगों में लड़ने वालों की पारस्परिक दर्पोक्तियाँ भास की कृतियों तथा वेणी-संहार के योद्धाओं द्वारा प्रयुक्त रोषमयी-वाणी से मिलती जुलती है।

भीमः - अरे रे भरतकुलकलङ्क ... ... ... !
दुर्योधनः - दुरात्मन् भरतकुलापसद द्यूतदासपाण्डवपशो !
नाहं भवानिव विकत्थना प्रगल्भः। किंतु—
पश्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणांगणे
मद्गदाभिन्न-वक्षोऽस्थिवेणिका-भीमभूषणम्।[1]
भास के व्यायोगों से हमारा परिचय हो ही चुका है।

**तुलना कीजिये** =

जरासन्धः - भो भीम ! (कृष्णं प्रति) भो यादवकुल-पांसन।
शतशो विजितोऽसि संयुगे सह पुत्रैः सह सीरपाणिना।
प्रविहाय पुरीं पलायितः परिलीनोऽसि पयस्सु वारिधेः ॥[2]

इन अङ्कों को देखने से ऐसा भासित होता है कि परवर्ती व्यायोगकारों ने महाभारत के चित्रों एवं पात्रों का चरित्रचित्रण करने वाले भास एवं भट्टनारायण जैसे नाट्यकारों की कृतियों से प्रेरणा लेकर अपनी कृतियों में इनके कार्यकलापों का चित्राङ्कन करने का प्रयास किया है। इसके प्रमाणस्वरूप उपर्युल्लिखित सौगन्धिकाहरण, भीमविक्रम इत्यादि व्यायोगों के नामों का संस्मरणमात्र पर्याप्त होगा।[3]

श्रीकृष्ण की गुप्त सहायता से "भीम-विक्रम" व्यायोग के नायक द्वन्द्व-

---

१- वेणीसंहार अङ्क ५. ३२-३४, पृ० १२५, (एम. आर: काले द्वारा सम्पादित)
२- भीमविक्रम ५९-६०: पृ० १८.
३- वेणीसंहार अङ्क ६, पृ० १४४:

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



युद्ध में विजयी होते हैं और पराजित जरासन्ध का सम्पूर्ण राज्य उनके हाथ में सहदेव द्वारा सौंप दिया जाता है। साथ ही सहदेव की अनुजा भी उन्हें सौंप दी जाती है। भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमानुकूल मङ्गल-गीत-वाद्य ध्वनि से गुञ्जित वातावरण में श्रीकृष्ण के आशीर्वचनों एवं कल्याणकारी भावनाओं से ओतप्रोत भरत-वाक्य के साथ एकाङ्की का अन्त होता है जो कवि के भाषा-सौन्दर्य का सुन्दर नमूना है।[1]

एतलातार्य के पुत्र कृष्ण कवि ने विक्रान्त-राघव (जिसमें संस्कृत छाया के साथ प्राकृत का प्रयोग है), नैयायिक सदाशिव ने प्रचण्ड-भैरव व्यायोग (जिसमें हिरण्यगर्भ और पुण्डरीक का श्मशान में युद्ध वर्णित है, इसी में भैरव के मञ्च पर आ जाने से यह युद्ध भयंकर रूप धारण कर लेता है) और महाभारत का आश्रय लेकर गोदावरी नदी के तट पर स्थित नन्दपुर में उत्पन्न गोविन्द कवि ने विनतानन्द व्यायोग (जो प्रचण्ड-गरुड भी कहलाता है) लिख कर इस परम्परा को आगे बढ़ाया। श्री दलाल ने पार्थपराक्रम की भूमिका में गोविन्द कवि के विनतानन्द तथा प्रचण्डगरुड को पृथक् पृथक कृतियाँ माना है परन्तु श्रीयुत कृष्णमाचार्य ने अपने लौकिक (संस्कृत) साहित्य के इतिहास में दोनों रचनाओं को एक ही समझा है। गोविन्द कवि के पिता शेषयज्ञेश्वर थे जो अनन्तसुत नाम से विख्यात थे। गोविन्द के इस व्यायोग में गरुड द्वारा अपनी माता विनता के लिये अमृत का लाना वर्णित है। यह कृति अभी प्रकाशित नहीं हो पाई है। इसके उपरान्त कौण्डिन्य गोत्र के आर्य - सूर्य के विजयविक्रम व्यायोग का नाम भी सुना जाता है। इसमें अर्जुन द्वारा जयद्रथ के वध का वर्णन है। भारद्वाज-गोत्रोद्भव कामशास्त्री पद्मनाभ के पुत्र कवि पद्मनाभ के त्रिपुरविजय का उल्लेख प्राप्य है। इनमें शिव और त्रिपुर का युद्ध अङ्कित था।

प्राचीन एवं मध्ययुगीन कवियों की कृतियों के पर्यवेक्षण से मालूम होता है कि प्राचीन कविवृन्द कविता के बाह्य-सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य के चित्रण में दक्ष हैं किन्तु उत्तरकाल के रसिक कवियों की कृतियों

---

१- भीमविक्रम ८८-९० पृ० २६-२७:

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



में कला एवं विद्वता अधिक प्रदर्शित की गई है। उनकी काव्यकृतियाँ चाहे वे श्रव्य हों या दृश्य; अलंकारों, छन्दों तथा वाग्जाल में जकड़ी-सी दिखाई देती हैं। उनकी नाट्यकृति भाण हो या प्रहसन, अथवा व्यायोग, भाषा प्राकृत हो या संस्कृत, सबमें कवि की पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति पाई जाती है।

प्राकृत भाषाओं का नाटकीय प्रयोग संस्कृत के अभिनेय वाक्यों में उपलब्ध होता है भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में धीरोद्धत एवं धीर प्रशान्त नायक, राजा, रानी, गणिका, श्रोत्रिय ब्राह्मण आदि के लिये संस्कृत तथा श्रमण, तपस्वी, भिक्षु चक्रधर भागवत, तापस, उन्मत्त, बाल, नपुंसक तथा नीच जाति के लोगों के लिये प्राकृत बोलने का निर्देश किया है। एकाङ्की रूपकों में भी भाण, वीथी, प्रहसन आदि में प्राकृत बोलने वाले पात्रों का बाहुल्य होता है। परन्तु व्यायोगों में स्त्री-पात्रों की तरह ही प्राकृत भाषियों का भी प्रायः (लगभग) अभाव-सा रहता है। अतः यहाँ प्राकृत साहित्य के रसास्वाद लेने का पाठकों को बहुत कम अवसर मिलता है। फिर भी प्राचीन और पश्चात्वर्ती कवियों की रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से विदित होता है कि वे अपने बौद्धिक-प्रदर्शन से ही प्रेक्षकों अथवा पाठकों को मुग्ध करने का यत्न करते हैं। अतः ऐसे कवियों के रूप-काव्य अधिकाधिक कृत्रिम, कठिन एवं जटिल बन गए हैं। समाज में ऐसी कृत्रिम वस्तुएँ आज की भाँति पहले भी हास्य की सृष्टि करने में समर्थ थीं। कठिन एवं समस्त वाक्यों के उच्चारण में वक्ताओं की असफलता देख श्रोता को हँसी आए बिना नहीं रहती। धर्मसूरि ने नटी के मुख से यह तथ्य निकलवाया है।[1] इसका खण्डन करते हुए कवि ने चन्द्रमा का दृष्टान्त दिया है।[2] वास्तव में इनकी भाषा जटिल होने पर भी इसके कतिपय अंश बड़े ही प्रभावोत्पादक हो गए हैं। इनकी भावाभिव्यञ्जना की पद्धति स्तुत्य है।

हम पहले ही कह आए हैं कि ११ वीं शती के अन्तिम तथा १२ वीं

---

१- नटी – कथमस्माकमनतिमात्ररमणीयो रूपकाभिनय एतेषां महात्मनां श्लाघास्पदं-भविष्यति। नरकासुरविजय.

२- नरकासुरविजय (प्रस्तावना)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



शताब्दी के आरंभ में विदेशियों (मुसलमानों से) के आक्रमणों से त्रस्त एवं पतनोन्मुख भारतीय जनता को पुनरुत्साहित करने तथा समाज का सुधार करने के लिये ही व्यायोगों तथा अन्य सामाजिक रूपकों (एकाङ्की) की रचना का प्रारम्भ किया गया था। प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय के अवलोकन से विदित होगा कि आज भी पत्र पत्रिकाओं में इस प्रकार के एकाङ्क-रूपक प्रकाशित होते रहते हैं। यथा - श्री कैलासनाथ विजय व्यायोग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

पञ्चम अध्याय

# उत्सृष्टिकाङ्क तथा वीथी

## उत्सृष्टिकाङ्क

### रूप निर्देश

भरत तथा उनके अनुगामी नाट्यालोचकों के अनुसार उत्सृष्टिकाङ्क करुणरस-प्रधान एकाङ्की रूपक होता है।[1] इसके अपवादस्वरूप शारदातनय द्वारा उल्लिखित कोहलाचार्य तथा आञ्जनेयव्यास[2] जैसे कुछ साहित्याचार्यों के अनुसार इसमें क्रमशः दो और तीन अङ्क होते हैं। मुख्य रस तथा इसकी कथा वस्तु के विषय में नाट्यालोचकों में मतैक्य है। शास्त्र-सम्मत लक्षण के अनुसार अङ्क का इतिवृत प्रख्यात भी हो सकता है और अप्रख्यात भी। इसमें दिव्य पुरुष नहीं होते। भरत के पश्चाद्वर्ती नाट्य-मीमांसकों ने भी अपने लक्षण ग्रन्थों में "पुंस्त्रामी" "पुंभिः" आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा इसमें देव व्यतिरिक्त

---

१– ना. शा. अध्याय १८, ९४-९५, पृ० ४४५-४४७.

२– प्रस्याङ्कमेकं भरतो द्वावङ्कार्विदकोहलः।
व्यासाञ्जनेयगुरवः प्राहुरङ्कत्रयं यथा॥
भा० प्र० अष्टम अधिकार – पृ० २५१–५३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



मानव के नायक होने का विधान किया है।[१]

## विभिन्न आचार्यों के मत

वृत्तियों के प्रयोग के सम्बन्ध में भी विचारकों में थोड़ा मतान्तर दृष्टिगत होता है। भरत एवं सागरनन्दी के अनुसार इसमें भारती ही प्रयुक्त होनी चाहिये, शेष वृत्तियाँ वर्जित होती हैं - "नाना व्याकुलचेष्टः सात्वत्यारभटी कैशिकीहीनः।" भावप्रकाश को देखने से पता चलता है कि अङ्क रूपक में कैशिकी वृत्ति निषिद्ध है और सात्वती एवं आरभटी प्रयुक्त होती है। शारदातनय के अनुसार कभी-कभी इसमें भयानक रस भी रहता है।[२]

अंक में भाण के समान ही मुख तथा निर्वहण सन्धियाँ होती हैं और दस लास्याङ्ग भी होते हैं[३], परन्तु इसमें भाण, प्रहसन एवं वीथी में उपलब्ध शृंगारमय जीवन का चित्र दुष्प्राप्य ही रहता है। यहाँ तो संसार का अनित्य और दुःखाक्रान्त रूप ही चित्रित होता है। मानवजीवन के यथार्थ दर्शन यहीं होते हैं। युद्धोपरान्त स्त्रियों के मुख से वैराग्योन्मेषिणी वाणी सुनने को मिलती है। दैव को उपालम्भ ,आत्म-निन्दा, अनुशोचन-रूप, स्त्रियों के विलाप आदि का इसमें आधिक्य मिलता है।

महान् विपत्तियों में पड़ जाने पर भी उत्तम तथा मध्यम लोगों की पुनः

---

१- प्रख्यात-वस्तु विषयोऽप्रख्यातविषयः कदाचिदेव।
दिव्यपुरुषैर्वियुक्तः शेषैरन्यैर्भवेत्पुंभिः॥
करुणरसप्रायः, प्रवृद्धयुद्धोद्धतप्रहारश्च स्त्रीपरिदेवनाबहुलः,
नानाव्याकुलचेष्टः आरभटी कैशिकीविहीनोऽङ्कः॥
ना. द. ८२, ८५ पृ० २३६; सागरनन्दी। (भरतकोश से)

२- कैशिकी वृत्तिहीनश्च स्यात्सात्वत्यारभटीयुतः।
क्वचिद्भयानकप्रायः ... ... भा० प्र० अष्टम अधिकार – पृ० २५१-५३.

३- उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं बुद्धया प्रपञ्चयेत्।
रसस्तु करुणः स्थायी तोतारः प्राकृता नराः॥
भाणवत्सन्धिवृत्यङ्गैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः।
वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपारजयौ॥ दशरूपक, प्रकाश ३, ७०-७१ पृ० ७६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



उन्नति हो सकती है। इसलिये मानव को हर परिस्थिति में धैर्य एवं चित्त की स्थिरता का परित्याग नहीं करना चाहिये। उत्सृष्टिकाङ्क में उपर्युक्त विलापादि से परिपूर्ण कथा विषादग्रस्त लोगों को उत्साह प्रदान करने के लिये ही प्रस्तुत की जाती है। युद्ध भी वचनों द्वारा ही होता है। यहाँ रूपककारों को कल्पना के बल से प्रख्यात इतिवृत्त का विस्तार करने की छूट है। विश्वनाथ भी इसमें जयपराजय, वाक्कलह तथा निर्वेदवचनों का प्राधान्य स्वीकार करते हैं।[1]

अङ्क रूपक के अवान्तर विभागों का द्योतक भी होता है। रूपकाङ्ग के पर्यायवाची और रूपक विशेष के द्योतक शब्द में वर्णसाम्य से संभावित भ्रान्ति के निवारणार्थ दशरूपक के टीकाकार धनिक[2] तथा विश्वनाथ ने इसे अङ्क के स्थान पर उत्सृष्टिकाङ्क कहा है। शोक-ग्रस्त उत्सृष्टिकाङ्क नारियों के उत्क्रमणोन्मुख जीवन का चित्रण होने के कारण हेमचन्द्र[3] तथा रामचन्द्र[4] ने अपने नाट्यशास्त्रीयग्रंथों में इस रूपक को उत्सृष्टिकाङ्क ही कहा है और आचार्य विश्वनाथ ने भी प्रकारान्तर से इसकी पुनरावृत्ति की है।[5] साहित्य दर्पणकार के मतानुसार इसमें सृष्टि उत्क्रान्त अथवा विपरीत रहती है। इस प्रसङ्ग में उनके द्वारा प्रयुक्त 'विपरीत' शब्द से यह व्यञ्जित होता है कि संस्कृत-साहित्य में प्रचलित नाट्य-सिद्धान्तों के अपवादस्वरूप उत्सृष्टिकाङ्क का अन्त दुःखमय भी हो सकता है। भारतीय एवं पाश्चात्य रूपक-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि प्राच्य काव्य-लोक में पश्चिमी दुःखान्त नाटक का स्थानापन्न विप्रलम्भ-शृंगार-प्रधान प्रेक्ष्यकाव्य माना जाता है, संभोग शृंगार के विपरीत विप्रलम्भ शृंगार में नायक नायिका से मिलने में असफल रहता

---

१- भाणवत्सन्धि-वृत्यङ्गान्यस्मिन् जयपराजयौ।
युद्धं च वाचा कर्तव्यं निर्वेदवचनं वहु॥ सा. द. ६, २५०-५२. पृ० ४४०.

२- उत्सृष्टिकाङ्क इति नाटकान्तर्गताङ्कव्यवच्छेदार्थम्।
दशरूपक, तृतीय प्रकाश, धनिकावलोक -पृ० ७६.

३- उत्क्रमेणोन्मुखा सृष्टिर्जीवित-प्राणा यासां ता उत्सृष्टिकाः शोचन्त्यः स्त्रियस्ताभिरङ्कित इति तथोक्तः। हेमचन्द्र-काव्यानुशासन (टीका) अध्याय, ८, पृ० ३८८

४- उत्क्रमेणोन्मुखा सृष्टिर्जीवितं यासां ता उत्सृष्टिकाः शोचन्त्यः स्त्रियः ताभिरङ्कितत्वाद् उत्सृष्टिकाङ्कः। ना. द. पृ० २३७:

५- ... ...उत्क्रांता विलोमरूपा सृष्टिर्यत्रेत्युत्सृष्टिकाङ्कः। सा. द. ६, पृ० ४४०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



है । यही बात प्रायः पश्चिम के दुःखान्त नाटकों में पाई जाती है । उसका मुख्य विषय होता है प्रिय वस्तु का वियोग, फिर चाहे वह मृत्यु द्वारा हो या नायक के विपरीत परिस्थितियों में पड़ जाने के कारण। भारतीय रूपकों में दिव्य पुरुष द्वारा दुष्ट मर्त्य मानव या राक्षस का वध होना आवश्यक समझा जाता था, जिसका उद्देश्य होता था पापियों से धर्मात्माओं की रक्षा । तदनुसार यदि काव्य में कभी ऐसी हत्याएँ वर्णित होती थीं तो वे दर्शकों की खिन्नता का कारण नहीं बनती थीं । दुष्ट की मृत्यु से प्रेक्षकों का प्रसन्न होना स्वाभाविक है । काल अथवा स्थान के भेद से यह सत्य बदल नहीं सकता । व्यायोगों की चर्चा करते समय कहा जा चुका है कि ऐसी मृत्यु का वर्णन करने वाली कृतियां दुःखान्त नहीं कही जा सकतीं । भरतमुनि तथा मध्ययुगीन साहित्य-शास्त्र-कोविद शारदातनय ने ऐसे वध की ओर संकेत किया है । भावप्रकाश-कार ने अपने मत की पुष्टि में श्री शंकुक का भी स्मरण किया है ।[१]

संस्कृत-साहित्य के अर्वाचीन विद्वान् डॉ. कीथ का मत है कि जब नाटक के अन्तर्गत कोई नाटक आ जाता है तब उसे अङ्क कहते हैं । परन्तु यह मत सर्व-मान्य नहीं । हिन्दी साहित्य के आचार्यों में बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसमें एक अङ्क माना है और इसके नायक को गुणी एवं कथावस्तु को प्रख्यात बतलाया है । श्री गुलाबराय भी प्राचीन नाट्य-शास्त्रविदों के कथनों का संक्षेप करते हुए इसमें करुण रस की प्रधानता एवं मुख तथा निर्वहण सन्धियों की योजना को स्वीकार करते हैं । हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के अभिनेय रूपक उपलब्ध भी नहीं हैं ।

---

१– विप्रलम्भोऽथ सम्भोग इत्येष द्विविधो मतः ।
यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ ।
स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात् ।। सा. द. ३, १८६-८७.

२– यद्दिव्य नायककृतं काव्यंसंग्रामबन्धवधयुक्तम् ।
तद्भारते तु वर्षे कर्तव्यं काव्यबन्धेषु ॥ ना शा. अध्याय १८,९७ पृ० ४४५-४४७

तुलना कीजिए –
दिव्येन मर्त्यस्यवधः कार्यस्यावश्यभावतः ।
निबन्धः सूच्य एवाङ्के विच्छिद्यैष प्रवेशकैः ।
इत्याहुर्भारतेवर्षे इति शङ्कुकभाषितम् ॥ भावप्रकाश अष्टम अधिकार पृ० २५१-५३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



अब तक के शोध के अनुसार जिन उत्सृष्टिकाङ्कों का पता चल सका है उनका उल्लेख प्रथम अध्याय में हो चुका है।

उनमें से प्रथम तीन (उरुभङ्ग, कर्णभार एवं दूतघटोत्कच) तो आदि-नाटककार भास कवि की रचनाएँ हैं और शेष के प्रणेताओं के नाम अज्ञात हैं। इनके प्रणयन का भी निश्चित ज्ञान अब तक नहीं हो पाया है। शर्मिष्ठाययाति को आचार्य विश्वनाथ ने अङ्क के उदाहरणस्वरूप साहित्य–दर्पण में तथा "करुण कुण्डला" को शिङ्गभूपाल ने रसार्णव सुधाकर में उद्धृत किया है। दर्पणकार का समय चौदहवीं शताब्दी माना जाता है और शिङ्गभूपाल भी इनके ही समसामयिक बतलाये जाते हैं। अतः अनुमानतः ये इन आचार्यों से पूर्व की कृतियाँ रही होंगी। अतः उनका मध्ययुगीन होना स्पष्ट है।

महाभारत ही उरुभंग कर्णभार और दूतघटोत्कच इन तीन एकांकियों का उपजीव्य है। इन रूपकत्रय का वर्गीकरण भी संस्कृत साहित्य की एक विवादमूलक समस्या रही है। श्री वाचस्पति जी गैरोला इन तीनों ग्रन्थों को व्यायोग की कोटि में रखते हैं। कारण, इनमें अंक के भी लक्षण घटित होते हैं और व्यायोग अथवा व्यायाम के भी। ऐसे रूपकों को व्यायोग की चर्चा करते समय सांशयिक (संदिग्ध) रूपकों की कोटि में रखने का सुझाव दिया गया है। अंक एवं व्यायोग के लक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उपर्युल्लिखित रचनाओं के सम्यगवलोकन से ज्ञात होगा कि नाट्य-रचना-विधान की दृष्टि से ये ग्रन्थ उत्सृष्टिकाङ्क के अधिक निकट प्रतीत होते हैं।[१] श्री पुसालकर जैसे बहुत से अन्य विद्वानों ने भी इन संशयप्रद रूपकों को व्यायोग न मान कर अंक ही माना है।[२]

---

१– ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः।
हीनोगर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः। सा. द. ६, २३१-३३, पृ० ३५५.

२– उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः।
... ... ... ... ...
युद्धं च वाचा कर्तव्यं निर्वेदवचनं बहु॥ सा. द. ६, २५०-५२, पृ० ३५८.
व्यायामस्तु विधिज्ञैः कार्यः प्रख्यातनायकशरीरः
काव्यानुशासन, अध्याय ८, पृ० ३८६ (हेमचन्द्र)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



## उरुभङ्ग

भास का ऊरुभंग उत्सृष्टिकाङ्क का सर्वोतम दृष्टान्त माना जा सकता है। इसकी कथा महाभारत के शल्य पर्व के अन्तर्गत गदायुद्ध पर्व से ली गई है। इस रूपक में अर्जुनतनय अभिमन्यु के वध के प्रतिशोधस्वरूप की गई प्रतिज्ञा के अनुसार महाभारत युद्ध में भीम द्वारा गदा-प्रहार से दुर्योधन की जङ्घा को चकनाचूर कर देने की घटना प्रदर्शित की गई है। इसका आरम्भ सूत्रधार के क्षतविक्षत-वीरसंकुल रणभूमि के वर्णन से होता है[1] और यहीं दुर्योधन-भीम के गदायुद्ध का संकेत भी मिल जाता है। उक्त गदायुद्ध का वर्णन तीन सैनिकों द्वारा करवाया गया है, जिसे हम विष्कम्भक[2] की संज्ञा दे सकते हैं। यहीं युद्ध-क्षेत्र तथा क्षत्रियों के विनाश का विस्तृत विवरण भी सुनने को मिलता है। यह घटना सामन्तक[3] पञ्चक नाम स्थान पर घटित है जिसका प्रमुख कारण दुर्योधन है।

सर्वे - अहो नुखलु निहत - पतित-गज - तुरग - नर-रुधिर - कलिलभूमि-प्रदेशस्य विक्षिप्तवर्मचर्मातपत्र - चामर - तोमर - शरकुन्त कवचकबन्धादि-पर्याकुलस्य - शक्तिप्रासहाटकभिण्दिपाल शूलमुसलमुद्गरवराहकर्ण - कणप-कर्पण शङ्कुत्रासि गदादिभरायुधैराकीर्णस्य समन्तपञ्चकस्य प्रतिभयता।

यहां तत्कालीन प्रतिद्वन्द्विता की छलकपटपूर्ण बातों का चित्रण है, जिन्हें भीम अपने दाव-पेंचों द्वारा सफलतापूर्वक नष्ट कर देता हैं।

महाकवि भास ने अपने कवित्व के बल से महाभारत की गदायुद्ध की कथा को परिवर्तित कर दिया है। प्रस्तुत नाट्यात परिवर्तनों पर एक दृष्टि डाल लेना अप्रासङ्गिक न होगा। महाभारत में संघर्ष के समय अर्जुन छल से भीम को उरूभङ्ग करने का संकेत देते हैं। वहां दुर्योधन[4] भगवान् कृष्ण को अर्जुन की इस चाल की सूचना देता सुना जाता है परन्तु एकाङ्की में इस

---

१- उरूभङ्ग पृ० ४.
२- उरूभङ्ग पृ० ८.
३- उरूभङ्ग पृ० २४.
४- प्रतिज्ञातं हि द्यूतकाले धनञ्जय। उरूभेत्स्यामि ते युद्धे गदयेति सुयोधनम्॥
महाभारत –भशल्यपर्वणि – गदायुद्ध पृ० ४०६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M



रहस्योद्घाटन का पूर्ण उत्तरदायित्व श्रीकृष्ण पर छोड़ दिया गया है। इस महान् व्यक्ति को कोई कुछ कह नहीं सकता। श्री कृष्ण का संकेत पाकर भीम अपने मनोरथ की पूर्ति करता है।

भूमौ पाणितले निघृष्य तरसा बाहू प्रमृज्याधिकं
सन्दष्टौष्टपुटेन विक्रमबलात् क्रोधाधिकं गर्जता।
त्यक्त्वा धर्मघृणां विहाय समयं कृष्णस्य संज्ञासमं
गान्धारीतनयस्य पाण्डुतनयेनोर्वोर्विमुक्ता गदा ॥[१]

प्रस्तुत नाटक में हम द्वैपायन (व्यास) और विदुर को गदायुद्ध के दर्शक के रूप में पाते हैं। इन पात्रों को यहाँ रखने में कवि का मुख्य उद्देश्य था, इनके द्वारा भीम की निर्दोषता सिद्ध करवाना। ये गुरुजन इस सम्बन्ध में मौन रहते हैं। व्यास दुर्योधन के घायल होते ही घटनास्थल त्याग देते हैं। और विदुर लोहू-लुहान मस्तक वाले भीम को देख अपनी आँखों में आँसू भर कर उसके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं।

तृतीयः— एष रूधिरपतनद्योतिताङ्गः निहतन्तं कुरूराजं दृष्ट्वा खमुत्पतितो भगवान् द्वैपायनः।[२]

महाभारत में इस प्रसङ्ग की कहीं चर्चा नहीं मिलती। युद्धोपरान्त रूपक में गान्धारी, धृतराष्ट्र और अन्तःपुर के अन्य सदस्य बालक दुर्जय के साथ सामन्तपञ्चक पहुँचते हैं। महाभारत में श्रीकृष्ण के आदेशानुसार पाण्डव कौरवों के सन्तप्त परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करने के लिये हस्तिनापुर जाते हैं।

इस उत्सृष्टिकाङ्क रूपक में शोकातुर कौरवों एवं पाण्डवों के गुरुजनों तथा स्त्रियों के घटनास्थल पर पहुँच जाने से कवि को उनकी स्वाभाविक मनोभावनाओं के अनुभव का अवसर मिल जाता है। स्त्रियों की स्वामिभक्ति, दुर्जय जैसे शिशुओं की मृत्यु-सी भयङ्कर वस्तु से अनभिज्ञता, पुत्र की मातृ-

---

१- उरूभङ्ग २४, पृ० ५६.
२- उरूभङ्ग पृ० ५७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



पितृ-भक्ति, घायल दुर्योधन की पुत्र को गोद में बैठाने में करुणाजनक असमर्थता के वर्णन में कवि की प्रतिभा फूट पड़ी है। करुण-प्रधान कृति होने के कारण यहाँ काव्य के मधुर रूप के दर्शन होते हैं। इस दृश्य में दुर्योधन के प्रति प्रेक्षक की सहानुभूति उमड़ पड़ती है।

धृतराष्ट्रः– भोः कष्टम्।
वञ्चना-निहतं श्रुत्वा सुतमद्याहवे मम।
मुखमन्तर्गतस्वाक्षमन्धमन्धतरं कृतम्॥
+ +

राजा - भोः कष्टम्। कष्टम्। यन्ममापि स्त्रियो रुदन्ति।
पूर्वं न जानामि गदाभिघात-रूजामिदानीं तु समर्थयामि।
यन्मे प्रकाशीकृत - मूर्वजानि रणं प्रविष्टान्यवरोधनानि॥
+ + +

बलदेवः–- अये इयमत्रभवती गान्धारी।
या पुत्रपौत्र - वदनेष्वकुतूहलाक्षी
दुर्योधनास्तमित - शोकविपत्ति - धैर्या।
अस्त्रैरजस्रमधुना पतिधर्म - चिह्न—
मार्द्रीकृतं नयन - वन्धमिदं दधाति॥
+ + +

धृतराष्ट्रः– एहि पुत्र। अभिवादयस्व माम्।
दुर्योधनः– अयमागच्छामि (उत्थानं रूपयित्वा पतति)
हाधिक्। अयं मे द्वितीयः प्रहारः। कष्टं भोः।
हृतं मे भीमसेनेन गदापात - कचग्रहे
समूरुद्वयेनाद्य गुरोः पादाभि - वन्दनम्॥
दुर्जयः - ताद। अहं गच्छामि (उपसृत्य) ताद। कहिं सि।
दुर्योधनः- अये अयमप्यागतः। सर्वावस्थायां हृदय-सन्निहितः
पुत्र - स्नेहो मां दहति। कुतः
दुःखानाम - नभिज्ञोयो ममाङ्क - शयनोचितः।
निर्जितं दुर्जयो दृष्ट्वा किन्नु मामभिवास्यति॥
दुर्जयः- अहं पि खु दे अङ्के उवविसामि (अङ्कमारोहति)
दुर्योधनः- (निवार्य) दुर्जय! दुर्जय! भोः कष्टम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



हृदय – प्रीतिजननो यो मे नेत्रोत्सवः स्वयम् ।
सोऽयं काल - विपर्याच्चन्द्रो वह्नित्वमागतः ॥[१]

महाभारतगत कथा के अनुसार युद्ध के प्रसङ्ग में किये गये छल को याद करके दुर्योधन श्रीकृष्ण पर उबल पड़ता है। परन्तु भास ने उसका चरित्र यहाँ बिल्कुल बदल दिया है। महाभारत में अश्वत्थामा रात्रि में पाण्डवों का विनाश करने की घोषणा करता है, तब दुर्योधन खूब प्रसन्न होता है। किन्तु नाटक में वह उसे इस दारुण कर्म से रोकता है। उक्त ऐतिहासिक महाकाव्य में दुर्योधन रात्रि-युद्ध के परिणामस्वरूप द्रौपदी के पञ्चपुत्रों के वध का समाचार सुन कर मर जाता है। इस दृश्य काव्य में रात्रि-युद्ध के लिये अश्वत्थामा के प्रस्थान करने से पूर्व ही वह अपने प्राण त्याग देता है।

दुर्योधन को हम उरुभङ्ग का नायक तो नहीं कह सकते, परन्तु यहाँ वह महाभारत एवं भट्टनारायण के वेणीसंहार के धीरोद्धत[२] नायक के रूप में अन्त तक नहीं रहता।

पहले हम दुर्योधन को प्रतिनायक के वेष में तन-मन से पाते हैं, परन्तु भीम द्वारा उरुभञ्जन के साथ-साथ उसका मिथ्या दर्प भी चूर्ण हो जाता है और महाभारत का शठ, दुर्विनीत तथा अहङ्कारी दुर्योधन नाटककार की प्रतिभा के प्रताप से नितान्त उदात्त एवं शौर्य तथा पराक्रम के जीते जागते प्रतीक के रूप में उपस्थित होता है।[३]

मृत्यु से पूर्व वीरगति को प्राप्त करने वाले एक आदर्श योद्धा की तरह वह भाषण करता है।

राजाः– मालवि ! मालवि ! त्वमपि शृणु ।

भिन्ना मे भृकुटी गदा-निपतितैर्व्यायुद्ध - कालोत्थितै–
र्वक्षस्युत्पतितैः प्रहाररुधिरैरर्घावकाशोहृतः ।

---

१– उरुभङ्ग ३७-४३ पृ० ९०–९६.

२– मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः ।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः ॥ सा. द. तृतीय परिच्छेद, पृ ३३.

३– अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः ।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥ सा. द. तृतीय परिच्छेद. पृ० ३२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



पश्येमौ व्रणकाञ्चनाङ्गदधरौ पर्याप्त - शोभा - भुजौ
भर्ता ते न पराङ्मुखो युधि हतः किं क्षत्रिये । रोदिषि ।।[1]
राजाः पौरवि ! त्वमपि शृणु
वेदोक्तैर्विविधै – मंखैरभिमतैरिष्टं धृता बान्धवाः
शत्रूणामुपरिस्थितं प्रियशताम्नो श्त्रवः संश्रिताः
युद्धे ऽष्टादश वाहिनी नृपतयः सन्तापिता निग्रहे
मानं मानिनि ! वीक्ष्य मे नहि रूदन्त्येवंविधानां स्त्रियः ।।

अपनी माता के प्रति उसकी भक्ति के उद्गार प्रशंसनीय हैं। क्रोध में पाण्डवों का नाश करने को उद्यत बलराम को शान्त करने के लिये उसके हृदय से निकले हुये भाव भी मार्मिक हैं। इस प्रकार दुष्ट दुर्योधन एक सज्जन का रूप धारण कर प्रेक्षकों के हृदय में अपने लिये दया का भाव जागरित करने में पूर्ण सफल होता है। उसका वैर-भाव पश्चाताप में परिवर्तित हो जाता है।

बलदेवः - अहो वैरं पश्चात्तापः संवृतः ।।[2]

दुर्योधन के अतिरिक्त धृतराष्ट्र गान्धारी, मालवी, पौरवी, दुर्जय आदि अन्य पात्रों के चरित्र-विन्यास में भी नाटककार ने पर्याप्त कौशल प्रदर्शित किया है। इन मुख्य पात्रों के सिवाय युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, द्वैपायन, विदुर आदि पुरुषों का स्थान-स्थान पर नामोल्लेख - मात्र आता है। हाँ, बलराम एवं अश्वत्थामा का व्यक्तित्व भी अपने में महत्वपूर्ण दिखलाया गया है। अश्वत्थामा का चरित्र एकाङ्गी विदित होता है। उसमें केवल शौर्य प्रदीप्त है।

स्फुटित-कमल-पत्र-स्पष्ट-विस्तीर्ण-दृष्टी
रुचिर-कनक-यूप - व्यायतालम्ब-बाहुः
सरभस-भयमुग्रं कार्मुकं कर्षमाणः
सदहन इव मेरूः शृंग-लग्नेन्द्र-चापः ।।[3]

वैराग्नि अभी तक उसके हृदय से शान्त नहीं हो पाई है। वह महा-

---

१– उरूभङ्ग. ५१–५२ १०७–११०.
२– उरूभङ्ग पृ० ११४.
३– उरूभङ्ग ५६, पृ० ११६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



भारत-युद्ध के यज्ञ में पाण्डवों की अन्तिम आहुति डाल कर इसकी इति करना चाहता है। उसकी बातों से अविनय टपकता है। दुर्योधन के विग्रह-समाप्ति की राय देने पर भी वह अपने निश्चय को नहीं छोड़ता और उसकी भर्त्सना करता है।

राजा-मा भवानेवम् ।
संयुगे पाण्डु - पुत्रेण गदा-पात-कचग्रहे ।
सममूरुद्वयेनाऽत्रऽदर्पोऽपि भवतो हृतः ॥[१]

बलराम का रूप अपेक्षाकृत अधिक प्रशस्त है। वे भी दयाहीन, क्रोधी बतलाए गए हैं, परन्तु उनका क्रोध कपट-युद्ध के फलस्वरूप भड़का है। अतः इससे उनकी न्यायप्रियता में कमी नहीं आती। उन्हें अपने शिष्य के युद्ध-कौशल पर अभिमान है। उनके क्रुद्ध रूप का कवि ने उपमालंकार की सहायता से निम्नाङ्कित पङ्क्तियों में स्वाभाविक चित्र खींच कर रख दिया है।

प्रचलललितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षो
भ्रमरमुखविदष्टां किञ्चिदुत्कृष्य मालाम् ।
असित – तनुविलम्बिस्रस्त–वस्त्रानुकर्षी
क्षितितलमवतीर्णः पारिवेषीव चन्द्रः ॥[२]

अर्थात् —

देखो, ये बलराम चले आ रहे हैं। क्रोध के कारण इनकी लम्बी-लम्बी आँखें लाल हो गई हैं, और सिर तेजी से हिल रहा है। इनके गले में पड़ी माला की सुगन्ध से भँवरे उसके आस पास मँडराकर उसे काट रहे हैं। भँवरों को हटाने के लिये माला को इन्होंने कुछ टेढ़ा कर लिया है। ये अपने नील वस्त्र को जो जमीन पर लटक रहा है, समेटते हुए चले आ रहे हैं। ऐसा दिखाई देता है, जैसे परिवेष (मण्डल) से युक्त चन्द्रमा ही पृथ्वी–तल पर उतर आया हो।

प्रस्तुत करुणाप्रवण एकांकी में कवि ने इन वीरों के मुख से दर्पोक्तियाँ निकलवाकर कारुण्य के साथ-साथ वीररस की धारा भी प्रवाहित की है। इस

---

१- उरुभङ्ग ६१-६२, पृ० १३२.
२- उरुभङ्ग २६ पृ० ६०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



नाट्य में आए हुए करुण दृश्यों का अवलोकन हम ऊपर कर चुके हैं। नाटक के आरम्भ में युद्ध–भूमि के चित्रण के समय भयानक एवं वीभत्स रस के भी यत्र–तत्र दर्शन होते हैं, जिनको पढ़ कर, वेणीसंहार के कतिपय दृश्यों की याद आ जाती है।

एते परस्पर – शरैर्हृतजीवितानां
देहै रणाजिरमहीं समुपाश्रितानाम्।
कुर्वन्ति चात्र पिशितार्द्रमुखा विहङ्गा
राज्ञां शरीरशिथिलानि विभूषणानि ॥[१]

और भी —

प्रथमः – रुधिरसरितो निस्तीर्यन्ते हतद्विपसङ्क्रमान्
नृपतिरहितैः स्रस्तैः सूतैर्वहन्ति रथान् हयाः।
पतितशिरसः पूर्वाभ्यासाद् द्रवन्ति कवन्धकाः
पुरुषसहिता मत्ता नागा भ्रमन्ति यतस्ततः ॥[२]

प्रस्तुत उत्सृष्टिकाङ्क का सारा कथा–सूत्र केवल एक ही घटना पर केन्द्रित है और वह है भीम द्वारा गदायुद्ध में दुर्योधन का उरुभञ्जन। उरुभंग-क्रिया से पूर्व के सारे संवाद एवं क्रिया–कलाप इसी दृश्य की ओर बढ़ने में सहायक हैं। एक ही अङ्क में छयासठ श्लोकों तथा गद्यमय भाषा में कवि ने महाभारतीय कथा को परिवर्तित कर निजी कल्पना–शक्ति से प्रतिपाद्य विषय को चारुतर बना दिया है। डॉ. सुशील कुमार दे के शब्दों में इसके एक ही अङ्क में श्लोकों का बाहुल्य भी इसका वैशिष्ट्य है।[३]

इसके अतिरिक्त भास ने ही "कर्ण–भार" नामक एक लालित्य–पूर्ण एकाङ्की की रचना करके संस्कृत में अङ्क–साहित्य को सम्पन्न किया है। इस

१– उरुभङ्ग २७, पृ० १६, वही–१० पृ० २६.

२– उरुभङ्ग के इस अंश के तुलनात्मक अध्ययन के लिये देखिये वेणीसंहार – अङ्क ४, १–३ पृ. ८२–८३.

३– ... ... and the play is also remarkable in having as many as sixtysix stanzas in one act alone.
De and Das Gupta, History of Sanskrit Literature Vol.I. [page. 113,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



उत्सृष्टिकाङ्क में कर्ण–द्वारा ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को कवचकुण्डल देना वर्णित है। यहाँ कर्ण के उज्ज्वलचरित्र एवं उसकी दानप्रियता का प्रभावोत्पादक निरूपण किया गया है। महाभारत के आदि पर्व में इन्द्र को कवच–कुण्डल काट कर देने का वृत्तान्त मिलता है जिसके कारण उसका नाम वैकर्तन पड़ गया।

तमिन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा पुत्रार्थं भूतभावनः।
कुण्डले प्रार्थयाभास कवच च महाद्युतिः॥
उत्कृत्याविमनास्स्वाङ्गात् कवचं रूधिरस्रवम्।
कर्णपाशौ च द्वौ छित्वा प्रायच्छत्स कृताञ्जलिः॥[1]

इस कथा का संकेत वन-पर्व और शान्ति-पर्व के कुछ स्थलों में भी प्राप्त होता है। महाभारत के विभिन्न पर्वों में बिखरी हुई कथाओं को कवि ने इस नाटक में सङ्कलित करके मनोरम रूप दे दिया है। महाभारत के वन-पर्व में इन्द्र द्वारा भिक्षुक के रूप में कवच कुण्डल की याचना का वर्णन है। इस समय पाण्डव वनवास की स्थिति में थे। सूर्यदेव यहां कर्ण को स्वप्न में कवच-कुण्डल दान न करने का परामर्श देते हैं।

सूर्यः – यद्येवं शृणु मे वीर वरं ते सोऽपि दास्यति।
शक्तिं त्वमपि याचेथाः सर्वशस्त्र-विवाधिनीम्॥[2]

तदनुसार कर्ण ने शक्ति-लाभ के बिना कवच न देने का निश्चय कर लिया था। वह शक्ति की याचना स्वयं करता है। परन्तु नाटक में स्थिति सर्वथा भिन्न है। प्रथम तो वह घटना युद्ध-क्षेत्र में संघटित होती है बनवास में नहीं। युद्ध में ही इन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे अवसर पर दानी सब कुछ दे सकता है किन्तु कवच कुण्डल को वह अलग नहीं कर सकता। महाकवि भास को इन्द्र द्वारा कर्ण की दानप्रियता की कठोर परीक्षा करवाने के लिए यही स्थल उचित लगा। द्वितीयतः जहाँ महाभारत में कर्ण शक्ति की याचना स्वयं करता है, वहाँ कर्णभार में वह कहने पर भी माँगना नहीं चाहता। इस प्रकार इस स्थल में कवि ने कर्ण के चरित्र को ऊँचा बना दिया है।

---

१– महाभारत आदि पर्व (संभव पर्व) अध्याय १०५, ३७, ३८, पृ० ६८५,
२– महाभारत आदि पर्व (संभव पर्व) अध्याय १०५, ३५, पृ० ६८५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इच्छामि भगवद्दत्तां शक्तिं शत्रुनिबर्हिणीम् ॥[1]

इसके अतिरिक्त महाभारत के शल्य एवं नाटकस्थ शल्य में भी पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है। दोनों ही काव्यों में शल्य, कर्ण के सारथि हैं, परन्तु इनका चरित्र एक-सा नहीं है। नाटक के शल्य, महाभारत की तरह कटुभाषी, उत्साह-विनाशक तथा वाचाल न होकर संयमी, उदार-हृदय तथा रथी के शुभचिंतक के रूप में प्रेक्षकों के समक्ष प्रकट होते हैं। कवि ने अनेक नाटकीय तत्वों का सम्मिश्रण कर उसे 'कर्णभार' नाम देकर संस्कृत नाट्य-संसार की एक अनुपम कृति बना दिया।

इस एकाङ्कीरूपक के नामकरण पर भी भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने पर्याप्त चर्चा की है। कर्णभार में प्रथम दृष्टि में 'कर्ण' और 'भार' ये दो पद प्राप्त होते हैं। अभिधान-कोशों में प्राप्त कर्ण-शब्द के विभिन्न अर्थों में से यहाँ इसका अर्थ कौरव-सेनापति कौन्तेय (राधेय) है। भारत के अनेक अर्थों का उपयोग विद्वानों ने अलग-अलग ढँग से किया है। डा० जी० भट्ट के अनुसार कर्ण की मानसिक चिन्ता ही उसे भारस्वरूप होकर कष्ट-दायिनी हो रही है। कौरवीय सेना के संचालन के महान् उत्तरदायित्व के भार से कर्ण लदा हुआ था। कर्ण-भार का संकेत इसी 'भार' की ओर है। इसी बात को ध्यान में रख कर श्री गणपति शास्त्री ने यह मत व्यक्त किया कि इस लघु रूपक में सेनापति कर्ण का रूप पूर्णरूपेण निखर नहीं पाया है। वे इसमें एक अङ्क और बढ़ाने की महती आवश्यकता बतलाते हैं। मेरे विचार से अपने वर्तमान रूप में भी इसमें साहित्यिक सुषमा तथा कथा-सूत्र का सम्यक् निर्वाह हुआ है।

डॉ. पुसालकर, कर्णभार को इसी रूप में पूर्ण मान कर इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं —

> "कर्णयोः भारभूतानि कुण्डलानि दत्वा कर्णेनापूर्वा दानशूरता प्रकटीकृता। तामधिकृत्यकृतं नाटकम्।" इसके पुष्ट्यर्थ वह आगे कहते हैं कि वाचिक दान एवं क्रियात्मकदान के मध्य की अवधि में कर्ण के कानों को वे कुण्डल भारभूत प्रतीत होने लगे।

पुसालकर महोदय की व्याख्या में कवचों का उल्लेख न होने से प्रो० सी० आर० देवधर, नाटक की विषयवस्तु का पूर्ण उद्घाटन न हो पाने के

१— महाभारत आदि पर्व (संभव पर्व) अध्याय १०५; ४१, पृ० ६८६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



कारण उक्त कथन को अपूर्ण समझते हैं। सेनापति के रक्षणार्थ कुण्डलों की अपेक्षा कवच का महत्व कहीं अधिक होता है। डा. मैक्डलिण्डेन्यू "भार" का अर्थ कवच करते हैं। एक महानुभाव इस नाटक का नामान्तर "कवचाङ्क" भी बतलाते हैं। किसी की यह स्वाभाविक उक्ति है। कवच के कारण ही यहाँ कर्ण के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व दिखाई देता है। अतः यहाँ कवच प्राधान्येन प्रतिनिधित्व करता है।

डॉ. विन्टरनित्ज ने कर्णभार की विवेचना में कर्ण के कठिन कार्य की ओर ही संकेत किया है। "The difficult task of Karna" viz His vow that he would not refuse anything to a Brahmin." प्रो० जी० सी० झाला, "भार" का सम्बन्ध भास के ही पञ्चरात्र नाटक में कर्ण द्वारा प्रयुक्त "भार" से जोड़ते हैं।

कर्णः :– भारार्थं भृशमुद्यतैरिह हयैर्युक्तो रथः स्थाप्यताम् ॥[1]

उनका कहना है कि पञ्चरात्र रचते समय कर्णभार की अनेकार्थता की बात भास के ध्यान में थी। कतिपय विद्वान् मनीषियों के मत में कर्ण का युद्ध-कौशल ही उसके लिये भारभूत हो गया था।

परशुराम के शाप, कुन्ती को अर्जुन के अतिरिक्त शेष पाण्डवों को न मारने के वचन-दान तथा इन्द्र को कवच कुण्डल के दान के कारण कर्ण की शस्त्रविद्या समय पर विफल सिद्ध हुई थी। उक्त कारणों में इसका कोई भी कारण रहा हो, नाटक के शीर्षक की जटिलता प्रत्यक्ष है। दानवीरकर्ण ने विपरीत परिस्थितियों में फँस जाने पर भी युद्ध के लिये अत्यावश्यक वस्तु कवच को रण-क्षेत्र में ही ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र को प्रदान कर अपनी गुरुता (भार) को अक्षुण्ण बनाए रक्खा। भास ने कर्ण के चरित्र को ऊँचा उठा कर, उसके दानकर्म के गौरव को किसी प्रकार की आँच नहीं आने दी। कर्ण दान का प्रतिफल भी नहीं चाहता। यह बात इन्द्र द्वारा पीछे से भेजी गई शक्ति को लौटाने के वृत्तान्त से पुष्ट होती है। दानशीलता के अतिरिक्त कर्ण की एक और विशेषता इस रूपक में निखरी है और वह है उसकी अपूर्व ब्राह्मण–निष्ठा। वह ब्राह्मण के लिये अपना सर्वस्व

१– पञ्चरात्र अङ्क १.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDP



दान करने को उद्यत रहता है। इन्द्र के गो, सुवर्ण आदि दान लेना अस्वीकार करने पर वह शिरश्छेद कर अपना मस्तक तक देने को तैयार हो जाता है। इस प्रसङ्ग में कर्ण एवं कैतवी इन्द्र के संवाद को पढ़ कर कठोपनिषद् में स्थित यम एवं नचिकेता के बीच के वार्तालाप का स्मरण हो आता है, जहाँ यम उसे वरदान के रूप में बहुत सी कमनीय वस्तुएँ देने की बात कहता है और बालक नचिकेता उन सबको क्षणभङ्गुर समझकर अस्वीकार करता जाता है। यथा –

यमः – ये ते कामादुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिमत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥

नचिकेताः –

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणाञ्जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥

कर्णभार के इन्द्र के चरित्र में कोई विलक्षणता लक्षित नहीं होती। वह अपने स्वार्थ के प्रति एकनिष्ठ है। कर्ण द्वारा बहुमूल्य लुभावनी वस्तुओं के देने पर भी नचिकेता की तरह उनकी ओर आकृष्ट नहीं होता और जैसे ही कवच-कुण्डल का नाम सुनता है, उसे झट स्वीकार कर लेता है।

कर्णः – गुणवदमृतकल्प क्षीरधाराभिवर्षि,
द्विजवर! रुचितं ते तृप्तवत्सानुयात्रम्।
तरुणमधिकमर्थि प्रार्थनीयं पवित्रं
विहितकनकशृङ्गं गोसहस्रं ददामि॥

शक्रः – गो सहस्संति मुहुत्त्रं खिरं पिवामि। णेच्छामि कण्ण।

कर्णः – किं नेच्छति भवान्। इदमपि श्रूयताम्।
रवितुरग–समानं साधनं राजलक्ष्म्याः,
सकलनृपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातम्।
सुगुणमनिलवेगं युद्ध–दृष्टापदानं
सपदि बहुसहस्रं वाजिनां ते ददामि॥

+ + +

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



कर्णः – न भेतव्यं न भेतव्यम् । प्रसीदतु भवान् । अन्यदपि श्रूयताम्–

अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा
देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहस्रैः ।
देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां
प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात् ।।[१]

इसके अनन्तर इनका उदात्त रूप सामने आता है। आत्मग्लानि की अग्नि में तपने के बाद वह कर्ण के लिये देवदूत द्वारा विमला नामक एक अमोघ शक्ति को भेजकर अपने किए हुए स्वार्थपरक जघन्य कृत्य का परिमार्जन करता है।

कर्णभार में शल्य का चरित्र पूर्ण विकसित नहीं हो सका है। वे पाठकों के सामने संयमी, नम्र एवं अपने स्वामी के हितचिन्तक के रूप में आते हैं। शल्यराज कर्ण के चरित्र को उभारने के माध्यम हैं। वह अन्त तक कर्ण की सुख-सुविधा का चित्रण करने वाले एक सहृदय सारथी बने रहते हैं। अङ्गेश्वर कौरव-सेनापति कर्ण, कर्णसुत शल्य एवं इन्द्र इन तीन मुख्य पात्रों के अतिरिक्त भट, सूचक आदि पात्रों के नाम भी इस एकांकी में आते हैं। उक्त मुख्य पात्रों का तो संवाद भी सुनने को मिलता है। अतः स्वर्गीय डा. सुशीलकुमार डे[२] का यह कथन कि "यह एकाङ्की ही नहीं, वास्तव में यह एकपात्रीय रूपक ही है," उचित नहीं प्रतीत होता। कर्णभार लघु-रूपक होता हुआ भी अपने विस्तार में पूर्ण है। जिस घटना को यहाँ लिया गया है उसका अन्त तक सफल निर्वाह किया गया है। बहुत से सूक्ष्म विषय कथोपकथनों द्वारा ही सूचित कर दिये गये हैं जैसे–शापप्राप्ति का वृत्तान्त. कुन्ती को अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डव भाइयों को न मारने का आश्वासन आदि। इसकी घटनाओं के आरोहावरोह में भी शिथिलता नहीं आने पाई है।

काव्यरस के परिपाक एवं नाटकीय सिद्धान्तों के निर्वाह की दृष्टि से भी यह उत्तम कोटि की रचना है। इसका कार्यस्थल समर-क्षेत्र होने के कारण इसका सीधा सम्बन्ध तो वीररस से है, परन्तु रूपक में प्रधानता करुण रस की ही है। उरुभङ्ग एवं कर्णभार में तथा भास के अन्य नाटकों में करुण रस की अभिव्यक्ति बड़ी सजीव दिखाई पड़ती है। भवभूति की भाँति "एकोरसः

१– कर्णभार – १९–२१, पृ० २२.

२– ... it is not only a One Act Play but really a one Character play.
De and Das Gupta, History of Sanskrit Literature Vol.I. Page 112.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



करुण एव" के समर्थक न होते हुए भी अपनी रचनाओं में करुणा के हृदयग्राह्य चित्रण द्वारा भास ने इस रस विशेष के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित कर ही दिया है।

कारुण्यपूर्ण वातावरण के आधिक्य से संभावित नीरसता के निवारणार्थ कवि ने इसमें हास्य को स्थान देना आवश्यक समझ कर ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र के मुख से नाट्य सिद्धान्तों के विरुद्ध मागधी एवं अर्धमागधी प्राकृत का प्रयोग करवाया है।

श्री बुलनर महोदय के अनुसार कर्णभार एक दुःखान्त रूपक है। परन्तु यहाँ मृत्यु मञ्च पर दिखलाई नहीं गई है और न ही कर्ण के मर जाने की सूचना दी गई है। शल्य से वार-वार अर्जुन के पास रथ ले जाने को कह कर कर्ण मृत्यु के पास जाना अवश्य चाहता है। परन्तु उसकी मौत हो गई – ऐसी सूचना दर्शकों को नहीं दी जाती। युद्धारम्भ होने का संकेत देकर भरतवाक्य द्वारा रूपक का उपसंहार किया गया है।

अलंकारों की योजना भी अतुलनीय है। प्रस्तुत अवतारितांश में कर्ण की अति सुन्दर उपमा निहित है —

एष हि –

अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्यः<br>
शौर्ये च संप्रति सशोकमुपैति धीमान्।<br>
प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः<br>
सूर्यः स्वाभावरुचिमानिव भाति कर्णः ॥[1]

कवि की वर्णन शक्ति भी सराहनीय है। परशुराम के वर्णन को पढ़ कर उनकी साक्षात् मूर्ति पाठकों के सामने आ जाती है।

कर्णः – ततः

विद्युल्लता – कपिलतुङ्गजटा – कलाप –<br>
मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम्।<br>
क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं<br>
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि ॥[2]

---

१– कर्ण-भार ४, पृ० ५.
२– कर्ण-भार ६, पृ० ६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MiL



कर्ण के माध्यम से चतुर कवि ने संसार की असारता तथा धर्म एवं दान की महत्ता बतलाई है।

> धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वा-चपला नृपश्रियः।
> तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्ध्या हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥[1]
> शिक्षा क्षयं गच्छति काल-पर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
> जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥[2]

नीति-युद्ध की सार्थकता के सम्बन्ध में कर्मवीर कर्ण का कथन है कि इस संग्राम में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो जाने में भी शरीरी की विजय ही है। इन वाक्यों में भगवद्गीता की छाया स्पष्ट है।

> हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः
> उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥[3]

तुलना कीजिए —

> हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
> तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥[4]

**दूतघटोत्कच -**

संस्कृत के उत्सृष्टिकाङ्कों में महाकवि भास के "कर्ण-भार" के अतिरिक्त इन्हीं के "दूतघटोत्कच" का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। इसका कथानक भी 'उरुभङ्ग' की कथावस्तु की भाँति महाभारत में वर्णित अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु के मरण के उपरान्त घटित घटनाओं से सम्बद्ध है। पुत्र के वध के पश्चात् अर्जुन द्वारा जयद्रथ के वध तथा कौरवों के नाश की प्रतिज्ञा करने पर श्रीकृष्ण द्वारा घटोत्कच को इसकी सूचना देने के लिये धृतराष्ट्र के पास भेजना और अन्त में दारुण युद्ध का वृत्तान्त ही इसका विषय है। उद्धत-वीर घटोत्कच के दुर्योधन तथा अपने साथियों के साथ हुए वार्तालाप में घटो-

---

१- कर्णभार, १७, पृ० १८.
२- वही-, २२, पृ० २३.
३- वही-, १२, पृ० १३.
४- गीता २-३७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



त्कच के हर वाक्य में वीरता के भाव टपकते हैं। उसके सफल दौत्य-कर्म की कथा ही कवि की निजी कल्पना है जो महाभारत में दिखाई नहीं देती। हिडिम्बा–सुत घटोत्कच का दौत्य ही इस नाट्य की मुख्य वस्तु होने के कारण इस एकाङ्की का शीर्षक सर्वथा विषयानुकूल है।

नान्दी पाठ[1] के अनन्तर सूत्रधार के वाक्यों से नाटक की कथा सूचित होती है। इसके अनुसार दर्शकों को ज्ञात हो जाता है कि संसप्तक–सेना द्वारा अर्जुन को रोक दिए जाने के कारण भीष्म के वध से क्षुब्ध हो कौरवों ने उचित अवसर पाकर बालक अभिमन्यु की हत्या कर डाली है।

भो भो निवेद्यतां तावत्–

सूत्रधारः - भवतु। विज्ञातम् एष खलु संशप्तकानीक–निर्वाहिते जनार्दन–सहाये धनञ्जये तदनन्तरमुपगत - भीष्म - वधामर्षितैर्धार्तराष्ट्रैः परिवार्य निपातितः कुमारोऽभिमन्युः।

भटों द्वारा हतात्मा के परिवार को उक्त दुर्घटना से अवगत कराया गया है। लोग इस दुःखद समाचार से वीरगति को प्राप्त करने वाले अभिमन्यु की अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रशंसा तथा इस जघन्य कृत्य के कर्ता कौरवों की निन्दा करने लगते हैं। फलतः पाण्डव कुल शोक-सागर में डूब जाता है और कौरव–समुदाय इस समाचार से भावी अनर्थ की आशङ्का से शङ्कित हो व्याकुल हो उठता है।

यान्त्यर्जुन – प्रत्यभियानभीता
यतोऽर्जुनस्तां दिशमीक्षमाणः।
नराधिपाः स्वानि निवेशानि
सौभद्र – बाणाङ्कितनष्टसंज्ञाः ॥[2]

अपने पौत्र वीर-बालक अभिमन्यु की नृशंस हत्या का विवरण सुन धृतराष्ट्र गान्धारी आदि पूज्य जनों की करुणा उमड़ पड़ती है। कौरवों के अन्तःपुर में अपने वैधव्य की समीपता को देख कर संतप्तहृदया नारियों का

---

१– दूतघटोत्कच – पृ० १.
२– दूतघटोत्कच – पृ० २–३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



रोना-गाना सुनाई देने लगता है। इस शोक-ग्रस्त वातावरण में श्रीकृष्ण द्वारा प्रेषित घटोत्कच उनके इस सन्देश के साथ दुर्योधन की सभा में पहुँचता है।

धृतराष्ट्रः – कथं नु भोः।

केनैतच्छ्रुतिपथदूषणं कृतं मे
कोऽयं मे प्रियमिति विप्रियं ब्रवीति।
कोऽस्माकं शिशुवधपातकाङ्क्षितानां
वंशस्य क्षयमवघोषयत्यभीतः।[१]

गान्धारी – महाराज। अत्थि उण जाणीअदि केवलं वुत्तसंसअकारओ कुलविग्गहो भविस्सदि त्ति।

\+ \+ \+

धृतराष्ट्रः – गान्धारि शृणु –

अद्याभिमन्यु - निधनाज्जनितः प्रकोपः
सामर्षकृष्णधृतरश्मिगुणप्रतोदः
पार्थः करिष्यति तदुग्रधनुः सहायः
शान्तिं गमिष्यति विनाशमवाप्य लोकः॥

\+ \+ \+

धृतराष्ट्रः – वत्से अलं अलं रूदितेन। पश्य,

भर्तुस्ते नूनमत्यन्तमवैधव्यं न रोचते।
येन गाण्डीविबाणानामात्मा लक्षीकृतः स्वयम्॥[२]

दुःशला – अम्ब। कुदो मे एत्ति आणि भाअधेयाणि। जो जणद्दण–सहाअस्स धणंज अस्स विप्पिअं करिअ कोहि णाम जीविस्सदि।

---

१– दूतघटोत्कच, पृ० ४,
२– दूतघटोत्कच ५–७ पृ० ४–६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



धृतराष्ट्रः – सत्यमाह तपस्विनी दुश्शला । कुतः

कृष्णस्याष्टभुजोपधानरचिते योऽङ्के विवृद्धश्चिरं,
यो मत्तस्य हलायुधस्य भवति प्रीत्या द्वितीयो मदः ।
पार्थानां सुरतुल्य विक्रमवतां स्नेहस्य यो भाजनं,
तं हत्वा क इहोपलप्स्यति चिरं स्वैर्दुष्कृतैर्जीवितम् ।।[१]

इस प्रकार कौरवकुल की शोकाकुल अवस्था के चित्रण के साथ दूत–घटोत्कच की कथा के पूर्वार्द्ध की समाप्ति के उपरान्त इसका उत्तरार्ध घटोत्कच तथा ज्येष्ठ - कौरव दुर्योधन की गर्वोक्तियों से पूर्ण वाद–विवाद से आरम्भ होता है। यहीं नाटक के नेता घटोत्कच के दर्शन होते हैं, जिसकी नस–नस में वीररस कूट-कूट कर भरा है। साहित्य-शास्त्र कोविदों ने वीरों के क्रम के अनु–सार वीररस के तीन वर्ग निर्धारित किये हैं–युद्ध वीर, धर्म–वीर एवं दयावीर। यहाँ पहले कृष्ण का भावी अनर्थ की आशंका से कौरवों को समझाने के लिये भेजा हुआ सन्देश दयावीर का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। परन्तु दुर्योधन के उन हितकारी वचनों को न मानने के कारण शत्रु की सभा में प्रदर्शित घटोत्कच की वीरता युद्धवीर की कोटि की है। श्रीकृष्ण का दूत हैडिम्ब किसी भी अवस्था में अवमानना सहन नहीं कर सकता। दुर्योधनादि को पाण्डवों का तिर–स्कार करते देखकर, वह मुट्ठी बाँध कर क्रोध में भरा हुआ युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाता है। यहाँ कवि की लेखनी से क्रोध का स्वाभाविक चित्रांकन बन पड़ा है।

घटोत्कचः – (सरोषम्) किं दूत इति मां प्रधर्षयसि । मा तावद् भोः ! न दूतोऽहम् ।,

अलं वो व्यवसायेन प्रहरध्वं समाहताः ।
ज्याच्छेदाद् दुर्बलो नाहमभिन्युरिह स्थितः ।।
महानेष कैशोरकोऽयं मे मनोरथः

---

१- दूतघटोत्कच पृ० ८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



अपिच –

दष्टौष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः
उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद्गन्तुमिच्छेद्यमालयम् ॥[1]

ऐसे शूर वीर के पहुँचते ही उसके मुख से भगवान् कृष्ण के सन्देश को सुन क्षत्रियों के विनाश–काल को निकट आया देख धृतराष्ट्र दुःखी होते हैं।

घटोत्कचः – पितामह। श्रूयताम्। हा वत्स अभिमन्यो !
हा वत्स कुरुकुल प्रदीप ! हा वत्स यदुकुलप्रवाल ! तव जननीं मातुलं च मामपि परित्यज्य पितामहं द्रष्टुमाशया स्वर्गमभिगतोऽसि। पितामह ! एक–पुत्रविनाशादर्जुनस्य तावदीदृशी खल्ववस्था, का पुनर्भवतो भविष्यति। ततः क्षिप्रमिदानीमात्मबलाधानं कुरूष्व। यथा ते पुत्रशोकसमुत्थितोऽग्निर्न दहेत्प्राणमयं हविरिति।[2]

इस वीर के दर्शन भास के मध्यम–व्यायोगादि अन्य रूपकों में भी होते हैं। यह सर्वत्र राक्षस होता हुआ भी शालीनता, वाक्पटुता, मर्यादा आदि मानवीय गुणों का प्रदर्शन करता ही पाया जाता है। सन्देश कहने से पूर्व वह धृतराष्ट्र को प्रणाम कर पाण्डवों का भी आदरपूर्वक स्मरण करना नहीं भूलता। दुर्योधन द्वारा जैसे अपशब्द से सम्बोधित घटोत्कच कौरवों को राक्षसों से भी निम्न कोटि के व्यक्ति सिद्ध करता हुआ विपक्षियों के प्रति व्यंग्य करता जाता है–

घटोत्कचः – शान्तं शान्तं पापम्। राक्षसेभ्योऽपि भवन्त एवं क्रूरतराः।

कुतः —

न तु जतुगृहे सुप्तान् भ्रातॄन् दहन्ति निशाचराः।
शिरसि न तथा भ्रातुः पत्नीं स्पृशन्ति निशाचराः।
न च सुतवधं संख्ये कर्तुं स्मरन्ति निशाचरा
विकृत – वपुषोऽप्युग्राचारा घृणा न तु वर्जिता ॥[3]

---

१– दूतघटोत्कच ४६–५०, पृ० ४०
२– दूतघटोत्कच – पृ० ३२.
३– दूतघटोत्कच ४७, पृ० ३८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDH



दुर्योधन, शकुनि तथा दुःशासन आदि का चरित्र बहुत कुछ समान–कोटि का है। ये सब क्रूर, अभिमानी तथा पामर के रूप में दर्शकों के सामने आए हैं। ये निहत्थे बालक के वध से प्रसन्न होकर स्वयं अपनी क्षुद्रता का परिचय देते हैं। इसके विपरीत वृद्ध धृतराष्ट्र गृहकलह से बड़े दुःखी हैं।[१] वे एक आदर्श गृहस्थ हैं, अपने बच्चों को आपस में लड़ते कटते देख उनकी आत्मा रो उठती है।

शकुनि – शकुनिरहमभिवादये।
सर्वे – कथमाशीर्वचनं न प्रयुज्यते।
धृतराष्ट्रः – पुत्र। कथमाशीर्वचनमिति।

सौभद्रेनिहते बाले हृदये कृष्णपार्थयोः।
जीविते निरपेक्षाणां कथमाशीः प्रयुज्यते॥[२]

× +

धृतराष्ट्रः – तेन किल वरविदग्धेन रुद्धाः पाण्डवाः
दुर्योधनः – आः, तेन रूद्धाः। बहुभिः खल्वन्यैः।
धृतराष्ट्रः – भोः कष्टम्।

बहूनां समवेतानामेकस्मिन्निर्घृणात्मनाम्।
बाले पुत्रे प्रहर्ता कथं न पतिता भुजाः॥[३]

वह अपने प्रियजनों को आशीर्वचन भी नहीं कह सकते, कारण, अब उनका कोई अच्छा प्रभाव नहीं फल सकता। सौ अनार्यों के जनक के इस सौम्य रूप तथा इनकी गम्भीर आकृति को देख घटोत्कच को आश्चर्य होता है। अपने पौत्र हैडिम्ब को देख कर उनका वात्सल्य उमड़ पड़ता है —

धृतराष्ट्रः – एह्येहि पुत्र।

न ते प्रियं दुःखमिदं ममापि यद् भ्रातृनाशाद्व्यथितस्तवात्मा।
इत्यं च ते नानुगतोऽयमर्थो मत्पुत्रदोषात्कृपणीकृतोऽस्मि॥[४]

---

१– दूतघटोत्कच ३५, पृ० ३०.
२– दूतघटोत्कच १५, पृ० १६.
३– दूतघटोत्कच १७, पृ० १७.
४– दूतघटोत्कच पृ० ३६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



उनके हृदय में अपने पराए की भेद-भावना नहीं है। निन्द्य कर्म करने वाले पुत्रों की वे बारंबार भर्त्सना करते हैं। वे शान्ति के पुजारी हैं। घटोत्कच के उत्तेजित होने पर उसे भी शान्त करते हैं।

धृतराष्ट्रः – पौत्र घटोत्कच। मर्षयतु मर्षयतु भवान्। मद्वचनावगन्ता भव।

गान्धारी तथा कौरव-भगिनी दुःशला का चरित्र कोई विशेष महत्व नहीं रखता। वे आदर्श भारतीय नारियाँ हैं। अपने परिवार के भावी विनाश की आशङ्का से डरी हुई इन स्त्रियों का सर्वत्र करुण क्रन्दन ही सुनाई देता है। इस रूपक में वीर तथा करुण रस का सम्मिश्रण पाया जाता है। एक ओर अभिमन्यु की मृत्यु से चारों ओर शोक के बादल छाए हुए हैं तो दूसरी ओर घटोत्कच तथा दुर्योधनादि के वाक्यों में वीरत्व भरा हुआ है। डॉ. गणपति शास्त्री के वचनों में यह न तो सुखान्त ही है और न दुःखान्त। डॉ. कीथ, वा. गैरोला आदि इसे व्यायोग मानते हैं और पुसालकर महोदय इसे उत्सृष्टिकाङ्क कहते हैं। व्यायोगों की चर्चा करते समय पिछले पृष्ठों में हमने इसे अङ्क ही माना है क्योंकि इसमें दीप्तरसान्वित व्यायोग के लक्षण कम दिखाई पड़ते हैं और बुद्धि प्रपञ्चित प्रख्यातवृत्त करुण रस, वाक्कलह, जयपराजय, स्त्रियों से घिरा रहना इत्यादि उत्सृष्टिकाङ्क के शास्त्रसम्मत सब लक्षण इसमें घटित होते हैं। व्यायोग की तरह वीरता तो इसमें कूट कूट कर भरी है परन्तु स्त्रियों का अभाव नहीं है। ऐसी स्थिति में इसे उत्सृष्टिकांक मानना ही ठीक होगा।

यह एकांकी श्रीकृष्ण के सन्देश के प्रत्युत्तर में दुर्योधन के वाक्यों तथा घटोत्कच द्वारा उद्घृत जनार्दन के मङ्गलमय पश्चिम सन्देश के साथ समाप्त होता है।

दुर्योधन – आः कस्य विज्ञाप्यम्। मद्वचनादेवं स वक्तव्यः।
किं व्यर्थं बहुभाषसे न खलु ते पारुष्यसाध्या वयं
कोपान्नार्हसि किञ्चिदेव वचनं युद्धंयदा दास्यसि।
निर्याम्येष निरन्तरं नृपशतच्छत्रावलीभिर्वृत –
स्तिष्ठ त्वं सहपाण्डवः प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



घटोत्कचः – भो भो राजानः । श्रूयतां जनार्दनस्य पश्चिमः सन्देशः ।
धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षां
यत्काङ्क्षितं मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ ।
जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी
सूर्यांशुभिः सममुपैष्यति वः कृतान्तः ॥[1]

इस प्रकार कवि ने दुःख एवं सुख का सुन्दर समन्वय प्रदर्शित करते हुए यह बतलाया है कि दुःख के बाद सुख आता है। कुकर्मों का फल पापियों को मिल कर रहता है अतः विपत्तियों से सज्जनों को घबराना नहीं चाहिये।

भरत वाक्य के बिना एकाएक इस रूपक की समाप्ति देख कतिपय आलोचक इसे अपूर्ण या आंशिक कृति मानते हैं। भरतवाक्य का अभाव तो भास की मौलिकता है, जो उनकी अन्य रचनाओं--मध्यम व्यायोग और उरु-भङ्ग में भी पाई जाती है। यह बात दूसरी है कि इनमें कुछ मङ्गलकारी वाक्य भरत–वाक्य का काम दे देते हैं। दूतघटोत्कच में कृष्ण का पश्चिम सन्देश ही इसका भरतवाक्य है। केवल इसी बात के कारण दूतघटोत्कच को अपूर्ण कृति समझना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। इसमें घटोत्कच का दौत्यचित्रण करना कवि का ध्येय है, इस कार्य में कोई व्यवधान नहीं पड़ता। इस दृष्टि से यह रूपक पूर्ण सफल है।

प्रायः भास के सब एकांकी महाभारत की किसी न किसी कथा पर आधारित हैं। वे या तो व्यायोग वर्ग के हैं अथवा उत्सृष्टिकाङ्क के। मूर्त नाट्यसाहित्य के आद्य प्रवर्तक महाकवि भास की नाट्यकला एवं उनकी काव्य-गत विशेषताओं पर एक दृष्टि डालने का एक अवसर हमें व्यायोगों की चर्चा करते समय मिल चुका है। यहाँ भी हम इनके ही तीन उत्सृष्टिकाङ्कों का संक्षिप्त किन्तु सूक्ष्म अध्ययन कर चुके हैं। तदनुसार नाट्यकला के सब नाटकीय तत्वों के दर्शन इनके एकाङ्की-साहित्य में होते हैं।

इनके रूपसमुदाय की कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। पुराण, इतिहास, रामायण, महाभारत, आख्यायिका एवं लोक-कथाओं का उपयोग भास ने अपने नाट्य-साहित्य में किया है। संस्कृत रूपक वाङ्मय में किसी

१– दूतघटोत्कच ५१, पृ० ४१. वही ५२, पृ० ४२.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MiL



दूसरे रूपककार ने इतने वृहत्क्षेत्र में संचरण नहीं किया है। इन ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधारों के साथ साथ कवि ने निजी कल्पनाओं की अपूर्वता का भी पर्याप्त प्रदर्शन किया है। प्रतिमा, उरुभङ्ग मध्यम-व्यायोग, दूत-वाक्य, घटोत्कच, कर्णभार आदि इसके पोषक हैं।

विस्तृत क्षेत्र से कथा–वस्तु के संकलन करने के परिणामस्वरूप निसर्गतः पात्रों की संख्या एवं इनके वर्गों में विविधता दृष्टिगत होती है, किन्तु अधिक पात्र होने पर भी वे सब मानव–लोक के जीते जागते प्राणी हैं, चाहे वे देव–योनि के हों अथवा मर्त्य। दर्शक को यह कभी आभास न होगा कि ये काल्पनिक पात्र हैं या कृत्रिम अथवा यथार्थ संसारी। इन सबके चरित्राङ्कन में कवि ने सर्वत्र एक समान उदात्त आदर्श बनाये रक्खा है।

भास के रूपक जिस काल में रचे गये थे उस समय तक नाट्यकला का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। इस कारण कुछ त्रुटियाँ भी इनके रूपकों में आ गई हैं। कहीं कहीं शब्दों का परिमित प्रयोग दुर्बोधता उत्पन्न कर देता है। आकाशभाषितों के प्रयोग से 'निष्क्रम्य प्रविश्य' जैसे द्रुत नाटकीय निर्देशों से तथा असूचित पात्रों की उपस्थिति से दर्शकों के मन में कृत्रिमता का भान अवश्य होता है। यथा "कर्णभार" के प्रारम्भ होते ही कर्ण, शल्य से अर्जुन के समीप ले चलने को कहता है। फिर कुछ काल तक कर्ण द्वारा अपनी शस्त्र-शिक्षा की प्रासंगिक कथा तथा छल से प्राप्त शस्त्र-विद्या की निष्फलता आदि घटनाएं को कह चुकने के उपरान्त रथी एवं सारथि रथारोहण करते हैं। ऐसा ही रङ्गमञ्चीय निर्देश इस नाटक में कम से कम तीन बार किया गया है।

कर्णः... शल्यराज। यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः

यह वाक्य इसी रूपक के पृष्ठ १५ एवं २६ में दोहराया गया है।

कर्णः – अहो नु खलु –

अन्योन्यशस्त्र–विनिपात–निकृत्तगात्र –
योधाश्व – वारणरथेषु महाहवेषु।
क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि
वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले ॥[1]

---

१– कर्णभार ६, पृ० ७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



भोः कष्टम् !
पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नो राधेय इति विश्रुतः ।
युधिष्ठिरादयस्ते मे यवीयाँसस्तु पाण्डवाः ॥
अयं स कालः क्रमलब्धशोभनो गुणप्रकर्षो दिवसोऽयमागतः ।
निरर्थमस्त्रं च मयाहि शिक्षितं पुनश्च मातुर्वचनेन वारितः ॥[1]

यह नाटकीय निर्देश की एक ऐसी त्रुटि है जिससे ठीक पता ही नहीं चल पाता कि कर्ण कब रथ पर चढ़ता है और कब उतरता है। इनके अतिरिक्त अरिष्ट, कालिय कात्यायनी देवी, कृष्ण तथा देवी के आयुधों का भास के नाटकों में मञ्च पर प्रकट होना एवं शाप का मानवीय रूप में आना भी कुछ आलोचकों को अखर सकता है। इनकी सूचनामात्र देने से काम चल सकता था। इतना ही नहीं, दुर्योधन एवं अन्य पात्रों का वध संभवतः कतिपय भावुक समीक्षकों एवं दर्शकों को बुरा लग सकता है, परन्तु उनके नाटकों में ऐसे हृदयद्रावक दृश्यों के बाहुल्य एवं पौनपुन्य को देख ऐसा लगता है कि प्रथितयशस् कवि भास की दृष्टि में पापी, क्रूर एवं खलजनों की मृत्यु को मञ्च पर प्रदर्शित करना बुरा नहीं था, क्योंकि उससे सामाजिकों पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। उत्सृष्टिकाङ्क के लक्षणों पर विचार करते हुए हम देख चुके हैं कि नाट्यमीमांसकों ने भी दुष्टों के वध को दिखलाना हेय नहीं बतलाया है। अतः इस त्रुटि के लिये भास को दोषी ठहराना न्यायसंगत नहीं। इन त्रुटिपूर्ण दृश्यों में भी उदार-हृदय आलोचक आवश्यक परिवर्तनों के उपरान्त इस महाकवि के रूपकों को अभिनेय बना सकते हैं। मद्रास से प्रकाशित होने वाले "दी संस्कृत रङ्ग" नामक वार्षिक पत्र को देखने से विदित होगा कि इन का अभिनय आज किया भी जाता है।

भास के नाटक–चक्र में परिगणित रूपकों की शैली की अपनी विशिष्ट महत्ता है। इनकी रचनाओं में भावाभिव्यञ्जनात्मकता एवं प्रभावोत्पादकता पर्याप्त है। इनके लघु–अलंकार–विहीन वाक्यों में भाव–गाम्भीर्य एव सरसता आदि गुण पाये जाते हैं। इनकी भाषा में प्रसाद–गुण के प्राचुर्य को देख कर विदित होता है कि संस्कृत इस काल में अवश्य ही लोक–भाषा रही होगी – अन्यथा इसमें इतना प्रवाह नहीं हो सकता था।

१– कर्णभार ७–८ ; पृ० ७-८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



भास अपने वर्ण्य विषयों को वड़ी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करते हैं। सांसारिक वातों का कवि को सम्यक् ज्ञान था। वे मानव जीवन तथा प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश भी कुशलता पूर्वक उपस्थित करते हैं।

करिवरकरयूपो बाण – विन्यस्तदर्भो
हतगजचयनोच्चो वैरवह्नि प्रदीप्तः।
ध्वजविततविमानः सिंहनादोच्चमन्त्रः
पतित–पशुमनुष्यः संस्थितो युद्धयज्ञः ॥[1]

और भी – द्वितीयः – इदमपरं पश्येतां भवन्तौ। एते–
गृध्रा मधूकमुकुलोन्नत पिङ्गलाक्षा
दैत्येन्द्र –- कुञ्जरनतांकुशतीक्ष्णतुण्डाः।
भान्त्यम्बरे विततलम्बविकीर्णपक्षा
भासैः प्रवालरचिता इव तालवृन्ताः ॥[2]

इनकी कृतियों के वन वर्णन, मध्याह्न एवं तारुण्य के वर्णन आदि में महाकवि की निपुणता लक्षित होती है। इनकी शैली में प्रसाद, ओज और माधुर्य की "गुणत्रयी" सर्वत्र दिखाई पड़ती है। इनकी शैली का एक गुण मौन-भाषण भी है। अल्प शब्दों के द्वारा अधिकाधिक भाव-व्यञ्जना के अतिरिक्त मौन आचरण से भी अर्थ-बोध कराया गया है। यह विशेषता सस्वर शब्दों के प्रयोग से भी अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है एवं रस तथा भावों की प्रतीति में सहायिका बनी है। अतः इन्हें "मौन आचार्य" कह कर भी वहुत से पण्डितों ने सम्मानित किया है। इनकी शैली का परवर्ती साहित्यकारों पर भी प्रभाव पड़ा है, फिर भी, भास की लेखन-रीति एव भाव-प्रकाशन शैली की अपनी अलग महत्ता है।

वहुत से लोगों ने भास पर बहु-विवाह–समर्थन, ब्राह्मणों की महत्ता का प्रतिपादन, वर्णाश्रमव्यवस्था का गुणगान आदि का दोषारोपण किया है। आदि नाटककार होने के कारण इन पर वैदिक संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। भास के युग पर विचार करते हुए इनकी कृतियों की आलोचना करने पर कवि की दोषहीनता स्वयमेव प्रमाणित हो जाती है।

---

१– उरुभङ्ग ६, पृ० १७.
२– उरुभङ्ग ११, पृ० २९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इसके अतिरिक्त कहीं कहीं भास ने समस्तपद-युक्त दीर्घ-वाक्यों का प्रयोग किया है। कुछ लोगों के अनुसार वह भी उनका एक दोष है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन्होंने वहीं ऐसी शैली अपनाई है जहाँ युद्ध या उत्साह प्रदर्शन का प्रसंग होता है। इस दृष्टि से विचार करके इसे भी उनके गुणों में ही गिन सकते हैं। हाँ आधुनिक युग में इन्हें अभिनेय एवं लोकप्रिय बनाने के लिए संस्कृतानुरागी विद्वान्ह इसकी भाषा को आवश्यकतानुसार सरल बनाने का यत्न कर सकते हैं और कर भी रहे हैं। पुरातन कृतियों को कतिपय त्रुटियों से युक्त होने के कारण त्याज्य समझ लेना उचित नहीं। इन दोषों से तो उनका महत्व और बढ़ जाता है, जिस प्रकार आकाश में चन्द्रमा कलंकधारी कहला कर भी अपनी द्युति से हीन नहीं होता और रात्रि के अन्धकार को दूर कर उसकी शोभा में वृद्धि करता रहता है, उसी प्रकार भास भी संस्कृत नाट्य जगत के शशधर हैं, जिनकी ज्योति सदा विद्वज्जगत् कर शान्ति प्रदान करती रहेगी। इतना ही नहीं महाकवि अश्वघोष और कालिदास से भास किसी भी क्षेत्र में कम नहीं प्रतीत होते। भास के नाटकों में भावों और रचना-विधान की दृष्टि से पर्याप्त सौष्ठव को देखकर श्री सुशीलकुमार दे महाकवि भास को अश्वघोष और कालिदास के बीच की कड़ी मानते हैं।[1]

## वीथी

व्यावहारिक भाषा में वीथी शब्द मार्ग या पंक्ति का पर्यायवाची होता है, किन्तु नाट्यशास्त्र[2] के अनुसार वीथी रूपक का एक भेद है। इसमें एक

---

१– From the dramatic fragments of Asvaghosa it is not unreasonable to assume that between him and Kalidasa a period of cultivation of the dramatic art which we find fully developed in the dramas of Kalidasa has passed.

History of Sanskrit Literature (Vol. I Page 101)De and Das Gupta.

२– वीवी स्यादेकाङ्का तथैकहार्या द्विहार्यावा।
अधमोत्तममध्याभियुंक्ता स्यात्प्रकृतिभिस्त्रिसृभिः
उद्घात्यकावलगितावस्यन्दितनाल्पसत्प्रलापश्च ॥
वाक्केलाथ प्रपञ्चो मृद्वाधिवले छलं त्रिगतम्।
व्याहारो गण्डश्च त्रयोदशाङ्गान्युदाहृतान्यस्याः। नाο शाο अध्याय १८, पृο ४५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MiL



अंक तथा भाणवत् कविकल्पित कथानक होता है। एक या दो पात्र रहते हैं। उत्तम, मध्यम अथवा अधम कोटि का पुरुष इसका नायक होता है। सामान्यतः यह श्रृंगार रस की सूचक नाट्य-रचना होती है।[१] किन्तु विषय-वस्तु के अनुसार इसमें अन्य रसों की झलक भी मिलती है।[२] इसमें केवल मुख और निर्वहण संधियाँ तथा पाँचों अर्थ-प्रकृतियाँ होती हैं। इसे वीथी संज्ञा देने का कारण यह प्रतीत होता है कि इसमें उद्घात्यक से मार्दव तक १३ वीथ्यंग पङ्क्ति-बद्ध होकर आते हैं। अन्य रसों का सम्यक् गुम्फन होने के कारण इसकी तुलना माला से भी की जा सकती है। नाट्यदर्पणकार इसका लक्षण इस प्रकार करते हैं–"वक्रोक्तिमार्गेण गमनाद् वीथीव वीथी।" यह भारती वृत्ति के अंगचतुष्टय में परिगणित वीथी से भिन्न वस्तु है। भरत मुनि के अनुसार इसमें कोई भी रस आ सकता है। वीथी के सम्बन्ध में प्रायः सब आचार्य एक बात पर बल देते हैं कि इसमें तेरह वथ्यगों का नियोजन अनिवार्य रूप से होना चाहिए। सागरनन्दी के कथनानुसार यह रूपक विशेष तीन पात्रों में अभिनीत होता है।[३]

शारदातनय के वीथी के लक्षण को देखने से ज्ञात होता है कि कोहलाचार्य के अनुसार इसमें तेरह लास्यागों का होना आवश्यक नहीं है।[४] रामचन्द्र गुणचन्द्र द्वारानाट्यदर्पण में उद्धृत कोहल की पक्तियों पर ध्यान देने से यह मालूम होता है कि शङ्कुक वीथी के लिए अधमकोटि का नायक वांछनीय नहीं समझते।[५] उनके द्वारा वीथी से हीन नायक का वहिष्कार भाणादि एकांकियों से इसका

---

१- सूचयेद्भूरिश्रृङ्गारं किञ्चिदन्यान्रसान् प्रति।
मुखनिर्वहणे सन्धी अर्थप्रकृतयोऽखिलाः ॥ सा० द०

२- रसः सूच्यस्तुश्रृङ्गारः स्पृशेदपि रसान्तरम्। दशरूपक-तृतीय प्रकाश–६८ ६९.

३- सा च त्रिमिः पात्रैः प्रयोक्तव्या यथा वकुलवीथिका।
उत्तमाधममध्यमनायकभूषितात्र प्रकृतियुता बीजबिन्दुकार्यैरथ।
प्रकृतिभिर्युक्ता सन्धिद्वययुक्ता मुखनिर्वहणयुतानान्तरसभावसहिता अङ्गत्रयोदशका।
उद्घात्यकादीनि वीथ्यङ्गानी त्युच्यन्ते ॥ उदाहरणम्–राधाख्य वीथी–सागरनन्दी
(भरतकोश से)

४- युक्तालास्याङ्गवीथ्यङ्गैः सम्यगुद्घात्यादिमिः ॥
भवेयुर्वा न वेत्यस्यां लास्याङ्गान्याह कोहलः। भा० प्र० अष्टम अधिकार – पृ० २५१.

५- यदाह कोहलः –
शङ्कुकस्त्वधमप्रकृतेर्नायकत्वमनिच्छन् प्रहसनभाणादौ हास्यरसप्रधाने
विटादेर्नायकत्त्वं प्रतिपादयन् कथमुपादेयः स्यादिति ? हिन्दी-नाट्य-दर्पण पृ० २४१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अन्तर बतलाने के लिए ही किया गया होगा, ऐसा आभास होता है। दो पात्रों की उक्ति प्रत्युक्तियों में वैचित्रय के योग से वीथी की विषयवस्तु का विस्तार होता है। यह द्विपात्रीय कथोपकथन आकाश-भाषित पद्धति से एक ही पात्र के द्वारा सम्पन्न होता है। काव्यानुशासन में हेमचन्द्र भरत द्वारा प्रयुक्त एकहार्य और द्विहार्य (एक या द्विपात्रीय अभिनय) के प्रसंग में कहते हैं कि भाण की तरह इसमें उक्ति-प्रत्युक्ति के माध्यम से संवाद की गति बढ़नी चाहिए।

उपर्युक्त आचार्यों के लक्षण—ग्रन्थों में वीथी के सौदाहरण लक्षणों को देख कर प्राचीन भारतीय नाट्यजगत में इस प्रकार के एकांकियों के प्रचलन का अनुमान अवश्य होता है। परन्तु अन्य एकांकीरूपकों की तुलना में वीथी रचनाओं की संख्या अत्यल्प है। अभी तक निम्नांकित वीथी रूपकों के ही नाम ज्ञात हो सके हैं—१. माधवी २. इन्दुलेखा ३. वकुलवीथिका ४. राधा ५. लीलावती और ६. चन्द्रिका। इनमें से भी १८ वीं शताब्दी के दक्षिण भारत के प्रकाण्ड पण्डित रामपाणिवाद की लीलावती तथा चन्द्रिका—ये दो रचनाएँ ही उपलब्ध हो सकीं हैं। श्री दे और दास गुप्ता[१] अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में भास—प्रणीत दूत-वाक्य को भ्रान्तशब्दों में वीथी भी मानते हैं। वस्तुतः दूत-वाक्य में वीथी का एक भी लक्षण घटित नहीं होता। अतः इसे स्पष्ट शब्दों में वीथी न कह कर व्यायोग कहना ही ठीक प्रतीत होता है।

श्री रामपाणिवाद का नामोल्लेख प्रहसन रचना के प्रसंग में मदनकेतु प्रहसन के लेखक के रूप में किया जा चुका है। यहाँ उनकी अन्य रचनाओं की समीक्षा के प्रसंग में कुछ विशद परिचय दिया जा रहा है—

## रामपाणिवाद का परिचयः—

ये नक्षिण भारत के केरल देश वासी महाकवि रामपाणिवाद विष्णु के अनन्य भक्त थे। मलाबार प्रान्त में पाणिवाद अथवा नम्बियार नामक एक

---

१- In the Duta Kavya a Scene from the Udyoga parva is depicted ... It is either a vyayoga or a Vithi.
History of Sanskrit Literature, De and Das Gupta Vol.I Page 723

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



विशेष जाति है। इनका काम चाक्यार अभिनेताओं को वाद्यसंगीत द्वारा अभिनय में सहायता करना होता है। पाणिवाद जाति के लोग मुरज बजाते थे। हमारे विवेच्य लेखक का सम्बन्ध उक्त पाणिवाद परिवार से अवश्य रहा होगा। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पिता से प्राप्त करने के पश्चात् नारायणभट्ट पाद नामक एक विद्वान से आगे भी अध्ययन किया। इनके गुरुदेव "नारायणीय" और "मानमेयोदय" आदि के रचयिता नारायण भट्ट से सर्वथा भिन्न व्यक्ति हैं। इन्होंने अपने गुरु का ग्रन्थों के अन्त में सादर स्मरण किया है। इनका जीवन कटु अनुभवों से भरा था, जिनका उन्होंने बड़े मनोविनोद पूर्ण ढँग से वर्णन किया है। इनकी चन्द्रिका (वीथी) से ज्ञात होता है कि ये वेट्टुनाडु के राजा वीरराज के दरबार में रहे।[1]

रामपाणिवाद राजा वीरमार्तण्डवर्मन् के भी आश्रित कवि बन कर रहे थे। ये राजा आधुनिक त्रावनकोर के संस्थापक माने जाते हैं। इन्होंने १८ वीं शताब्दी में चेम्पकशेरदी पर विजय प्राप्त की थी। समय समय पर आश्रयदाताओं के बदलते रहने पर भी रामपाणिवाद की साहित्यसेवा के मार्ग में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आ सका। अन्तिम आश्रयदाता राजा वीरमार्तण्डवर्मन् की छत्रछाया में इन्होंने "सीता-राघवम्" नाटक लिखा। संस्कृत के अतिरिक्त मलयालम और प्राकृत भाषा में भी इनकी रचनाएँ मिलती हैं। "कंस वहो" तथा 'उसरणिरुद्ध' खण्ड काव्य के रूप इनकी दो प्राकृत रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, जिन पर कवि राजशेखर की प्राकृत-रचना 'कर्पूरमञ्जरी' का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। संस्कृत में काव्य एवं नाट्य रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने वररुचि के 'प्राकृतप्रकाश' नामक ग्रन्थ पर टीका लिख कर प्राकृत-व्याकरण पर भी अपना पूर्ण अधिकार सिद्ध किया है।

इनके मदनकेतु चरित, जिसकी चर्चा प्रहसनों के अध्याय में हो चुकी है प्रहसन की प्रस्तावना तथा लीलावती के आमुख से जो सूत्रधार व नटी के वार्तालाप के रूप में प्रस्तुत है, इतना स्पष्ट हो जाता है कि ये दक्षिण के मङ्गलग्राम[2] के निवासी थे। इसी से यह भी पता चलता है कि इनके मामा का नाम

---

१- चन्द्रिका-पृष्ठ १.

२- सूत्रधारः- मारिष। अपिशृणोषि मंगलग्रामवास्तव्येन रामपाणिवादेन विरचितं मदनकेतुचरितं नाम प्रहसनमस्मद्वशे वर्तत इति।-मदनकेतुप्रहसन.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF



"राघवपाणिघ" था।[1] पाणिघ भी वादक होते हैं। नान्दीपाठ के अनन्तर सूत्रधार के वाक्यों से यह भी प्रमाणित होता है कि रामपाणिवाद विद्याविलासी राजा देवनारायण की सभा के माने हुए विद्वान् थे। राजाज्ञा से ही इन्होंने लीलावती वीथी का[2] अभिनय करवाया था। इसकी कतिपय आमुखस्थ पङ्क्तियों से कवि का पाण्डित्य एवं अपने आश्रयदाता[3] के प्रति आदर भाव भी प्रकट होता है। इसका अभिनय काल पावस मालूम होता है।[4]

वीथी के लक्षणपरक विभिन्न मतों की चर्चा प्रारम्भ में ही हो चुकी है। नाट्यकार रामपाणिवाद ने स्वयं भी चन्द्रिका में इसके लक्षण किये हैं। तदनुसार यह भाण के समान शृंगार एवं कैशिकी वृत्ति प्रधान एकाङ्की होता है। इनकी 'लीलावती वीथी' में ये सब लक्षण घटित होते हैं।

## लीलावती

'लीलावती' में कर्नाटिक नरेश की एक सुन्दरी कन्या लीलावती की कथा वर्णित है। किसी परपुरुष द्वारा अपहृत हो जाने की आशंका से राजा

---

१- शृयताम्। अस्ति मंगलग्रामवास्तव्य-राघवपाणिघस्य भागिनेयो रामो नाम पाणिवाद:
लीलावती- पृ० २
...मंगलग्रामवास्तव्येन रामपाणिवादेन विरचिताचन्द्रिकानाम वीथीमभिनेतुमभिलषाम: ॥
चंद्रिका पृ० १

२- आज्ञापितोऽस्मि निखिलशास्त्र – पुराणनाटकप्रपञ्चसततपरिशीलन विशदान्तरात्मनो नित्यसन्तिरधम्वरघुनीनाथ – परिचरणपरायणस्य महाराजदेवनारायणस्य पादपद्मोपजीविनाव महीसुरसमाजेन : लीलावती पृ० १

३- नित्यं नृत्यति यस्यनाम रसानारङ्गे स्वयं भारती
चित्ते यस्य चकासते सुरघुनीनाथो रथाङ्गायुधः।
यं भूयो बहुमन्यते नरपति: श्री देवनारायण:
सोऽयं मे हृदये चकास्तु सततं भूदेव-चूडामणि: ॥ लीलावती ५, पृ० ३

— — —

चतर्मुखाम्भोजचतुष्टयविहारिणी।
कविलोकाश्रिते! देवि। सरस्वति। नमोऽस्तुते ॥ लीलावती ४, पृ० ३

४- ...इति। तदलभिदानीं कालपरिहाणेन।
अमुमेव प्रावृट्कालमधिकृत्य गीयतां तावत्। अत्रहि -लीलावती पृ० ३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



उसे कुन्तलराज वीरपाल की रानी कलावती के संरक्षण में रख देता है किन्तु राजा वीरपाल उस कन्या के लावण्य को देखकर काम-विह्वल हो जाता है। फलत: वीरपाल एवं लीलावती के बीच प्रणयलीलाएँ होने लगती हैं। लीलावती के राजा के नाम भेजे गये प्रेम-पत्र के रानी कलावती की परिचारिका केलिमाला के हाथ पड़ जाने से यह रहस्य रानी को मालूम हो जाता है। इन्हें इस प्रकार प्रेम में रत देख रानी के मन में नारीसुलभ ईर्ष्या जाग उठती है। इसी समय विदूषक सिद्धिवती नामक योगिनी की सहायता से रानी को साँप से डँसवा कर स्वयं ही उसे बचा भी लेता है। योग—बल के प्रभाव से उत्पन्न आकाशवाणी के अनुसार महारानी वीरपाल एवं लीलावती के विवाह का प्रबन्ध करती है। और इन दोनों प्राणियों का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न होता है। संस्कार के पहले पूजनार्थ मन्दिर की ओर जाती हुई लीलावती को ताम्रराक्षस हर ले जाता है। परिणामस्वरूप वीरपाल का उससे युद्ध होता है। इस वीथी में लीलावती को कुन्तलराज वीरपाल की रानी के पास न्यास के रूप में रखने का प्रसंग भास कवि के प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्त नामक रूपकों की याद दिलाता है। रामपाणिवाद ने इसकी प्रेरणा यहीं से ले ली होगी। फिर यह छोटी-सी सरल-कथा कवि की लेखनी के चमत्कार से चमत्कृत हो उठी है।

## रामपाणिवाद और भास

यौगन्धरायण:— मुक्तोज्झित एष विषयोऽत्रभवत्या। नात्र चिन्ता कार्या। कुत:

पूर्वं त्वयात्यभिमतं गतमेवमासीच्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तु:।
कालक्रमेण जगत: परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्ति:॥[1]

+ + + + + +

यौगन्धरायण : — (आत्मगतम्) हन्त भो:। अर्धमवसितं भारस्य। यथा मन्त्रिभि: समर्थितं यथा परिणमति। तत: प्रतिष्ठिते स्वामिति तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति। कुत:—

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री दृष्टाविपत्तिरथ यै: प्रथमं प्रदिष्टा।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधि: सुपरीक्षतानि॥[2]

---

१— स्वप्नवासवदत्त अङ्क १, ४

२— स्वप्नवासवदत्त अङ्क १-११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



तुलना कीजिये --

वत्से कलावति ! सरीसृपदूषितात्वमद्याहितुण्डिकभिषेरा मयैव गुप्ता ।
तत्पारितोषिकमतो वितश्रुतं मे येनायमृद्धिमुपयास्यति वीरपालः ॥[१]

इसके आमुख के पश्चात् विष्कम्भक के रूप में वैहासिक नामक विदूषक एवं केलिमाला का सुन्दर वार्तालाप इस रूपक में घटने वाली घटनाओं की सूचना देता है ।[२] संस्कृत-नाट्य परम्परा को कवि ने यहाँ भी अपनाया है। वस्तुतः प्रस्तुत रूपक में केवल वीरपाल और वैहासिक नामक दो पात्र ही मञ्च पर प्रकट होते हैं । भाणों की तरह इसमें भी अन्य पात्रों की बातें आकाश-भाषित के रूप में हुई हैं । अपने परोक्ष में सर्पदंश से मूर्च्छित हुई रानी को राजा द्वारा अकस्मात् देखे जाने के प्रसंग में मुख एवं निर्वहण नामक सन्धिद्वय का सम्यक् निर्वाह हुआ है ।

(पुनर्नेपथ्ये)

हा हा हताः स्मः ।

सूत्कारभीषणमुखः पवनाशनोऽयं देवीमुपेत्य चरणे रभसाददांक्षीत् ।
एषा निपत्य भुवि विश्लथकेशपाशा मूर्च्छामुपैति शनकैर्मुकुलीकृताक्षी ॥

सर्प-दंशन की घटना इनके मदनकेतु नामक प्रहसन में भी घटी है ।[३] लीलावती वीथी में इसकी पुनरावृत्ति से कवि पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र[४] हर्ष की प्रियदर्शिका[५] तथा बोधायन कवि के भगवदज्जुकीयम् प्रहसन[६] आदि पूर्ववर्ती नाट्यकारों की कृतियों का प्रभाव भासित होता है ।

---

१- लीलावती ५१-पृ० २६

२- वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथाशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
शुद्धःस्यात् स तु संकीर्णो नीच-मध्यमकल्पितः । सा० द०

३- मदनकेतु चरित-६८, पृ० ३८

४- मालविकाग्निमित्र, चतुर्थ अंक

५- प्रियदर्शिका, अंक पृ० ५३

६- भगवदज्जुकीयम् (देखिये प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में प्रहसनों की चर्चा. पृ० १६४-६५)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



उसे कुन्तलराज वीरपाल की रानी कलावती के संरक्षण में रख देता है किन्तु राजा वीरपाल उस कन्या के लावण्य को देखकर काम-विह्वल हो जाता है। फलतः वीर-पाल एवं लीलावती के बीच प्रणयलीलाएँ होने लगती हैं। लीलावती के राजा के नाम भेजे गये प्रेम-पत्र के रानी कलावती की परिचारिका केलिमाला के हाथ पड़ जाने से वह रहस्य रानी को मालूम हो जाता है। इन्हें इस प्रकार प्रेम में रत देख रानी के मन में नारीसुलभ ईर्ष्या जाग उठती है। इसी समय विदू-षक सिद्धिवती नामक योगिनी की सहायता से रानी को साँप से डँसवा कर स्वयं ही उसे बचा भी लेता है। योग–वल के प्रभाव से उत्पन्न आकाशवाणी के अनुसार महारानी वीरपाल एवं लीलावती के विवाह का प्रवन्ध करती है। और इन दोनों प्राणियों का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न होता है। संस्कार के पहले पूजनार्थ मन्दिर की ओर जाती हुई लीलावती को ताम्रराक्षस हर ले जाता है। परिणामस्वरूप वीरपाल का उससे युद्ध होता है। इस वीथी में लीलावती को कुन्तलराज वीरपाल की रानी के पास न्यास के रूप में रखने का प्रसंग भास कवि के प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्त नामक रूपकों की याद दिलाता है। रामपाणिवाद ने इसकी प्रेरणा यहीं से ले ली होगी। फिर यह छोटी-सी सरल-कथा कवि की लेखनी के चमत्कार से चमत्कृत हो उठी है।

## रामपाणिवाद और भास

यौगन्धरायणः– मुक्तोज्झित एष विषयोऽत्रभवत्या। नात्र चिन्ता कार्या। कुतः

पूर्वं त्वयात्यभिमतं गतमेवमासीच्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेनभर्तुः।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः॥[1]

+ + + + + +

यौगन्धरायण : – (आत्मगतम्) हन्त भोः। अर्धमवसितं भारस्य। यथा मन्त्रिभिः समर्थितं यथा परिणमति। ततः प्रतिष्ठिते स्वामिति तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति। कुतः–

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री दृष्टाविपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षतानि॥[2]

---

१– स्वप्नवासवदत्त अङ्क १, ४
२– स्वप्नवासवदत्त अङ्क १-११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



तुलना कीजिये --

वत्से कलावति ! सरीसृपदूषितात्वमद्याहितुण्डिकभिषेण मयैव गुप्ता ।
तत्पारितोषिकमतो वितश्रुतं मे येनायमृद्धिमुपयास्यति वीरपालः ॥[1]

इसके आमुख के पश्चात् विष्कम्भक के रूप में वैहासिक नामक विदूषक एवं केलिमाला का सुन्दर वार्तालाप इस रूपक में घटने वाली घटनाओं की सूचना देता है ।[2] संस्कृत-नाट्य परम्परा को कवि ने यहाँ भी अपनाया है। वस्तुतः प्रस्तुत रूपक में केवल वीरपाल और वैहासिक नामक दो पात्र ही मञ्च पर प्रकट होते हैं । भाणों की तरह इसमें भी अन्य पात्रों की बातें आकाश-भाषित के रूप में हुई हैं । अपने परोक्ष में सर्पदंश से मूर्च्छित हुई रानी को राजा द्वारा अकस्मात् देखे जाने के प्रसंग में मुख एवं निर्वहण नामक सन्धिद्वय का सम्यक् निर्वाह हुआ है ।

(पुनर्नेपथ्ये)

हा हा हताः स्मः ।

सूत्कारभीषणमुखः पवनाशनोऽयं देवीमुपेत्य चरणे रभसाददांक्षीत् ।
एषा निपत्य भुवि विश्लथकेशपाशा मूर्च्छामुपैति शनकैर्मुकुलीकृताक्षी ॥

सर्प-दंशन की घटना इनके मदनकेतु नामक प्रहसन में भी घटी है ।[3] लीलावती वीथी में इसकी पुनरावृत्ति से कवि पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र[4] हर्ष की प्रियदर्शिका[5] तथा बोधायन कवि के भगवद्ज्जुकीयम् प्रहसन[6] आदि पूर्ववर्ती नाट्यकारों की कृतियों का प्रभाव भासित होता है ।

---

१- लीलावती ५१-पृ० २६

२- वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथाशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
शुद्धःस्यात् स तु संकीर्णो नीच-मध्यमकल्पितः । सा० द०

३- मदनकेतु चरित-६८, पृ० ३८

४- मालविकाग्निमित्र, चतुर्थ अंक

५- प्रियदर्शिका, अंक पृ० ५३

६- भगवदज्जुकीयम् (देखिये प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में प्रहसनों की चर्चा. पृ० १६४-६५ )

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



(नेपथ्ये)

कष्टं कष्टं केलिकान्तारदेशे कुर्वाणासौ स्वेन पुष्पावचायम् ।
दिष्टादिष्टा दुष्टसर्पेण दष्टा दिष्टान्तं च प्रापितानङ्गलेखा ।

तुलना कीजिये–

राजा – मा कातरो भूः । अविषोऽपि कदाचिद्दंशो भवेत् ।
विदूषकः – कहं ण भाइस्सं सिमसिमाअन्ति मे अङ्गाइं । ( इति विषवेगं रूपयति)

विदूषकः – भो वअस्स कहं तुमं मूढो विअ चिट्ठसि ण एसो विसादस्स कालो । विसमाक्खु गई विसस्स ता दंसेहि अपभणो विज्ञापहावं

इष्टसिद्ध्यर्थ यौगिकशक्तियों के प्रयोग के विषय में भी रामपाणिवाद बोधायन कवि से प्रभावित प्रतीत होते हैं। मदनकेतु में शिवदास इस शक्ति का प्रयोग करते दिखाई देते हैं और लीलावती में किसी सिद्धमती योगिनी द्वारा अभीष्ट की पूर्ति करवाई गई है ।

शृंगार लीलावती वीथी का अङ्गीरस है । दशरूपककार के अनुसार 'स्पृशेदपिरसान्तरम्' के पुष्ट्यर्थ चतुरलेखक ने शृंगार के साथ सिद्धिमती के योग-बल की कल्पना करके इसमें अद्भुत रस को भी स्थान दिया है। यदि सर्पदंशन के प्रसङ्ग से भयानक रस का संचार होता है तो विदूषक की बातों से हास्यरस फूट पड़ता है।[1] कर्नाटक के ताम्रराक्षस से वीरपाल का युद्ध दर्शकों के हृदय में वीररस का संचार करता है—

(पुनर्नेपथ्ये)

कर्णाटि दृढमत्सरेण मनसा जागर्ति यः प्रत्यहं
मित्रं तस्य वली कलिङ्ग–नृपतेस्ताम्राक्ष–नामासुरः ।
मायाकर्मणि लम्पटः प्रियसखीमात्रानुयात्रामसौ
कष्टं कर्षति कैशिके गतघृणो लीलावतीं लीलया ।।

— — —

१– लीलावती ५०, पृ० २५; लीलावती पृ० २६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



(नेपथ्ये)

तिष्ठ तिष्ठ पापासुर। तिष्ठ।
सुस्निग्धे पेलवाली करज–विरचिते केशपाशे कृशाङ्ग्या–
स्तत्रोदग्रं कराग्र सपदि निदघतः कालदण्डोपमानम्।
कूरंक्रेङ्कारतारे धनुषि कृतपदस्सायको मामकीन–
श्चण्डस्ते कण्ठपीठीं मृदुतरकदलीकाण्डलावं लुनातु॥

विदूषकः– दिट्ठिआ कुविदो मे पिअवअस्सो। किंदु माआअं वि किं पवट्टेइ से पआवाणलो।

(दिष्ट्या कुपितो मे प्रियवयस्यः। किन्तु मायायामपि किं प्रवर्ततेऽस्य प्रतापानलः।)[१]

विदूषक के इन वाक्यों को पढ़ कर शाकुन्तल के षष्ठ अङ्क में शकुन्तला के वियोग में शोकाकुल दुष्यन्त के क्रोध को उद्दीप्त करने के प्रयत्न में रत मातलि के वचनों का स्मरण हो आता है।

मातलिः–

किञ्चिन्निमित्तादपि मनः संतापादायुष्मान्मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात्कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि।... ...

कवि ने इस रूपक में श्रृंगार रस के सर्वथा अनुकूल सरल एवं सरस शैली अपनाई है जिसे शास्त्रीय भाषा में वैदर्भी रीति कह सकते हैं। इसमें दीर्घसमस्तपदयुक्त वाक्यों के अभाव से भावाभिव्यक्ति भी स्पष्ट है। ऐसा लगता है, जैसे भाषा कवि के वश में है।

वर्षा ऋतु में प्रकृति का मनोहर चित्रण कवि की अलौकिक वर्णना-शक्ति की परिचायक है। इसमें विरहविदग्ध प्रेमियों की मनोदशा का वर्णन भी बड़ा मार्मिक है। भीषण गर्मी के बाद प्रथम वृष्टि की फुहारों से मस्त होकर मयूर नर्तन करते हैं यथा–

---

१– लीलावती ५५-५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



गम्भीर नीरदमृदङ्गरवाभिरामं
भृङ्गाङ्गनामधुरगीत - कलासनाथम् ।
विद्युत्प्रदीपकलिते विपिनान्तरङ्गे
नृत्तोत्सवं वितनुते ननु नीलकन्ठः ॥[1]

"मेघ रूपी मृदङ्ग के गम्भीर नाद और भौरों के गुञ्जन एवं झींगुरों की झङ्कार रूपी संगीतकला से युक्त, चपला के प्रकाश से प्रकाशित वन प्रान्त में नीलकण्ठ नर्तन करने को तैयार है। यहाँ नीलकण्ठ का मोर के अर्थ में प्रयोग हुआ है। वर्षा ऋतु जहाँ हरे भरे पेड़ों, लताओं और भौरों को हर्षोन्मत्त कर देने वाली होती है, वहाँ विरहाकुल प्रेमियों की विरहाग्नि को उद्दीप्त करने वाली भी होती है।

विदूषकः–......( विमृश्य )

विरहदहणवैअढज्जभाणो
कुसुमसरासणबाणदूअभाणो
कह णु कि (र ? ल) सहेज्ज मे वअस्सो
विरहिविसूरअपाउसावठेवम् ॥ [2]

( ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा )

वाणान् संहर पञ्चबाण। मधुपज्यावल्लरीसंहितान्
मालत्याः प्रसवैश्च केवलममी दूयाभहे यद्वयम् ॥

कवि की कृतियों में महाकवि कालिदास की कृतियों का छायानुहरण भी देखने में आता है।

सूत्रधारः — (सहर्षम्)

सुन्दरि। तव गीतिरियं हरति तथा मानसानि साधाकनाम्।
आस्थानमणिस्तम्भैर्यथा न तेषां भिदा भाति ॥ [3]

---

१– लीलावती ६, पृ ३

२- लीलावती १६, पृ० ६

३– लीलावती, पृ० ३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



तुलना कीजिये—

सूत्रधार—

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसमं हृतः ।
एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ॥[१]

पावस-चित्रण कालिदासकृत मेघदूत में चित्रित वर्षा-वर्णन से मिलता जुलता है ।

एते नूतनकेतकीदलगलन्माध्वीकधाराकिराः
स्निग्धेन्दीवरनीलनीरदघटासम्पर्कशीतोत्किराः ।
मन्दान्दोलितहूण-वारतरूणी वेणीकलापस्रजः
पौरस्त्या मरूतो न कस्य रभसादुत्कण्ठयेयुर्मनः ॥ [२]

तुलना कीजिये—

पाण्डुच्छायोपवनकृतयः कैतकैः सूचिभिन्नैः [३]

— — —

वेणीभूतप्रतनु – सलिलासावतीतस्य सिन्धुः [४]

वर्षाकालीन प्राकृतिक शोभा विरहिणी लीलावती को रुचिकर नहीं प्रतीत होती। स्नान, भोजन एवं शयन और सखियों के साथ मनोहारी आलापादि कृत्यों के प्रति उसकी उदासीनता इन पंक्तियों से प्रत्यक्ष है ।

न स्नाने न च भोजने न शयने धत्ते मनागादरं
नादत्ते करणीयवस्तु घटनायत्तं सखीनां वचः ।
पर्यङ्कं विरहय्य पल्लवमयीं शय्यां सदासेवते
कष्टं सम्प्रति वीरपाल विरहाल्लीलावती दूयते ॥ [५]

---

१- अभिज्ञान शाकुन्तल अंक-१, पृ० २४
२- लीलावती, १८ पृ० १०
३- मेघदूत (पूर्वमेघ) २३ पृ० १४
४- पूर्वमेघ; २९ पृ० १८
५- लीलावती-११, पृ० ६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MiL



इस प्रकार भास कालिदासादि प्राचीन कवियों का अनुसरण करते हुए कविसम्प्रदाय में प्रसिद्ध "न विना विप्रलम्भेन श्रृंगारो पुष्टिमश्नुते" इस उक्ति की सार्थकता सिद्ध करते हुए कवि ने करुण विप्रलम्भ श्रृंगार का भी हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

इसके अतिरिक्त इसके संवादों में कहीं-कहीं बहुत प्रभावोत्पादक पंक्तियाँ मिलती हैं जो लोक-व्यवहार में शिक्षाप्रद सूक्तियों के रूप में ग्राह्य हैं-

(क) को सिप्पिमज्जण भएण मुत्तावलिं उज्झदि (कः शुक्तिभञ्जनभयेन मुक्तावलीमुज्झति।)
(ख) को दुग्धस्नानसमये आरनालं चिन्तयति।
(ग) कुतः पङ्कजिनीं विना राजहंसस्य निर्वृतिः।
(घ) आमन्त्रितः को मिष्टभोजनं परित्यजति।

एकांकी नाट्य-साहित्य में वीथी रूपक को अधिकाधिक प्रेरणा देने की इच्छा से रामपाणिवाद ने चंद्रिका नामक वीथी की रचना की जिसमें वीथीरूपक रचना के लक्षणों का निर्धारण भी वे स्वयं करते हैं।[1] इसमें मणिरथ नामक किसी विद्याधर की कन्या चन्द्रिका और अङ्गराजचन्द्रसेन की प्रेम-कथा कथित है। इस रूपक में राजा और विदूषक ये पात्रद्वय ही मंच पर आदि से अन्त तक रहते हैं, अन्य पात्रों के बीच वार्तालाप आकाशभाषित[2] द्वारा हुए हैं। नान्दीपाठ के अनन्तर प्रस्तावना में सूत्रधार के एकांकी अभिनय[3] को प्रदर्शित कर कवि ने भाणों से इसका निकट

---

१- पात्रद्वयप्रयोज्या भाणवदेकाङ्किका द्विसन्धिश्च
आकाशभाषितवती कृत्रिममितिवृत्तमाश्रितावीथी। चंद्रिका पृ० २.

२- (आकाशे)

मणिरथस्य सखा मणिशेखरो,
ननु भणाम्यहमङ्गमहीपते।
विरमवाण विमोचनतो रिपु,
स्स खलु वाणपथादतिवर्तते॥ चंद्रिका-पृ० १०

३- (नाद्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)
सूत्रधारः-(परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)।
मारिष! इतस्तावत्। किं ब्रवीषि प्रयोजनन्तावदा-कर्णयितुमिच्छामीति। तर्हिश्रूयताम्-अद्यखलु प्रकाशराज्य-प्रकाशभूतस्य प्रताप-विवेक-विद्याविशेष-शालिनः श्री वीरराज-महाराजस्य आज्ञया शूलाग्रकीलितकीनाशस्य भगवतः श्री परमेश्वरस्य कृष्ण-चर्तुदशी-महोत्सव-प्रसङ्गेन सङ्गतायामस्यां महाब्राह्मण परिषदि...
किं ब्रवीषि...
हन्त भोः मारिष। तवसाहाद्यात्प्रार्थितमर्थं प्रसाधयिष्यामि
विघ्नेश्वरप्रसादात् अङ्गनृपश्चन्द्रसेन इव। चंद्रिका-पृ० १-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



सम्बन्ध दिखलाने का यत्न किया है और भरत मुनि द्वारा निर्दिष्ट एकहार्य और द्विहार्य अभिनय का इस वीथी–विशेष में एक साथ निर्वाह किया है। तदुपरान्त मधुरभोजनप्रिय विदूषक माण्डव्य एवं किसी कल्पित प्रेमिका के विरह में उन्मत्तराजाचन्द्रसेन मंच पर प्रविष्ट होते हैं।

( ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च )

राजा— (सानुस्मरणं निःश्वस्य)
तद्वक्त्रं शरदिन्दुसुन्दरतरं नीलाब्जपत्रायते
ते नेत्रे कुरुविन्दकन्दलरुचा कम्रस्स विम्वाधरः।
स्तोकोद्भिन्नसुवर्णपद्ममुकुलप्रस्पर्द्धिनौ तौ स्तनौ
स्थूला सा जघनस्थली च किमितो रम्यं पदार्थान्तरम् ॥

विदूषकः– (स्वगतम्) अहो नु खु एसो अदिगम्भीर
सहावो वि अत्तभवं अंजसुंजोद आदो आरहिअ
अंणारिसो विअभीसइ। जदोप आ अरकिलतौवि
असुं घंणलवि लं उवं कंतो। होदु। पुंछि संदाव।

— — —

राजा— वयस्य माण्डव्य—
काम्यहं कमलपत्रविशालनेत्रां,
नेत्राभिराम-रमणीय-मुखेन्दुबिम्वाम्।
बिम्वाधरामधिरतात्सरसाङ्गलक्ष्म्या
लक्ष्म्यास्सनाभिरिव लक्षितवान्कुमारीम् ॥

किसी गगनचारिणी शक्ति द्वारा निपातित मुद्रिका और प्रणयपत्रिका को देख कर राजा का प्रेमोन्माद बढ़ता ही जाता है।

विदूषक—भो सा खु कुमारी कीणामहे किं कुल संभवा किं।
मादुपिदु आर्काहि वाणि किं खिदति किं जाणादि अत्तभवं।

राजा—सखे। नैतदहं जानामि। किन्त्वनन्तराति क्रान्तायामेव
रजन्यामेवमवलोकितेत्येतावदवगच्छामि।

— — —

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



पश्य—

सव्रीडैस्सानुरागैरविरलपुलकस्वेदकम्पालसाङ्गी ।
शृङ्गारार्द्रैरपाङ्गै रनुपधिहृदयाकूतमावेदयन्ती ।
किञ्चिन्नग्राननेन्दुर्मणिकनकमयीङ्गुलीमुद्रिकांक स्वा-
मङ्गुल्यामर्पयित्वा मम किमपि पुरस्तस्थुषी सा तिरोभूत् ।।

नायिका के नाम का पता लगभग नाटक के अन्त में लग पाता है । अतः दर्शकों में औत्सुक्य बना रहता है । उद्यानस्थ प्रेमान्ध राजा को मनोहारिणी प्रकृति भी दुःखद प्रतीत हो रही है–

(उभौ परिक्रम्योद्यानप्रवेशं रूपयतः)

राजा–(समन्तादवलोक्य) अहोनुखलु वसन्तारम्भरमणीयता वनोद्देशस्य ।

सर्वाङ्गीण-प्रकटमुकुलश्रेणिमाणिक्कभूषा-
स्सान्द्रस्निग्धारुण-किसलयस्पष्ट पट्टोत्तरीयाः ।
त्वङ्गद्भृङ्गप्रकरचिकुर-भ्राजमानोत्तमाङ्ग ।
बालाशोकाविटपरिषदां बिभ्रमं बिभ्रतेऽमी। ।

+ + +

(पुनस्सन्तापनाटितकेन)

मलयपवनो मर्मावेधं करोति सरोजिनी सरसमकरन्दामोदोद्विरेफ-पुरोगमः ।
ममखलुसखे सन्तापाय प्रकम्पितचन्दनी-द्रुमवलदहिश्वासोद्गीर्णैर्वृतो विषवह्निभिः।।

इस एकाङ्की का आरम्भ ही विप्रलम्भ शृंगार से होता है। अतः इसमें शृंगार के साथ करुण रस का भी पूर्ण योग हुआ है । कहीं कहीं विदूषक की वाक्यावलि अवश्य ही हास्य की धारा बहाती है ।—

विदूषक — — अंतेण सुंज किरणवीरमंठ पिट्ठेण उट्ठिअहणार्थं कादुअ मोदओ मोदओत्ति मंतेण संभावंदणं अणुंठीअदि ।

शोकमग्न राजा के सामने नेपथ्य से विद्याधर द्वारा रहस्योद्घाटन होने पर खिन्न राजा तो प्रफुल्लित होते ही हैं और दर्शकों का कोतुहल भी दूर होता है । निस्सन्देह यह दृश्य रसिकों के समक्ष अद्भुत रस का आभास प्रस्तुत करता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



(नेपथ्ये)

ब्रूते......कमपि मणिरथ्यो नाम विद्याधरस्त्वाम् ।
मत्पुत्री त्वद्गुणौघैरपहृतहृदया चन्द्रिका नाम कन्या
त्वत्पत्नी कल्पितेऽयं मनुजवर मया त्वामनुप्रेषितेति ॥

अपिच–निशि दर्शितं किलनिजं वपुस्तया भवतेऽर्पितश्च निजमङ्गुलीयकम् ।पुरतश्च–
ते स्वमदनार्तिबोधिका परिपातिता किल विलासपत्रिका ।[१]

इसी प्रसंग में किसी राक्षस द्वारा चन्द्रिका के अपहृत होने की बात को सुनकर नायक के हृदय में दीप्तरस का उद्रेक भी होता है ।

राजा– कोऽत्र भोः ? धनुस्तावत् ।
– – –
राजा– धनुरादाय शरं सन्धत्ते

इस प्रकार यहाँ भी कवि ने धनञ्जय के अनुसार 'स्पृशेदरसान्तरम्' का निर्वाह किया है । अङ्गुलीयक को देखकर राजा के मुख से निकले उद्गारों को पढ़ कर अभिज्ञान शाकुन्तल के छठे अङ्क में इसी प्रसङ्ग से मिलते-जुलते अवसर पर राजा दुष्यन्त द्वारा किये गये प्रलाप का स्मरण हो आता है ।

राजा– (समाश्वस्याङ्गुलीयकं प्रति ।)
मत्पाणौ मणिमुद्रिके ननु धनुर्ज्याकृष्टिभिर्निनष्ठुरे
संसक्तासि शिरीषकोमलतमान्तस्था विहायाङ्गुलिम् ।
आस्तामेतदितः परं पुनरपि स्वैरं समेष्यामि ता–
मित्याशापि तवाद्य हन्त विधिना वामेन मोघीकृता ॥[२]

तुलना कीजिए–

राजा- (अङ्गुलीयकं विलोक्य) मुद्रिके
कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं
करं विहायासि निमग्नमम्भसि ?
अचेतनं नाम गुणं न लक्षये–
न्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ॥[३]

---

१- चन्द्रिका पृ० ९.
२– चन्द्रिका पृ० १०.
३ अभिज्ञानशाकुन्तल अंक ६–१३, पृ० २२४ (एम० आर० काले द्वारा सम्पादित)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



'चन्द्रिका' के नान्दीश्लोक में मेघदूत का भावानुहरण भी उपलब्ध होता है।

> चूडाचन्द्रो नरीनर्ति यामेवानुहरन्निव ।
> सा वः सन्ध्यामुखे शम्भोस्त्रायतां ताण्डवक्रिया ।।[१]

तुलना कीजिए—

> नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
> शान्तोद्वेग-स्तिमित-नयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ।।[२]

इसका अन्त भी चन्द्रिका एवं चन्द्रसेन के विवाह संस्कार के बाद सुन्दर सन्ध्या के वर्णन के साथ होता है जो कवि के सूक्ष्म प्राकृतिक निरीक्षण का परिचायक हैं। इन पङ्क्तियों में लालवस्त्र का अवगुण्ठन डाले सन्ध्या-वधू की चित्ताकर्षक छवि अङ्कित है—

> (समन्तादवलोक्य) सखे । परिणतश्चायन्दिवसः ।
> तथाहि
> याताऽर्कमरीचिपावकमुखे तारालि-लाजाञ्जलि-
> र्यत्रैष प्रविकीर्यते पुनरसावन्यून—रागोदया ।
> रक्तांभोद पटावकुण्ठनवती संप्राप्य सन्ध्यावधू
> स्वैरं यत्र च वासरं वरयते कालोऽयमालोक्यताम् ।।

भाणों की कोटि के रूपक होने पर भी कवि की इन वीथियों में शृङ्गार का चित्रण अश्लीलता-दोष से मुक्त है।

इस प्रकार इन दो वीथियों को वीथी का अच्छा दृष्टान्त माना जा सकता है। यद्यपि ये रचनाएँ १८ वीं शताब्दी की हैं तथापि कवि ने इनमें नाट्यशास्त्रगत सिद्धान्तों का प्रायः पालन किया है। लक्षणग्रन्थों में प्राप्त वीथियों के कतिपय शीर्षकों तथा प्रकट रूप से उक्त वीथीद्वय के अनुशीलन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत वीथी-साहित्य की वीथी एकदम निर्जन नहीं है।

---

१- चन्द्रिका पृ० १.
२- पूर्वमेघ, ३८, पृ० २३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MID

षष्ठम अध्याय

# संस्कृत साहित्य में एकाङ्की उपरूपक

## उपरूपक

रूपकों के समान उपरूपकों में भी कई भेद ऐसे हैं जो एकाङ्कियों की कोटि में रक्खे जा सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम एकाङ्की उपरूपकों की चर्चा करेंगे। इस विषय को प्रारम्भ करने से पूर्व उपरूपकों के इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

संस्कृत-साहित्य-शास्त्र में दृश्य-काव्य के रूपक और उपरूपक ये दो भेद किये गये हैं। नाट्य पर आधारित प्रेक्ष्य-काव्य रूपक तथा नृत्य पर आश्रित अभिनय-प्रधान काव्य उपरूपक कहलाते हैं। नाट्यशास्त्र, दशरूपक, प्रताप-रुद्रीय (लगभग १४०० ई०) रसार्णव-सुधाकर ( लगभग १४०० ई० ) आदि नाट्य-लक्षण-ग्रन्थों में नृत्य-प्रधान रूपकों के स्पष्ट उल्लेखों से भासित होता है कि पहले इन्हें साहित्य में स्थान प्राप्त नहीं था। धनञ्जय द्वारा रूपलक्षण-शास्त्र का 'दशरूपक' नामकरण भी इसी तथ्य की ओर सङ्केत करता है। दशरूपककार ने कुछ उपरूपकों का उल्लेख अवश्य किया है, परन्तु उनका सोदाहरण विश्लेषण करने की उन्होंने विशेष आवश्यकता नहीं समझी। यद्यपि दशरूपकों के अतिरिक्त सत्रह अन्य अभिनेय-काव्य-भेदों के नाम

---

१- डोम्बा श्रीगदितं भाणो भाणा-प्रस्थान-रासकाः।
काव्यं च सप्त नृत्यस्य भेदाः स्युस्तेऽपि भाणवत्॥

दशरूपक-प० २ (धनिककृत अवलोक)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



हमें अग्निपुराण में उपलब्ध होते हैं किन्तु वहाँ भी उनकी संज्ञा उपरूपक नहीं है।[१] उनके लक्षण एवं उदाहरण भी अग्निपुराण में नहीं दिये गये हैं।

इसी प्रकार अभिनवगुप्ताचार्य (ईसोत्तर दसवीं शताब्दी का अन्तिम भाग) ने भी डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, षिद्गक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक और रासक नामक उपरूपकों का विस्तृत विवेचन-रहित नामोल्लेख मात्र किया है।[२] हेमचन्द्र ने (१०८९–११७२ ईसोत्तर) काव्यानुशासन में अभिनवगुप्त द्वारा कथित नामों में श्रीगदित और गोष्ठी को भी जोड़ दिया है। शारदातनय के भावप्रकाश में जिन बीस उपरूपकों की यथाविधि व्याख्या की गई है, उनके नाम हैं–तोटक, नाटिका, गोष्ठी, संलाप, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाणी, प्रस्थान, काव्य,-प्रेक्षणक, सट्टक, नाट्यरासक, लासक (रासक) उल्लाप्यक, हल्लीश, दुर्मल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली, पारिजातक। अग्निपुराण आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उपन्यस्त नृत्य-प्रधान प्रेक्ष्य-काव्य के भेदोपभेदों की तुलनात्मक सारणी पर एक सूक्ष्म दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि शारदातनय द्वारा उक्त बीस उपरूपकों में अग्निपुराण का कर्ण, नाट्यदर्पण का नर्तनक, साहित्यदर्पण का विलासिका एवं अभिनवगुप्त द्वारा उल्लिखित डोम्बिका, भाणिका तथा रामाक्रीड ये तीन उपरूपक और जोड़ देने पर सम्पूर्ण उपरूपकों के भाण्डार में कुल मिलाकर छब्बीस घटक हो जाते हैं। नीचे की तालिका भेदों के इस विकास को समझने में सहायक होगी।

| १. अग्निपुराण अध्याय ३३८ पृष्ठ ३१० | दशरूपक (ईसवी दसवीं शताब्दी) | अभिनव भारती (दशवीं शताब्दीका अंतिम भाग) |
|---|---|---|
| तोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्यक और प्रेक्षण (१७) | डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक, काव्य. (७) | डोम्बिका, भाण, प्रस्थान षिद्गक, भाणिका, प्रेरण रामाक्रीड, हल्लीसक और रासक (९) |

१– व्यायोग–भाण–वीथ्यङ्क–त्रोटकान्यथ नाटिका।
सट्टकं शिल्पकं कर्णालापो दुर्मल्लिका तथा॥
प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीशकानि च।
काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकोल्लासके तथा॥
उल्लाप्यकं प्रेखणंच सप्तविंशतिरेव तत्।
सामान्यंच विशेषश्चलक्षणस्य द्वयी गतिः अ० पु० २–४; अध्याय ३३८

२– द्रष्टव्य- ना० शा० भाग १ गा० ओ० सी० संस्करण, चतुर्थ अध्याय-पृ० १८१.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD



| भाव प्रकाश | नाट्यदर्पण | साहित्यदर्पण |
|---|---|---|
| तोटक, नाटिका, गोष्ठी, संल्लाप, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाणी प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षणक, सट्टक, नाट्यरासक, लासक (रासक) उल्लाप्यक, हल्लीश, दुर्भल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली, पारिजातक (२०) (+कर्ण+नर्तनक+ विलासिका+डोम्बी+ भाणिका+रामाक्रीड=२६) | सट्टक, श्रीगदित दुर्भीलिता, प्रस्थान, गोष्ठी, हल्लीशक, नर्तनक, प्रेक्षणक, रासक, नाट्यरासक, काव्य, भाण, भाणक, भाणिका. | नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षणक, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका या विनायिका, दुर्भल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका। (=१८) |

परन्तु विश्वनाथ के "अष्टादश प्राहुरूपरूपकाणि मनीषिणः—इस वचन से ध्वनित होता है कि साहित्यदर्पण के प्रणयन काल में विद्वानों में उक्त अट्ठारह उपरूपक सम्मानित रह गये थे। आज भी इनकी यही संख्या मान्य है।

भारतीय नाट्य-शास्त्र में उपरूपकों की उपेक्षा का कारण श्री राम-स्वामी शास्त्री ने भरतयुगीन भारत में नृत्यप्रधान रूपकों का पूर्णरूपेण विकास न हो पाना बतलाया है। भरत द्वारा संकेतित गौण रूपकों में से कतिपय भेदों के (कोहलाचार्य के समय तक) उपरूपकों की स्थिति तक पहुँचने के कारण बहुत से विचारक उपरूपकों का प्रथम उल्लेख करने का श्रेय कोहल को देते हैं १२ वीं शताब्दी में शारदातनय का यह कथन कि जिस नाटक में दिव्य और मानवीय-गुण-सम्पन्न पात्रों तथा विदूषकहीन अङ्कों की (जैसे आठ अङ्क के मदलेखा नामक तथा सात अङ्क के स्तम्भितलम्भक शीर्षक नाटक) योजना होती है, वह तोटक बन जाता है और "मेनकानहुष" नामक नवाङ्क नाटक और विक्रमोर्वशीय (पञ्चाङ्क) नाम के विदूषक-सहित नाटक को भी तोटक बतलाना इस तथ्य की ओर सङ्केत करता है कि दसवीं या ग्यारवीं शताब्दी तक उपरूपकों की सृष्टि हो चुकी थी। [1]

१— नवाङ्क तोटकं दृष्टं मेनकानाहुषाह्वयम्।
तोटकं मदलेखाख्यं यत्तस्तम्भितलम्भकम्॥
क्रमादष्टाङ्कसप्ताङ्की दृश्येते ह्यविदूषकौ।
यद्विक्रमोर्वशीयाख्यं पञ्चाङ्गं तोटकं स्मृतम्। भा० प्र०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



हमें अग्निपुराण में उपलब्ध होते हैं किन्तु वहाँ भी उनकी संज्ञा उपरूपक नहीं है।[१] उनके लक्षण एवं उदाहरण भी अग्निपुराण में नहीं दिये गये हैं।

इसी प्रकार अभिनवगुप्ताचार्य (ईसोत्तर दसवीं शताब्दी का अन्तिम भाग) ने भी डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, षिद्गक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक और रासक नामक उपरूपकों का विस्तृत विवेचन-रहित नामोल्लेख मात्र किया है।[२] हेमचन्द्र ने (१०८९–११७२ ईसोत्तर) काव्यानुशासन में अभिनवगुप्त द्वारा कथित नामों में श्रीगदित और गोष्ठी को भी जोड़ दिया है। शारदातनय के भावप्रकाश में जिन वीस उपरूपकों की यथाविधि व्याख्या की गई है, उनके नाम हैं–तोटक, नाटिका, गोष्ठी, संलाप, शिल्पक, डोम्वी, श्रीगदित, भाणी, प्रस्थान, काव्य,-प्रेक्षणक, सट्टक, नाट्यरासक, लासक (रासक) उल्लाप्यक, हल्लीश, दुर्मल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली, पारिजातक। अग्निपुराण आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उपन्यस्त नृत्य-प्रधान प्रेक्ष्य-काव्य के भेदोपभेदों की तुलनात्मक सारणी पर एक सूक्ष्म दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि शारदातनय द्वारा उक्त वीस उपरूपकों में अग्निपुराण का कर्ण, नाट्यदर्पण का नर्तनक, साहित्यदर्पण का विलासिका एवं अभिनवगुप्त द्वारा उल्लिखित डोम्बिका, भाणिका तथा रामाक्रीड ये तीन उपरूपक और जोड़ देने पर सम्पूर्ण उपरूपकों के भाण्डार में कुल मिलाकर छब्वीस घटक हो जाते हैं। नीचे की तालिका भेदों के इस विकास को समझने में सहायक होगी।

| १. अग्निपुराण अध्याय ३३८ पृष्ठ ३१० | दशरूपक (ईसवी दसवीं शताब्दी) | अभिनव भारती (दशवीं शताब्दीका अंतिम भाग) |
|---|---|---|
| तोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्यक और प्रेक्षण (१७) | डोम्वी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक, काव्य. (७) | डोम्बिका, भाण, प्रस्थान पिद्गक, भाणिका, प्रेरण रामाक्रीड, हल्लीसक और रासक (९) |

१– व्यायोग–भाण–वीथ्यङ्क–तोटकान्यथ नाटिका।
सट्टकं शिल्पकं कर्णालापो दुर्मल्लिका तथा॥
प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीशकानि च।
काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकोल्लासके तथा॥
उल्लाप्यकं प्रेंखणंच सप्तविंशतिरेव तत्।
सामान्यंच विशेषश्चलक्षणस्य द्वयी गतिः अ० पु० २–४; अध्याय ३३८

२– द्रष्टव्य–ना० शा० भाग १ गा० ओ० सी० संस्करण, चतुर्थ अध्याय–पृ० १८१.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



| भाव प्रकाश | नाट्यदर्पण | साहित्यदर्पण |
| --- | --- | --- |
| तोटक, नाटिका, गोष्ठी, संल्लाप, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाणी प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षणक, सट्टक, नाट्यरासक, लासक (रासक) उल्लाप्यक, हल्लीश, दुर्भल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली, पारिजातक (२०) (+कर्ण+नर्तनक+ विलासिका+डोम्बी+ भाणिका+रामाक्रीड=२६) | सट्टक, श्रीगदित दुर्भीलिता, प्रस्थान, गोष्ठी, हल्लीशक, नर्तनक, प्रेक्षणक, रासक, नाट्यरासक, काव्य, भाण, भाणक, भाणिका. | नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षणक, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका या विनायिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका। (=१८) |

परन्तु विश्वनाथ के "अष्टादश प्राहुरूपरूपकाणि मनीषिणः—इस वचन से ध्वनित होता है कि साहित्यदर्पण के प्रणयन काल में विद्वानों में उक्त अट्ठारह उपरूपक सम्मानित रह गये थे। आज भी इनकी यही संख्या मान्य है।

भारतीय नाट्य-शास्त्र में उपरूपकों की उपेक्षा का कारण श्री राम-स्वामी शास्त्री ने भरतयुगीन भारत में नृत्यप्रधान रूपकों का पूर्णरूपेण विकास न हो पाना बतलाया है। भरत द्वारा संकेतित गौण रूपकों में से कतिपय भेदों के ( कोहलाचार्य के समय तक ) उपरूपकों की स्थिति तक पहुँचने के कारण बहुत से विचारक उपरूपकों का प्रथम उल्लेख करने का श्रेय कोहल को देते हैं १२ वीं शताब्दी में शारदातनय का यह कथन कि जिस नाटक में दिव्य और मानवीय-गुण-सम्पन्न पात्रों तथा विदूषकहीन अङ्कों की ( जैसे आठ अङ्क के मदलेखा नामक तथा सात अङ्क के स्तम्भितलम्भक शीर्षक नाटक ) योजना होती है, वह तोटक बन जाता है और "मेनकानहुष" नामक नवाङ्क नाटक और विक्रमोर्वशीय (पञ्चाङ्क) नाम के विदूषक-सहित नाटक को भी तोटक बत-लाना इस तथ्य की ओर सङ्केत करता है कि दसवीं या ग्यारवीं शताब्दी तक उपरूपकों की सृष्टि हो चुकी थी। [१]

१— नवाङ्कं तोटकं दृष्टं मेनकानाहुषाह्वयम् ।
तोटकं मदलेखाख्यं यत्तत्स्तम्भितलम्भकम् ॥
क्रमादष्टाङ्कसप्ताङ्को दृश्येते ह्यविदूषकौ ।
यद्विक्रमोर्वशीयाख्यं पञ्चाङ्कं तोटकं स्मृतम् । भा० प्र०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



दूसरे कुछ एक नाट्यमीमांसक उपरूपक की परिकल्पना, रूपक के प्रचलन के बाद ही मानते हैं। जिस प्रकार दशरूपक के प्रणयन से पहले भी नाट्यशास्त्रविद् रूपक का प्रयोग करते हैं, परन्तु रूपक की दशविधाओं को रूपक नाम से अभिहित करने का श्रेय दसवीं शताब्दी के धनंजय को ही दिया जाता है। उसी प्रकार उपरूपक के निश्चित नामकरण का गौरव प्राप्त करने के अधिकारी साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ही हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इनसे पूर्व के आचार्यों में हेमचन्द्र ने इन नृत्य भेदों को गेय रूपक और नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र ने 'अन्यानि रूपकाणि' कह कर संबोधित किया है। अभिनवगुप्त[1] द्वारा एक स्थान पर इस प्रकार के प्रेक्ष्यकाव्यों को वृत्तात्मक कहने से भी यही व्यञ्जित होता है कि नृत्त पर अवलम्बित होने के कारण जिन प्रबन्ध काव्यों में नाटकीय तत्वों का अभाव था उन्हें रूपक के वर्ग में स्थान देने में साहित्यविदों को संकोच होता था। इस प्रकार उपरूपकों के उद्भवकाल का निर्धारण भी संस्कृत साहित्य की कठोरतम समस्याओं में से एक है। आधार-ग्रन्थों का अभाव भी इसका एक कारण है। परन्तु उपर्युक्त शास्त्रीय विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि गौण रूपकों के बीज भी भारत में बहुत पहले से विद्यमान थे, जिनका विकास जनसामान्य में प्रचलित नृत्य नाटकों के आधार पर हुआ। इनका उल्लेख नाट्य-शास्त्रकार भरत ने तो नहीं किया, परन्तु शारदातनय, रामचन्द्र तथा आचार्य विश्वनाथ जैसे उत्तरवर्ती नाट्य-लक्षणवेत्ताओं ने अपने साहित्य-शास्त्रविषयक ग्रन्थों में किया है। चौदहवीं शताब्दी के अन्त अथवा पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ये प्रबन्ध काव्य नृत्य का अवलम्ब लेने के कारण उपरूपकों के निकट पहुँचने लगे और साहित्यदर्पण के निर्माण काल तक प्रेक्षणीय एवं रोचक वस्तु बन गये। इस समय तक उनका पर्याप्त प्रचार हो चुका था। केवल काव्यशास्त्र के लक्षण-ग्रन्थों में ही नहीं अपितु साहित्यिक-कृतियों में भी उपरूपकों द्वारा जनता के मनोरंजन किए जाने के उल्लेख उपलब्ध होते है।

---

१– अन्यदपि प्रेरणरामाक्रीड रासकहल्लीसकादिमल्पत्वबहुत्ववैचित्र्यकृतमिहैव प्रविष्टं वेदितव्यम्।

तदुक्तं चिरन्तनैः–(एते प्रबन्धाः नृत्तात्मकाः न नाट्यात्मकनाटकादिविलक्षणा... )
ना० शा० भाग १ गा० ओ० सी० संस्करण–चतुर्थ अध्याय–पृष्ठ १८१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



यथा—

दामकः—मादुल । पव्वं दाव चिट्ठदु । अज्जा भट्टि दामोदलो इयमष्मि कुन्दावणे गोवकण्णाहिं षह हल्लीअं णाम पक्कीलिखु आअगच्छदि । (मातुल । सर्व तिष्ठतु अद्य भर्तृ दामोदरोऽस्मिन् वृन्दावने गोपकन्यकामिः सह हल्लीसकं प्रक्रीडितुभागच्छति ) ।

दामकः— आमृ भट्टा । षव्वे पण्णद्धा आअदा ।
(आमृ भर्तः । सर्वे सन्नद्धा आगताः ।)

दामोदरः— घोष सुन्दरि । वनमाले चन्द्ररेखे । मृगाक्षि । घोषवासस्यानुरूपोऽयं हल्लीसक–नृतवन्ध उपयुज्यताम् ।

दामोदरः—प्रेक्षको भवान् ननु ।[1]

क्वचिन्नृपावलावलात्कारनर्त्यनान्तनृत्याभिज्ञान्तः–पुरपालमावितुमुजिष्टाः रासक-मण्डलैः, सरोमांच इव भूषणमणिकिरणैः सपट्टवन्ध इव चन्दन-ललाटिकामिः, सप्रसव इव प्रतिशब्दकैः सप्ररोह इव प्रसाददानैरुत्सवामोदः ।[2]

इन उद्धरणों में भास बाणभट्टादि ने हल्लीसक, रासक जैसे नृत्यों का जो हृदयहारी वर्णन किया है, उससे भी प्रमाणित होता है कि लोकनृत्य-प्रधान उपरूपक केवल साहित्य-शास्त्रों में ही वर्णन करने योग्य वस्तु नहीं थी प्रत्युत वास्तविक जगत् के दैनिककार्यों में व्यस्त होने के कारण श्रान्त जनसमुदाय इस प्रकार के मनोरंजक नृत्यों एवं जन नाटकों द्वारा अपना चित्तावर्जन करता था । समय–समय पर विवाह तथा पुत्र जन्म आदि मांगलिक उत्सवों के अवसर पर भी ऐसे आयोजन किये जाते थे । अतः प्राचीन भारत में उपरूपकों के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

रूपकों का मानसिक प्रक्रिया से सम्बन्ध है और उपरूपकों का सम्बन्ध शारीरिक क्रिया से है। उच्चस्तर की कृतियों में शोभावृद्धि के लिये इनका उपयोग होता है भले ही उनके द्वारा भाव-प्रदर्शन भी हो जाय ।

---

१– बालचरित (गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित) – पृ० ४१.

२– हर्षचरित (पी० वी० काणे द्वारा सम्पादित) पृ० ७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding: M



एकाङ्की उपरूपक—

यहाँ हम एकाङ्की उपरूपकों की चर्चा करेंगे।

गोष्ठी की चर्चा अभिनवगुप्ताचार्य ने नहीं की है परन्तु "शृंगार प्रकाश" के एक छोटे श्लोक में इस एकाङ्की पर जो विचार किया गया है, उससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि बालरूप कैटभद्विट् (दामोदर) की विशेषतः, यमलार्जुन-मोक्ष, रिष्टासुरवधादि की कथाएँ ही इसका प्रमुख विषय बनती हैं। साथ ही इसमें गोपालकों की सामूहिक बाललीलाएं भी प्रदर्शित की जाती हैं। अतः गोष्ठी शब्द का सम्बन्ध गोप समुदाय वाची 'गोष्ठ' शब्द से अवश्य होना चाहिये। भोजराज के पश्चात्वर्ती नाट्यमीमांसक शारदातनय के भावप्रकाश में भोज-कृत शृंगारप्रकाश द्वारा वर्णित लक्षणों का अनुहरण प्रत्यक्ष देखने को मिलता है।[1] नाट्यदर्पण[2] में भी शृङ्गार-प्रकाश कृत गोष्ठी की परिभाषा प्रतिबिम्बित है। विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में भी गोष्ठी नामक उपरूपक इसी रूप में दिखाई देता है। विभिन्न नाट्यशास्त्र-कोविदों द्वारा की गई परिभाषाओं का समाहार संक्षेप में इस प्रकार किया जा सकता है। यथा—

गोष्ठी में पाँच या छै सुन्दर स्त्रियाँ (नायिकाएं) होती हैं, और नौ या दस गँवार पुरुष पात्र (अविदग्धप्राकृतजन)। उदात्त नायक नहीं होता, हाँ वह ललित नायक हो सकता है।[3] गर्भ और अवमर्श सन्धियों का इसमें सर्वथा अभाव रहता है। उदात्त वचनों की योजना तो इसमें नहीं होती परन्तु कैशिकी वृत्ति प्रयुक्त होती है। ललितशृङ्गार की इसमें प्रधानता होती है। इसमें युद्ध, संघर्ष आदि के दृश्य नहीं दिखाए जाते। साहित्यदर्पण में "रैवतमदनिका" का नाम इसके उदा-

---

१— भावप्रकाश- नवमअधिकार-पृ० २५६.

२— गोष्ठे यत्र विहरतश्चेष्टितमिह कैटभद्विषः किञ्चित्।
रिष्टासुरप्रमथनप्रभृति तदिच्छन्ति गोष्ठीति॥ ना० द०, गा० ओ० पृ० २१४

३— प्राकृतैर्नवभिः पुंभिर्दशभिर्वाप्यलंकृता।
नोदात्तवचना गोष्ठी कैशिकी वृत्तिशालिनी॥
हीना गर्भविमर्शाभ्यां पञ्चषड्योषिदन्विता।
कामशृङ्गार-संयुक्ता स्यादेकाङ्क-विनिर्मिता। यथा--रैवतमदनिका
सा० द० ६, पृ० ३६५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding: MoE



हरणस्वरूप लिया गया है और शुभंकर[1] ने सत्यभामा नामक गोष्ठी का उल्लेख किया है। यह एक प्रकार का नृत्त रूपक है।

अभिनव भारती में कतिपय आचार्यों के उद्धृत किये गये नृत्त-रूपकवर्णन-परक-श्लोकों से भी ध्वनित होता है कि इन रूपकों में नृसिंह, सूकर आदि अविवेकी पशुओं का चरित्राङ्कण होता था। डॉ. वी राघवन् ने भोजकृत शृङ्गार प्रकाश पर विवेचनात्तक वृहद्ग्रन्थ में विभिन्न (दशावतार) रूपों में अवतीर्ण विष्णु भगवान् से इनका सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास किया है। समस्त भारतीय नाट्यशास्त्र और उसमें कथित ताण्डव एवं लास्य नृत्त पहले शैव सम्प्रदायगत विचारों से प्रभावित था। बाद में नाट्यशास्त्र में वृत्ति के रचयिता के रूप में हमें विष्णु के दर्शन होते हैं। फलतः, गोष्ठी, रासक, नाट्य-रासक, हल्लीसक आदि नृत्त-प्रधान् अभिनयों में जो प्रायः एक दूसरे से साम्य रखते हैं, कृष्ण ने नायक तथा राधा ने और गोपिओं ने नायिकाओं का स्थान ग्रहण कर लिया। संस्कृत के साहित्यशास्त्रीय तथा साहित्यिक ग्रन्थों के सूक्ष्म अध्ययन से इसकी पुष्टि हो जाती है।

साहित्यदर्पण में संकलित रूपक तथा उपरूपक के भेदोपभेदों में क्रम-संख्या के अनुसार गोष्ठी के अनन्तर (एकाङ्की उपरूपकों में) नाट्यरासक[2] का नाम आता है। इसका नायक उदात्त और उपनायक पीठमर्द होता है। इसमें हास्य रस की प्रधानता रहती है। साथ ही शृङ्गार का भी समावेश रहता है। नायिका वासकसज्जा होती है। इसमें मुख और निर्वहण सन्धियाँ तथा लास्य के दस अङ्गों की योजना होती है। इस प्रकार इसमें नाच-गान[3] की प्रमुखता

---

१– एकाङ्का कथिता गोष्ठी कैशिकी-वृत्तिसंयुता।
संभोगनवषट्-पञ्च सप्तभिर्योषिदन्विता॥
प्राकृतैर्नवभिः पुम्भिर्दशभिर्वाप्यलङ्कृता।
गर्भावमर्शसंधिभ्यां हीना प्राकृतसम्भता॥
वाद्यैरन्वितानैवकर्त्तुविचक्षणैः। यथा–सत्यभामा। शुभङ्कर (भरतकोश से उद्धृत)

२– नाट्यरासकमेकाङ्क बहुताललयस्थिति।
तत्रसंधिद्वयवती। यथा–नर्मवती।
संधि–चतुष्टयवती। यथा–विलासवती। सा० द० ६, पृ० ३६५–६६.

३– वसन्तसमये यत्र देशी हिंदोलगीतिभिः।
नर्तकीभिर्नाट्यवस्तुपदार्थैरभिनीयते॥
तन्नाट्यलासकं प्रोक्तं देशीनृत्तविशारदैः। वेमः (भरत कोश से)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



रहती है तथा इसका विषय प्रेम होता है। कोई-कोई इसमें प्रतिमुख सन्धि को छोड़कर शेष सन्धिचतुष्टय का होना मानते हैं। परन्तु दो सन्धियों के नाट्य–रासक का नाम भी साहित्यदर्पण में मिलता है। यथा–चार सन्धियुक्त नाट्य-रासक का नाम है विलासवती और दो सन्धियोंवाले इस वर्ग के उपरूपक का शीर्षक है, नर्मवती।

नाट्यरासक पद से मिलता जुलता रासक[१] अथवा लासकनामक एक और एकाङ्की उपरूपक का वर्णन नाट्य-शास्त्र-विषयक ग्रन्थों में प्राप्त होता है, जिसमें हास्य एवं मनोरञ्जन की प्रधानता होती है। रासक में नायिका को अधिक चतुर तथा नायक को मूर्ख के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इसमें कुल पाँच पात्र होते हैं।

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की पुरातन कृतियों में रास अथवा रासक शब्द के प्राप्त न होने के कारण बहुत से मनीषी राजस्थानी तथा अन्य देशी भाषाओं में रासो एवं रासक शब्दों के प्रत्यक्ष प्रयोग को देख कर रासक पद को प्राचीनतम आर्यभाषा संस्कृत से आया[२] न मानकर किसी देशी भाषा से निकला हुआ मानते हैं—

"रास शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है, प्रत्युत देशी भाषा का है जो संस्कृत बन गया और देशी नाट्यकला को जो रास के नाम से ही प्रसिद्ध थी, संस्कृत ग्रन्थों में उद्धृत कर दिया है। रास के देशीय होने का अनुमान इस बात से भी होता है कि रासो और रासक नाम से राजस्थानी में इसका प्रयोग भी मिलता है और वह रास जिसका सम्बन्ध ग्वालों में प्रचलित देशी नाटक से हो सकता है, संस्कृत नाटक से अपहृत[३] नहीं माना जा सकता।"

---

१– रासकं पञ्चपात्रं स्यान्मुखनिर्वहणान्वितम्।
भाषा–विभाषाभूयिष्ठं भारती–कैशिकीयुतम्॥
असूत्रधारमेकाङ्कं सवीथ्यङ्गकलान्वितम्॥
श्लिष्टनान्दीयुतं ख्यातनायिकं मूर्खनायकम्॥ यथा–मेनकाहितम्॥
सा० द० ६ प० ३६७.

२– हिंदी नाटक उद्‌भव और विकास–डा० दशरथ ओझा –पृष्ठ ७६.

३– (क) रस् आस्वादन–स्नेहनयोः। सिद्धांत कोमुदी ७–३–३२;
(ख) लस् श्लेषणक्रीडनयोः सि० कौ० (पाणिनीय धातु पाठ।) ३–१–३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding: MoE



वैदिक तथा लौकिक

ठीक है, कि वैदिक तथा लौकिक साहित्य में "रासक" का अतिप्राचीन प्रयोग अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है परन्तु यह कहना कि रास एवं रासक पद में निहित हर्षोल्लास के भावों के द्योतक पद संस्कृत-साहित्य के भण्डार में थे ही नहीं, जिनसे भारतीय देशी भाषाओं को यह प्रेरणा मिल सकता, न्याय्य नहीं है। रास और रासक शब्द स्वयं इसके प्रमाण हैं।

धातुपाठ

पाणिनीय धातु पाठ में एक चुरादिगणीय रस् धातु आस्वादन के अर्थ में और एक स्वादिगणीय लस् आलिंगन तथा क्रीडन के अर्थ में मिलती है। विभिन्न अभिधान-कोशों में शब्द करने के अर्थ में प्रयुक्त वैदिक रस धातु भी बतलाई गई है। इससे रसना (रशना) शब्द बनता है, जिसका अर्थ है करधनी। किङ्किणियों को भी रसना कहते हैं। इन धातुओं के भाव को रास और रासक शब्द में भर दिया गया है।

सिद्धान्त कौमुदी

सिद्धान्त–कौमुदी में निर्दिष्ट उक्त रस् (आस्वादनार्थक) तथा लस् धातु के मेल से ही 'रास' शब्द बना होना चाहिये। "रलयोरभेदः" नियम के अनुसार 'र' का 'ल' में परिणत हो जाना कोई कठिन बात नहीं है। प्राणिमात्र के हृदय में स्थित आनन्दोल्लास की भावना को मूर्त रूप में प्रकट करने वाली नाचने–गाने की क्रिया प्रत्येक जीव में समान रूप से व्याप्त रहती है। आनन्द में लोग नाच-नाच कर गा उठते हैं। अतः रासक अथवा रास शब्द की रचना के विषय में जो आपत्ति ऊपर उठाई गई है, उसमें कोई तथ्य नहीं है।

नाट्य-रासक और रासक के वर्णों पर एक सूक्ष्म दृष्टिपात करने पर भासित होता है कि इनका सम्बन्ध "रास" नृत्य से रहा होगा। विभिन्न मनीषियों ने रास शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। एक मत के अनुसार रास पद रस का बहुत्व वाचक है-'रसानां समूहो रासः' तथा 'रसो वै सः'। सिद्धान्तवादियों के अनुसार रस का नामान्तर है "ब्रह्म"। महारास में एक ही कृष्ण अनेकों कृष्णों के रूप में दिखलाये जाते हैं। ब्रह्म तो एक ही है ऐसी शङ्का का समाधान भागवत में कथित "तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोरिति" वाक्य के अनुसार प्रत्येक गोपिका के साथ एक कृष्ण ब्रह्म रास नृत्य करते दिखते हैं। एतदर्थ इस नृत्य-प्रधान उपरूपक का नामकरण हुआ रासक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



द्वितीय मत के अनुसार "रसः उत्पद्यते यस्मात् स रासः" अर्थात् जिससे रस उत्पन्न हो वह रास कहलाता है। रासलीला में नृत्य एवं संगीत द्वारा रस की सरिता बहाई जाती है। इसीलिये इस भाव-प्रधान नाट्य शैली को रास कहते हैं। तृतीय मतावलम्बियों के कथनानुसार जिसमें स्त्रियाँ और पुरुष हाथ बाँध कर मण्डल बनाकर नर्तन करें वह नाच रास कहलाता है।[१] रास-नृत्य एवं पाश्चात्य पद्धति के सामूहिक नृत्य "बाल डान्स" में बाह्य साम्य को देख कर कतिपय विचारक उक्त विदेशीय नृत्य को रास के समकक्ष रखने का प्रयास करते हैं परन्तु इन दोनों में निहित भावनाओं में पर्याप्त अन्तर है। भारतीय सामूहिक नृत्य रास में धर्म की भावना छिपी है और उक्त द्वितीय प्रकार के नृत्य में शुद्ध मनोरञ्जन की। ऐसी स्थिति में दोनों को एक ही वस्तु मानना ठीक नहीं प्रतीत होता। चौथे मत के अनुसार केवल नृत्य एवं गान से युक्त अभिनेय कृति रास नहीं कहला सकती। पाँचवे मन्तव्य के अनुसार, जो उक्त मतों से सर्वथा भिन्न ज्ञात होता है, रास की उत्पत्ति रस धातु से मानी जानी चाहिये। इसके अनुसार चिल्लाने के अर्थ की द्योतक रस[२] धातु का सम्बन्ध पशुपालन नृत्य से जोड़ा जाता है। यह नृत्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में संगीत की विविध कलाओं से सम्पन्न न था। उस समय इस प्रकार के सामूहिक नृत्य में नर्तक बीच-बीच में जोर-जोर से चिल्ला उठते थे। कालान्तर में संगीत तथा कला के विकास के साथ लोक-नृत्य में भी परिवर्तन हुआ और इसने एक कलात्मक रूप धारण कर लिया। नाट्यरूप की दृष्टि से यह रास[३] जो कृष्ण की

१– स्त्रीभिश्च पुरुषैश्चैव धृतहस्तैः क्रमस्थितैः।
मण्डले क्रियते नृत्यं स रासः प्रोच्यते बुधैः॥

२– Rasa is thus not to be derived from Rasa but from Rasa root which means to cry aloud, which may refer to the very primitive form of this dance when the proportion of music and artistic movements may not have been still realistic and when it must have been practised as wild dance.

Types of Sanskrit Drama, Mankad, Page 143.

३– मण्डलेन तु यन्नृत्तं हल्लीसकमिति स्मृतम्।
एकस्तत्र तु नेता स्याद् गोपस्त्रीणां यथा हरिः॥
अनेक-नर्तकी-योज्यं चित्रताललयान्वितम्।
आचतुष्षष्टियुगलाद्रासकं मसृणोद्धतम्॥

ना० शा०, गा० ओ० सी० संस्करण – पृ० १८१

+ + +

"रासस्तु गोदुहां क्रीडा" हारावली.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



गोपियों के साथ रचाई गई लीलाओं से सम्बद्ध है। संस्कृत के गोष्ठी, नाट्य-रासक, काव्य, श्रीगदित और हल्लीश जैसे एकाङ्की उपरूपकों के अधिक निकट प्रतीत होता है। इनके संक्षिप्त तुलनात्मक विवेचन से यह बात स्वयं पुष्ट हो जाती है।

रास में कृष्ण के चारों ओर गोपियाँ नाचती हैं। हल्लीश में एक नायक होता है और अनेक नायिकाएँ होती हैं। रास में जितने पुरुष पात्र होते हैं उतने ही स्त्री पात्र भी। (क्योंकि कृष्ण अपने अनेक रूप धारण करके एक-एक गोपिका के साथ नाचते दिखते हैं) अभिनवगुप्त, कोहल, भामह आदि ने रासक के जो लक्षण किये हैं, उनमें एक विशिष्ट लक्षण यही मिलता है कि रास स्त्री-पुरूषों का सम्मिलित मण्डलाकार नृत्य है। इसमें कभी-कभी केवल स्त्रियाँ ही नाचती हैं। भोजराज के शृङ्गार प्रकाश में कहा भी गया है कि जब हल्लीश नृत्य का किसी विशिष्ट ताल में नर्तन होता है, तब वह रास में परिणत हो जाता है।[1] भोजराज रास को शुद्ध रूप से स्त्रियों का ही नृत्य मानते हैं, जिसमें सोलह, बारह या आठ नर्तकियाँ भाग ले सकती हैं। शृङ्गार-प्रकाश में उपलब्ध उपरूपकों के वर्णन से यह भी विदित होता है कि रास या रासक के ही समान नाट्य-रासक भी वसन्तकाल[2] में ऋतुराज के स्वागतार्थ नर्तकियों द्वारा दिखलाया जाने वाला एक नृत्य प्रधान भावाभिनय है। इसे यहीं चर्चरी भी कहा गया है। भोज के अनुसार इसमें पिण्डीबन्ध, गुल्म शृङ्खला, भेद्यक, लाटादि तालभेद विभिन्न वाद्यों के साथ लास्य तथा नाट्य-रासक में ही प्रदर्शित किये जाते हैं। इसी रासक अथवा नाट्यरासक को राजानक रत्नाकर के हर-विजय नामक महाकाव्य में रासकाङ्क भी कहा गया है। इसके टीकाकार अलक ने कोहल का प्रमाण देते हुए इसे

---

१- तदिदं हल्लीसकमेव तालबन्धविशेषयुक्तं रास एवेत्युच्यते।

२- षोडश-द्वादशाष्टौ वा यस्मिन् नृत्यंति नायिकाः। शृङ्गारप्रकाश.

× × × ×

न पदैरभिधीयेत अनुकार्यानुरूपिणः॥
कामिनीभिर्भुवोभर्तुश्चेष्टितं यत्तु नृत्यते।
रागाद्वसन्तमासाद्य स ज्ञेयो नाट्यरासकः॥
चर्चरीति च तमाहुः वर्णतालेन तत्र तु।
प्रविशेत् कामिनोर्युग्मम् ... शृङ्गारप्रकाश-द्वितीय भाग-एकादशप्रकाश - पृ० ४६८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



आठ, सोलह या बत्तीस नर्तकियों का नृत्य[१] बतलाया है। अभिनवगुप्त, भोज-राज तथा रामचन्द्र ने भेज्जल कवि के 'राधाविप्रलम्भ' (राधाप्रलम्ब) नामक रासकांक का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है।[२]

भोजराज के अतिरिक्त शारदातनय[३], वेमभूपाल[४], शुभंकर[५] आदि अन्य अलंकार-शास्त्रविदों के ग्रन्थों में रासक एवं नाट्यरासक के शास्त्रीय लक्षणों में संगीत तथा नृत्य के वर्णनाधिक्य को देख कर बहुत से मीमासकों ने इसकी गणना नृत्यकोटि में की है। किन्तु साहित्य दर्पण में (जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) इसके शास्त्रीय विवेचन को देखने पर ज्ञात होता है कि 'रासक' नृत्य ही नहीं, प्रत्युत एक प्रकार का एकांकी उपरूपक भी है। नाट्-यशास्त्रविषयक ग्रन्थों को देखने से मालूम होता है कि रासक नामक उपरूपक के तालरासक. दण्डरासक एवं मण्डलरासक – ये तीन भेद होते हैं। तालरा-सक तालबद्धनृत्य, दण्डरासक ( डाण्डियारास ) दण्डों को बजाकर किया जाने वाला नृत्य होता है। आन्ध्रप्रदेश में प्रचलित "कोलाट" नामक लकुट-नृत्य उक्त दण्डरासक का स्मरण दिलाता है। रामेश्वर जैसे देवालयों में स्त्रियों एवं बच्चों के कोलाट नृत्य करते हुए चित्र अंकित हैं।

कभी शिष्ट-साहित्य से लोक-साहित्य तथा कभी लोक-साहित्य से शिष्ट-साहित्य प्रभावित होता रहता है। नाट्य-साहित्य का तो लोक जीवन से

---

१– रासकाङ्कश्च कोहलोक्तो नाट्यप्रकारः। उक्तं च –
अष्टौ षोडश द्वात्रिंशत् यत्र नृत्यंति गायिकाः।
पिण्डीबंधानुहारेण तन्नृतं रासकं विदुः॥

२– (क) यथा भेज्जलविरचिते राधाविप्रलम्भे रासकाङ्के ...
ना० शा० अध्याय १९ (भाग ३) गा० ओ० सी० पृ० ६३
(ख) यथा भेज्जलविरचिते राधाविप्रलम्भे रासकाङ्के परिकर –
परिन्यासयोरूपक्षेपेणैव गतत्वान्न तन्निबंधः॥ ना० द० भाग १, पृ० ११६

३– भा० प्र० नवम अधिकार पृ० २६४.

४– अनेक नर्तकीयोज्यंचित्रताललयान्वितम्।
आचतुष्षष्टियुगलाद्रासकं मसृणोद्धतम्॥ वेम० (भरतकोश से)

५– सूत्रधार–विहीनं स्देकाङ्कं तु रासकम्।
उत्कृष्ट–नान्दीसंयुक्तं कैशिकी–भारतीयुतम्॥
केचिद्वदंति गोपानां क्रीडारासकमित्यपि॥ शुभङ्कर (भरतकोष से)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अविच्छेद्य सम्बन्ध है। भारतीय नाट्यशास्त्र में लोकधर्मी नाट्य की चर्चा को पढ़ने से भी यही सिद्ध होता है। रासक, नाट्य-रासक जैसी अभिनय-शैली में संगीत तथा नृत्य के प्रधान्य और आधुनिक तमाशा, रासलीला आदि जननाट्यों में संगीत-नृत्य की प्रचुरता को देख कर ऐसा लगता है कि इस प्रकार के नृत्तात्मक अभिनयों में ही संवाद की योजना करके नाट्य-शास्त्रविदों ने इन्हें उपरूपकों की संज्ञा प्रदान कर नाट्य-साहित्य में स्थान दिया होगा। इनके मुख्य विषय की प्रेरणा ब्रजभूमि में की गई 'श्रीकृष्ण की लोकप्रिय रास-लीलाओं से ही मिलती रही है। संभवतः, प्रमुखरूपकों की भाँति इनमें वाचिक, आङ्गिक, आहार्य और सात्विक अभिनय की सम्यक् योजना न होने से तथा केवल नृत्य के आधिक्य के कारण नाट्यजगत् में उपरूपकों का अधिक प्रचलन नहीं हो सका। ये प्रमुख रूप से केवल जनसाधारण (ग्रामीण जनता) के मनोरञ्जन की ही वस्तु बन कर रह गए। यही कारण है कि आज उपरूपक प्रकाशित रूप में नहीं मिलते। जन-नाट्यों में ही उनकी छाया रह गई है। साहित्य-दर्पण में मेनकनहित नामक रासक का नाम मात्र मिलता है। फिर भी विभिन्न लक्षण-शास्त्रों में इनके उदाहरणों के नाम और भागवत पुराण[1] में प्राप्त रास के प्राचीनतम वर्णन से इतना तो अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि किसी युग में ऐसी अभिनय शैलियों का भी साहित्य में स्थान था। भागवत पुराण, विष्णु पुराण आदि पौराणिक ग्रन्थों में चित्रित लोकप्रिय रासलीला ने संस्कृत के परवर्ती साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। इसकी पुष्टि में भास और बाणभट्ट की कृतियों से रासक से मिलते जुलते हल्लीसक नामक खेल और रासकनृत्य के के उदाहरण इस परिच्छेद के आरम्भ में दिये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त ७वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में भट्टनारायण ने "वेणीसंहार" के नान्दीश्लोक में राधा-कृष्ण के रास का सुन्दर वर्णन किया है।

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।

---

१– भगवानपि तां रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥
× × ×
वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले॥
श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध, अध्याय २९–३३ पृ० २९९–३२४

२– गीतमयं त्यङ्गम्। अस्य लक्षणम्। उदारनायकमुज्वलवेषात्मकं बहुपुस्तप्रधानं दिव्यचरितं शिल्पाङ्गविभूषितं हास्यश्रृङ्गार-भूपितं, यथा, देवी-महादेवम्।
सागरनन्दी (भरतकोश से)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL



इस श्लोक में कवि यमुना-पुलिन में केलिकुपित राधिका का अनुसरण करते हुये श्रीकृष्ण के उस रूप की वन्दना करता है जो राधिका के चरणस्पर्श में अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव कर गद्गद् हो उठा है। काव्य के विभिन्न रूपों में अङ्कित इस प्रकार के रासनृत्य के चित्रों से व्यञ्जित होता है कि पौराणिकाल से चली आने वाली रासपरम्परा सातवीं शताब्दी में भी लोकप्रिय थी और तत्कालीन साहित्य-जगत् में भी रास के विश्ववन्द्य नायक श्रीकृष्ण उपास्य के रूप में मान्य थे। आगे चलकर इस अमृतमयी सरिता में हिन्दी आदि अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्यज्ञ भी अवगाहन करने लगे। आज भी रासलीला में रत राधाकृष्ण की जोड़ी के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित करने वाला गुजरात का गर्बा नृत्य त्यौहारों के अवसर पर देखने को मिलता है। व्रज में भी "रास" के अभिनय में मानलीला देखने को मिलती है। इसमें नृत्य के साथ वाद्य-संगीत होता है। बीच बीच में संवादों का उच्चारण भी होता है। संवाद डाल देने से इनमें नाटकीयता आ जाती है।

एक अङ्क में समाप्त होने वाले उपरूपकों का उल्लाप्य, उल्लाप्यक या उल्लोप्यक[1] भी एक प्रभेद है। इसका विषय धार्मिक होता है (दिव्यकथायुक्तः)। इस उपरूपक के धीरोदात्त नायक, चार नायिकाएँ और श्रृंगार, हास्य एवं करूण रस होते हैं। संवादों के बीच में गीत भी समाविष्ट रहते हैं। इस उपरूपक के उदाहरणों की चर्चा करते समय प्रायः देवी-महादेव का नाम लिया जाता है। शारदातनय ने कुञ्जर नामक उल्लाप्य का उल्लेख भी किया है। उन्होंने इस नृत्तरूपक के लक्षण उल्लोप्यक नाम से किये हैं।

काव्य में केवल एक अङ्क होता है। इसमें आरभटीवृत्ति का अभाव और हास्य रस की व्याप्ति रहती है। इसकी शैली काव्यात्मक होती है तथा इसमें वर्णित कोई प्रेमकथा संगीत धारा में बहती हुई—एक अङ्क में ही समाप्त हो जाती है। नायक-नायिका दोनों उदात्त होते हैं। आचार्य कोहल ने उसका

---

१- उल्लोप्यकं स्यादेकाङ्कमवमर्शविवर्जितम्।
यथा देवीमहादेवं यथा धीरोदात्त-कुञ्जरम्॥
यस्मिन्नोप्यकं नाम त्र्यङ्गं गीतं प्रवर्तते।
तल्लक्षणं च गान्धर्वनिर्णये स्पष्टमीरितम्। शारदातनय, भावप्रकाश-नवम् अधिकार।
पृ० २६६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



संगीत के राग[1] विशेष के अर्थ में भी प्रयोग किया है। इसी से इस लास्ययुक्त नृत्तरूपक में संगीत का प्राधान्य मिलता है। भोजद्वारा लक्षित काव्य[2] और चित्रकाव्य को देखने से भी ज्ञात होता है कि ये संगीत-प्रधान कृतियाँ श्रव्य-काव्य के अधिक निकट हैं। इनमें से पहले में एक ही राग अन्त तक रहता है और दूसरा विविधरागयुक्त होने के कारण चित्रकाव्य कहलाता है। अभिनवगुप्त काव्य को राग-काव्य कहते हैं। इस सम्पूर्ण गीति में एक पूरी कथा होती है। यह नृत्य-प्रबन्ध भी कहलाता है। अभिनव-भारती में इस संगीतात्मक कथायुक्त "काव्य प्रबन्ध" के अभिनेय काव्य में परिणत होने की चर्चा भी मिलती हैं।[3] जयदेव कवि के गीत-गोविन्द को भी चित्रकाव्य उपरूपक कहा जा सकता है। यह किसी से छिपा नहीं है कि जयदेव की पत्नी ने स्वयं इसे अभिनय के योग्य बनाया था। भारत के किसी-किसी भाग में संगीत के साथ इसका आज भी अभिनय होता है। विट, चेट आदि हीन-पात्रों का भी इसमें समावेश रहता है। शारदातनय ने गौड-विजय तथा सुग्रीव-केलन[4] को इसके उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है। सागरनन्दी इसके उपलक्षण-ग्रन्थों की चर्चा करते हुए उत्खण्डितमाधव[5]

---

१– लयान्तर-प्रयोगेण रागैश्चापि विवेचितम्।
नानारस-सुनिर्वाह्य-कथं काव्यमिति स्मृतम्।
कोहल, नाट्यशास्त्र की टीका में उद्धृत प्रथम भाग पृ० १८२

२– आक्षिप्तिकाय वर्णो मात्रा ध्रुवकोऽय भग्नतालश्च
काव्यमिति विविधरागं चित्रमिति तदुच्यते कृतिभिः ॥ –शृङ्गार प्रकाश

३– अथोच्यते (राघवविजयादि) रागकाव्यादि प्रयोगो नाट्यमेव। अभिनययोगात्।
ना०शा०–चतुर्थ अध्याय (टीका) पृ० १७२ गा० ओ० सी० संस्करण

४– ...... ... .. ......
काव्यं सहास्य शृङ्गार सर्ववृत्तिसमन्वितम्।
सभग्नमानद्विपदीखण्डमात्रा परिष्कृतम् ॥
एवं प्रकल्पयेत् काव्यं तद्गौडविजयो यथा ॥
विप्रामात्यवणिक्पुत्र-नायकानायिकोज्ज्वलम्
मुदित-प्रमदाभाषाचेष्टितैरन्तरान्तरा
ग्रथितं विटचेटादिविषभाषाभिरेव वा ॥
एवं वा कल्पयेत्काव्यं यथा-सुग्रीवकेलनम् ॥ भा. प्र. नवम अधिकार पृ० २६३

५– खण्डमानमात्राद्विपदी भग्न तालकादिविभूषितं
चतुर्वृत्तियुतं शृङ्गारहास्यप्रधानं गर्भविमर्शसन्धिशून्यं एकाङ्कम्।
यथा–उत्खण्डितमाधवम्, –सागरनन्दी (भरतकोश से)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



का नाम लेते हैं और अमृतानन्दी[१] माधवोदय का। साहित्यदर्पणकार[२] यादवोदय नामक काव्य का उल्लेख करते हैं।

उपर्युल्लिखित एकाङ्की उपरूपकों के अतिरिक्त नाट्यामीमांसाविषयक ग्रन्थों में प्रेङ्खण नामक एकांकी नाट्य-शैली की पारिभाषिक संज्ञा के भी दर्शन होते हैं। साहित्य दर्पण में इसका लक्षण "गर्भविमर्शरहितम्" इत्यादि शब्दों में दे दिया गया है। प्रेक्षणक, प्रेक्षणीयक और प्रेक्षणिक शब्दों का शब्द-कोशों में वही अर्थ बतलाया गया है जो अंग्रेजी में जेनरल शो (A show) का होता है। अपरिभाषिक अर्थ में (Non-technical sense) प्रेङ्खण एक दृश्य कृति (A dramatic representation) के अर्थ का द्योतक होता है। प्रेङ्खण और प्र पूर्वक ईक्ष धातु से व्युत्पन्न प्रेक्षण और प्रेक्षणक शब्द एक दूसरे के स्थानापन्न होते हैं। इस बात की ओर व्यायोगों की चर्चा करते समय पहले भी संकेत किया जा चुका है।

शारदातनय[३], भोज[४], सागरनन्दी[५] ने जो प्रेक्षणिक के नृत्तरूपक के रूप में लक्षण दिये हैं और दर्पणकार ने जो प्रेङ्खण की परिभाषा की है उनका

१– काव्यभारमटी हीननेकाङ्क हास्यसङ्कुलम्।
× × ×
निदर्शनं तु काव्यस्य विज्ञेयो माधवोदयः। अमृतानन्दी (भरतकोश से)

२– काव्यमारभटीहीनेमेकां हास्य सङ्कुलम्।
नेता स्त्री चाप्युदात्तात्र संधि आद्यौचान्तिमः॥
यथा-यादवोदयम्। सा० द० ६. २८४–८५–पृ० ३६७

३– पदार्थाभिनयं यच्च ललितं च लयान्वितम्। एवं प्रेक्षणिकं विद्याद्यया त्रिपुरमर्दनम्॥
भा० प्र० –नवम अधिकार पृ० २६३.

४– यस्य पदार्थाभिनयं ललितलयं सदसि नर्तकीकुरुते।
तन्नर्तनकं शम्या लास्यच्छलिक द्विपद्यादि॥
रथ्यासमाजचत्वरसुरालयादौ प्रवर्त्तते बहुभिः।
पात्रविशेषैर्यत्तत् प्रेक्षणकं कामदहनादि।
शृङ्गार-प्रकाश, (एकादश प्रकाश) पृ० ४६८.

५– अशेष भाषोपशोभितं, शौरसेनीप्रधानं, गर्भविमर्शशून्यं,
तल्लक्षणयुक्तं च सर्व-वृत्तिनिष्पन्नं, प्रतिमुख-सन्धि-प्रवेशका न कर्तव्याः।
परिवर्तक-युक्तं प्रयत्नतः कार्यनियुद्धसंफेठ्युतम्।
विपदानुचिता-बहुलं च अत्र तु सूत्रधारो न विधेयः।
यथा – बालिवध। सागरनन्दी (भरतकोश से)

तुलना कीजिये–
गर्भविमर्शरहितं प्रेङ्खणं हीननायकम्।
असूत्रधारमेकाङ्कमविष्कम्भप्रवेशकम्॥
नियुद्धसंफेटयुतं सर्ववृत्ति-समाश्रितम्।
नेपथ्ये गीयते नान्दी तथा तत्र प्ररोचना॥ यथा– बालिवध। सा० द० ६, पृ० ३६७,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



तुलनात्मक अध्ययन करने पर भी प्रेक्षणक एवं प्रेङ्खण के एक ही शब्द के पर्यायवाची होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता है। इसके अतिरिक्त सागरनन्दी का प्रेक्षणिक के उदाहरणों के प्रसंग में "वालिवध" का और विश्वनाथ का प्रेङ्खण के दृष्टान्त स्वरूप उक्त रूपक (वालिवध) के नाम का स्मरण करना भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। साहित्यदर्पण के अनुसार इस एकांकी (प्रेङ्कण) में गर्भ और अवमर्श सन्धियाँ नहीं होती। इसका नायक कोई हीन-पुरुष होता है। इसमें सूत्रधार तथा विष्कम्भक एवं प्रवेशक का अभाव रहता है। नान्दी और प्ररोचना का नेपथ्य से पाठ किया जाता है। युद्ध और भंफेट एवं सब वृत्तियाँ होती हैं।

प्रेङ्खण शब्द रूप के अनुसार उपर्युक्त प्रेङ्खण, प्रेक्षणक, प्रेक्षणिक और प्रेक्षणीयक इत्यादि शब्दों का प्राकृत रूप प्रतीत होता है। किन्तु कभी-कभी कोई शब्द सामान्य अर्थ छोड़ कर किसी विशेष पारिभाषिक अर्थ में रूढ हो जाता है। यह बात प्रेङ्खण पर भी लागू होती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त पद-द्वय को एक-दूसरे का पर्यायवाची मानना अनुचित नहीं होगा। अभिधान-कोशों के अतिरिक्त वात्स्यायन के कामसूत्र में भी प्रेक्षणक का सामान्य प्रेक्ष्य-काव्य के अर्थ में प्रयोग मिलता है।[1] परवर्ती नाट्यकोविद भोजराज ने शृङ्गार-प्रकाश में इसे उपरूपक घोषित किया है।

उपरूपकों का प्राचीनतम वर्णन अब हमें अभिनवगुप्त की अभिनव-भारती में ही प्राप्त होता है। इसमें "प्रेक्षणक" के दर्शन नहीं होते। इस प्रकार के उपरूपक में कामदहन के समान लोक-प्रसिद्ध कथाओं को इसका विषय बनाया जाता है। उत्तर तथा दक्षिण भारत में प्रचलित "होलिकादहन" के कथा-वृत्त से इसकी समानता प्रतीत होती है। तामिल के कामण्टी (काम-दहन) में दो दल गीत गाते हैं जिसमें से एक में काम के दग्ध होने का वर्णन होता है और दूसरे में उसके सदा जीवित रहने का। इस प्रकार के गीत मराठी में लावणी कहे जाते हैं। शारदातनय ने एक स्थान पर नर्तक को भी प्रेक्षणक की संज्ञा दी है।

---

१– पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यं समासः।
कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। ...
कामसूत्र (चौखंभा प्रकाशन) १,४. १५–१६ पृ० १३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIE



कामसूत्र तथा नाट्यदर्पण में उपलब्ध वर्णन के निरूपण से ज्ञात होता है कि प्रेक्षणक राज-मार्ग पर, जनसमुदाय में, चौराहों पर, देवमन्दिरों के प्राङ्गण में, बहुपात्रों द्वारा प्रदर्शित किया जाता था। रामचन्द्र ने भी इसके उदाहरणार्थ–"कामदहन" का ही उल्लेख किया है। इससे ध्वनित होता है कि उपरूपकों का (विशेषकर प्रेक्षणक का) समाज में प्रचलित लोकनाट्यों से निकट का सम्बन्ध रहा होगा जिसमें गीत एव नृत्य की प्रधानता रहती है। इस प्रकार के अभिनेय लोककृत्यों में भाव प्रधान रहता है। इस प्रसंग में गुजरात के लोकप्रिय जन-नाटक भवाई की याद आ जाती है। भवाई में विभिन्न भाव प्रदर्शित किये जाते हैं। इस जन-मनोरंजन के नाट्य में शृङ्गार एवं हास्य की प्रधानता रहती है साथ ही वीर तथा करुण का सम्यक् परिपाक भी देखने को मिलता है। गीत नृत्य से ओतप्रोत गुजरात के चौराहों एवं देवालयों जैसे स्थानों पर अभिनीत होने वाले भवाई-नाट्य प्रेक्षणक नामक उपरूपक के लक्षणों का निर्वाह करता है। रसिकलाल छो० पारिख ने भी "भवाई नु स्वरूप" में इसका समर्थन किया है। प्रेक्षणकों की नाममाला प्रथम अध्याय में संलग्न है।

यद्यपि इनमें से सबके सब ग्रन्थ प्रकट रूप से अब प्राप्त नहीं होते, तथापि इनकी उक्त शीर्षकमाला के दर्शन से प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में इस प्रकार के उपरूपकों का प्रचलन अवश्य रहा होगा। यहाँ संक्षेप में इन कृतियों की चर्चा करना अनुचित न होगा। उपर्युल्लिखित प्रेक्षणकावलि में से विश्वनाथ के सौगन्धिकाहरण को (व्यायोगों का समालोचन करते समय) हमने व्यायोग की कोटि में ही रखना उचित समझा है। अतएव इसे प्रेक्षणक-परिवार से अलग कर देना ही ठीक है।

संस्कृत-साहित्य में प्रेक्षणकोद्यान का दूसरा सुमन है, काञ्चीपुर के निवासी कविशेखरवरदार्य के पुत्र कोलनाथ भट्ट का कृष्णाभ्युदय। प्रस्तुत प्रेक्षणक काञ्चीपुर के हस्तगिरिनाथ के वार्षिक यात्रा-महोत्सव के अवसर पर रचा गया था।[1] यह ग्रन्थ अब तक प्रकाशित नही हो सका था परन्तु श्री नरेन्द्र-

---

१– सूत्रधारः– अद्य नः सुप्रभातः। यत्काञ्चीपुरपतेः श्रीहस्तिगिरिनाथस्य वार्षिक-यात्रामहोत्सवे समवेताः सामाजिकाः समादिशन्ति ...

+ + +

सूत्रधारः– (स्मरणमभिनीय) आर्ये किं न जानासि? अस्ति खलु कविशेखर इति प्रथितमहाभिधानस्य वरदार्यस्य पुत्रेण लोकनाथभट्टेन विरचितं कृष्णाभ्युदयंनाम प्रेक्षणकम्।

कृष्णाभ्युदय।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



शर्मा ने इस कृति का सम्पादन तथा जबलपुर निवासी प्रो० जगदीशलाल शास्त्री ने इसका प्रकाशन करके संस्कृत-साहित्य के समक्ष एक खोई हुई निधि प्रस्तुत कर दी है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म की कथा का नाटकीकरण है। कवि की रमणीय रचना-शैली का नमूना इन पङ्क्तियों में देखा जा सकता है।

कापि स्तन्यरसं प्रदातुमुचितां गोगाङ्गनाभूमिकां
या प्राप्ता तदसून्सह स्तनरसैः कृष्ण त्वामापीतवान्।
अन्यात्वामिह विश्वसेत्कथमिति व्याहारिणीं मातरं
वीक्षन्स्मेर-मुखेन्दुरङ्कशयितो मायाशिशुः पातु नः॥

\+ ×

सूत्रधार :– अहोराग-सौभाग्यम्। (निरूप्य) व्यञ्जयति काव्यवस्तु गाथेयम्।[1]...

... ... ...

कृष्णाभ्युदय के अतिरिक्त भारद्वाज-गोत्रोद्भव महीसार के पुत्र सुदर्शन द्वारा रचित "कुमारीविलसितम्" नामक प्रेक्षणक का नाम भी प्रेक्षणक पुष्पिका में अंकित है। इस लघु उपरूपक में एक कुमारी की पुण्य कृतियों की कथा वर्णित है। यह कुमारी दक्षिण भारत के केरल के प्रपापुर की पूज्या दुर्गा ही है। इसकी एक प्रति व्याख्या-सहित भी रची गई थी जिसका ज्ञान हमें पाण्डु-लिपिमाला को देखने से होता है।

## उन्मत्त राघव

संस्कृत-साहित्य के प्रकाशित इतिहासों में "उन्मत्तराघव" नामक दो एकांकियों का उल्लेख भी आता है जिनमें से एक के रचयिता हैं विजयनगर के हरिहर द्वितीय के पुत्र विरूपाक्ष, और दूसरी कृति के भास्कर कवि। विरूपाक्ष की रचना चौदहवीं शताब्दी में रची गई थी। भास्कर के उन्मत्तराघव में उपलब्ध प्रमाण के अनुसार इसके कवि का दूसरा नाम विद्याचरण था।[2] इस

---

१– कृष्णाभ्युदय

२– सूत्रधार :– अद्य खल्वादिष्टोऽस्मि विमलतरनिजकीर्ति–कर्पूरकरण्डीकृत-निखिलब्रह्माण्डेन दिग्दंतावलकुम्भमण्डल–मण्डनायमानप्रतापसिंदुरेण सकलकलाकलापकोविदेन विद्यारण्य श्री चरणारविंदवंदन महोत्सव मिलितेनामुना सामाजिकेन, यथा–

उन्मत्तराघवं नाम यत्प्रेक्षाणकमुक्तवान्।
भास्करः कृतिनां मान्यस्तत्त्वयाद्य निरूप्यताम्। उन्मत्तराघव पृ० २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



प्रेक्ष्यकृति का रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी का मध्यवर्ती भाग होना चाहिए। इसकी प्रस्तावना में इसे प्रेक्षणक कहा गया है। संस्कृत नाट्य-साहित्य में मध्य युग का यही एक प्रेक्षणक मिलता है।

रामायण में चित्रित सीताहरण से पूर्व कञ्चन-मृग लाने के लिये राम के द्वारा सीता को लक्ष्मण के सहारे छोड़ जाने की घटना भास्कर कवि के प्रस्तुत प्रेक्षणक का आधार है। राम की सहायता करने के लिए लक्ष्मण के चले जाने पर अकेली सीता के साथ कवि ने उसकी सखी मधुकरिका की कल्पना की है किन्तु उसे पुष्पावचयार्थ उद्यान को भेज दिया है।

लुभावने फूलों को बीनती हुई दोनों सखियाँ बहुत दूर पहुँच जाती हैं। इसी बीच सीता किसी ऐसे उपवन में पहुँच जाती हैं, जहाँ पहुँच कर कोई व्यक्ति दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण हरिणी का रूप धारण कर लेता है। फलतः सीता भी हरिणी बन जाती हैं।

अगस्त्य :– तस्मिन्समये तेषु तेष्वाश्रमेषु तीव्रतपःशंकिनामहेन्द्रेण विसृष्टानां चरन्तीनां मध्ये हरिणी नाम काचिदेतत्तपोवनं प्रविश्य पुष्पाण्य वाचिनोत्।

रामः – हन्त, महान् प्रमादः।

अगस्त्य :– ततः परमभिषेकायागच्छन्नयं दुर्वासास्तामवलोक्य–'अये हरिणी, यतोऽस्मद्देवतार्चनोचितानि कुसुमान्यवचिनोषि, ततस्त्वन्नामसदृशी मेवाकृतिमेहि' इति शशाप। तदानीमेव परित्यज्य वनमिदमन्तर्हितश्च।[१]

उस रूप में सीता को न पहचान सकने के कारण सखी मधुकरिका तो दुःखी हो ही जाती है, उसके पति-देव रामभद्र की विरह-वेदना भी प्रचण्ड हो उठती है। यहाँ कवि की लेखनी से विप्रलम्भ शृंगार का मनोहारी चित्रण हुआ है। नायक-नायिका के होने वाले वियोग का आभास इस उपरूपक के आरम्भ में भ्रमरभ्रमरी के विलग होने की घटना में मिल जाता है।

---

१– उन्मत्तराघव पृ० १५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



सीता – (सद्दष्टिक्षेपम् ।) हला, इदो ममरोकिरिणमित्तं संभमन्तो देसु देसु लदाविडवेषु कुसुमकोडरेसु आलुठन्तो परिब्भमई ।

मधुकरिका – (विभाव्य ।) हला, मअरन्दपारारिगच्चल पक्खदाए पल्लवन्तरिदं इमं सहअरिं भमरिं अवेक्खन्तो अविलोमरण वेअरणाए-रगूरणं उन्मत्तो संवुत्तो ।

मधुकरिका–अम्हहे । सविसेसं परिब्भन्तो विएसो सहअरिं रण पेक्खदि ।

सीता – महुअरिए, संजोजेहिरणम् ।[1]

यहाँ संस्कृत काव्यों में चित्रित धीरोदात्त नायक श्रीराम सीता से वियुक्त होने पर साधारण मानव के सदृश्य उन्मत्त हो जाते है, जो उनके कुलशील के अनुरूप नहीं प्रतीत होता । उनका यह रूप संस्कृत नाटकों के कामुक नायक का सा दिखाई देता है । इस प्रकार "उन्मत्त राघव" के राम प्रेङ्खरण या प्रेक्षरिगक के लक्षरणों से निर्दिष्ट नायक के गुरणों से युक्त (हीननायक) प्रतीत होते हैं । इस लघु प्रेक्षरणक पर कालिदास के प्रसिद्ध डोटक विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थ अङ्क का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । उन्मत्तराघव में चित्रित विरहविदग्ध राम का प्रलाप विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में वर्णित (उर्वशी के लता रूप में परिरगत हो जाने पर) नायक पुरूरवा के विलाप से मिलता जुलता है ।

उर्वशी – (जा किल ... ... परिरगदं में रूपम्) या

किल स्त्री इमं प्रदेशं प्रविशति सा लताभावेन परिरगंस्यतीति, कृतश्चायं शापान्तः गौरीचररणरागसंभवं मरिंग विना ततो न मोक्ष्यत इति ।

ततोऽहं गुरुशापसंमूढहृदया देवता-समयंविस्मृत्यागृहीतानुनया स्त्रीजन-परिजनहररगीयं कुमारवनं प्रविष्टा । प्रवेशान्तरमेव च काननोपान्त-वर्तिवासान्ते लताभावेन परिरगतं मे रूपम् ।[2]

\+ \+ \+

---

१– उन्मत्तराघव पृ० ४

२– विक्रमोर्वशीय – अङ्क ४,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



नीलकण्ठ ममोत्कन्ठा वनेऽस्मिन्वनिता त्वया।
दीर्घापांगा सितपांगदृष्टा दृष्टाक्षमा भवेत् ।।[१]
हंस प्रपच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता।
विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ।।[२]

तुलना कीजिये–

रामः – हा, हतोऽस्मि।
ज्वलत्तुषाराग्निकणोपमानि सीता न दृष्टेति दुरक्षराणि।
कर्णं प्रविष्टानि हठादमूनि सर्वांग-तापं जनयन्ति हन्त ।।
रामः – भवतु। एतामेव पृच्छामि।
त्वामागतेयं पदपंक्तिरस्याः प्रयच्छ मे पद्मिनि पद्मवक्ताम्।
न चेत्तदीयां चरणाब्जमुद्रां प्रदर्शयान्यत्र विनिर्गतां मे ।।[३]

कालिदास की तरह भास्कर का विषयप्रवेश कराने का ढंग भी सराहनीय है।

सूत्रधारः– साधु गीतम्। (अन्यतोऽवलोक्य) आर्ये! इतः पश्य
मनोहराणामपि मञ्जरीणां विहाय जालानि विशेषलिप्सुः।
लतान्तराण्येति मधुव्रतालि सीता यथेयं कुसुमेषु लोभात् ।।[४]

सूत्रधार द्वारा वर्णित वसन्तकालीन प्राकृतिक छटा नटी के माधुर्यसिक्त स्वागत गान में मुखरित है।

सूत्रधारः– नन्विदानीं वर्तते वसन्तसमयः। तथाहि।
माकन्दालिं मलयपवना मन्दमान्दोलयन्ते
मज्जत्यस्या मधुकरयुवा मञ्जरीणां मरन्दे।
आसेवन्ते मुकुलनिकरानासमन्तादशोका
वक्तुं मत्ताः पिकयुवतयः पञ्चमं प्रारभन्ते ।।[५]
जस्स हि महू अमच्चो दक्खिणपवणो वरूहिणीणाहो।
पिअ भमराणुअरो सो जेदु चिरं वम्महो राओ ।।[६]

---

१– विक्रमोर्वशीय २१; अङ्क ४, कालिदासग्रंथावली – सं० सीताराम चतुर्वेदी, पृ० २२०.
२– विक्रमोर्वशीय ३४; अङ्क ५, कालिदासग्रंथावली – सं० सीताराम चतुर्वेदी, पृ० २२४.
३– उन्मत्तराघव, ६-१८ पृ० ८ (काव्यमाला संस्करण)
४– उन्मत्तराघव ६, पृ० २
५– उन्मत्तराघव ४, पृ० २
६– उन्मत्तराघव ५; पृ० २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MDI



राम के साथ सदा छाया की तरह रहने वाले उनके कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण का चरित्र पूर्ण उदात्त है। मातृतुल्या भाभी सीता के विरह में अपने बड़े भाई राम के निरन्तर बढ़ते हुए उन्माद को देखकर उन्हें बहुत दुःख होता है। इन पंक्तियों से उनकी मनोवेदना का अनुभव किया जा सकता है।

रामः–(क्षणमात्रं तूष्णीं स्थित्वा) अयि, जानकि! किमित्यौदासीन्यं भजसि।
आगत्य तूर्णमसितोत्पलरम्यनेत्रे
कण्ठं बधान मम ते भुजवल्लरीभ्याम्।
पश्चादुपेत्य निभृतं पदमर्पयन्ती
यद्वा पिधेहि नयने करपल्लवाभ्याम् ॥[1]

इस प्रसंग में उनके मुख से निःसृत प्रत्येक वाक्य में अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति उनका निष्कपट प्रेम झलकता है। यथा—

लक्ष्मणः–कष्टमार्यस्योन्माददशा वर्तते। आर्य, न जानकी।
(इति मूर्धानमुन्नमयति।)

× × ×

लक्ष्मणः– अहो, ज्ञानाज्ञानयोः संकरः। तथाहि—
वाक्यानि कानिचिदयुक्ततराणि वक्ति......[2]

कवि ने कहीं–कहीं पद्यमय संवादों को भी स्थान दिया है जिससे काव्य रोचक बन गया है।[3]

इस प्रेक्षणक के कुछ वाक्य सूक्ति के रूप में स्मरणीय हैं—

विज्ञानविशदमेव हि चेतः सुजनस्य शक्यते हर्तुम्।
परिशुद्धमेव लोहं सुतरां कर्षत्ययस्कान्तः॥
लक्ष्मणः– प्रेमविशेषो हि प्रियजने प्रथमं प्रमादमेव चिन्तयति।

---

१– उन्मत्तराघव २७, पृ० १०
२– उन्मत्तराघव २७, पृ० ८, ६.
३– उन्मत्तराघव पृ०, १३–१४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MHRD



इसके प्रथम नान्दीश्लोक प्रणयकलह में रत शिव–पार्वती की स्तुति कवि की रसिकता की परिचायक है।

कला चान्द्रीः शंभोः प्रणयकलहप्रापितरूषः
प्रणामे पार्वत्याः पदकमल-लाक्षापरिचिता।
श्रियै भूयादस्या वदनशशिनः कोपकलुषा
प्रसादेनारूण्यं विनिमय-वशेनेव दधती॥[1]

## मधुकरिका का चरित्र

कवि द्वारा कल्पित सीता की सहेली मधुकरिका का चरित्र भी महत्व-पूर्ण है। हमें सर्वप्रथम राम की सहायतार्थ लक्ष्मण के चले जाने पर पतिव्रता सीता का मन बहलाती हुई मधुकरिका के दर्शन पुण्योद्यान में पुष्प-संग्रह करते हुए होते हैं। अपनी सखी के प्रति उसका अपार प्रेम है। पुष्पोद्यान से सीता के लुप्त होते ही उसके लिये उसका हृदय रोने लगता है।

मधुकरिका... ...
(वनान्तरं विलोक्य सावेगम्।) कहिं गदा जाणई। (पुनर्विलोक्य)
अम्हहे। ण कस्सिं वि दीसइ। (वनान्तरं प्रविश्य सर्वत्रान्विष्यन्ती)
... ... ...
(निःश्वस्य।) मन्दभाइणी अहं खु। मि अ आवा वारादो
णिउत्तस्स रामभद्दस्य कहं हिस्सम्।[2]

राम के लौटने पर वह उन्हें यह समाचार किस मुख से सुनावेगी, इसी चिन्ता में डूबी हुई दिखाई देती है।

अन्त में अगस्त्य ऋषि के दर्शन होते हैं जो इस प्रेक्षणक के जानकी के विरह में दुःखी सब पात्रों से सीता को मिलाते हुए उसके विलग होने का रहस्य खोलते हैं और राम उनके इस आशीर्वाद को ग्रहण कर कृत–कृत्य हो जाते हैं—

---

१– उन्मत्तराघव–पृ० २
२– उन्मत्तराघव–पृ० ४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अगस्त्यः— अनया जानक्या लक्ष्मणेन सह महान्तं कालं वर्तेथाः ।
अपिच ... ... ... जीयात्कीर्तिः श्रीनिधेः राघवेन्द्र...

इस प्रकार कालिदास के विक्रमोर्वशीय से प्रेरणा लेकर लिखित होने पर भी इस लघु प्रेक्षणीयक में कवि की मौलिकता देखने को मिलती है। साहित्यशास्त्र में प्राप्त प्रेक्षणक (प्रेङ्खण) की परिभाषा के अनुसार यद्यपि इसमें इस उपरूपक के सब लक्षण नहीं घटित होते हैं तथापि यह उपरूपकों के इस भेद का एक सुन्दर दृष्टान्त है, इसमें सन्देह नहीं। उन्मत्तराघव के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० वी० राघवन् के कुछ प्रेक्षणक भी प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु इनमें प्रेक्षणक नामक उपरूपकों में शास्त्रोक्त लक्षण घटित न होने के कारण इनका विवेचन आधुनिक एकाङ्की नाटिकाओं के साथ करना ही उपयुक्त होगा।

श्रीगदित भी एक प्रकार का एकाङ्की उपरूपक है। इस पर अभिनवगुप्त[1], सागरनन्दी[2], शारदातनय[3], अमृतानन्दी, शुभंकर भोज, विश्वनाथ[4] आदि आचार्यों ने विचार किया है। इन मीमाँसकों द्वारा लक्षित श्रीगदित के लक्षणों पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि इनमें से कुछ लोगों के अनुसार यह एक नृत्य[5] का भेद माना जाता है। कतिपय विचारकों के मतानुसार यह प्रायः नाटक के समान होता है। कुछ विद्वानों के विचार से यह भाण के समान होता है। लगभग सब ने क्रीडारसातल को ही इसका उदाहरण बतलाया है। केवल शारदातनय के वाक्यों से रामानन्द नामक श्रीगदित का ज्ञान भी होता है। प्रायः सब ने ही इसमें भारती वृत्ति के बाहुल्य तथा गर्भ और अवमर्श

---

१– सख्याः समक्षं भर्तुर्यदुद्धतं वृत्तमुच्यते ।
मसृणं च क्वचिद्धूर्तचरितं पिद्गकस्तुसः ॥

२– तत्र स्त्री करुणमासीना पठति एकाङ्कमुदात्तवचनकृतं
भारती-वृत्ति – प्रधानं प्रख्यातवस्तु नायकम् – यथा क्रीडारसातलम् (सागरनन्दी भरतकोश से)

३– भा. प्र. नवम अधिकार पृ० २५८

४– सा० द० ६, २९३–९५. पृ० ३६८

५– डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणी श्रस्थानरासकाः ।
काव्यं च सप्त नृत्यस्यभेदाः स्युस्तेऽपि भाणवत् ॥ दशरूपक (धनिक की टीका पृ० २)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MHRD



सन्धियों के अभाव को स्वीकार किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें नायिका लक्ष्मी का स्वरूप बनाकर कुछ गाती है या कुछ बोलती है, इसी से इसका नाम श्रीगदित पड़ा है। श्रीगदित के ऐसे नामकरण के कारण परभोजराज ने भी अपने शृङ्गार पर प्रकाश डाला है।[1] उनके अनुसार यह काव्य-भेद विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन करता है। इसकी नायिका कोई विरहिणी कुलवती नारी होती है। इसका दूसरा पात्र नायिका की सखी होती है जिसके सामने वह अपने वियुक्तपति के गुणगान करती है। इसके विपरीत अपने पति द्वारा प्रणय–व्यापार में वञ्चिता नायिका (विप्रलब्वा) दुःखी होकर उसके दोषों का स्मरण करती हुई पुर्नमिलन के लिये आकुल-सी दिखती है। जैसे लक्ष्मी अपने नारायण के सामने उनके गुणों की स्तुति करती है, वैसे ही इस उपरूपक की नायिका अपने पति का गुणगान करती है।

"तत्र श्रीरिव दानवशत्रोः यस्मिन् कुलाङ्गनापत्यः।"

यही इसके श्रीगदित कहलाने का कारण है। भोजराज के श्रीगदित की तुलना अभिनवगुप्त के षिद्गक से की जा सकती है। षिद्गक की परिभाषा भोज के श्रीगदित के लक्षणों से मिलती जुलती है। तामिल का "कुरवंची" जिसमें नायिका अपने प्रेमी के लिये व्याकुल रहती है तथा अपने हृदयगत भावों को अपनी किसी सहेली के समक्ष प्रकट करती है, संस्कृत के श्रीगदित से बहुत कुछ मिलता जुलता है।

## सुभद्राहरण

संस्कृत-साहित्य के अलङ्कार शास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में क्रीडारसातल और रामानन्द शीर्षक श्रीगदित के नाममात्र मिलते हैं। माधवभट्ट ने अपने सुभद्राहरण नामक एकाङ्की में इसे श्रीगदित[2] कहा है। इसी में इस लघु ग्रन्थ

---

१– तत्र श्रीरिव दानवशत्रोर्यस्मिन् कुलाङ्गना पत्युः।
वर्णयति शौर्यधैर्यप्रभृतिगुणानग्रतस्सख्याः (रव्युः)॥
पत्या च विप्रलब्धा गातव्ये ता (तं) क्रमादुप (पा) लभस्ते (भते)
श्रीगदितमिति मनीषिभिरूदाहृतोऽसौ पदाभिनयः॥ शृङ्गार प्रकाश.

२– पारिपार्श्वकः– भाव ! केनापि भवद्वचः श्रवणेनावधारयामि यन्मण्डलेश्वरभट्टात्मजेन श्रीमाधवेन निर्माय युष्मासु स्वाभाविक-सुहृद्भावेन समर्पितम्..
श्रीमत्सुभद्राहरणं नाम प्रसिद्ध–नायकोपेतं श्रीतिशब्दोपरञ्जितं श्रीगदितम्...
सुभद्राहरण २, (चौखम्भा प्रकाशन) पृ० २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MDI



के प्रणेता ने अपना संक्षिप्त परिचय भी दिया है। इसके अतिरिक्त माधवभट्ट के विषय में ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं है। आचार्य विश्वनाथ ने इसके उदाहरण में इसकी चर्चा नहीं की है। अतः अनुमानतः यह रचना साहित्य-दर्पण के प्रणयन के बाद की ही प्रतीत होती हैं। कुछ लोग इसकी हस्तलिखित प्रति के आधार पर इसको १६६७ वि. सं. में लिखित मानते हैं।

इसकी कथा का आधार श्रीमद्भागवत है। इसके दशमस्कन्ध के ८६वें अध्याय में जो सुभद्राहरण का प्रसंग आता है, कवि माधवभट्ट ने वहीं से अपने उक्त एकांकी के लिये प्रेरणा ग्रहण की है। भागवतपुराणस्थ इस कथा का सारांश इस प्रकार है–

## महाभारत में घटित सुभद्राहरण

एक बार तीर्थयात्रा के उद्देश्य से घूमते हुए अर्जुन प्रभास क्षेत्र में पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने अपनी ममेरी बहिन सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करने के लिए बलराम को इच्छुक पाया। सुभद्रा को प्राप्त करने की इच्छा से अर्जुन ने द्वारका में पहुंचकर वहाँ एक वर्ष तक वास किया। एक बार बलराम द्वारा अपने घर पर आमन्त्रित यतिवेशधारी अर्जुन को सुभद्रा ने देखा और अर्जुन ने सुभद्रा को। फलतः दोनों एक दूसरे पर आसक्त हो गए। एक दिन देवोत्सव के अवसर पर राज-महल से रथ पर सवार होकर बाहर निकली हुई सुभद्रा को उसके माता-पिता एवं भाई श्रीकृष्ण की अनुमति से अर्जुन हर ले गए। पहले तो बलराम इस घटनाश्रवण के उपरान्त बहुत क्रुद्ध हुए परन्तु श्रीकृष्ण तथा मित्रों के समझाने बुझाने पर शान्त हो गए और उन्होंने विवाहोत्सव पर उपहार भी भेजे।

> अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः।
> गतः प्रभासमश्रृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः॥
>
> — — —
>
> प्राहिणोत् पारिबर्हाणि वरबध्वोर्मुदा बलः।
> महाधनोपस्करेभरथाश्वनर – योषितः॥[1]

इसी कथा को कवि माधवभट्ट ने अपनी अपूर्व कल्पना-शक्ति से प्रभावोत्पादक बना दिया है। नाटक की कथा में श्रीमद्भागवत में वर्णित वार्ता में कुछ रूपा-

---

1 - श्रीमद्भागवत अध्याय २ १२,८६ पृ० ६५४-५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



न्तर करके उसे अभिनव रूप दे दिया गया है। इसकी पुष्टि में दोनों कहानियों पर तुलनात्मक दृष्टिक्षेप करना यहां उचित प्रतीत होता है। अस्तु–

मूल कथा में अर्जुन को त्रिदण्डी संन्यासी कहा है, परन्तु श्रीगदित में हमें एक सामान्य यति के रूप में ही नायक अर्जुन के दर्शन होये हैं। श्रीमद्-भागवत के अनुसार अर्जुन द्वारका में एक वर्ष तक रहते हैं और वलराम द्वारा आमन्त्रित किये जाने पर उनके घर जाते हैं, इसके विपरीत सुभद्राहरण नाटक के अर्जुन का द्वारका में रहने का कोई समय निश्चित नहीं है। वह स्वयम् ही यति वेश में वलराम के द्वार पर आ पहुँचते हैं। मूल कथा के अनुसार सुभद्रा का हरण उसके माता-पिता की आज्ञा से हुआ, किन्तु इस उपरूपक में यह बात गुप्त है। कृष्ण के समर्थन से इसका संकेत मात्र मिलता है। माधव भट्ट के सुभद्राहरण में एक दिव्य पुरुष के वरवधू के लिये उपहार के साथ आने का जो वर्णन है, वह भी मूलकथा में लुप्त है।

हम ऊपर उल्लेख कर आए हैं कि श्रीगदित कुछ लोगों के अनुसार पदार्थाभिनय (नृत्य प्रधान उपरूपक) और कुछ लोगों के मतानुसार वाक्यार्था-भिनय (नाट्य प्रधान कृति) होता है। डॉ० वी० राघवन् ने भोजकृत श्रृंगार प्रकाश में उपन्यस्त श्रीगदित की परिभाषा को ध्यान में रख कर माधवभट्ट-कृत सुभद्राहरण को श्रीगदित के उदाहरणस्वरूप स्वीकार करने में कुछ संकोच प्रकट किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने यह निर्णय इसे पदार्थाभिनय[1] मानकर ही दिया है। यदि हम दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ द्वारा लक्षित श्रीगदित[2] का चित्र सामने रखकर सुभद्राहरण पर विचार करें तो इसे श्रीगदित

---

१– In the Subhadraharana of Madhava in Kavyamala 9,we have a specimen that calls itself expressly in the prologue an Uparupaka and Srigadita, but it has no feature answering to anything in the discription of Srigadita noted above, in fact no characteristic feature by virtue of which we could identify it with any Uparupaka.

Bhoja's Srangara Prakasa by V. Raghavan. Page 547.

पत्या च विप्रलब्धा गातव्ये ता क्रमादुपलभन्ते।
श्रीगदितमिति मनीषिभिरुदाहृतोऽसौ पदाभिनयः॥ भोजः॥

२– साहित्यदर्पण २९३-९४; षष्ठ परिच्छेद पृ० ३६८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



का उदाहरण मानने में कोई आपत्तिजनक वात दिखाई नहीं देगी। अस्तु–साहित्यदर्पण में बतलाया गया है कि श्रीगदित की कथा स्वतः प्रसिद्ध होनी चाहिए। धीरोदात्त नायक और नायिका भी सुप्रसिद्ध होनी चाहिये। श्रीगदित "श्री" शब्द और भारतीवृत्ति से युक्त केवल एक अंक का होना चाहिए। गर्भ और विमर्श सन्धियों का भी इसमें सर्वथा अभाव होना चाहिये। माधवभट्ट के सुभद्राहरण में ये सब लक्षण समन्वित हैं। इसकी कथा है–सुभद्रा का हरण। इतिहास प्रसिद्ध अर्जुन नायक है, नायिका सुभद्रा भी महाभारत और भागवत में वर्णित होने के कारण प्रख्यात हैं। अतः इसकी ख्याति में सन्देह नहीं होना चाहिये। नायक का धीरोदात्तता प्रस्तुत एकाँकी में प्रकट होती है। अर्जुन बहुत तेजस्वी, गम्भीर, सहनशील, स्थिर और अहंकार-शून्य एवं दृढ़व्रत व्यक्ति हैं। एकाँकी होने के साथ-साथ यह विमर्श सन्धि से मुक्त भी है। इसकी नायिका सुभद्रा मुग्धा परकीया कन्या है। शृङ्गार रस अङ्गी है। कवि ने नान्दीपाठ में इसके मुख्य रस के अनुकूल नवरसमय भगवान् शंकर की स्तुति करके रस-शास्त्र में अपने पाण्डित्य को सिद्ध किया है। पार्वती शृङ्गार, धनुष् से वीर, मुख से हास्य, कपालमाला से वीभत्स, सर्पराज से भय, भौंहों के कौटिल्य से रौद्र, अनंगप्रिया रति से कारुण्य, नेत्रों से सूर्यचन्द्र जैसे तेज और अग्नि से अद्-भुत तथा अपने चित्त से शान्त रस को प्रकट करने वाले नवरसमय भोलेनाथ से कवि भक्तों की रक्षा करचे की प्रार्थना करता है।

शृङ्गारं हैमवत्या प्रथयति धनुषा वीरमास्येन हास्यं
वीभत्सं स्रवकपालैर्भयमहिपतिनाभूविजृम्भेण रौद्रम्।
— — —
शान्तं चित्तेन भूयात्स नवरसमयः शंकरः शर्मणे वः॥

इन मङ्गलमय वचनों के उच्चारण के उपरान्त शृंगार–सिक्त सुभद्राहरण नाटक का प्रारम्भ होता है। काम किस प्रकार प्रणयियों के हृदयस्थ भावों को उभारता है इसे सुभद्रा की शृङ्गार से ओत–प्रोत पंक्तियाँ व्यक्त करती हैं–

चपलं नयनं निरङ्कुशो मदनः कातरमङ्गनामनः।
सुरभिः समयो नवं वयः प्रथमं प्रेम किमालि साम्प्रतम्॥[1]

---

1– सुभद्राहरण २१.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



अर्थात्–हे सखि। मेरे नेत्र चञ्चल हैं, मेरा (हृदयस्थ) मदन निरंकुश है, मेरा नारी-मन कातर है। वसन्त का समय है। मेरी युवावस्था है और प्रेम का यह पहला ही अवसर है। ऐसी दशा में सखि, तू ही बता, मैं क्या करूँ ?

नायक अर्जुन भी सुभद्रा के अलौकिक सौन्दर्य को देख कर ठगे से रह जाते हैं–यह निश्चय नहीं कर पा रहे कि उसकी उपमा किससे दी जाय ?

अर्जुनः– (पुरोऽवलोक्य सहर्षमात्मगतम्) अहह, अदृष्ट–पूर्वः सौन्दर्यातिशयः। तथाहि।

यदीयं श्रीरिन्दोः कथमिह तदा सत्रविलसे–
त्प्रभेयं भानोश्चेदमृतरसवर्षं न कलयेत्।
स्फुरन्ती गेहेऽस्मिन्न च तडिदियं मेघविरहा–
त्ततो मन्ये दृष्टेर्मम सुकृतवल्लीफलमियम्॥[1]

अर्थात् यदि इसे (सुभद्रा को) चन्द्रकान्ति कहें तो दिन में कैसे विद्यमान हैं, यदि भानु की प्रभा समझें तो यह अमृतवर्षिणी कैसे हैं, और यदि बिजली मानें तो मेघ के बिना इसका घर में चमकना कैसा ? इन सब बातों को असम्भव मान कर इसे अपनी दृष्टि की पुण्य लतिका का मधुर फल समझना ही उचित है।

ऐसी सुन्दरी के प्रति आसक्त अर्जुन की विरहावस्था में बड़ी दुर्दशा हो जाती है। वियोगी नायक की दयनीय मनोदशा का वर्णन करके कवि ने विप्रलम्भ श्रृङ्गार को भी अपने काव्य में स्थान देकर कृति का महत्व बढ़ा दिया है।

अर्जुनः–ह हन्त, तस्या दर्शनात्प्रभृति–
शैत्यं केन यदद्य मर्मरदला जायन्त एते द्रुमाः
शुष्काम्भांसि सरांसि संनिधिवशात्किं चान्यदप्यद्भुतम्।
दीर्घोच्छ्वासपरम्परापरिचयान्मूर्च्छन्ति वाता यत–
स्तापः कीदृगयं ममाङ्गमधुना हा धिग्विधेऽधिष्ठितः[2]

---

१– सुभद्राहरण १०, पृ० ८
२– सुभद्राहरण, २२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अर्जुन – शीतलता कहाँ से आ सकती है ? जबकि आज वृक्षों की पत्तियाँ सूख रही हैं, तालाब सूखे हैं और मेरे अंग-अंग को संतप्त करने वाली हवाएँ भी गरम-गरम वह रही हैं।

अङ्गी शृङ्गार के अतिरिक्त इसमें हास्य, करुण जैसे अन्य रस भी पोषक के रूप में विद्यमान हैं।

नेपथ्य से किसी बन्दर के उत्पात मचाने के समाचार सुनकर रक्षणार्थ अर्जुन से प्रार्थना करते हुए श्रीरंग ब्राह्मण के मुख से निकले भीतियुक्त अस्पष्ट वाक्य हास्य की सृष्टि करने में समर्थ हैं[1]–

उच्चैः सद्म विलङ्घयन्नपहरन्नारामपुष्पोत्करा
नद्राक्षिभ्रु वचालनैर्विक्लयन्नारात्पुरः स्त्रीजनम्।
लाङ्गूलं भ्रमयन्नुदग्रदशनान्निष्पिष्य-कोलाहलं
कुर्वन्नुद्भटपाणिपादनखरः कीशोऽयमुत्सर्पति [व्याघ्रोऽयमुत्सर्पति]॥

— -- —

बलदेवः– कथं व्याघ्रः ?

श्रीरंगः–नहि नहि स्वामिन्, त्रासवशात्करणापाटवं मम जातम्।
किन्तु कीशोऽयमुत्सर्पति।

बलदेवः [सहासम्]अहोजात्यैव भीरवो ब्राह्मणाः यदेतेऽल्पेनैव निमितेन बिभ्यति। [पुनः क्रोधं नाटयित्वा मदस्खलितेन] तथापि कु कुत्र स स पापिष्ठः

[ततक्रियामभिनयन्।]

किं कृष्ट्वा हहलेन हन्मिभुमुजेनाक्षिप्य मृद्नामि वा
किं वा तं चुचुचूर्णयामि मुसलाघातेन चूर्णघनम्।
किं वोच्चैवधरातले ससकलं संपातयेदुद्रुतं।
किं वा तेनसिसीधु पूरय पपापात्रं पिवामि क्षणम्॥

अर्थात् क्या मैं उसको हल से खींच कर मार डालूं ? अथवा पकड़ कर हाथ से मल दूं ? या मूसलप्रहार से चूर्ण की तरह चूर-चूर कर दूं ? या बड़ी ऊँचाई से

1– सुभद्राहरण १६; १७ पृ० १६,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



जमीन पर पटक दूं या किसी पात्र में भर कर पी जाऊँ ? इस प्रकार बलराम द्वारा ब्राह्मणों की भीरुता पर कटाक्ष किया गया है। श्रीहर्ष की रत्नावली के द्वितीय अङ्क में उत्पाती बन्दर का वर्णन सुभद्राहरण के इस चित्रण से मिलता जुलता है।[1]

निरन्तर कार्यरत रहने के कारण क्लान्त जनता समय-समय पर उत्सव मनाकर अपना हृदयावर्जन किया करती है। इस एकाङ्की उपरूपक में भी कवि ने वसन्तोत्सव के मनाए जाने का उल्लेख किया है। बहुत पहले से घर-घर में उसकी तैयारियाँ जोर शोर से होने लगती हैं। यह प्रसंग कवि की वर्णन शक्ति का द्योतक है–

बलदेवः ( इति श्रुत्वा क्रोधं संहरन्सर्वतोऽवलोक्य । स्वगतम् । ) कथं वसन्तोत्सवारम्भः । यतः

उद्‌धूयन्ते विचित्राः प्रतियदुभवनं केतुबद्धाः पताकाः[2] ...

यदुओं के घर घर में रंग बिरंगी पताकाएँ फहरा रही हैं, केलों के खम्भों से सुसज्जित द्वार पर जलपूर्ण मंगलकलश रक्खे जा रहे हैं, स्वर्णालंकारों से मण्डिता कन्यकाएं नए कौसुम्भी वस्त्र धारण किये हैं, मालाकार उपवन के वृक्षों को काट छाँट कर सँवार रहे हैं। कोई वनिता सुगन्धित पुष्पों का हार बना रही है, तो कोई श्रीखण्ड के जल से केशर की पिण्डी घोल रही है और कोई ‌भी वीणादि वाद्य सजा रही हैं एवं कोई महिला चाट और मदिरा तैयार कर रही है तो दूसरी वस्त्रों को रँगने में व्यस्त है। ऐसे ही वातावरण में अर्जुन सुभद्रा का हरण कर लेते हैं।

भयात्पलायमानानां योषितामिह यूथतः ।
हरिणीनामिव भ्रष्टा भाति मुग्धा मृगीव मे ॥
(इत्युपसृत्य तां पाणौ गृहीत्वा रथमारोहयत् । )
साध्वसं सपदि सुन्दरित्यज स्नेह-भाजनममुं विलोक्य ।
अर्जुनोऽस्मि शरणार्थिनामहं रक्षिता द्विषदकाल-मृत्युभूः ॥[3]

---

१– रत्नावली, द्वितीय अंक. २. (चौखम्भा प्रकाशन) पृ० ६५.
२– सुभद्राहरण–१८–१९ पृ० १९,२०.
३– सुभद्राहरण, २८–२९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इस समय उसकी प्रेमिका सुभद्रा के मन की विचित्र गति हो रही है। एक ओर अपनी ईप्सित वस्तु के अकस्मात् मिल जाने पर उसे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है तो दूसरी ओर उसके भाई-बन्धु इस घटना को सुन कर उसके विषय में क्या कहेंगे ? यह आशङ्का भी उसके मन को जला रही है। ऐसी परिस्थिति में वीर अर्जुन के मुख से उसके लिये निकले आश्वासन के वचन बिल्कुल स्वाभाविक प्रतीत होते हैं।

अर्जुनः-प्रिये, मा विभेहि । पश्य ।

आनीतो दारुकेणायं कृष्णस्यैवाज्ञया रथः ।
तत्प्रीतया रौहिणेयस्तु रोषं विफलयिष्यति ॥ [१]

इसमें कवि ने प्रयोगातिशय द्वारा प्रस्तुत आमुख में चतुर्थ आश्रम संन्यास को उत्तम बतलाया है और उसकी समानता राज्य के साथ दिखलाई है।

अर्जुनः-अहो चतुर्थाश्रमः किमपि परमानन्द-निधानम्[२] । येनात्र
नाना कौसुमसौरभिण्युपवने सख्यं सुखैर्मरुतैः-
भैक्ष्ये भोज्यरूचिः सदोपनिषदि प्रीतः प्रियायांपरा ।
सौहित्यं सरसां जलैः सुलभया भूर्ज त्वचाच्छादनं
-निद्रा निर्मल-सैकते किमपरं राज्यं स्वतन्त्र स्थितिः ॥

अर्थात्:-अनेक पुष्पों से सुवासित वन-उपवनों में सुख देने वाले पवन से सख्यभाव, भिक्षान्न में रुचि, उपनिषदों में अपार प्रीति, तालाब के जल से तृप्ति, वल्कलवस्त्र स्वच्छसिकतामयस्थान में निद्रा, और जहाँ स्वतन्त्रता की प्यारी बहार रहती है, वह किस राज्य से कम है, अर्थात् दूसरा राज्य ही है।

गृहे गृहे गृहस्थानां गृहणन्तो ग्रासमन्वहम् ।
अपीडया ततः श्लाघ्या वृत्तिर्माधुकरी मुनेः[३]

अर्थात्:-घर घर से बिना गृहस्थों को पीड़ा दिये प्रतिदिन अन्न प्राप्त करते हुए मधुकरी वृत्ति अपनाना मुनिजनों के लिये उत्तम है।

---

१- सुभद्राहरण ३०, ३२, पृ० २८-३०
२- सुभद्राहरण ७
३- सुभद्राहरण ८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



यतिवेशधारी नायक अर्जुन के लिये तो यह वेश मानो वरदान ही है। छल से बने संन्यासी अर्जुन को जब यह आश्रम इतना सुखदायक है तो वास्तविक यतियों के आनन्द का क्या कहना ? उनके सुख का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।[1] कवि की यह मौलिकता है। उसने इस दृश्य को नाटक में स्थान देकर इस कथा में चार चाँद लगा दिये हैं। इससे यतियों के प्रति कवि का भी आदरभाव प्रकट होता है। इसकी सुन्दर एवं सरस रचना-रीति को देखते हुए कवि की अपने विषय में कही गई यह उक्ति असत्य नहीं प्रतीत होती—

ततिरिव फणिवल्लया: केवलनां दलानां
यदपि रुचिनिदानं गुम्फना मे न वाचाम् ॥
तदपि रस–गुणानामार्द्र–पूगी–फलाना
भिव मुहुरनुषङ्गाद्रज्जनायक्षभैव ॥

## दान-केलि-कौमुदी

इस श्रीगदित के अतिरिक्त चौदहवीं शती के अन्त में प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रूपगोस्वामी ने दानकेलिकौमुदी नामक एक लघु कृति की रचना करके लक्षण ग्रन्थों में उल्लिखित भाणिका नामक उपरूपक के क्षेत्र को उर्वर किया। इसके अतिरिक्त भाणिका का अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता। अब यह प्रकाशित हो चुकी है। इसमें राधागोविन्द की दानलीला का विस्तारपूर्ण वर्णन किया गया है। इनके शिष्य रघुनाथदास ने इनकी दानकेलिकौमुदी पर टीका भी लिखी थी। हस्तलिखित पोथियों की तालिका का निरीक्षण करने पर इनकी दानकेलिकौमुदी का कुछ अंश देखने को मिलता है। यथा—

नमो व्रजयुवराजाय।

अन्तःस्मेरतयोज्वला जलकणव्याकीर्ण-पक्ष्माङ्कुरा
किञ्चित्पाटलिताञ्चला रसिकतोत्सिका पुनः कुञ्चती।
रुद्धायाः पथि माधवेन मधुरणन्ना भुग्नपादोत्तरा
राधीया किलकिञ्चित स्वरसिनी मुद्रा शिवं वः क्रियात् ॥

---

१– सुभद्राहरण १६, पृ० ६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अपिच–

(Colophon)

दानकेलि कौमुदी नाम भाणिका समाप्ता
ग्रथिता सुमनः–सुखदा यस्य निदेशेन भाणिका–स्रगियम् ।
तस्य मम प्रिय–सुहृदः कण्ठतटीमियमलङ्कुरुताम् ।
नन्दीश्वरे निवसता भाणिकेयंविनिर्मिता ।
गते मनुशते शाके चन्द्रस्वर–समन्विते ।।१४७१।।

इस अन्तिम श्लोक के बाद कुछ पद्य इस प्रकार लिखे गये हैं—

अथ भाणिका लक्षणम्–
भाणिक ... (भाणिका श्लक्षणा)
नेपथ्यामुखनिर्वहणान्विता ।
भारती कैशिकीवृत्ति–भुजैकाङ्गविनिर्मिता ।।
उदात्त–नायिका मञ्जुपुरुवाङ्क स – प्रकम् ।
उपन्यासोऽथ विन्यास–विबोधः साध्वसं तथा

इस हस्त-प्रति के मुख पृष्ठ पर ये पङ्क्तियाँ अङ्कित हैं—

श्री सर्वविद्यानिधान महादेव कवीन्द्रा
चार्य सरस्वतिना दानकेलिकौमुदी भाणिका ।

इन पंक्तियों से ध्वनित होता है कि दानकेलिकौमुदी भाणिका के रचयिता नन्दीश्वर के निवासी रहे होंगे।

ऊपर जिन उपरूपकों (गोष्ठी आदि) का विवेचन किया गया है, वे निश्चित रूप से एकांकी हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय ऐसे भी साहित्यिक हैं जो रूपकों तथा उपरूपकों के उपर्युक्त भेदों में कुछ अन्य भेदों को भी विकल्प से एक अंक का बतलाते हैं। भावप्रकाश में अंकित उपरूपकों की पुष्पिका में कतिपय ऐसे नाम उपलब्ध होते हैं जो एकांकी की कोटि में रक्खे जा सकते हैं परन्तु इनके दृष्टान्त नहीं मिलते यथा– प्रस्थानक, डोम्बी या डोम्बिका आदि।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB

## सप्तम अध्याय

# (बीसवीं शताब्दी के संस्कृत एकांकी)

### बीसवीं शताब्दी के एकाङ्की

युग परिवर्तन के प्रवाह में संसार की रूढियाँ विनष्ट होती जाती हैं तथा नई पद्धतियां उनका स्थान ग्रहण कर लेती हैं। नाट्य-क्षेत्र में एकाङ्कियों के पुनरुज्जीवन का भी यही रहस्य है। हर्ष की मृत्यु के बाद भारत के विदेशी आक्रमणों द्वारा जर्जर हो जाने का प्रभाव उसके साहित्य पर बहुत अधिक पड़ा। अतः प्राचीन नाट्य-कृतियों में जहाँ हम समृद्ध–समाज का मनोहर रूप देखते हैं वहाँ मध्य युग (ईसोत्तर १२ वीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक) के साहित्य में हम पतनोन्मुख भारत का चित्रण पाते हैं। इस युग में रसिक कवि-समुदाय कामसूत्र के रङ्ग में रञ्जित उत्तानशृङ्गारमय काव्य-धारा में प्रवाहित देखा जाता है। मध्यकालीन भाणों एवं प्रहसनों में इसी प्रकार का काव्य दृष्टिगोचर होता है।

सदियों पहले रचे गये भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र के आधार पर भारतीय नाट्यधारा समसामयिक सामाजिक वातावरण से प्रभावित होती हुई आज भी अबाध गति से चली आ रही है। बीसवीं शताब्दी में भी इस स्रोत में बहते हुए संस्कृत-सेवी-संसार को हम पूर्वोल्लिखित एकाङ्की-भेद (भाण, प्रहसनादि) की रचना द्वारा प्राच्य-परम्परा का पालन करता हुआ पाते हैं। शैली की दृष्टि से इन आधुनिक एकाङ्कियों के साधारणतः दो वर्ग किये जा सकते हैं। (१) प्रथम वर्ग के लघु नाटकों में नाटककार अब भी प्राचीन नाट्य-कला के आदर्शों का यथासम्भव पालन करते देखे जाते हैं। आज भी इस शैली के पोषक नाट्य–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



लेखक अपने रूपकों के लिये पुराणेतिहासादि से कथा-वस्तु का ग्रहण करते और आवश्यकतानुसार उसमें हेर फेर कर देते हैं। उदाहरणार्थ श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी द्वारा रचित सावित्रीनाटकम् का नाम लिया जा सकता है। (२) पश्चिम से भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित होने के फलस्वरूप द्वितीय वर्ग के नाटकों की आकृति बदली-सी दिखाई देती है। प्राचीन शास्त्रीय पारिभाषिक संज्ञाओं के अभाव में इस कोटि के एकाङ्की नाटकों के लिये एकाङ्की नाटिका या सामान्य दृश्यकृति के अर्थ में प्रेक्षणक अथवा नाटक पद का ही व्यवहार होने लगा है।

## रेडियो रूपक

संस्कृत नाटक की नवीनविधा रेडियो रूपकों की है जो प्रायः एकाङ्की ही होते हैं। यह विधा धीरे-धीरे विकसित हो रही है। मद्रास से प्रकाशित होने वाले "दी संस्कृत रङ्ग" (एन्युअल) नामक पत्र को देखने से ज्ञात होगा कि "आषाढस्य प्रथम-दिवसे" जैसी छोटी एकाङ्किकाएं आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित होती रहती हैं।

## संवादमाला

संस्कृत-नाट्य की एक अभिनव विधा "संवादमाला" का विकास भी श्री आनन्दवर्धन रामचन्द्र रत्नपारखी के सहयोग से हो रहा है। इनकी "संवादमाला" शीर्षक रचना १९५७ ई० में रची गई थी, जिसमें निम्नाङ्कित तेरह संवाद हैं–जयदेव पद्मावतीयम्, कोकिलाक्षकोयष्टिकीयम्, सहस्रपत्रकहिल-मोचकीयम्, उपस्थितिपुस्तिकाप्रणाशः, निष्कूलशुष्ककूलकीयम्, आश्रमसन्धिः, कपिञ्जलकर्मरङ्किकीयम्, कार्यनिलयवेलावसानम्, नीलकण्ठमञ्जुहासिनीयम्, करहाटककलकिङ्किणीयम्, कपित्थककरमर्दिकीयम्, कर्णिकारपरिव्याधकीयम् तथा मकरन्दकमन्दारमालीयम्। ये संवाद आनन्दप्रद हैं। ऐसे संवाद पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते ही रहते हैं।

## अनूदित रूपक

अंग्रेजी, बंगला जैसे साहित्यों के ख्याति-प्राप्त नाटकों का संस्कृत में रूपान्तर करने की परम्परा भी अब चल पड़ी है। यहां एक ध्यान देने योग्य बात है कि संस्कृत की नाट्यकला स्वतन्त्र रही है और अनुवाद बाद की वस्तु है जबकि हिन्दी, बंगला आदि अन्य भारतीय भाषाओं में नाट्य का आरम्भ ही अनूदित कृतियों से हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



## वर्तमान युग की बदलती परिस्थितियाँ:

वर्तमान युगीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियाँ प्राचीन युग से सर्वथा भिन्न हैं। जिस प्रकार आज प्राचीन षोडश संस्कारों में युग के प्रभाव से पुरानी कट्टरता एवं विस्तार के बदले उदारता तथा संक्षेप को स्थान मिल गया है उसी प्रकार साहित्य-जगत् में भी पूर्वकालीन शास्त्र–सम्मत कठोर नियमों के पालन में धीरे-धीरे ढीलापन आ गया है और उसकी यह प्रवृत्ति अकारण नहीं है। रस की पुष्टि के लिए कथावस्तु के विन्यास के प्रसङ्ग में वीज–बिन्दुपताकादि के जटिल नियमों को शिथिल करने का निर्देश साहित्य-दर्पण में है।[1] वर्तमान शैली के संस्कृत नाटकों में नाट्यतन्त्र की जो शिथिलता दीख पड़ती है उसकी प्रेरणा आधुनिक नाटककारों को यहीं से मिली होनी चाहिए। आज की साहित्यिक-कृतियों के आदर्शों में भी इसी कारण अन्तर आ गया है। अब मानव-जीवन पहिले की अपेक्षा अधिक संघर्षमय हो गया है। अब मनुष्य के सामने प्रतिदिन उग्र–रूप धारण करने वाली रोजी-रोटी की समस्या पिशाचिनी की भाँति भयावह रूप लिये खड़ी रहती है। इससे बचने के लिये वह अपनी गृहलक्ष्मी को भी धनोपार्जनार्थ घर से बाहर भेजकर उससे साहय्य प्राप्त करना चाहता है। घर और बाहर दोनों क्षेत्रों के उत्तर-दायित्व को संभालने के कारण गृहिणी अपने परिवार की देखभाल ठीक ढंग से नहीं कर पाती। कार्य-भार से दवी हुई नारी का स्वभाव कर्कश हो जाता है और इस कारण उसके प्यार के भूखे वच्चे बिगड़ जाते हैं। इसका उनके चरित्र-गठन पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप शृङ्गार-प्रधान नाटकों में भी माधुर्य एवं मार्दव के स्थान पर परुषता और क्रूरता की छाया मिलती है।

## संस्कृत एकाङ्की पर युग का प्रभाव:

आज पहले की तरह केवल राजदरबार में या देवालयों के प्राङ्गण में सुदूर स्थानों से आए हुए अतिथियों के मनोरञ्जनार्थ ही रूपकों की रचना नहीं

---

१– बदभावे पताकाऽऽ द्द्यास्तदभावे तथेतरत् ।
रसव्यक्तिमपेक्ष्यैषामङ्गानां सन्निवेशनम् ।।
न तु केवलया शास्त्रस्थिति–सम्पादनेच्छया ॥
अविरुद्धं तु यद्वृत्तं रसादिव्यक्तयेऽधिकम् ।
तदप्य[illegible]यथयेद् धीमान्न वदेद्वाऽपि कदाचन ॥ सा. द., ६, ११७–२१ पृ० ३२२–२३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



होती है। इनका उद्देश्य अब कुछ भिन्न है। अब लेखक शिक्षण-संस्थाओं के वार्षिक उत्सवों और विभिन्न महापुरुषों की जयन्तियों के अवसर पर अथवा किसी मुख्य अतिथि के स्वागतार्थ अथवा रेडियो पर प्रसारणार्थ तथा पत्रिकाओं की ओर से माँग होने पर 'यशसे' और 'अर्थकृते' समय निकालकर छोटी-छोटी अभिनेय रचनाएं करने लगे हैं। इनके पास नाट्य-शास्त्र के पुराने लम्बे-चौड़े विधान के अनुसार नाट्य-सर्जन के लिये समय ही कहाँ है? इस ओर जनता की रुचि भी नहीं रह गई है।

संस्कृत परम्परा के धुंधली पड़ जाने के कारण इन नाटकों की भाषा भी पुरानी शास्त्रीय-भाषा से भिन्न प्रतीत होती है। जहां पहले के काव्यों में साहित्यसौष्ठव के दर्शन होते हैं वहां अब की रचनाओं में लेखक का उद्देश्य किसी प्रकार संस्कृत को जीवित रखना-मात्र दिखाई देता है। वे शिष्ट-समाज को दिखला देना चाहते हैं कि अब भी संस्कृत में कुछ लिखा, पढ़ा, सुना और देखा जा सकता है। जिस प्रकार हिन्दी, वंगला, गुजराती, मराठी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओं के नाट्य-साहित्य में अंग्रेजी के वाक्यों एवं शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा है उसी प्रकार संस्कृत-भाषा की नाट्य-कृतियों में संस्कृत को देशी भाषा के साँचे में ढाल दिया गया है। संस्कृत के विभिन्न देशों से भारत का सम्पर्क स्थापित होने के फलस्वरूप इन नवीन कृतियों में हमें भाषा एवं भाव के सांकर्य की झलक दिखाई देती है।—

लोकं विशालकार्यं लिलिपुटदेशीयह्रस्वत्वे परिणमयन्ती,<br>
चित्रं कुर्वन्ती साऽणिभा सिद्धिः<br>
... ... ...<br>
सृष्टिं विज्ञानभवाम् अमैथुनीम् पश्यन्तु,<br>
सोवियटदेशे त्वस्या विनियोगो दृश्यते ॥<br>
किंच...<br>
लिङ्गपरिवर्तिनीयं विचित्रा विद्याऽपि जागर्ति।<br>
× × ×<br>
गगने च वायुवेगं यानं निर्माय। गैसानाम्<br>
अभिचारं संजनयन् विज्ञानं जृम्भते पुरतः<br>
'राकेट' 'एटम' प्रभृतीन् बाणान् अभिमन्त्र्य विज्ञानम्<br>
अकरणाकरण-समर्थं विधिविज्ञानं विलोपयति।<br>
× × ×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



'रोदिक-टेलीविजने' प्रयुज्य तं भारतं युद्धम्
राज्ञे कथयति दिव्यां दृष्टिं लोको वृथा मनुते ।[१]

पाश्चात्य सभ्यता के विकास के साथ सिनेमा, रेडियो-सेट, स्टोव, टेलीफोन, कप, चीनी मिट्टी की तश्तरी, चाय जैसी नवीन वस्तुओं का दैनिक उपयोग होने लगा है। उनके लिये भी संस्कृत में क्रमशः निम्नांकित शब्द गढ़ लिये गये हैं–

छायाचित्र, ध्वनिप्रतिग्रहयन्त्र, तेलज्वालायन्त्र, दूरसम्भाषयन्त्र, वर्धमानक, तदाधारिका, कामरूपिकाकषायः।

साग, सब्जी, अँगीठी आदि के नाम भी देशी-भाषा के अनुकरण पर ग्रहण किये गए हैं:–

पद्मावती– शाकं गृह्यतां शाकम्। वीरसेनकं शाकम्, पुष्पगोजिह्वा शाकम्, ताम्रभण्टाकिफलं शाकम्। पालक्यं शाकम्। शाकं गृह्यतां भोः शाकम्।[२]

आज के एकांकी रस-प्रधान न होकर उद्देश्य-प्रधान होने जा रहे हैं। भारतीय किशोर-किशोरियों के चरित्र-गठन एवं बौद्धिक विकास के उद्देश्य से ही इनकी रचना हुआ करती है। अतः प्राचीन भाण एवं प्रहसन-साहित्य का परिमार्जित रूप साहित्य-प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाने लगा हैं। एकांकी बड़े नाटकों की तरह सम्पूर्ण जीवन को लेकर नहीं चलते। उनमें तो जीवन की एक झाँकी का प्रदर्शन होता है। जीवन की विभिन्नताओं को छोड़कर उसके ही अंग पर प्रकाश डालना एकांकीकार का ध्येय होता है। संक्षेप, सजीवता, कलात्मकता आदि से युक्त होना ही आधुनिक एकांकियों की विशेषता है। इस समय आधे घण्टे से भी कम समय में समाप्त होने वाले एकांक रूपकों की माँग है। इसकी पूर्ति के लिये आज भी मञ्च की दृष्टि से उपयोगी प्रेक्ष्य-काव्यों की रचना जारी है। डॉ० वी० राघवन् द्वारा संकलित आधुनिक प्रेक्षणकों की तालिका में अंकित कृतियों में से बहुत सी रचनाएँ एकांकी ही हैं।[३]

---

१– सरस्वती पृ० ५-८.
२– जयदेव पद्मावतीयम् ... संस्कृत-प्रतिभा – १९५९ पृ० ९३
३– देखिये-- A Bibliography of Modern Sanskrit Plays by Dr, V. Raghavan & Shri C. S. Sunderam.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्राचीन आलंकारिकों ने भी यद्यपि काव्य के विषय की व्यापकता की ओर काव्य-रचयिताओं का ध्यान आकृष्ट किया था तथापि आधुनिक काल में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से यह बात फिर ताजा हो गई है और हमारे वर्तमान नाटककार हमें अपनी ओर आकृष्ट करने वाले प्रकृति के नाना विषयों को भी अपने काव्य का स्वतन्त्रविषय बनाने लगे हैं। पुराने कवियों ने अपनी रचनाओं का विषय उच्च वर्ग के समाज को ही बनाया था। इसके विपरीत आधुनिक कवि बहुजन के प्रति सहानुभूति का भाव लेकर चलते हैं। अतएव आज के नाट्यकार की दृष्टि उपेक्षिताओं की ओर भी गई है। इस प्रकार सामान्य व्यक्ति भी अब कवियों के प्रेम, श्रद्धा, दया आदि के पात्र होने लगे हैं।

दूसरे अब कला और उपदेश दोनों के दो अलग भेद स्वीकार कर लिये गये हैं। अब उन्हें रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत् इत्यादि वाक्यों द्वारा स्पष्ट उपदेश नहीं रुचता और न पाठकों में इन्हें ग्रहण करने की क्षमता ही रह गई है। लेखक और पाठक का दृष्टिकोण अब बदल चुका है। "न दुःखान्तं नाटकम्" के कठोर नियम को भी आधुनिक कवियों ने छोड़ देने का यथासंभव प्रयत्न किया है। दुःख–प्रवण वियोगान्त दृश्य काव्यों (Tragedy) से भी उन्हें उतना ही आनन्द प्राप्त होता है, जितना सुखान्तों से। भवभूति ने पहले ही करुण रस के मर्म को समझ लिया था, जिसे अरस्तू और उनके अनुयायी पाश्चात्य कवि एवं आलोचक कुछ ही पहले से जानने और समझने लगे हैं।

उपलब्ध आधुनिक एकांकियों की नाममाला से भी सिद्ध होता है कि आज लघु नाटकों के विषयों का अभाव नहीं है। नवीन रूपककार अपनी कृतियों के लिए आलम्बन का चयन वास्तविक जगत् से करता है। कहीं सास-बहू की लड़ाई का चित्र देखने को मिलेगा तो कहीं गरीब विद्वानों की दयनीय दशा का। यथा–(प्रस्तावना तथा संस्कृत टीका के साथ) डॉ० वी० राघवन् द्वारा सम्पादित इलात्तुर सुन्दरराज कवि 'स्नुषाविजय' का नाम लिया जा सकता है। इसमें लेखक ने युग-युग से चले आ रहे सास-बहू के झगड़ों पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वयस्क माँ तथा नव-वधू के विचारों में असामञ्जस्य के कारणों पर प्रकाश डाला है तथा शनैः-शनैः घर का कुल कार्य-भार घर की चाबियों के साथ सुघड़ बहू के हाथ में किस प्रकार आ जाता है, यह भी बतलाया है। श्री खोट स्कन्दशंकर प्रणीत एकांकी "हा हन्त शारदे" में साहित्यकों की कठिनाइयों का (अपनी पत्नियों तथा बच्चों के साथ संघर्ष का) पारिवारिक चित्र देखा जा सकता है। इसमें उनकी रचनाओं का कुछ भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MH



महत्व न समझने वाले उनके बन्धुओं का पारस्परिक संघर्ष है। इस कृति में संगीत को भी स्थान दिया गया है। इसी प्रकार ए० आर० हेबरे के दो दृश्यों में विभाजित एकांकी "मनोहरम् दिनम्" में द्रष्टा को छुट्टी माँगने के लिए चालाकी भरी युक्तियाँ लड़ाते हुए नन्हें-नन्हें विद्यार्थी दिखाई देगें।

कभी सवेरे से ही आफिस जाने के लिये तैयार बाबू साहब के नाश्ते के लिये मेम साहिबा साइकल पर जाते हुए डबल रोटी वाले के लिए आवाज लगाती मिलेंगी–

नवदेहली (नेपथ्ये)

पुरोडाशा गृह्यतां पुरोडाशाः। सहैयङ्गवीनाः पुराडाशाः।

+ + +

पद्मावती (स्वगतम्)--अस्तु। अयं पुरोडाशविक्रयिको गच्छति। तम हूय केचन पुरोडाशाः हैयंगवीनंच गृहयन्ते। एतदेवाद्य प्रातराशाय भवतु।

(शय्यामुज्झित्वा प्रकाशम्) अयि भोः पुराडाशविक्रयिक, इत एहि।[१]

कहीं अपने उद्धार की कामना करने वाली नारियों के भी दर्शन होंगे।[२]

नवयुवकों में वीरता तथा देश प्रेम की भावना भरने के लिए विदेशियों से होने वाले युद्धों के वर्णन से युक्त ऐतिहासिक एकांकियों की रचना भी होने लगी है। पौरवदिग्विजय रूपक एक ऐतिहासिक एकांकी है।[३] सिकन्दर द्वारा भारत पर आक्रमण की ऐतिहासिक घटना और पौरस द्वारा अन्य भारतीय राजाओं की सहायता से यूनानियों को भारत भूमि से बाहर निकाल देने का निश्चय ही इसका वर्ण्य विषय है। इसमें अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के आक्रमण का समाचार सुनकर देश को उससे मुक्त करने के लिए परस्पर मन्त्रणा करते हुए गणनायक पुरु और तक्षशिला के राजा आम्भि का गद्यात्मक संवाद वर्णित है। ओज-पूर्ण उचित प्रत्युक्तियों से पुरु तथा अन्य पात्रों के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है–

---

१– जयदेवपद्मावतीयम् – संस्कृत प्रतिभा (प्रथम उन्मेषः) प्रथमोविलासः एप्रिल १९१९
२– देखिये-- नारी (सामाजिकम् नाटकम्) लेखक--गोपाल शास्त्री
३– लेखक–एस. के. रामचद्रराव, संस्कृत प्रतिमा सन् १९६२ एप्रिल द्वितीय उन्मेष प्रथम विलास में प्रकाशित।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



आम्भिः– न तावन्मन्ये सुकरमिदं महाराज। अमी यवना अजय्या एव। अल्प-संख्यका अपि सुसज्जिताः। पदातिनोऽप्रतिहतपराक्रमिणः। अश्वारूढाः सर्वेऽपि महाशूराः, इतरे तु अतिरथ-महारथाः। एतेषां दण्डनायको अलिकसुन्दरस्तु देवेन्द्रइव समर्थः। नैव जानातिस पराजयम्। अतोऽहं मन्ये महाराज। तैः सह विग्रहोऽनुचित इति।

पौरवः– आम्भिराज। किमहं शृणोमि त्वन्मुखादेतानि वचनानि ? जयोवा भवत्वपजयो वा स्वधर्मे निधनं श्रेयः किल।...... युद्धकाले एव तेषामपि शस्त्राभ्यासः। किं कुर्मः? समुदाय एव बलम्। अन्येऽपि यवनपक्षप्रवेशमनिच्छन्तो गणनायका यथेष्टं अस्मान् समागच्छन्तु।[1]

पौरव के वाक्यों में गीता के अमर उपदेश भी ध्वनित हैं–

"हतोवा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।"

डॉ० हरिहर त्रिवेदी के वीररस-प्रधान एकांकी नागराज विजय[2] का विषय भी इतिहास-प्रसिद्ध है। पद्मावती नामक किसी देश का नरेश नागराज कुशानों को भारत से खदेड़ना चाहता है। इसके लिये वह अन्य राज्यों का सहयोग चाहता है। उनसे उसकी मित्रता की बात जानकर कुशान लोग स्वयं भारत से भाग खड़े होते हैं। रणक्षेत्र में नागराज की सेना द्वारा गुञ्जित भयकर रणभेरी को सुनकर शत्रुओं के भाग खड़े होने के कारण तथा बिना रक्त-पात के विजय प्राप्ति से हर्षोन्मत यौधेय का हृदय अहिंसा की प्रसंशा के साथ भीति-रहित गणराज्य की स्थापना की शुभ-कामना करता हुआ गा उठता है–

यौधेयः– देवि, एतत् सर्वं किल भारतलक्ष्मीस्वरूपायाः तवैव प्रसादः यदस्मिन् स्वतन्त्रतासंग्रामे विनैव रक्तपातमस्माकं विजयलाभः।...

जयतुतरां भरतावनिरस्या
ईतिभीतयो यान्तु विनाशम्,
सिद्धिरविकला यातु सकाशम्,
सस्यरसैः परिपूरितभागा प्रतिपदमेतु विलासम्॥
सत्यामोघधर्मतरूशोभित सर्वोदयफलभूषा।
पूर्णा भवतु मनीषा॥...

---

१– संस्कृत-प्रतिभा प० ६१.
२– संस्कृत प्रतिभा सन् १९६० अक्टूबर मास की प्रति – द्वितीय उन्मेष.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



श्रीसम्पन्ना भारत भूमि को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने को आतुर नायक नागराज में धीरोदात्त गुण विद्यमान हैं। उसके हितैषी सहायक और शत्रुओं से लोहा लेने को उद्यत हैं। वे निर्बल कुशानों की भी उपेक्षा नहीं कर सकते क्योंकि आग की छोटी सी चिनगारी भी बड़े से बड़े जंगल को भी जलाकर भस्म कर सकती है–

स्फुलिङ्गः काष्ठयोगेन दहत्येव महावनम् ॥
मालवः – अपिच ।
उन्मूलनमरातीनां सुकरं व्यसने श्रुतम्
नदीवेगक्षीणमूलः सुखमुत्पाट्यते तरुः ॥

स्वभाव से कातरा पत्नी के प्रति कहे गये उसके वचन वीरता को प्रकट करते हैं।

देवी–विजयतां महाराजः ।......
स्त्रीस्वभाव–कातरं वेपते मे हृदयम् ।
नागराजः – आर्ये मंगलवेलायामलं शङ्कया ।
युद्धं खलु उत्सवः क्षत्रियाणां, विशेषतश्च सर्वाभ्युदयहेतुकम् ।
अधुना प्रत्यासीदति प्रयाणकालः ।
तदनुजानीहि मां प्रस्थातुम् ।

नवीनतम रचना होने पर भी इसमें भाषा–सौन्दर्य देखने को मिलता है। प्रसंगानुसार कवि अपनी भाव-प्रकाश शैली को बदल देने में दक्ष हैं। इसके गद्यांश में प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं तो शिवजी की स्तुति एवं युद्ध का चित्र प्रस्तुत करने वाले कतिपय श्लोकों में ओज–युक्त समासबहुला वाक्यावली का प्रयोग हुआ है।

... ... ...
नमामि चन्द्रशेखरं वृषध्वजंपुरान्तकं
ललाटनेत्रनिर्गताग्निदग्ध – पुष्पसायकम्
अकिञ्चनं स्वसेविनामशेषसौख्यदायकं
हिमाद्रिराजकन्यकापतिं नटेश्वरं भजे ॥

## आधुनिक एकाङ्कियों में प्राकृत का बहिष्कार–

इसकी नायिका प्राकृत का प्रयोग न करके शुद्ध संस्कृत में ही भाषण करती है। संस्कृत रूपकों में उत्तररामचरितादि की आत्रेयी जैसी ब्रह्मवादिनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



तथा वेश्याओं एवं अप्सराओं आदि विशिष्ट कोटि की नारियों को छोड़कर जो वैदग्ध्यप्रदर्शनार्थ संस्कृत बोलती हैं, प्रायः स्त्री-पात्रों द्वारा संस्कृत का प्रयोग निषिद्ध है।[१] प्राचीन रूपककार बहुत समय तक इस नियम का पालन करते रहे हैं, परन्तु नूतन रूपक-प्रणेता आज के युग की रुचि के अनुकूल अपने नारी-पात्रों से प्राकृत का प्रयोग न करवाकर शुद्ध संस्कृत में ही भाषण करवाते हैं, क्योंकि अब प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत का उच्चारण करना सरल प्रतीत होता है और संस्कृत में संवाद करवाना भी पढ़ी-लिखी स्त्रियों के मुख से उचित लगता है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत उक्त नाट्यकार के नागराज-विजय की नायिका के ये संस्कृत-गर्भित वाक्य प्रस्तुत हैं—

देवी-विजयतां महाराजः। युद्धैकरसो भवान् कदाचिन्मां
विस्मरेदित्याशङ्क्याहमेवाऽऽगता देवं द्रष्टुं प्रोत्साहयितुं च।
अपि च, नाथ, जानामि ते दृढं संकल्पमपरिमितं बलं च।
किन्तु, स्त्री — स्वभावकातरं वेपते मे हृदयम्।

भारतीय इतिहास के पाठकों को यह सुविदित है कि इस देश में राष्ट्रीय भावना का ह्रास हर्ष के समय से ही होने लगा था। २०वीं शताब्दी में देश के स्वातन्त्र्य का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो गया। भारतीय युवकों में राष्ट्रीय भावना पुनर्जागरित हुई। देश-सेवा महत्वपूर्ण कार्य समझा जाने लगा। स्वदेश की रक्षा के हेतु लाठियों की मार खाने या बन्दी-गृहों की शोभा बढ़ाने में आजादी के दीवाने अपना अहोभाग्य समझने लगे। आधुनिक संस्कृत-नाट्यार्णव में भारत का यह चित्र भी प्रतिबिम्बित है। यहाँ श्री नारायणशास्त्री, कङ्कर के 'स्वातन्त्र्य यज्ञाहुति' का स्मरण हो आता है। इस एकांकी रूपक में सन् १९४२ की अंग्रेजी राज्य की दमन नीति के शिकार स्वतन्त्रता-संग्राम की बलिवेदी पर अपनी आहुति देने वाले देश-भक्त युवकों के त्याग की कथा प्रदर्शित की गई है।

---

१— पुरुषाणमनीचानां संस्कृतं स्यात्कृतात्मनाम्॥
शौरसेनी प्रयोक्तव्या तादृशीनां च योषिताम्।
योषित्सखीबालवेश्याकितवाप्सरसां तथा।
वैदग्ध्यार्थं प्रदातव्यं संस्कृतं चान्तरान्तरा॥

साहित्यदर्पण—षष्ठपरिच्छेद १५९–६९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



पण्डिताक्षभाराव द्वारा प्रणीत "कटुकविपाक" का विषय भी सत्याग्रह के दिनों की अनेक दुःखद घटनाओं में से एक है। जिनमें किसी परिवार के पुत्र या पुत्री सत्याग्रह के आन्दोलन में देश के लिये जीवनोत्सर्ग कर देते हैं। प्राचीन आदर्शों को भूल कर विदेशी सभ्यता में रँगी हुई आधुनिक महिलाओं के सामने सती, सीता, दमयन्ती, अनसूया, नर्मदा आदि प्राचीन स्त्रियों की कथा को याद दिलाने वाली रचनाओं को यदाकदा प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है। भारतीय साहित्य-ग्रन्थ-माला के सप्तम पुष्प "सावित्री नाटक" की रचना करके श्री रामकृष्ण मणि त्रिपाठी ने इस समस्या को हल करने का प्रयास किया है। इसमें मद्र देश के राजा अश्वपति की पुत्री सावित्री की अपने मृत पति के प्राणों को यमराज से वापस माँग लाने की जगत्-विख्यात कथा वर्णित है। इस एकांकी में छोटे-छोटे सरल वाक्यों और श्लोकों द्वारा यम एवं सावित्री का सारगर्भित संवाद अंकित हैं। सत्यवान्, यम, नारद तथा स्त्री-पात्र सावित्री, सबके सब अभिनेता संस्कृत का ही प्रयोग करते हैं। अन्य आधुनिक नाटकों की तरह प्राकृत का इसमें भी अभाव है। अन्त में पतिव्रता सावित्री अपनी अनोखी विचार-शक्ति, पति-भक्ति एवं वाक्चातुर्य से मृत्यु के देवता यम को भी परास्त करके उससे अपने पति को पुनः प्राप्त कर लेती है और इस मंगलमय शास्त्र-वचन के साथ वह लघु नाटक समाप्त हो जाता है।

स्वस्तिप्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥

इसकी अभिनेयता को क्षति पहुँचाने वाले कतिपय बाधक तत्व भी हैं। यथा—

यमराजः सावित्र्यै सत्यवतः प्राणान् ददाति, सावित्री च हस्ताभ्यां सहर्षं गृहीत्वा।

— — —

इत्युक्त्वा वेगेन तारामण्डले आत्मानमनुगच्छन्तीं सावित्रीं दृष्ट्वा।...

इन आपत्तिजनक नाटकीय निर्देशों से युक्त होने पर भी संस्कृत एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति को जीवित रखने की भावना से रचित प्रस्तुत एकांकी का अपना विशेष महत्व है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्राचीन प्रहसनों के अतिरिक्त संस्कृत व्यङ्गय नाटिकाएँ भी लिखी गई। यद्यपि इस कोटि के व्यंग्य हमें सामाजिक, पौराणिक एवं चरित–विषयक प्रेक्ष्य-काव्यों में भी प्राप्त होते हैं, किन्तु स्वतन्त्र रूप से इसी विषय को लेकर लिखे गये एकांकियों का भी संस्कृत नाट्यकानन में अब अभाव नहीं है। अस्तु–

श्री के० आर० नायर की "अलब्धकर्मीयम्" अथवा 'आलस्यकर्मीयम्" नामक व्यंग्य एकाङ्किका में चित्रित पात्रों ने लक्षरण से संस्कृत–भाषा, उसके साहित्य और कल्पना-लोक का अभिसूचन किया है। इसमें एक जीविका-रहित संस्कृत के दरिद्र विद्वान की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। वह अपने परिवार को निर्धनता से मुक्ति दिलाने के लिये जब सेना में प्रविष्ट होने या कृषि कार्य में जुटने का उपाय सोच ही रहा था तब सहसा उसे एक संस्कृत पाठशाला में वृत्ति मिल जाती है।

श्री वेङ्कटाचार्य द्वारा लिखित "अमर्ष-महिमा" में भी घरेलू तथा आफिस सम्बन्धी सामान्य अनुभूतियों का नाटकीकरण किया गया है। रामचन्द्र नामक एक अधिकारी अपनी पत्नी भाग्यवती के प्रति भोजन न बनने पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठता है और क्रोध में भोजन किये बिना ही आफिस चल देता है। वहाँ वह अपने निरपराध सहायक अधिकारी चन्द्रशेखर को लताड़ता है। परिणामतः चन्द्रशेखर घर पहुँचते ही अपनी पत्नी सरोज से झगड़ने लगता है और उधर सरोज अपने सेवक कालिका को खरी-खोटी सुनाने लगती है। इस प्रकार ऊपर के उच्च अधिकारी से लेकर नीचे के सामान्य नौकर तक क्रोध की प्रतिक्रिया की श्रृङ्खला बँध जाती है। इस पर अंगरेजी निबन्ध "आन सेइङ्ग श्लीज" की छाया स्पष्ट है।

भारतीय समाज में प्रचलित "दाह-संस्कार" एवं ऐसी ही अन्य प्रथाओं पर भी आधुनिक नाटकों में व्यंग्यात्मक प्रकाश डाला जाता है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "अन्त्येष्टि संस्कार" नामक प्रहसन को श्री के० कमला से संस्कृत में अनूदित किया है। इसमें बतलाया गया है कि एक मरणासन्न वृद्ध के पुत्रों ने अपने पिता की मृत्यु के समाचार को सर्वविदित करने के लिये बहुत बड़ी तैयारी कर ली किन्तु चिकित्सक की धारणा के विरुद्ध उस वृद्ध ने पुनः स्वस्थ होकर उसके पुत्रों, मित्रों तथा उसकी अन्त्येष्टि के लिये एकत्रित हुए अन्य सब सम्बन्धियों को आश्चर्यान्वित कर दिया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI



आपस में कलह करके घर की शान्ति को भंग करने वाले सामाजिकों को प्रेम-सन्देश देने वाले रूपकों की भी युग के आवश्यकतानुसार रचना होने लगी है। श्री मोतीलाल विमलकृष्ण द्वारा श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कृति 'कालेर यात्रा" के अनुवाद "रथ-रज्जुः" में मनुष्य का मनुष्य के साथ कैसा सम्बन्ध होना चाहिए, यह प्रकट किया गया है। सच्चाई एवं समानता के व्यवहार के बिना मनुष्य के लिये काल अटल भार बन जाता है। अतः धर्म और वर्ग-सम्बन्धी असमानता को त्याग कर मनुष्यमात्र को एक-सा समझ कर सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये।

## पुरुष–पुङ्गव भाण

समाज के स्त्री पुरुषों में पारस्परिक विचारों के स्वतन्त्रतापूर्वक आदान-प्रदान की भावना के उत्पन्न होने पर ही भारतीय गृहस्थों का उद्धार हो सकता है।

> यावच्च धर्मज़डतां न परित्यजन्ति
> तावत् कुतो भवति भारतनव्यभव्यम् ॥[१]

परन्तु इस प्रकार की स्वच्छन्दता की अधिकता उपहास का विषय भी बन सकती है। 'पुरुष-पुङ्गव' भाण में यही बात बतलाई गई है। नाना नाट्य-कृतियों के प्रणेता श्री जीवन्यायतीर्थ का उक्त भाण तान्त्रिक दृष्टि से प्राचीन नाट्य-शास्त्र में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार लिखा गया एक-पात्रीय रूपक है, परन्तु इसका विषय आधुनिक है। संस्कृत-साहित्य-परिषद् के अन्तर्गत सारस्व-तोत्सव के अवसर पर अभिनय के हेतु रचित प्रस्तुत भाण में सर्व प्रथम वामन-रूपधारी विष्णु भगवान् की धूर्त लीलाओं का वर्णन करते हुए उसकी स्तुति की गई है—

> वामनोऽपि सुमनो मनोहरो
> मूर्तभिक्षुरपि धूर्तलीलया।
> अङ्घ्रिमात्रपदसंग्रही लस
> न्नंग ! वः पुरुषपुङ्गवोऽवतु ॥[२]

---

१ - पुरुषपुङ्गव, संस्कृत साहित्य परिषद्, कलिकाता
२ - पुरुषपुङ्गव संस्कृत साहित्य परिषद्, वॉल्यूम ४०, अप्रैल १९६१, पृ० १७९–१८०.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



इसका विषय परदारसंग है जो श्रृाङ्गारिक होते हुए भी प्राचीन भाणों के वेश-प्रसंग से कुछ भिन्न हैं। इस रूपक के वाग्वीर नामक नेता (नायक) का हास्योत्पादक चरित्र भी सूत्रधार के वाक्यों में अङ्कित है। उसकी वीरता वनिता-मण्डल में और धीरता बालमण्डली में ही प्रस्फुटित होती हैं। उसका नीतिवर्जन परपीडनार्थ, गर्जन निरीह-शासनार्थ तथा कूट-सर्जन जनवञ्चनार्थ होता है—

सूत्रधार :– अरे। समापतति पुरुषपुंगवो वाग्वीरनामा। यः किल नारीसदसि वीरायते, धीरायते शिशुसंसदि, कीरायते च विद्वत्परिषदि। तनोति नीतिवर्ज्जनं परपीडनाय, करोति गर्जनं निरीहशासनाय, कूटसर्जनंच जनवञ्चनाय। तदस्य पुरतो नेच्छामि स्थातुम्।

इस छोटे से रूपक में बतलाया गया है कि पुरुष पर-नारी-संग के लिये लालायित रहते हैं और स्त्रियाँ भी परपुरुष के साथ कुछ क्षण व्यतीत करने को आतुर रहती हैं। उभयलिङ्गों के प्राणी एक दूसरे से मिलने के लिये बहाने ढूंढा करते हैं। कोई अपने कपड़ों के साथ चिपक कर चले गये कुशासन के तिनके को लौटाने के बहाने किसी स्त्री के पास जाता है, तो कोई रमणी अपना कुण्डल ढूँढती हुई किसी मनुष्य के पास आती है।[१] आधुनिक समाज में विशेषकर विभिन्न संस्थाओं में कार्य करने वाले बहुत से स्त्री पुरुषों को ऐसा आचरण करते हम प्रायः देखते हैं जो इसे सभ्यता का एक अंग समझते हैं। ऐसे समाज पर यह गहरा व्यङ्ग्य भी है।

एक पत्नी के रहते हुए दूसरी के प्रेम-पाश में बँध जाने पर जो प्रणयी अपनी पूर्व-पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद करके अपने प्रेम-मार्ग को अपने अनुकूल बनाने को आतुर रहते हैं ऐसे नवयुवकों पर भी कहीं-कहीं आक्षेप किया गया है।

साम्प्रतिकराष्ट्रविधिना बाधित-यथेच्छप्रवृत्तिप्रसरो मादृशपुरुष-पुंगवः किं करोतु, केवलं विरहदुःखमनुभवतु। भोः स्वयंवरार्थिनि ललने ! त्वमपि सहस्व कियत्-कालस्य कृते विरहदावानल-ज्वालाम्। विधि-परिवर्तनं सम्भवेत्, तदाहं स्वयंवरां त्वां परिणीय सुखीभवेयम्। वैदिक-विधिबलेन गुरुजन-निर्वाचनफलेन च परिणीता मदीया पत्नी कथमपि न विवाहच्छेदमङ्गीकरिष्यति। हा हतं मे भाग्यम्।[२]

---

१– पुरुषपुङ्गव पृ० १८१.
२– पुरुषपुङ्गव पृ० १८४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



पुत्र-पुत्रियों के विवाह के सम्बन्ध में अनुदार माता-पिताओं पर भी यहाँ व्यंग्य किये गये हैं।

इस भाण की भाषा सरल एवं प्राञ्जल है। स्वरूप में प्राचीन एक-पात्रीय रूपक के समान होने पर भी, इसका विषय काल्पनिक एवं आधुनिक है। इसी लेखक की दूसरी कृति विवाह-विडम्बन प्रहसन में विवाह के लिये आतुर रतिकान्त नामक एक वृद्ध के वार्धक्य को दूर करने के उपाय बतलाये गये हैं। वह अपने को युवक के सदृश पौरुषधारी मानता है और किसी दलाल की सहायता से विवाह करने के लिए तैयार होता है, किन्तु अन्त में वही दलाल उसका भण्डाफोड़ करके उसके इस रंग में भंग डाल देता है। विषयानुकूल भगवान् शंकर के स्तुतिपरक श्लोक द्वारा संक्षेप में नान्दीपाठक्रिया के उपरान्त कवि अपने परिचय के साथ दो दृश्यों में विभांजित रूपक का श्रीगणेश करता है।[1] यहाँ कवि ने काली स्याही टायलेट पाउडर (पटवास चूर्ण) आदि के प्रयोग द्वारा इस प्रहसन के नायक को अपना विकृत रूप सँवारने की सलाह दी है। पाउडर क्रीम आदि के प्रयोग द्वारा रूपवान् बनने का निरर्थक प्रयत्न करने वाले कुरूप एवं वृद्ध सज्जनों पर ये व्यंग्यवाण छोड़े गये हैं। वैज्ञानिक चिकित्सक शंकरनाथ का खोये हुए यौवन को पुनः प्राप्त करने का नुस्खा चतुर्भाणी में निर्दिष्ट जरावस्था को नीली लेप द्वारा दूर करने की क्रिया याद दिलाता है।

शंकरनाथ श्रूयताम्–

केशकल्पं कायकल्पं कपिपेशी-निवेशनम्।

कृत्वा षण्मासमध्ये स्याद् वृद्धोऽपि तरुणद्युतिः॥

केशकल्पे पञ्चशतानि, कायकल्पे सहस्रं पेशीयजनेऽपि तथा।

रति-घनव्ययार्थं सज्जोऽस्मि, षण्मासापेक्षा न सम्भवति।

पक्षकालमध्ये केशल्प एव क्रियताम्। तेन किंभविष्यति?

तुलना कीजिए—

१– विवाह-विडम्बन, लेखक जीव न्यायतीर्थ संस्कृत प्रतिभा अप्रैल. १९६१ तृतीय उन्मेष, पृ० ७९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MDI



सुष्ठुतावदनेन नीलीकर्म स्नानानुलेपनपरिस्पन्देन जराकौपीनप्रच्छादनमनुष्ठितम् ।[1]

## राग–विरागप्रहसन

पुरुषपुंगव भाण, विवाहविडम्बन प्रहसन तथा अन्य रूपकों के निर्माता जीवन्यायतीर्थ का ही एक और हास्यप्रधान रूपक संस्कृत प्रतिभा में ही प्रकाशित हो चुका है, जिसका शीर्षक है "राग-विराग प्रहसन।" इसमें संगीत के शत्रु एक राजा के दरबार का वर्णन है। प्रजा के लिए यहाँ गीत गाना निषिद्ध था। राजा ने संगीतज्ञों को अकर्मण्य बतलाकर देश से बाहर निकाल देने का विधेयक बना रखा था। उसके अनुचर एक गायक को पकड़ कर दण्डित करते हैं परन्तु इसी बीच एक नव-दम्पत्ति अपना मधुर गीत सुनाकर राजा के विचारों में परिवर्तन ला देता है।—

तरुणः– राजन्। भवदीय शासननीति परिवर्तनमेव मे महान् पुरस्कारः। नाहं तथा द्रव्यार्थी। वरं भिक्षुकोऽयं सत्क्रियतां सैनिकश्च सम्मान्यतां धनदानेन। राजकुमारयोरङ्गभूषणं अथवा यतेर्गात्रवसनं न वियोजयितुमिच्छामि। उपहारदानप्रस्ताव एव नो गौरवं वर्द्धयति।

इस प्रकार उस युगल ने जड़ को चेतनता प्रदान करने में समर्थ मधुर गीतों द्वारा शुष्क हृदय राजा की संगीत के प्रति अरुचि को क्षणभर में दूर कर दिया। इन गीतों में काव्य का रमणीय रूप भी देखा जा सकता है। इन गीतियों में जयदेव कवि के गीत गोविन्द का प्रभाव स्पष्ट है।

गोपीजनगणवल्लभ हे
वादय सुमधुरमुरलीं मुरहर
ललनाभयमपि दूरय सुन्दर
विश्ववरदकर–पल्लव हे।...

इस प्रहसन की कतिपय पङ्क्तियों में भर्तृहरि के किसी श्लोक का भावानुहरण भी उपलब्ध होता है।

---

1– पद्मप्राभृतक पृ० २६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIB



वयस्यः ... ...
एवं जनाः कथयन्ति–
संगीतसाहित्य रसानभिज्ञः
प्रायः पशुःपुच्छविषाणहीनः ।
चरत्यसौ किन्तु तृणं न भुङ्क्ते
मन्ये पशूनामपि भाग्यहेतोः ।

तुलना कीजिए—

साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः
तृणं न खादन्नपि जीवमानः
तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥

### शृङ्गारनारदीय

रामायण- उत्तरकाण्ड के ३७ वें सर्ग के प्रक्षिप्तांश में वर्णित ऋक्ष-रजस् की कथा तथा देवी-भागवत के षष्ठ स्कन्ध के २७वें एवं २८ वें अध्याय में कथित नारद-विवाह एवं नारद-स्त्री-रूप-वर्णन के आधार पर श्री महालिंग शास्त्री ने सन १९३८ में अपने शृङ्गारनारदीयम् नामक अद्भुत प्रहसन में नारद के स्त्री-रूप में परिणत होने की घटना का मनोहारी चित्रण किया है ।

......य एषर्क्षराजो नाम बालि-सुग्रीवयोः पिता ।...उत्प्लुत्य तस्मात्स ह्रदादुत्थितः प्लवगः पुनः। तस्मिन्नेव क्षणे राम सुग्रीवं प्राप वानरः ।[1]

तुलना कीजिये—

नारद उवाच–
कामः क्रोधो तथा लोभो मत्सरो ममता तथा ।
अहंकारो मदः येन जिताः सर्वे महाबलाः ॥
राजपत्नीत्वमापन्ना मायाबल–विमोहिता: ।
पुत्राः प्रसूता बहवो गेहे तस्य नृपस्य ह ॥[2]

---

१– रामायण उत्तर काण्ड अष्टात्रिंशः सर्गः पृ १५६.
२– देवी भागवत–षष्ठ स्कंध ३६-४८ अध्याय २८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



श्री भगवानुवाच

पश्य नारद गम्भीरं सरः सारसनादितम् ।
सर्वत्र पंकजैश्छन्नं स्वच्छनीरप्रपूरितम् ॥
अम्भः स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्जं पुरोत्तमम् ।...

बंगलोर से प्रकाशित अमृतवाणी (सन् १९४४) में भी स्त्रीरूपधारी नारद का चरित्र-चित्रण सरल गद्यमय भाषा में श्री पी० एस० दक्षिणामूर्ति द्वारा किया गया था। लिङ्गपरिवर्तन के समाचार आए दिन पत्र-पत्रिकाओं में छपा करते हैं। ऐसी ही एक घटना को पढ़ कर उससे प्रेरणा ले कवि ने उक्त पुराण के एक से अधिक लिंगपरिवर्तन करने वाले पात्रों को बड़ी निपुणता से जानबूझ कर इस लघु प्रहसन में प्रस्तुत किया है। परन्तु इसका अतिरञ्जित चित्र उपस्थित करने का उन्होंने कहीं भी प्रयत्न नहीं किया है। इस कारण इसकी कथा-वस्तु बड़ी रोचक बन गई है। विषय प्रवेश का ढंग प्राचीन पद्धति पर आधारित होने पर भी अनोखा है।[1]

मध्ययुगीन नाटकों की प्रस्तावनाओं में कवि की योग्यता और उनके आश्रयदाताओं की प्रशस्ति का बढ़ा चढ़ा कर किया गया वर्णन उपलब्ध होता है, जिसका सुधरा हुआ मनोहर रूप हम इन नवीन कृतियों में देखते हैं। इनमें प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्यिक छटा के एक साथ दर्शन होते हैं।

विदूषकः – अस्तिकिल मे मित्रं श्रीमहालिङ्गः कविः...
\+ \+ \+
विदू०–बाढम्। तच्च शृंगारनारदीयं नाम प्रहसनमचिरनिर्मितम्।[2]

इसमें गन्धर्वमिथुन एवं ऋक्षरजा द्वारा गाए गए मञ्जुल गीतों को पढ़ कवि के संगीत के प्रति अनुराग का ज्ञान भी होता है।[3] यथा--

अहो विचित्रा मदनस्य माया ...

इन्होंने सर्वत्र उपजाति नामक गेय छन्द का प्रयोग किया है। इन गीतियों में कवि की अद्भुत वर्णनाशक्ति भी छिपी है। शृंगार का सुन्दर एवं संयत वर्णन

---

१- शृङ्गारनारदीयम्, पृ० १.
२- वही पृ० ४
३- वही १-१०, पृ० ५-६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD



उपलब्ध होता है। नारद का स्त्री-रूप में परिणत होने पर दुःखी होना, ऋक्ष-रजा नामक वानर का स्त्री रूपी नारद (रदना) के प्रेम में पड़ जाना, उसका नारद से प्रणय-याचना करना एवं नारद का क्रुद्ध होना आदि स्थल बड़े मार्मिक हैं।[१]

पुमान् रूपवती नारी नारी स्याद गाढयौवना।
सुन्दरी सरसिस्नात्वा यस्या ऋक्षरजाः पतिः॥

नारदः– आः पापिष्ठ, मर्कटपाश, नारदोऽहं ब्राह्मणः।
प्रथमः– पुत्र! किं मुधा चापलं व्रजसि। शप्तोऽसि यदि परिस्पन्दसे।
ऋक्षरजाः–(सोपहासम्) हुम् नारदः। कुतोऽद्यनारदः?
नारदो रदना जातो देवर्षिर्योषिदुत्तमा।
ब्रह्मणः प्रथमः पुत्रस्तस्येवानुत्तमा स्नुषा॥...

ऋक्षरजा के बहुत पीछे पड़ने पर नारी-रूपी नारद का छल से वानर से उस मायावी सरोवर में से मधुर जल लाने का अनुरोध करना हास्यमय वातावरण की सृष्टि करता है।[२]

ऋक्षरजाः–प्रिये समाज्ञापय सेवाप्रचारम् ...

वानर तो इसे महानुग्रह समझकर तत्काल मायिकसरोवर में प्रविष्ट होता है और नारद को उसके स्त्री-रूप में आ जाने से प्रसन्नता होती है। नारद को ऋक्षरजा से मुक्ति भी मिल जाती है। प्रसङ्गवश सूर्य के तेज का वर्णन भी कवि की लेखनी से सुन्दर बन गया है।[३]

नारदः– (इति परिक्रामति) अये, कठोरयत्यातपं प्रभाकरः। आरूढः
किलासौ प्रकृष्टमन्तरं दिवः। इदानीमत्र सन्निवेश-महिम्ना
हिमसुतिपरम्परारजतशृङ्खलादामभि–
विलम्बमणिमञ्चकप्रचुरदर्शनीयं सरः।
निविश्य निजबिम्बसंमित मनोज्ञवर्ष्मा रविः
शयालुरवलोक्यते करविराजिताम्भोरुहः॥

---

१– शृङ्गारनारदीय पृ० १०–११
२– वही पृ० १७
३– वही १८ पृ० ८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



नाट्यकार का भाषागत अधिकार प्रशंसनीय है। इसकी कृतियों में स्त्री-पात्र भी प्राकृत के स्थान पर संस्कृत का ही प्रयोग करते हैं। स्त्री-रूपी नारद (रदना) भी संस्कृत में भाषण करते हैं।

## उभयरूपकम्

श्रीमहालिंग कवि का "उभयरूपक" एक सामाजिक एकांकी प्रहसन है। इसमें कुक्कुट स्वामी के छोटे पुत्र छागल के माध्यम से आज के अंग्रेजी-पद्धति से पढ़ कर आगे बढ़े हुए युवकों पर व्यंग्य का मधुर वार किया गया है। यह प्रहसन गाँव के गुरु व्रजघोष एवं कुक्कुट स्वामी के वार्तालाप से आरम्भ होता है।[१] अध्यापक को बातों ही बातों में मालूम होता है कि छागल गाँव में शीत-कालीन अवकाश व्यतीत करने आया है। वह सदा मद्रास के पिंगलपुर नगर में ही छुट्टियों में रहा करता था। उसे ग्रामीण जीवन पसन्द नहीं। पढ़-लिख कर में अच्छी नौकरी प्राप्त कर छागल बड़ा आदमी बनेगा, अतः यह पिता का बड़ा प्यारा पुत्र है। छागल का भाई छन्दोवृत्ति पिता के इस व्यवहार से असं-तुष्ट है। उसे भी आचार्य व्रजघोष की तरह नागरिकता पसन्द नहीं।

छागल को जब पिता एवं ग्रामीण अध्यापक की बातों से उसके विवाह के पक्के होने की बात मालूम होती है तब वह इसे अस्वीकार करता है। कारण, वह दहेज के लोभ में दूसरों द्वारा चुनी गई कन्या से विवाह नहीं करना चाहता। वह तो स्वेच्छा से अपनी सहपाठिनी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। इसी बीच उसे कालेज में होने वाले उत्सव के कार्य में सहायतार्थ अपने किसी आचार्य के साथ मद्रास जाने की लिखित आज्ञा मिलती है। रेल के समय की जानकारी पाकर स्वयं क्षौर करने बैठता है। क्षौर-कर्म के उपरान्त कटे हुए केशादि एक कागज में लपेट कर लिफाफे में डालकर जल्दी में नौकर के साथ स्टेशन की ओर चला जाता हैं। जाते समय उसका लिखा अभिनय-पाठ (जिसे वह कण्ठस्थ कर रहा था) वहीं छूट गया था। घर वाले उसे आत्महत्या करने जाने से पहले छागल द्वारा लिखा हुआ पत्र समझ लेते हैं। पास में पड़े हुए रद्दी लिफाफे में पड़े कागज को देखकर वैद्यराज बतलाते हैं कि छागल ने भयंकर विषग्रहण करके अपनी हत्या की है। घर में कुहराम

---

१- उभयरूपकम् - पृ० ४-६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



मचता है। परन्तु नौकर के स्टेशन से लौटने पर जब छागल का पत्र पिता को मिलता है तो उसके पुत्र के यहाँ से जल्दी जाने का कारण मालूम होता है। उस के आधार पर भी अनेक भ्रान्त अनुमान किए जाते हैं। फलतः शोकमय वातावरण हास्य से आप्लावित हो उठता है। कुक्कुट को माता-पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन करने वाले पुत्र से निराश होना पड़ता है। उसे अपनी भूल का ज्ञान होता है और इस प्रहसन का अन्त एक रोचक भरतवाक्य से होता है जिसमें सास-बहू के कारण उत्पन्न घरेलू कलह की शान्ति के लिये प्रार्थना की गई है।[1]

> शाम्यन्त्वाशु ननान्दृभिः परुषिताः श्वश्रूस्नुषाविग्रहाः
> वर्तन्तां सुमुखाः प्रसूतिषु समं वृद्धा गृहस्वामिनः।
> संश्लेषो घटतां नवप्रतनयोस्तत्तद्गुणालम्बनः
> साशंसाः प्रचरन्तु वर्त्मनि चिरं विद्वत्प्रियं भारताः ॥

इस अर्वाचीन प्रहसन में देश और काल के अनुसार विषय चुना गया है। इसके प्रधान रस के अनुकूल ही इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ हास्य रस में डूबी हुई हैं।[2] महालिंग शास्त्री के दूसरे प्रहसनात्मक रूपक कौण्डिन्य का उल्लेख भी इसकी प्रस्तावना में किया गया है।[3] उभयरूपकम् प्रहसन की सुबोध तथा सरस भाषा सुन्दर सूक्तियों के प्रयोग से सारगर्भित हो गई है।

> अहो स्नेहशोषणः कालमहस ऊष्मा ॥ (पृ० ४)
> उदारः समाश्वासः – (पृ० ५)
> मनोरथोच्चयसिद्धिभावनापक्षतावच्छेदकपर्यायं पुत्र-भाण्डम्–(पृ. ८)
> पाश्चात्य फक्किकाबिम्बग्राहिणामाधुनिक-सुधियाम् –(पृ० ८)
> प्रवादापवादविवादानामभूमिर्नाम नगरसंवासः – (पृ० १२)
> कुतः, कूष्माण्डमन्धसि छादयसि – (पृ० २३)
> अहो प्रसन्नो मे तर्कः – (पृ० ३८)

---

१– उभयरूपकम् पृ० ४०.

२– वही – पृ० १.

३– उभयरूपकम्, ३, पृ० २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अनुष्टुप्, आर्या, उपजाति, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, रथोद्धता, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित शालिनी, शिखरिणी, स्रग्धरा आदि वृत्तों का प्रयोग कर कवि ने छन्दः शास्त्र पर अपना अधिकार-प्रदर्शन किया है।

## विमुक्ति

संस्कृत-प्रतिभा नाम अर्धवार्षिक पत्रिका में प्रकाशित डा० वी० राघवन् का "विमुक्ति" नामक प्रहसन भी अपने ढँग का निराला है। इसकी प्रहास्यवस्तु इहलोक ही है। पात्र भी सामाजिक हैं। इसमें माया में लिप्त मनुष्य का संघर्षों से व्यर्थ पीड़ित होना, इच्छा के प्रतिघात से क्षुब्ध होना, इष्ट की सिद्धि होने पर उसका प्रसन्न होना, कुत्सित वस्तु से घृणा करना, ईप्सितार्थ के न मिलने पर मानव का करुण-क्रन्दन आदि दृश्य प्रदर्शित किए गए हैं। दो अंकों में विभक्त इस अलौकिक प्रहसन के नायक आत्मनाथ[1] ब्राह्मण को मनीषी कवि ने जीवात्मा का प्रतीक माना है। उसके ६ पुत्रों में ज्येष्ठ तनय लटकेश्वर "मन" के और चलप्रोय शुण्डाल, दीर्घश्रवा, उलूकाक्ष, कण्डूल (कनिष्ठ पुत्र) आदि पाँच इन्द्रियों के द्योतक पात्र है।

ब्रा०—तथापि इदमस्तु भरत-वाक्यम् –
ईशस्त्वं पुरुषोऽस्मि गेहमिह मे देहं स दंष्ट्री यमः
सा भार्या प्रकृतिः गुणा भगिनिकाः, माया च तासां प्रसूः।
षट्पुत्रा मन इन्द्रियाणि, नगरं लोकः, विमुक्त्यै ततः
सत्त्वस्था प्रकृतिः, तथा प्रहसनं दृष्ट्वा जना जानताम् ॥

ब्राह्मण की त्रिवर्णिनी नामक भार्या को जो अन्त में प्रसन्ना नाम धारण करती है प्रकृति माना गया है जिसकी माता मायावती (माया) है। उसकी तीन बहनें चन्द्रिका, शोणिता एवं हस्तिनी क्रमशः सत्व, रजस् और तमोगुण की ओर संकेत करती है। वृद्ध ईश्वर का व्यञ्जक है। दंष्ट्री राजा का सर्वाधिकारी साला है। (धर्म, यम) पुरुष राजश्याल के चाकर हैं। पौरगण अपने-अपने शास्त्र-मार्ग का अनुसरण करने वाले हैं।

---

१– विमुक्ति नाम प्रहसन पृ० १६०. (यह प्रहसन संस्कृत रङ्ग द्वारा चतुर्थवार्षिकोत्सव के अवसर पर खेला गया था)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MB



त्रिवर्णिनी के चारम द्वारा यह बतलाया गया है कि स्त्रियाँ अज्ञानवश माया जाल बिछा कर गृहकलह का कारण बनती हैं।

> पत्नी त्रिव० – स्वामिन्, अज्ञानात् प्रबलेन मदीयद्वितीय-तृतीयभगिनी दुरूपवेशेन चिराय भर्तरि अत्यन्तं कृतापराधास्मि। केवलमीर्ष्यया तां पीडयन्ती आसम् (परिवृत्य पश्यन्ती) अहो भगिनि, विस्मर मे दुश्चेष्टितानि एहि, आलिङ्ग माम्।[1]

मूर्ख वनिताएँ ईर्ष्यावश दूसरे के गुणों में भी अवगुण के दर्शन करती हैं। चित्तवृत्ति के निरोध से माया से मुक्त होकर मनुष्य सुखी रह सकता है। यही इस अलौकिक प्रहसन का सार है। दार्शनिकता के योग से प्रस्तुत कृति में थोड़ा गाम्भीर्य आ गया है जो इसे पुराने निम्नकोटि के प्रहसनों से पृथक करता है। इन नवीनधारा में पगे प्रहसनों में उक्त त्रुटि को दूर करने का नवीन साहित्यकारों ने पूरा प्रयत्न किया है। इसमें वे सफल भी हो रहे हैं। कारण स्पष्ट है। प्राचीन प्रहसन राजदरबारों के अंकुश से दूर हो मन्दिरों के खुले मैदानों में खेले जाते रहे हैं। यह जन-साधारण की अपनी वस्तु बन गई थी जिसका शिष्ट–साहित्य से निकट सम्बन्ध न था। इसके विपरीत आज विद्यालयों एवं महाविद्यालयों तथा अन्य सांस्कृतिक विकास में सहायतार्थ निर्मित संस्थाओं में शिक्षा के प्रसारणार्थ प्रहसनों का निर्माण हो रहा है। इसी प्रकार त्रावणकोर के सुन्दर राज ने "स्नुषाविजय" के० एल० वी० शास्त्री ने 'लीलाविलास' तथा चामुण्डाजी न्यायतीर्थ ने "क्षुतक्षेम" और के० नायर ने बेरोजगारों पर छींटे कसने वाला व्यंग्य रूपक "अलब्धकर्मीयम्" जैसे नवीनतम हास्यात्मक एकांकी रूपकों का प्रणयन करके प्रहसनकोश को समृद्ध बनाया है।

## मिथ्याग्रहणम्

प्रेम के मार्ग में जाति–पाँति का भेद बाधक नहीं होना चाहिये, भारतीय समाज में ऐसे उदारभावों के प्रचारार्थ भी कतिपय एकाङ्कियों की रचनाएँ संस्कृत में हुई हैं, जिनके दृष्टान्तस्वरूप श्री पण्डिताक्षमाराव एवं लीलारावदयाल द्वारा तैयार किए गए मिथ्याग्रहणम् रूपक का उल्लेख किया जा सकता है इस नाट्य-कृति की कथा इस प्रकार है।

---

१– विमुक्तिर्नामम् प्रहसनम् पृ० १४८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



अमीना एक मुसलमान लड़की है और सरला हिन्दू। दोनों में घनिष्ठ मित्रता है। अमीना का पति शेख सरला से, घुड़सवारी के अभ्यास के लिए एक ही स्थान पर नित्य आते जाते रहने से परिचित हो जाता है। परिणामतः अमीना उन दोनों को संदेह की दृष्टि से देखने लगती है। एक बार शेख के साथ दुर्घटना हो जाती है—सरला उसकी मरहम पट्टी अपने ही कमरे में करती है। ऐसे में अमीना शेख के साथ एक अन्य महिला का परिचय है, यह जान लेती है। वह महिला और शेख एक ही फ्लैट में रहते हैं। अतः शेख का उसके यहाँ आना जाना अमीना के साथ उसका विवाह होने के पहले ही से था। यह बात जान लेने के बाद सरला के प्रति अमीना का सन्देह निर्मल हो जाता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि एकाङ्कियों के पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण रेडियो में प्रसारणार्थ इस कोटि के रूपकों की माँग भी है। संस्कृतरंग मद्रास में मुद्रित डॉ. वी. राघवन् के विकटनितम्बा, विजयाङ्का, अवन्ति-सुन्दरी, कामशुद्धि और श्रीमती देवकी मेनन का "पृथक् मुष्टि" तथा जी. कृष्णमूर्ति द्वारा प्रणीत "नटीनटौ" नामक लघु नाटक इसी उद्देश्य से रचे गये है। इनमें वाचिक अभिनय का आनन्द श्रवणेन्द्रियों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः इन्हें दृश्य एकांकी न कह कर रेडियो-रूपक कहना ठीक होगा। वस्तुतः, ये नाट्य-कृतियाँ श्रव्य काव्य की कोटि में रखने योग्य हैं, तथापि रंगमञ्च पर भी खेली जा सकती हैं। अतः उनमें दृश्य-काव्य की क्षमता भी है। इस विभाग के कारण निस्सन्देह हमारे एकाङ्क-नाट्य भण्डार में वृद्धि हुई है। अतएव आधु-निक संस्कृत एकांकियों के साथ इनकी चर्चा करना अस्थाने नहीं कहा जा सकता। प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि मनोरञ्जन एवं शिक्षणार्थ विभिन्न क्षेत्रों से नित्य नये एकांकियों की माँग के होने पर समयाभाव के कारण नये चिन्तकों एवं साहित्य-निर्माताओं को चिन्तन तथा मनन का अधिक अवसर नहीं मिल पाता है। अतः उनके एकांकियों में मौलिकता भी नहीं आ पाती है।

इसी कारण, पुराण तथा आदि महाकाव्यों (रामायण, महाभारत) को अपनी रचनाओं के उपजीव्य बनाने के स्थान पर संस्कृत विश्ववन्द्य महा-कवियों के लब्ध-प्रतिष्ठ ग्रन्थों से कुछ अंश लेकर अथवा साहित्य-शास्त्रों में किसी अज्ञात कवि के बिखरे हुए श्लोकों को एकत्र करके उन्हें सम्यक् रूपेण संदृब्ध करने की परिपाटी भी चल पड़ी है। डॉ. राघवन की "रासलीला"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



"लक्ष्मी-स्वयंवर" "महाश्वेता" "आषाढस्य प्रथमदिवसे" आदि नाटिकाएँ इसी प्रकार की हैं। इनके विषयाधार के मौलिकता के अभाव एवं आकार-लाघव को देख कर इन्हें पूर्ण विकसित एकांकी तो नहीं कहा जा सकता तथापि अनुहरण से उद्भावित अभिनेय काव्यों द्वारा संस्कृत साहित्य के एकांकियों के कोश को सम्पन्त करने का श्रेय इन एकांकीकारों को निस्संकोच दिया जा सकता है।

इनके "आषाढस्य प्रथमदिवसे" में महाकवि कालिदास के खण्डकाव्य मेघदूत के श्लोकों का गद्य में रूपान्तर करके कालिदास के साथ यक्ष का वार्तालाप प्रस्तुत किया गया है। अन्त में कालिदास के मुख से "धूमज्योतिस्सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः" श्लोक कों उद्धृत करवाया है। तदुपरान्त इसी में यक्ष के मुख से उसके सन्देश-श्लोकों को यथावसर गेय बतलाकर इस रूपक को समाप्त करने का निर्देश उपलब्ध है।

संस्कृत के सुप्रसिद्ध गद्यकार बाणभट्ट की कादम्बरी में अंकित "शिवसिद्धायतनवर्णना" से लेकर "कामाकुल-महाश्वेता-दशावर्णन" तक के वर्ण्य विषय का संक्षिप्त प्रारूप इनकी "महाश्वेता" में अनुहृत है। इसके आरम्भ और मध्य में कादम्बरी के दो श्लोक उद्धृत हैं, एक श्लोक हर्ष-चरित में आकलित आद्यमंगल श्लोकों में से भी लिया गया है।

महाश्वेता– जयन्ति बाणसुर-मौलिलालिताः
दशास्य–चूडामणि–चक्रचुम्बिनः।
सुरासुराधीश-शिखान्तशायिनः
भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥[1]
नमस्तुंगशिरश्चुम्बिचन्द्र-चामर-चारवे।
त्रैलोक्यनगरारम्भ मूलस्तम्भाय शंभवे ॥[2]

डॉ. वे. राघव शर्मा ने श्रीमद्भागवत् पुराण के श्रीकृष्ण एवं गोपियों की रासलीला का वर्णन करने वाले श्लोकों (रासपञ्चाध्यायी) के आधार पर अपनी रासलीला नामक एकांकी नाटिका की रचना भी की है। उनका लक्ष्मी-स्वयंवर प्रेक्षणक भी इसी कोटि का है। इसके विषय का आधार है देवताओं

---

१– कादम्बरी से उद्धृत.
२– हर्ष चरित से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



और दानवों द्वारा समुद्रमन्थन की लोक-प्रचलित पौराणिक कथा। लक्ष्मी का क्षीरसागर में से निकलना और विष्णु को अपने पति के रूप में चुनना—इसमें दर्शाया गया है। पाश्चात्य पद्धति से प्रेरित होकर लिखी गई इन कृतियों में पुराणों से लिये गये श्लोकों एवं कुछ निजी पद्यों का संगम दृष्टिगोचर होता है। इन संगीत-नाटिकाओं में भाषागत सौष्ठव के दर्शन नहीं होते। अपनी मौलिकता के अभाव को ग्रन्थ-प्रणेता स्वयं भी स्वीकार करते हैं।

स्ववाक्य पत्राण्यायोज्य शुकश्लोक–कुसुमैस्सह।
जुगुम्फ राघवो रासलीलां वन्यामिव स्रजम्॥

\+ \+ \+

पुराणर्षि-वाक्य-पुष्पैः मद्वाक्यपत्रैश्च गुम्फिता।
साहित्य-वनमालेयं श्रीरिवैतु हरेरूरः॥

इनकी रासलीला में स्थित रासनृत्य एवं संगीत-तत्व को देखने से लक्षण-ग्रन्थों में वर्णित नाट्यरासक का ध्यान अवश्य आ जाता है। परन्तु वास्तव में यह एकांकी सामान्य प्रेक्षणक है।

## कामशुद्धि

इसी प्रकार इनका 'काम-शुद्धि' भी महाकवि कालिदास के विश्वप्रथित महाकाव्य कुमारसंभव पर आधारित लघु प्रेक्षणक है, जिसकी नायिका पार्वती न होकर कामप्रिया रति है और नायक है मदन।

कविः – वस्तु चैतत् कवेः कालिदासस्य कुमारसंभवात् महाकाव्या-दुत्थितम्, तस्य च हृदयभूतम्। अत्र नायिका रतिः न पार्वती। नायकश्च मदनः न परमेश्वरः।

परन्तु इसमें कवि की प्रतिभा चमक उठी है। मुनिजनों की तपस्या को भंग करके पापाचार में रत कामदेव की क्रुद्धा पत्नी रति घोर तपस्या में लीन होकर उसकी शासिका बनती है –

कामः– प्रिये कोऽयं सहसा अत्यारूढः कोपररोगः ? अद्यसंमोहनैन विश्वामित्रं रम्भायाः कुम्भदासं करिष्यामीति देवेन्द्राय प्रतिज्ञातवानस्मि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



रतिः– (कर्णौपिधाय) अविहा । अविहा । अलमेतैरपदानैः ।
अथवा अपवादैः । अहो, कियतीं लज्जां नावहन्त्येतानि ते
मन्मथः, कन्दर्पः, मदनः इति दुष्टानि नामानि ?

\+ \+ \+

परमेश्वरः–इयं सा, यस्यास्तपो मदीयमपि तपो
दूरमधःकृत्य, मामप्यनुकर्षेत् । दुर्ललितस्य भर्तुः पापानां
भार्यां स्वयं प्रायश्चितं कुरुते । ... ...

तपस्या–काल में साक्षात् परमेश्वर से उसका संवाद होता है । जब अपने पति के दुष्कर्मों से खिन्नमना रति अपने स्वामी को त्याग देना चाहती है, तब इस प्रसंग में परमेश्वर के मुख से उसके लिये निकले हुए उपदेश-वाक्य बड़े महत्व-पूर्ण हैं । उनका कहना है कि भर्तृ-परित्याग और पाप-साहचर्य, ये दोनों ही बातें अशोभनीय हैं । जिस प्रकार लोहे एवं अन्य धातुओं से मिश्रित स्वर्ण का त्याग न करके अग्नि में तपाकर उसे शुद्ध करके काम में लाया जाता है, उसी प्रकार कुशल पत्नी को कुमार्ग पर भी चलने अपने पति को सान्त्वनादि द्वारा सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करना चाहिए । उसे निराश नहीं होना चाहिए–

परमेश्वरः–आयुष्मति । नभर्तृ-परित्यागः शोभते, नतरां
शोभते पापसाहचर्यम् । ... ... कुशलया भार्यया
उच्छृखलं धावन्भर्ता निग्रहीतव्यः । लोहान्तरैः धातुभिश्च दूषितमिति
न हैमं परित्यक्तव्यं किन्तु पाकेन शोधयितव्यम् ।

असंस्कृत पशु-धर्म 'काम' सारी सृष्टि का कारण होता है । गीता भी प्रकारान्तर से इस तथ्य की पुष्टि करती है–

आयुधानामहं वज्रम् । प्रजानांचास्मि कन्दर्पः
सर्पाणामस्मि वासुकिः ।। १

परन्तु विवेक की अग्नि में तप कर यह कामैषणा शुद्ध काम का रूप धारण कर लेती है और परिष्कृत होकर मोक्ष का हेतु बन जाती है ।

१– गीता १०, २८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



परमेश्वरः– ... ... अशुद्ध एव कामः पुमर्थान्तराणामङ्गम्
शुद्धः पुनरनङ्गः । अङ्गी स्वयं परमः पुरुषार्थः ।

+ +

ज्ञानाग्नि-परिपूतो यः सर्वक्षेमैककल्पकः
स वः प्रकाशतां कामः मत्स्वरूपादनन्तरः ॥[1]

यही इस लघु नाटक का शुभ सन्देश है । अश्वघोष के सौन्दरनन्द काव्य के एक श्लोक में भी यही भाव निहित है ।[2]

क्रमेणाद्भिः शुद्धं कनकमिह पांसुव्यवहितं
यथाग्नौ कर्मारः पचति भृशमावर्तयति च ।
तथा योगाचारो निपुणमिह दोषव्यवहितं
विशोध्य क्लेशेभ्यः शमयति मनः संक्षिपति च ॥

इस उच्चादर्श के अतिरिक्त कामशुद्धि नाटिका में कवि का कवित्व अन्यत्र भी प्रस्फुटित है । मधु (वसन्त) एवं अन्य भाववाचक पात्रों का भी इस एकांकी में समावेश हुआ है, परन्तु उनके सजीव चित्रण के कारण उनकी भाववाचकता प्रकट नहीं हो पाती । भाषा प्राञ्जल है और रति को घोर तपस्या के दृढ़ निश्चय से विमुख करने के लिए जिस श्लोक का प्रयोग किया गया है, उसका प्रथमार्ध कुमारसंभव के पञ्चमसर्गस्थ कतिपय पदों से मिलता है ।

पदं सहेत भ्रमरस्य पेशलं
शिरीष-पुष्पं न पुनः पतत्रिणः ।
तपः-शरीरैः कठिनैरुपार्जितं
तपस्विनां दूरमधः करोत्यसौ ॥

तुलना कीजिये—

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥

---

१– कामशुद्धि.
२– सौन्दरनन्द सर्ग १५, श्लोक संख्या ६८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



ईप्सितार्थ को पाने से पूर्व ईप्सु को घोर तपस्या तथा तपःफल प्रदान करने से पहले फलदाता द्वारा उसकी परीक्षा लेने का चित्र संस्कृत-साहित्य में बहुत से स्थलों पर देखने को मिलता है। विशेषकर व्यायोगों में ऐसे विवरणों का प्राचुर्य है। संस्कृत-साहित्य के कवियों को इस प्रभावोत्पादक चित्रण ने इतना लुभाया कि परवर्ती साहित्यकारों ने बहुत समय तक इस प्रकार के वर्णन को स्वकीय कृतियों में स्थान देकर इसे एक रूढ़ि का रूप ही दे दिया। इन सब का प्रेरणा-स्रोत महाकवि भास एवं कालिदास की कृतियाँ ही है। डॉ० वी० राघवन् ने तो काम शुद्धि की रचना द्वारा इसके प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित किया ही है, अन्य अर्वाचीन नाट्यकारों ने भी कुमारसंभव के पञ्चम सर्ग को अपने काव्य का विषयाधार बना कर महाकवि कालिदास को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है, जिसमें डॉ० के० टी० पाण्डुरङ्गी का नाम प्रमुख है। इनका "तपःफलम्" भी रेडियो के लिये ही लिखा गया है। इसके अतिरिक्त इसी लेखक का "सीतात्याग" भी महाकवि वाल्मीकि, कालिदास एवं भवभूति की रचनाओं पर आधारित एवं रेडियो पर खेलने योग्य एक एकाङ्की है।

नलदमयन्ती के आख्यान पर आधारित "भैमीनैषधीयम्" सीतारामाचार्य की एक एकाङ्किका है। भारती द्वारा एकाङ्की नाटकों की प्रतियोगिता के लिये यह स्वीकृत भी हो चुकी है। श्री जीवनलाल टी० पारीख ने अपने छाया-शाकुन्तुलम् में "कालिदासीय शाकुन्तल" को उपजीव्यग्रन्थ बनाया है। इस नाटक में सर्व-प्रथम शकुन्तला कण्व के आश्रम में पहुँचती है। इसके बाद जब दुष्यन्त को खोई हुई अँगूठी मिल जाती है तब वह भी वहीं पहुँचता है। इसमें तिरस्करिणी विद्या के बल से अदृश्य शकुन्तला के साथ दुष्यन्त के साक्षात्कार का चित्रण किया गया है, जो उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क में प्रदर्शित काल्पनिक चित्र के अनुरूप है।

### पुनरुन्मेष

"पुनरुन्मेष" नामक एकाङ्किका के तीन छोटे-छोटे दृश्यों द्वारा डॉ. वी. राघवन् ने भारत के नष्टप्राय प्राचीन साहित्य तथा दिनोंदिन विस्मृति के गर्त में पतित होती हुई शास्त्रीय संगीत एवं नृत्यकला को पुनर्जीवित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। प्रथम दृश्य में एक आगन्तुक विद्याराम नामक ग्राम में पहुँचने पर किसी ग्रामस्थ द्विज को अपनी साहित्य-शास्त्र-विद्या से कुछ लाभ न हो सकने के कारण निराश होकर पुरानी हस्तलिखित पोथियों को विदेशियों के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



हाथ बेचकर अथवा नदी में बहाकर नष्ट करने को उद्यत देख दुःखी हो जाता है। परन्तु आगन्तुक—"आर्य। मैवं भण। अद्य स्वातन्त्र्यलाभानन्तरं भारतीय संस्कृतेः मूलभूतं विद्या भाषा च पुनर्विकासं कमपि प्राप्नोति। एतादृशतालकोशानां संग्रहे पालने प्रकाशने च बद्ध-परिकरा अधिकारिणः। नास्त्येव भवतो निर्वेदस्य अवकाशः। सर्वथा नाहमेतेषां तालपत्रग्रन्थानां नाशनं विदेशेभ्यो विक्रयं वा अनुमन्तुमुत्सहे।...पुनश्च भवान् साहित्य-निर्माण-निपुणः भविष्यति, सत्करिष्यते च लोकेन अधिकारिभिश्च।" इन शब्दों के साथ उसमें उत्साह का संचार करता है।

द्वितीय दृश्य में वही आगन्तुक किसी ग्राम-निवासी को कुल-परम्परागत संगीत-शास्त्र के अभ्यास से विरत देखकर उसे इस कुल-विद्या का परित्याग करने से रोकता है। "आगन्तुकः—मन्ये महदिव वैराग्यंभवताम् उदीर्णम्। किन्तु सर्वथा अदीर्घदर्शितया भवद्भिः किलेयं परम्पराभ्यासपरिपाकशालिनी इयं कुल-विद्या तपस्विनी पतिव्रतेव परित्यज्यते।......
गीतादि-कला-पोषणार्थमुचिताः स्वतन्त्रभारते आरचिताएव–"

इसी प्रकार तृतीय दृश्य में वह पुराने देवालय से बहुमूल्य वस्तुओं को चुरा कर विदेशियों के हाथ बेचने वाले चोर से कुवृत्ति का परित्याग करवा कर उसे कोई सद्वृत्ति सुझाता है। मन्दिर के पीछे शास्त्रीय-नृत्यकला सीखने के लिये आग्रह करती हुई बालिका को इस कला का मोह त्याग कर किसी शहर के सिने-संसार की शोभा बढ़ाने की सलाह देने वाली वृद्धा को भी वह आगन्तुक सन्मार्ग दिखलाता है।

"तद्वत्से, गच्छ तं ज्ञानवृद्धं नाट्याचार्यम् अथवा तमत्रैव आनय, नाट्यकलाशालामस्मिन्नेव ग्रामे स्थापयिष्यामि।"

इस रूपक के अन्त में ग्रामस्थ साहित्य-शास्त्रविद् द्वारा प्रणीत निम्नाङ्कित काव्य रचना को संगीतज्ञ ने स्वरदान दिया, और नटी–बालिका ने साथ ही साथ उसे अभिनीत किया।

देवि भारत जननि जगति पुराण्यपि नूतना
दीव्यसे त्वमुदारमात्मगुणैः कलादि-समृद्धिभिः।
भाविता हि महर्षिभिः परिपालिता च नृपर्षिभिः।
कालिदास-कवीन्द्रशंकर – देशिकेन्द्र-सुपोषिता।
सत्य-सान्त्वन-शान्त्यहिंसन दूतिकेऽम्ब नमोऽस्तुते॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



इस प्रकार इस काव्यांश में कवि ने प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृति को संगृहीत कर दिया है।

छोटे नाटकों में बीजबिन्दुपताकादि के प्रयोग के नियम को आवश्यकतानुसार शिथिल करने की स्वतन्त्रता यद्यपि आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यकारों को आज से बहुत पहले ही दे दी थी [१] और महाकवि भास ने दर्पणकार से भी बहुत दिन पूर्व अपनी कृतियों में कतिपय नाट्य-सिद्धान्तों की अवहेलना कर के इसको दिखला दिया था तथा शूद्रक ने भी वसन्तसेना की दुःखद मृत्यु का वर्णन करके अपनी स्वच्छन्दता का परिचय दिया था तथापि उसे पूर्णतः सक्रिय रूप प्रदान करने का श्रेय अभिनव-रूपककारों को ही है। वर्तमान काल के साहित्यकारों का ध्यान शास्त्रीय पद्धतियों से हट कर व्यावहारिक जीवन की ओर खिंच रहा है। आज का मानव-समाज अतीत के स्वप्न में ही उलझा रहना नहीं चाहता। आधुनिक मानव की दृष्टि भविष्य पर जमी हुई है और वह नई दिशाओं में आगे भी बढ़ना चाहता है।

भारत के इतिहास से प्रत्यक्ष है कि भारतीयों ने समय-समय पर आने वाले आक्रमणकारियों से अपनी संस्कृति की रक्षा के हेतु रूढ़ि का सहारा लिया और उनकी रूढ़िवादिता साहित्यकारों की दुनियाँ में भी व्याप्त हो गई। साहित्यिकों ने अपने आपको अनेक शास्त्रीय सीमाओं में बुरी तरह बाँध लिया। परिणामस्वरूप राजाश्रय में पनपने वाले प्राचीन नाट्य-प्रणेता जीवन से काफी दूर हट गये, उनका सम्बन्ध जन-साधारण से छूट कर शासन के कृपापात्र शिष्टवर्ग तक ही सीमित रह गया। मध्ययुगीन एकाङ्की साहित्य में भी यह परम्परा स्पष्ट है।

इसके विपरीत नवयुग के रूपककार एकाङ्की-कानन को स्वच्छन्दतावाद के शीतल जल से सींच रहे हैं। अतः इसमें हम नित्य नये फूलों को प्रस्फुटित होते देख रहे हैं। अमृत होकर भी जो संस्कृत वाणी बहुत समय से मृतवत् थी अब इन एकाङ्कियों के रूप में फिर से जीवित हो उठी है। रुका हुआ प्रवाह मानों आधुनिक युग के आरम्भ और मध्यवर्ग की सांस्कृतिक चेतना से पुनः गतिमान् हो उठा है।

---

१– साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद श्लोक सं० ११५–२१ पृ० ३२२–२३.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



यों तो प्राचीन एकाङ्कियों (विशेषकर भाण एवं प्रहसन साहित्य में) भी यथार्थवाद के दर्शन होते हैं, जिसका श्रृङ्गार से ओत-प्रोत समाज के नग्न चित्रों से युक्त होने के कारण आधुनिक दृष्टि में अब विशेष महत्त्व नहीं रहा है, परन्तु इसमें साहित्यकारों का दोष नहीं है। तत्कालीन जनता की अभिरुचि ही इस प्रकार के रूपकों की सर्जना का मूल हेतु है। इसके समर्थन में आधुनिक सिनेमा-संसार की, (जो दृश्य काव्य का ही स्थानापन्न है) थोड़ी बहुत चर्चा कर लेना अनुपयुक्त न होगा। जिस प्रकार फिल्म-निर्माता किसी फिल्म की रचना करते समय जन-साधारण की रुचि का पूरा ध्यान रखते हैं उसी प्रकार आज के साहित्यकारों की भी एक स्वतन्त्र दृष्टि है, जो शास्त्रीय एवं रूढ़िबद्ध न होकर यथार्थ के अधिक समीप हैं। आधुनिक युग के कलाकार शास्त्र की अपेक्षा जीवन से प्रेरणा पाते हैं। यह ठीक है कि उनकी कलात्मक कृति में कवि के हृदय की दबी हुई (Suppressed) भावनाओं का प्रकाशन होता है, फिर भी उनका आधार समाज में प्रचलित बातें ही हुआ करती हैं। दिन भर की दौड़-धूप से श्रान्त होकर लोग चलचित्र भवन या नाट्यशाला में अध्यात्मिक विषय के गम्भीर चित्रों को देखकर अपना पैसा और समय नष्ट नहीं करना चाहते। इसीलिए हम देखते हैं कि धार्मिक और ऐतिहासिक तथा उच्चकोटि के सामाजिक चित्र उतने लोकप्रिय नहीं होते जितने "विनोद" और "श्रृङ्गार" में रञ्जित चित्र। गम्भीर एवं शिक्षाप्रद चित्रों को तो बालोपयोगी समझकर शिक्षण-संस्थाओं तक ही सीमित किया जाने लगा है। सारांश यह है कि हर युग में हर देश में जनता का एक बहुलांश केवल मनोरञ्जन-मिश्रित-शिक्षण की भावना से रचे गये नाटकों का ही सम्मान करता है।

संस्कृत नाट्य की प्रगति में समय-समय पर जो अवरोध होता रहा है उसका मूल कारण भी इन नाट्य-कृतियों में अङ्कित कवियों का आदर्शवादिता की ओर झुकाव ही है। इसीलिये संस्कृत के एकाङ्कियों का प्रचार भारत की अन्य देशज भाषाओं के साहित्य के सदृश तीव्र नहीं हैं। अब तक इनका स्थान कतिपय संस्कृतानुरागी विद्वानों के समाज तक ही सीमित रहा है। आज संस्कृत जगत् में जो थोड़ी बहुत चेतना दिखाई देती है वह गत सत्रह–अट्ठारह वर्षों की स्वतन्त्रता का परिणाम है। संस्कृत साहित्य के इस नवयुग को हम सन्धि का युग कह सकते हैं, क्योंकि इस क्षेत्र में रूढ़िवादिता अभी पूर्ण रूपेण दूर नहीं हो सकी है, फिर भी संस्कृत-साहित्य में एक अपूर्व क्रान्ति उत्पन्न हो गई है, इसमें सन्देह के लिए कोई अवकाश नही है। आज देशभक्त विद्याविलासी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



अपने देश के खोए हुए गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिये सजग हैं। वह महत्वपूर्ण प्राचीन रहस्यों के अन्वेषण में लगे हैं। इस कार्य-क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए संस्कृत का ज्ञान अपेक्षित है, इस तथ्य को भी लोग पहचानने लगे है। डॉ. वी. राघवन् की पुनरून्मेष: शीर्षक रेडियो नाटिका इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से अपने वर्तमान को उन्नत बनाने के लिये अतीत की परम्पराओं को जानकर उनका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक होता है। इसे ध्यान में रख कर पूर्व पृष्ठों में यह विस्तारपूर्वक बतालाया जा चुका है कि संस्कृत के एकाङ्क-रूपकभण्डार में पञ्जीकृत सम्पत्ति के रूप में क्या कुछ था और उस चिर संगृहीत पूंजी के आधार पर आज के संस्कृतानुरागी विद्वान इस क्षेत्र में क्या कर रहे हैं? भूत तथा वर्तमान कालीन संस्कृतएकाङ्की लेखन की अखण्ड परम्परा को देखते हुए भी साहित्य के अधिकांश मर्मज्ञ भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य के इतिहास में एकाङ्की के आगमन को एक अपूर्व घटना समझने लगे है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध मीमांसक श्री परसिवल वाइल्ड के अनुसार नाटक साहित्य के कुटुम्व में एकांकी नाट्य ८० या १०० वर्ष से अधिक पुराना नहीं है।[१] सम्भवतः समस्त भारतीय आलोचकों ने इसी प्रकार के पाश्चात्य विचारों से प्रभावित होकर अपनी ऐसी धारणा बना ली है। वास्तव में भारतीय भाषाओं का विकास संस्कृत से उद्भूत अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है। उनका साहित्य भारत के प्राचीन साहित्य की मूल धारा की विभिन्न प्रस्फुटित धाराओं का ही स्वरूप है।

---

१– In the ancient and honourable family of the drama the one-act play is a new comer. Whether its first exampler date from the eighteen-eighties, or whether by some stretch of the imagination, works of even remoter origin may bear the designation "one-act play" is beside the point compared with the antiquity of its kindred, the one act play is an infant whether thirty, fifty or even a hundred years of age.
Preface, The Craftmanship of the One Act Play, Percival wilde.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत काव्यशास्त्र के भारतीय नाट्यशास्त्र, दशरूपक, भावप्रकाश, साहित्य-दर्पण आदि ग्रन्थ केवल १०० वर्ष पुराने नहीं, अपितु अनेक शती पुराने हैं। इन ग्रन्थों में क्रमशः एक अङ्क वाले साक्षात् नाटकों और भाण प्रहसन तथा व्यायोग जैसे नाटक-भेदों की संज्ञाओं के उपलब्ध होने से यह बात बिना गम्भीर चिन्तन के ही कट जाती है कि एकांकी नई वस्तु है और अभी उसका शैशव काल चल रहा है। एकांकियों के उद्भव के सम्बन्ध में भारतीय समीक्षकों ने काफी भ्रम फैलाया है। इसकी पुष्टि में इतना कह देना ही अलम् होगा कि हिन्दी एवं मैथिली में (जिन्हें बहुत समय तक एक ही भाषा के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है) तो एकांकियों के विषय में थोड़ी-बहुत लेखबद्ध सामग्री मिल भी जाती है किन्तु बँगला और मराठी के साहित्य में इस विषय पर सन्तोषप्रद विवरण अब तक अप्राप्य है। मराठी एकांकियों के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले अंश तो हमें यत्र तत्र मिल भी जाते हैं, परन्तु इनके नाट्य-शिल्प (टेकनीक) के विषय में कहीं भी स्वतन्त्र रूप से विचार व्यक्त नहीं किये गये हैं। इसका कारण यह है कि भारतीय देशी भाषाओं के नाट्य का अपना कोई तन्त्र नहीं है। जिस प्रकार ब्रह्मा ने प्राचीन काल में चारों वेदों में से नाट्योपयोगी तत्त्वों को ग्रहण करके पञ्चम वेद की सृष्टि की थी, उसी प्रकार आधुनिक भारतीय नाट्यकारों ने कुछ संस्कृत से, कुछ लोक प्रचलित अशास्त्रीय अभिनयों से और अर्वाचीन युग के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा लेकर अपने भव्य नाट्य-मंदिर का निर्माण किया है। फलतः मैथिली, हिन्दी, बँगला, मराठी आदि भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के नाटकों की विषयवस्तु और भाषा तो भारतीय ही हैं परन्तु तन्त्र पश्चिमी होता हैं। इसके समर्थन में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि भारतीय प्रादेशिक एकांकी साहित्य का प्रारम्भिक रूप प्रायः संस्कृत साहित्य से प्रभावित दृष्टिगत होता है। प्राप्त रूपकों को देख कर ही संस्कृत के लक्षण ग्रन्थ बने, यह बात निर्विवाद है। हिन्दी, बँगला, मराठी, मैथिली आदि भारतीय प्रादेशिक भाषा-विद् नाट्यशास्त्री बार-बार यह कहते हैं कि एकांकी की प्रेरणा प्रादेशिक भाषाओं ने पश्चिम से ली।

भारतीय साहित्य के क्षेत्र में उक्त सांकर्य का प्रमुख कारण हमारे देश का समय-समय पर विदेशियों द्वारा आक्रान्त रहना है। भारत की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परतन्त्रता ने ही आधुनिक साहित्यकारों को इस भ्रमजाल में बाँधा है। देश के इतिहास में एक ऐसा भी युग आया जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE



अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के साथ संस्कृत से सम्बद्ध अनेक विषयों की शास्त्रीय बातों का ज्ञान शिक्षार्थियों को अंग्रेजी के माध्यम से देने की पद्धति शैक्षणिक केन्द्रों में प्रचलित हुई। इस प्रकार भारतीय साहित्य से उनका परिचय अंग्रेजी या पश्चिम के साहित्य द्वारा होने लगा। फलतः भारतीय विद्वान् पाश्चात्य ग्रन्थों को उपादेय समझ कर उनमें से अपनी रचना के लिए सामग्री ग्रहण करते समय उन विचारों का आदि-मूल उसी भाषा के विचारकों एवं साहित्यकों को मानने लगे। आधुनिक भारतीय नाट्य-साहित्य के प्रणयन पर भी यही बात लागू होती है।[1]

हिन्दी में एकाङ्कियों के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न करने वाले डॉ. रामकुमार वर्मा के लिये प्रायः कहा जाता है कि उनकी एकांकी कला पश्चिम की देन है, परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा से उसे भारतीय बना दिया है। वर्मा जी ने एकांकियों में प्रतिष्ठापित आदर्शवाद को जीवन की व्यावहारिकता का जामा पहना दिया है, जो आज नैतिक दृष्टि से जनता के लिए हितकारी है। उससे व्यञ्जित होता है कि अपनी एकांकी-कला का प्रदर्शन करते समय उन्होंने भारतीयता की रक्षा के हेतु भरत के नाट्य-शास्त्र का सहारा लिया होगा कारण, भरत धनञ्जयादि द्वारा प्रतिपादित "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्" लक्षण में यथार्थवाद सन्निहित है। धनञ्जय के यथार्थवाद को वे वर्तमान परिस्थितियों का यथार्थवाद मानने को तैयार हैं, किन्तु नाटक-निर्माण की अपनी कल्पना में वे ऐसे यथार्थवाद का चित्रण करना चाहते हैं जिस मनुष्य के जीवन में उपस्थित होने वाले अन्तर्द्वन्द्व उसके हृदय के मर्म को प्रकाशित करने में समर्थ हो सके हों। वाह्य संघर्ष में शारीरिक शक्ति-प्रदर्शन द्वारा रङ्गमञ्च पर मनोरञ्जन का दृश्य उपस्थित करने में सफलता मिलती है, किन्तु नाट्य कला की दृष्टि से अन्तर्द्वन्द्व मनुष्य की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन कर बाह्य संघर्ष की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। प्राचीन एकांकी "अंक" रूपक में करुण रस की प्रधानता होती है, आधुनिक एकांकियों में भी अधिकांश करुणरस की ही प्रधानता दिखलाई देती है। पश्चिम की विचारधारा के अनुसार (करुणरस की प्रधानता) करुणाप्रधान दुःखान्त नाटकों का ही विशेष महत्व है।

---

१- इस अंश के पोषक तत्वों के विस्तृत विवेचन की विस्तारभय से यहाँ उपेक्षा की गई है। संदर्भग्रन्थों की तालिका इस ग्रन्थ में यथास्थान संलग्न है। स्थालीपुलाकन्यायेन कुछ प्रमुख संस्कृतेतर एकाङ्कीकारों का ही यहाँ उल्लेख किया गय गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



एकांकी नाटकों की एक विशेषता यह भी है कि उसमें एक ही घटना होती है जो नाटकीय कौशल से दर्शकों के हृदय में कौतूहल उत्पन्न करते हुये 'अति' या "क्लायमेक्स" पर पहुँचती है। उसमें मुख्य घटना के विपरीत कोई आवश्यक प्रसङ्ग नहीं आने पाता। उसमें वर्णित एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द कीं अपनी उपयोगिता होती है। वे कदापि व्यर्थ नहीं होते। पात्र चार या पाँच ही होते हैं जो नाटक के अभिनय के लिए नितान्त आवश्यक होते हैं।

एकांकी के लिए कथावस्तु के चुनाव के सम्वन्ध में एकांकी के मर्मज्ञ डॉ. वर्मा का मत है कि कथावस्तु स्पष्ट हो, जटिल न हो, किन्तु उसका विस्तार कौतूहलपूर्ण हो। इसके अतिरिक्त उसमें वर्णनात्मक तत्त्व की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्त्व की प्रधानता होनी चाहिये।

बँगला[1], मैथिली आदि भारतीय, प्रादेशिक भाषाओं के क्षेत्र में भी एकांकियों के सम्वन्ध में आलोचकों के लगभग ऐसे ही विचार हैं।

दक्षिण भारत के नाट्यसाहित्य की भी यही स्थिति रही है। वहाँ के निवासी कलाप्रिय रहे हैं। विशेषकर भारत का यह भाग शास्त्रीय संगीत तथा नृत्यकला का केन्द्र रहा है। प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेषों तथा गुफाओं में संगीत नृत्यादि करते हुए ईश्वरोपासना में लीन देवी-देवताओं की मूर्तियों को देखने से भारत की इस कला का आदिस्वरूप साकार हो जाता है। भारतीय साहित्य के इतिहासों में दक्षिण भारतीय रङ्गमच पर जो चर्चा मिलती है, उसके आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि केरल, तेलगू, कन्नड़ आदि दक्षिण भारत की भाषाओं में भी हिन्दी, बँगला, मराठी आदि उत्तर भारत की प्रादेशिक भाआओं की तरह लिखित एवं मौलिक साहित्यिक नाटकों का सूत्रपात बहुत देर से हुआ। इससे पहले जनता का झुकाव तोलुबोम्लाट

---

१- (क) गल्प-उपन्यासेर तुलनाय नाटके लेखकेरा तेमन वैचित्र्य अथवा शक्ति देखाइते पारेननाई। ऐटा बांगला सहित्येरई विशेषत्व नय, प्राय सब आधुनिक साहित्येई देखा गिया छे। बाँगला साहित्येर इतिहास चतुर्थ खण्ड ले०-श्री सुकुमार सेन, पृ० ३१०-३१५.

(ख) एकाङ्क नाटक जे विशेष श्रेणीर 'साहित्यिक नाटक' एकान्त भावे ऐ कालेरई सृष्टि, बांगलाय ता आजो विशेष करे लेखाई होयनि। ...
बाँगला साहित्येर भूमिका, लेखक- नन्दगोपाल सेन गुप्त, पृ० १७४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDr



(कठपुतली के खेल के समान) तथा वीथी भागवतु जैसे लोक नाटकों की ओर ही था। ऐसे नाट्यों में से अधिकांश की कथावस्तु पौराणिक और ऐतिहासिक (रामायण, महाभारतादि से ली हुई) ही हुआ करती है।

नाटकीय मनोरञ्जनों का मुख्य उद्देश्य शिक्षण तथा मनोरञ्जन ही होता है। देशकालभेद के कारण इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, केवल बाह्याकृति परिवर्तित हो सकती है। दक्षिण भारत में केरल ऐसा स्थान है जहाँ प्रमुख रूप से संस्कृत नाटकों का अभिनय हुआ करता है। वहाँ का रंगमंच लगभग एक हजार वर्ष तक अनवरत रूप से बना रहा है। संस्कृत एवं मलयालम विषयक ज्ञान के पिपासुओं के लिए इस क्षेत्र में पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकती है। यहाँ का रंगमंच अन्य भाषाओं के रंगमंच से भिन्न है। कारण इसमें नृत्य, तथा अभिनय पर विशेष जोर दिया जाता है। इसकी एक विशेषता मुद्रा-भाषा का प्रयोग भी है। बहुत से नाट्यकारों में तो अभिव्यञ्जना का साधन ही तीन प्रकार की मुद्राएँ होती हैं। यथा (१) प्राकृतिक मुद्राएँ, (२) अनुकरणात्मक मुद्राएँ (३) ऐसी मुद्राएँ जो सनातनी तान्त्रिक और मान्त्रिक संकेतों के आराधना, अभयदान, आह्वान आदि के लिए प्रयुक्त होती है। संभवतः संस्कृत रंगमंच में इसका प्रयोग संस्कृत के प्रचार के लिए किया गया होगा।

प्रायः सभी दृश्य-मनोविनोदों में धार्मिकता का पुट होता है। तदनुसार धार्मिक, अर्द्धधार्मिक और धर्मनिरपेक्ष इन तीन प्रकारों में इन्हें विभक्त किया जा सकता है। धार्मिक में भगवती पट्टु, पण पट्टु कणियाडकली और मुटि-पट्टु हैं। धर्मनिरपेक्ष में एलाममुट्टी, पुरापट्टु, तुल्लल, कोराट्टियाट्टम मोहिनि-याट्टम, कथाकली आदि रक्खे जा सकते हैं। अर्द्ध धार्मिक में संघकली, कट्टु और कृष्णट्टम हैं। प्रथम दो विशुद्ध देशी भाषा में और अर्द्ध-धार्मिक मुख्यतया संस्कृत में निबद्ध होते हैं। विशेषकर कृष्णट्टम पूर्णतया संस्कृत का मनोरञ्जन नाट्य है और वह भी संभवतः गीतगोविन्द पर आधारित।

केरल के बाद तेलगु का रङ्गमञ्च भी प्राचीन और संस्कृत-काल में एवं तदुपरान्त भी अत्यन्त समृद्ध रहा है। तेलगु-साहित्य के इतिहास से प्रत्यक्ष होता है कि वहाँ के गाँव-गाँव में स्थानीय लोकमञ्च नाट्यानुरागी जनता का चित्तानुरञ्चन करते रहे हैं। अब भी भारत के अनेक स्थलों में इनके चिह्न प्राप्त होते हैं। लोकनाट्य के साथ तेलगुप्रदेश पर संस्कृतनाट्य का प्रभाव रहा है, इसे भी भुलाया नहीं जा सकता, तेलगु क्षेत्र के कवियों और साहित्यकारों ने संस्कृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



में अनेक नाटक लिखे हैं। अनेक राजाओं ने स्वयं भी संस्कृत रूपक लिखे और वे रूपककारों को समुचित प्रश्रय और प्रोत्साहन देते रहे हैं। आधुनिक तेलगु नाट्यसाहित्य को यह परम्परा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई और इससे वह लाभान्वित भी हुआ है।

अंग्रेजी के सम्पर्क में आने से यहाँ भी बहुत थोड़े समय से समसामयिक और सामाजिक समस्याओं, आर्थिक प्रश्नों, राजनीतिक उद्देश्यों तथा आदर्शों को सामने रख कर नाटकों की रचना होने लगी है, जिनमें से पुरानी पद्यात्मक रचना शैली का बहिष्कार किया जाने लगा है। भारतीय भाषाओं के इतिहास के अनुशीलन से प्रत्यक्ष हो जाता है कि पुराने नाटककारों को संस्कृत नाटकों का अनुवाद करने अथवा उनके आधार पर अपनी कृति का प्रणयन करने में संकोच नहीं होता था। परन्तु अब के प्रायः सब साहित्यकार ऐसा करने में अपनी अवमानना समझने लगे हैं। इसी संकोच के फलस्वरूप तेलुगु में अनूदित कृतियों की संख्या अल्प है। आन्ध्र में एकाङ्की का प्रचार बहुत है। प्रत्येक पत्रिका में एकांकी प्रकाशित होते हैं। नरल वेंकटेश्वरराव बड़े सफल तेलगु-एकांकीकार हैं। आन्ध्र में इसके प्रचलन का कारण उनके प्रस्तुतीकरण की सुगमता। उक्त आर्येतर भाषाओं का हिन्दी, बँगला आदि आर्य भाषाओं से सीधा सम्बन्ध न होते हुए भी दक्षिण भारतीय साहित्य में नाट्यकला का प्रेरणा-स्रोत भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ही रहा है। संस्कृत के साधकों में दाक्षिणात्यों का प्रमुख स्थान है।

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों के अमूल्य भण्डार का प्रमुख रूप से मद्रास के पुस्तकालयों में पाया जाना, संस्कृत के भाण तथा प्रहसनादि में से अधिकांश कृतियों के रचयिताओं का निवास स्थान का दक्षिण भारत में होना, इस बात को प्रमाणित करता है कि आर्येतर भाषाओं का नाट्य-साहित्य भी संस्कृत के नाट्यसिद्धान्तों की सर्वांश में उपेक्षा नहीं करता। आज भी ललितकला के इस क्षेत्र में मद्रप्रदेश के निवासी ही प्रगति कर रहे हैं। पूर्व पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि वे संस्कृत की सुषुप्त एकांकी कला को जगाने का यत्न भी कर रहे हैं।[१]

पश्चिम के एकांकियों के इतिहास पर एक दृष्टि डालने से मालूम होगा कि वहाँ एकांकियों की रूप-रेखा १० वीं शताब्दी के मिरेकिल्स और मारेलि-

---

१– The Sanskrit Ranga Annual (1958-59), II (1950-60) III (1961-61)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDr



टीज़ नामक नाट्य रूपों में उपलब्ध होती है। कोई आकर्षक आख्यान या ईसाई सन्तों के धार्मिक क्रियाकलापविषयक नैतिक उपदेश ही पाश्चात्य एकांकी के उक्त अविकसित रूपों के विषय हुआ करते थे और जिनका उद्देश्य धर्म-प्रचार हुआ करता था। तदन्तर जनता के मनोरञ्जन के उद्देश्य से लिखे गये विनोद-जन्य इन्टरल्यूड्स में इसका विकसित रूप दिखाई देता है, जिनमें अधिक से अधिक तीन पात्रों द्वारा किसी एक भावना के प्रदर्शन की प्रवृत्ति रहती है। किन्तु १९वीं, २०वीं शताब्दी में पैरिस (ई० १८८७, १८९३, १९१४) बर्लिन (१८८९) लंदन (१८९१) डबलिन (१९०४) शिकागो (१९०६) आदि पश्चिम के नगरों में लिटिल थियेटर में मूवमेण्ट के परिणामस्वरूप प्रीतिभोज में भोजन से पूर्व पधारे हुए तथा अन्य अतिथियों के आगमन की प्रतीक्षा में बैठे मेहमानों की प्रतीक्षा में क्षणों के बोझ को हल्का करने के लिये रचे गये प्रहसनों का प्रयोग होता था। प्रेक्षा-गृहों में भी बड़े नाटकों के आरम्भ मे पूर्व दर्शकों का मनबह-लाने के लिये अथवा उनके बीच में गाम्भीर्य को थोड़ी देर के लिये दूर करने के निमित्त द्विपात्रीय हास्यपरक-संवादात्मक कर्टेनरेजर के प्रचलन ने एकांकियों के प्रणयन को अपूर्व प्रेरणा प्रदान की। जे. एन. बेरी, जे. वी. शा, हाप्टमेन, मोलियर, इब्सन, चेखव, गोर्की आदि पश्चिमी नाटककारों की प्रतिभा से एकांकी कला को आधुनिक साहित्य रूप मिला है।

## संस्कृत के 'अङ्क' और व्यायोग की पाश्चात्य एकाङ्की से तुलना

इन सब बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि मनोविज्ञान, अन्तर्द्वन्द्व तथा करुण रस का आधिक्य ही एकांकी के आधुनिक रूप की विशेषता है। पात्रों की अत्यल्प संख्या तथा इस नाट्य रूप के एकांकत्व की दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन एकांकियों में कोई भेद नहीं दिखाई देता। यह बात ठीक है कि संस्कृत के एकांकी नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व एवं मनोविज्ञान के लिये विशेष स्थान नहीं है, परन्तु यह कहना भी बहुत ठीक नहीं, कि संस्कृत के नाटक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व से सर्वथा शून्य हैं। कतिपय नाट्य-स्तुतिकारों ने नाट्य-वस्तु के विकास क्रम की वक्रता को देखकर नाटक को काव्य का सर्वश्रेष्ठ रूप माना है।

> प्रत्यङ्कमङ्कुरित-सर्वरसावतार-नव्योल्लसत्-कुसुमराजि विराजिबन्धम्।
> धर्मेतरांशुरिव वक्तृतयातिरम्यं नाट्यप्रबन्धमति मञ्जुलसंविधानम्॥

नाट्य प्रबन्ध का यह मञ्जुल संविधान बिना कौटिल्य प्रदर्शन के तैयार नहीं किया जा सकता। संस्कृत के मुद्राराक्षस, मृच्छकटिक, रत्नावली जैसे कुछ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



सम्पूर्ण विकसित रूपकों में अन्तर्द्वन्द्व और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण देखा जा सकता है। यद्यपि एकांकियों में इसके लिये कम अवकाश रहता है तथापि 'अंक' में इसकी झलक दिखाई देती है, वहीं करुणा के दर्शन भी होते हैं। संस्कृत के नाट्यमीमांसकों ने 'अङ्क' के जो लक्षण प्रस्तुत किये हैं, उनके अनुसार इस एकांकी के भेद में कथावस्तु के लिए प्रख्यातवृत्त अथवा काल्पनिक इतिवृत्त को स्थान देने का आदेश है। यह प्रख्यातवृत्त अतीत का भी हो सकता है और वर्तमान का भी। पात्रों के सम्बन्ध में नायक पात्र के लिए धीरोदात्त, धीरोद्धत धीरललित अथवा धीरप्रशान्त पात्र के स्थान पर, "नेतारः प्राकृता नराः" कह कर सामान्य वर्ग के पात्रों का निर्देश किया है। 'परिदेवितम्' से हार्दिक दुःखानुभूति का बोध होता है तथा "युद्धं च वाचा कर्तव्यम्"–इस पद से इसके पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन को विचित्र पूर्ण उपालम्भ के रूप में समझना चाहिए। "जयपराजयौ" को आधुनिक नाटकों में दिखाये जाने वाले संघर्ष अथवा किसी अंश में अन्तर्द्वन्द्व के प्रतीक के रूप में लिया जा सकता है।

सारांश यह है कि उत्सृष्टिकाङ्क की आधुनिक एकांकियों से निस्संकोच तुलना की जा सकती है। अंक का वर्णन करते समय इस कोटि के रूपकों के अन्य उदाहरणों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है जो प्राचीन युग में इसके प्रचलन को प्रमाणित करते हैं। इसके अतिरिक्त वीररसप्रधान और युद्ध के दृश्यों से युक्त व्यायोगों में भी मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के आंशिक रूप में दर्शन किये जा सकते हैं। इसके प्रति संस्कृत के एकांकीकारों के औदासीन्य को प्राचीन युग का प्रभाव ही समझना चाहिए। पहिले मनुष्य समाज में आज जैसे संघर्ष नहीं हुआ करते थे अतः उसकी छाया भी संस्कृत की अभिनेय कृतियों में कम ही देखने में आती हैं।

अब प्रश्न उठता है परम्परागत भारतीय नाट्य साहित्य में नाटकों की संख्या एवं विधा की दृष्टि से बहुलता होते हुए भी एकांकीसदृश लघु नाटक रचना की ओर साहित्यिकों को आकर्षण क्यों हुआ और उसका प्रचार द्रुत गति से क्यों हो रहा है? बात ठीक है। साहित्यिक दृष्टि से पूर्ण नाटकों का महत्त्व आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। हाँ, विश्व के अन्य देशों के समकक्ष साहित्य प्रस्तुत करने की उसकी प्रवृत्ति के कारण उसके प्राचीन रचना-विधान में परिवर्तन अवश्य हुआ है। वर्तमान काल के भारतीय नाटकों में नान्दी, मङ्गलाचरण तथा प्रस्तावना का प्रायः बहिष्कार सा हो गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MDI



जब तक भारत की नाट्य कला अपने देश में अभिनय के लिये उपर्युक्त रङ्गमञ्च पर प्रदर्शित की जा सकी (जो प्रायः राजकीय या धार्मिक उत्सवों के समय ही होता था) तब तक उस समय की धार्मिक स्थिति के अनुसार मङ्गला-चरण, नान्दी आदि विषय उसमें समाविष्ट रहे। किसी नाटक के अभिनय की सूचना आयोजित उत्सव के समारोह से पूर्व विज्ञापनों द्वारा देने का प्रचार उस समय नहीं था। अतः नाट्य शास्त्रीय विधान के अनुसार सूत्रधार तथा नटी-सदृश पात्रों द्वारा अभिनय के लिये प्रस्तुत नाटक के प्रणेता एवं विषय आदि का ज्ञान दर्शकों के ध्यानाकर्षण के लिए कराना अनुचित नहीं प्रतीत होता था, किन्तु वर्तमान काल के रङ्गमञ्च की स्थिति उस समय से भिन्न है। आजकल द्रष्टव्य नाटक कौन-सा होगा? उसका विषय क्या होगा? इत्यादि बातों का ज्ञान प्रेक्षकों को पहिले से ही होता है। इसके अतिरिक्त केवल साहित्यिक नाटकों के लिये भी मङ्गलाचरण या नान्दी (जिसे आस्तिकतावश या विघ्न-विघात के लिये धर्मिष्ठ लेखक आवश्यक समझते थे) सूत्रधार और नटी तथा पारिपार्श्विक जैसे पात्रों की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

अब रचना में रस-निष्पत्ति (रस का प्रसार) का भी ध्यान नहीं रक्खा जाता। इसका स्थान पात्रों के चरित्र-चित्रण, उनके कथोपकथन एवं वस्तु-कथा में प्रस्तुत किसी घटना के चरमोत्कर्ष ने ले लिया है। परिणाम की दृष्टि से भी सुखान्त की अपेक्षा दुःखान्त रचनाओं का विशेष आदर होने लगा। इन सब परिवर्तनों के कारण भारतीय साहित्य का विश्व के अन्य देशों के साथ साहि-त्यिक-संस्कृति की दृष्टि से सम्पर्क हो गया है, किन्तु मनोरञ्जन के व्यावहारिक क्षेत्र में अभिनयात्मक कला के प्रति इस युग की व्यावसायिक मनोवृत्ति ने नाटकों की साहित्यिक महत्ता को बहुत क्षति पहुँचाई है। फलतः पूर्ण-नाटक साहित्यिक प्रगति का सफल माध्यम नहीं बन सका। चित्रपट एवं रेडियो-रूपकों के अति-प्रसार के कारण बड़े नाटक प्रायः लुप्त-से हो गए हैं। उनके स्थान पर एकांकी की उपयोगिता और लोकप्रियता बढ़ रही है। वर्तमान एकांकी नाट्य-साहित्य में प्राचीन एकांकियों के भाण, प्रहसन, व्यायोग, अङ्क और वीथी आदि पृथक्-पृथक् रूपों की भाँति एकांकियों का संज्ञा-भेद नहीं बताया जाता, किन्तु विषय-वस्तु के आधार पर उनका वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक या सामाजिक आदि रूपों में किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



नाट्य-साहित्य के निर्माण में समय की अनुकूलता और अभिनेय प्रदर्शन के साधनों की सुविधा दृष्टि से इधर जो परिवर्तन हुए हैं उसे पाश्चात्य अनुकरण माना जा रहा है परन्तु वास्तव में यह अनुकरण का परिणाम नहीं है। साहित्य पर युग की छाप पड़ती है फिर भी साहित्य की धारा वही रहती है। यह एक गड्ढे में एकत्र जल की भाँति प्रवाहहीन नहीं हो सकती। स्वयं पश्चिम ने भी युग के साथ नाट्य-शैली में परिवर्तन करना उचित समझा है। किसी देश का साहित्य अपने युग की प्रवृत्तियों के प्रभाव से अछूता नहीं बच सकता। पाश्चात्य आलोचक ड्राइडेन के इस कथन का भी यही भावार्थ है। "To judge rightly of an author, we must transport ourselves to his time and examine what were the means of his contemporaries and what were his means to supply them." अतः आधुनिक एकाङ्कियों को पाश्चात्य कला का अनुकरण नहीं अपितु प्राच्यलघु-नाट्य का नवीनीकरण कहना ही उपयुक्त होगा।

वस्तुतः नवीनता वस्तु में (Matter) नहीं रहती। वह तो ध्रुव पदार्थ है, जिसकी स्थिरता नष्ट नहीं होती। हाँ, उसके बाह्य रूप में परिवर्तन हो सकता है। जिस प्रकार मिट्टी, लोहा, सोना इत्यादि पदार्थ सर्वत्र एकसे रहते हैं और कुम्भकार, लौहकार, स्वर्णकार क्रमशः उनसे भाँति-भाँति की वस्तुएँ तैयार कर उपभोक्ताओं का मन मोह लेते हैं। उसी प्रकार विद्वत्समाज में भी कवि वाग्देवता सरस्वती की कृपा से प्रकृत वस्तु को मनोहर रूप प्रदान करते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के छठे अध्याय में "सर्वं खल्विदं तज्जलानीति" की व्याख्या के प्रसङ्ग में इस तथ्य की ओर सङ्केत दृष्टिगत होता है।[1] साहित्यशास्त्रियों ने भी "ग्रथन-कौशल" को ही अभिनवता का कारण बतलाया है। "त एव पद विन्यासास्ता एवार्थ-विभूतयः। तथापि नव्यं भवति काव्यं ग्रथनकौशलात्॥" "नवावाणी मुखे मुखे" "To present old wine in new bottle" जैसी क्रमशः प्राच्य तथा पाश्चात्य लोक में प्रचलित लोकोक्तियाँ भी वाणी के विकास को ही प्राकृत में परिवर्तन का कारण बतलाती हैं। तदनुसार पुराने आदर्शों को ही नया जामा पहिना कर हम उन्हें नया रूप दे देते हैं।

---

१- छान्दोग्योपनिषद्- ६-१, ४-५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD



साम्प्रतिक संस्कृत नाट्य-साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि प्राचीन नाट्योद्यान में आधुनिक दृष्टि से जो विषय की विभिन्नता का अभाव बुरी तरह खटकता था, उसे नवीन रूपककारों ने दूर करने का प्रयास किया है। इसका कारण स्पष्ट है। नवयुग के आने पर नवीनता की अभिलाषा कवि या लेखक में भी बढ़ती है और पाठक में भी। पुरानी वस्तु से मनुष्य का मन ऊब उठता है। आधुनिक विज्ञान प्रसार के साथ-साथ विभिन्न देशों से भारतीयों का आदान-प्रदान द्रुतगति से बढ़ता जा रहा है। इस कारण आज अंग्रेजी, बँगला आदि की श्रेष्ठ कृतियों के अनुवादों से संस्कृत के एकाङ्कियों में न केवल भाव परिवर्द्धन हुआ वरन् भाषा में भी नवीनता तथा विदेशी शब्दों की वृद्धि हुई। हम देख चुके हैं कि नव-विचारागमन के फलस्वरूप हिन्दी, बँगला, मराठी आदि भारतीय भाषाओं की भाँति संस्कृत पर भी अंग्रेजी के शब्द समूह का प्रभाव बढ़ने लगा है। उसे सुबोध बनाने का यत्न भी किया जा रहा है। संस्कृत नाट्यतंत्र में परिवर्तन और भाषा में मिश्रण अभिनव विकास का ही परिणाम है। सभ्यता के विकास मार्ग में मौलिक वस्तु के साथ साथ दूसरों की सहायता से प्रगति करने की भावना मनुष्यों में रहती है। मानव समाज की यह मनोवृत्ति स्वास्थ्यप्रद तो होती है किन्तु यह तभी उपयोगी सिद्ध हो सकती है जब तक इसका उपयोग पौष्टिक आधार के रूप में किया जाता है। इसके विपरीत बाजार भाव से मूल्याङ्कन करने पर अच्छी से अच्छी वस्तु का मोल बढ़ने के स्थान पर घटने लगता है। यही बात साहित्य के क्षेत्र में भी लागू होती है।

अपनी काव्य-कृति को रमणीयता प्रदान करने की भावना से बाहर से भी अच्छी वस्तु ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है परन्तु पाश्चात्य प्रणाली की कट्टरता के कारण संस्कृत के एकाङ्की आत्मा से शून्य प्रतीत हो सकते हैं। जहाँ आधुनिक एकाङ्कियों का प्राचुर्य संस्कृत के एकाङ्की संसार के उज्जवल भविष्य का द्योतक है, वहाँ कोरे अनुकरण के कारण अपने क्षेत्र के अपकर्ष का कारण भी हो सकता है। प्रतिभा कोरा अनुकरण नहीं करती, इसे ध्यान में रखते हुए साम्प्रतिक नाट्य निर्माताओं को शुद्ध अनुकरण के स्थान पर विभिन्न क्षेत्रों से अच्छी वस्तुओं का चयन करके भारतीय नाट्य की आत्मा की रक्षा करते हुए उन्हें अपना लेना चाहिये। श्री पॉल स्टार्म नामक डच नाट्यविद ने भी किसी सभा में जो उद्गार प्रगट किये थे उसका सारांश है कि भारतीय नाट्य की श्री-वृद्धि पश्चिम के अनुकरण से नहीं हो सकती। उनका कथन है कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



हमें भारतीय नाटकों में आधुनिक नाट्य-तन्त्रों को यथोचित स्थान देकर पुरातन प्रयोग-प्रधान कला का ही पुनरुद्धार करना चाहिये। संस्कृत के कतिपय सिद्धान्तों एवं शैलियों को भी स्वीकार किया जा सकता है। नाट्य में गीत, संगीत तथा नृत्य के अन्तर्न्यास (insertion) के स्थान पर इन्हें समग्र-रूपेण स्थान (integration) दिया जाना चाहिये। श्री पॉलस्टार्म के अनुसार भारतीय नाटकों की आकृति की सादगी अभिनय में लालित्य, नेपथ्य रचना में विचित्रता का बाहुल्य तथा मञ्चीय प्रकाश सज्जा के प्रसङ्ग में कल्पना का प्राधान्य मुख्य रूप से अपेक्षित है।[१]

## प्राच्य तथा पाश्चात्य नाट्य–रचना संविधान

प्राच्य नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक के तीन मूल तत्व माने गये हैं—वस्तु, नायक और रस। इन्हीं तीन तत्वों को आधार बनाकर नाट्य-कला का विवेचन किया गया है। जबकि पाश्चात्य नाटकों में ६ तत्व माने गये हैं—वस्तु पात्र, कथोपकथन, देश, काल, शैली और उद्देश्य।

१. वस्तु—नाटक रचना किसी प्रसिद्ध घटना या वृत्तान्त को ध्यान में रखकर ही की जाती है। इनमें जब जनसाधारण के जीवन में और व्यक्ति विशेष के जीवन-क्रम में कुछ विशेषता दिखाई पड़ती है और वह श्रोतव्य या दर्शनीय प्रतीत होती है, तब कोई कवि उसे अपनी रचना अथवा कल्पना का आधार बना लेता है।

---

१ Mr. Paul storm, Dutch expert on Drama who is conducting a Drama course in the Kala Kshetra, said in a press interview recently that he did not believe that Indian stage could enrich itself by imitating Europe. "Be your own" he said, "that best would be to revive old Indian drama using modern techniques. That would be a good beginning. The styles and some of the principles of Sanskrit stage could be adopted. Song, music and dance should be light without boring didacties." He further added that acting should be more styled and Indian Plays should have less or no scenery but more and more colourful costumes and more imaginative stage lighting."

Quoted from Sanskrit Rang Annual, III (Madras).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MBI



२. **पात्र**—घटनाओं अथवा विशिष्ट कार्यों (व्यापारों) का सीधा सम्बन्ध मनुष्यों से होता है जो सभी परिस्थितियों में अपनी निश्चित् कार्य-शृङ्खला बनाये रखते हैं अर्थात् कार्य सम्पादन में गति अवरोध नहीं आने देते। नाटक में घटना से सम्बद्ध कार्य-शृङ्खला के सम्पादक पात्र कहे जाते हैं।

३. **वार्तालाप या कथोपकथन**—पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला नाटक में वर्णित व्यक्तियों का पारस्परिक संभाषण होता है और उसके इस संभाषण को ही कथोपकथन कहा जाता है।

४. **देश काल**—लेखक को अपनी रचना में काल और देश का ध्यान रखना पड़ता है। रङ्गमञ्च के लिये तदनुसार वेश-भूषा का ध्यान अभिनेता को रखना पड़ता है अर्थात् अभिनय की घटना का सम्बन्ध जैसे काल से है, उस समय देश की वेश भूषा क्या थी ?

५. **उद्देश्य**—नाटक में लेखक अपने जीवन सम्बन्धी अनुभूतियों को परोक्ष रूप में व्यक्त करता है, इसके लिये वह अपने विचारों के अनुसार घटनाओं का क्रम स्थापन, पात्रों के राग, भाव आदि का प्रदर्शन तथा वस्तु-निर्देश इस ढँग से करता है, जो उसके अपने सांसारिक भाव और जीवन के लक्ष्य को प्रकट करने में समर्थ हों। यही उसकी रचना का उद्देश्य होता है।

भारतीय शास्त्रकारों के तीन तत्वों में से वस्तु-तत्व की पश्चिम के वस्तु-तत्व से पूर्ण समानता है। द्वितीय तत्व के अन्तर्गत पश्चिम का कथोपकथन एवं देश काल भी आ जाता है। तृतीय तत्व, रस को काव्य (नाटक) की आत्म माना गया है, अतः इसका विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। किन्तु मनोवेग-भाव चाहे रसावस्थापन्न हो या उसका पूर्व रूप हो, उसका आग्रह पाश्चात्य साहित्य में नहीं होता। भारतीय नाट्य-रचना-संविधान में उपर्युक्त नाटक तत्वों के अतिरिक्त तीन और बातों पर भी विचार किया गया है। (१) अर्थ प्रकृति (२) अवस्था (३) सन्धि। नाट्य-लक्षण-ग्रन्थों में उपलब्ध इनकी पृथक् व्याख्या को ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि इन तीनों के अलग-अलग पाँच-पाँच भेद होते हैं। अवस्थाएँ कार्य-शृङ्खला की विभिन्न स्थितियों की द्योतिका अर्थप्रकृतियाँ कथा-वस्तु के तत्वों की सूचिका तथा सन्धियाँ नाटक रचना के विभागों की निर्दशिका होती हैं। यद्यपि यह एक ही अर्थ की सिद्धि करती है परन्तु भारतीय नाट्य-शास्त्र में इनका नामकरण एवं विवेचन भिन्न-भिन्न दृष्टियों से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL



किया गया है जिसके अनुसार एक में कार्य का, दूसरी में तथ्य का तथा तीसरी में नाट्य रचना का ध्यान रखा जाता है। ये तीनों तत्व अपने पाँच-पाँच भेदों सहित एक दूसरे के सहायक होकर नाटक में आते हैं। इनका पारस्परिक सम्बन्ध निम्नाङ्कित सारिणी से स्पष्ट हो जायेगा।

| वस्तु तत्व (अर्थ प्रकृति) | कार्य व्यापार की अवस्था | सन्धि |
|---|---|---|
| १. बीज | प्रारम्भ | मुख |
| २. विन्दु | प्रयत्न | प्रतिमुख |
| ३. पताका | प्राप्त्याशा | गर्भ |
| ४. प्रकरी | नियताप्ति | विमर्श |
| ५. कार्य | फलागम | निर्वहण |

योरोप के नाट्य-शास्त्र-विवेचकों ने अर्थ-प्रकृति एवं सन्धियों के विषय में कोई विवेचन नहीं किया, यद्यपि कार्य व्यापार की अवस्थाओं को उन्होंने माना है। आधुनिक नाटक-कथाओं का मूल तत्व किसी न किसी प्रकार का विरोध दिखलाना होता है। तदनुसार नाट्य में दो विरोधी भाव-पक्ष, सिद्धान्त या दल दिखलाये जाते हैं। इन विरोधों के चढ़ाव-उतार और उतार-चढ़ाव के साथ कथा-वस्तु विकसित होती जाती है। नाटकों में जहाँ विरोध और संघर्ष आरम्भ होता है मानो वहीं से कथावस्तु आरम्भ होती है। विरोध या संघर्ष का परिणाम प्रकट होते ही कथा-वस्तु का विस्तार समाप्त हो जाता है। घटनाओं की प्रगति के इस क्रम को इस प्रकार अङ्कित किया जा सकता है—आरम्भ–विरोध–चरमसीमा–निर्गति–समाप्ति। आरम्भ नायक की ओर से और विरोध प्रतिनायक की ओर से होता है। अतः विजय किसकी होगी यह बतलाना कठिन हो जाता है। इस प्रकार हमारे भारतीय नाटकों की पाँच कार्यावस्थाओं को पाश्चात्य नाट्य शास्त्री प्रारम्भ (प्रोतासिस), परिणाम की ओर जाने वाला मुख्य कार्य (एपितासिस) चरमोत्कर्ष तक पहुँचा देने वाला व्यापार (गतास्तासिस) और संघर्ष का ह्रास (डिनाउन्समेण्ट) और उपसंहार (कतास्त्रोफी) आदि के रूप में स्वीकार करते हैं। उद्देश्य की दृष्टि से पूर्व और पश्चिम में अन्तर है।

भारत में नाटकों की रचना का उद्देश्य था, धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि द्वारा आनन्द प्राप्त करना। तदनुसार कार्य व्यापार की पाँच अवस्थाओं के विभागों में भी भिन्नता पाई जाती है। प्रथम अवस्था आरम्भ कहलाती है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE-IKS



जो किसी उत्कण्ठित फल के लिये उत्पन्न होती है। द्वितीय अवस्था यत्न है, जो उत्कण्ठित फल को पाने के लिये किया जाता है। तीसरी अवस्था प्राप्त्याशा है, जिसके अनुसार फल के मिलने की आशा हो जाती है। चतुर्थावस्था नियताप्ति कहलाती है, इस अवस्था से फल प्राप्ति का मार्ग निष्कण्टक हो जाता है। फल की प्राप्ति हो जाने को फलागम कहते हैं, यही पाँचवीं अवस्था है।

इन पाँच अवस्थाओं के अनुसार भारतीय नाटकों में विरोधों का ही प्राधान्य नहीं होता। हाँ, उद्देश्य सिद्धि के लिये वे गौण रूप में मार्ग में विघ्न उपस्थित होते हैं। हाँ, यत्न और सफलता का महत्त्व अवश्य है।

सस्कृत के एकाङ्की आकार में छोटे होते हुए भी वर्तमान नाटक के स्थानापन्न रूपक के विभिन्न भेदों के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं इसके लिए नाट्यशास्त्र-सम्मत सामान्य सिद्धान्त ही स्थिर किये गये हैं, परन्तु लघु रूपकों के लिए आवश्यकतानुसार यह नियम-बन्धन ढीला किया जा सकता है। इसके विपरीत पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित विद्वान् एकाङ्की को एक स्वतन्त्र नाट्यकला मानते हैं। पूर्व और पश्चिम की इस कला के अन्तर को प्रस्तुत कोष्ठक चित्र द्वारा समझना सुकर होगा।

| संस्कृत के रूपक | आधुनिक नाटक | आधुनिक एकाङ्की |
|---|---|---|
| १—नायक विशिष्ट गुणों से सम्पन्न होना चाहिए—(उदात्त, उद्धत, प्रशान्त या ललित) | १—नायक में किन्हीं विशिष्ट गुणों की आवश्यकता नहीं समझी जाती। सामान्य व्यक्ति भी नायक बनाये जा सकते हैं। | १—एकांकी में जीवन की एकरूपता की झाँकी। |
| २—रस का प्राधान्य चाहिए। | २—रस की अपेक्षा मनोविज्ञान की प्रधानता आवश्यक होती है। | २—अन्तर्द्वन्द्व मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



| संस्कृत के रूपक | आधुनिक नाटक | आधुनिक एकांकी |
|---|---|---|
| ३–कथा में संघर्ष केवल मध्य तक ही होना चाहिए उसके वाद नायक की विजय स्पष्ट दिखलानी चाहिए अर्थात् इसमें क्लाथ-मेक्स के लिये स्थान अपेक्षित नहीं है। | ३–कथा में संघर्ष अन्त तक अपेक्षित है। | ३–कथा के आवश्यक भाग की उपेक्षा वस्तु के अनुसार ही कथा की आवश्यक सृष्टि। |
| ४–चरित्र की अपेक्षा सत्य और न्याय सिद्धान्त की प्रधानता होनी चाहिये। | ४–विविध चरित्र चित्रण और चरित्र का विश्लेषण प्रमुख रूप से होना चाहिए। | ४–पात्रों की परिमितता और चरित्र की तीव्र एवं संक्षिप्त रूप रेखा। |
| ५–अन्तिम निष्कर्ष आदर्शवाद ही है। | ५–यहाँ यथार्थवाद ही अन्त का परिणाम है। | ५–यथार्थवाद. |
| ६–नाटक में दुःखद दृश्यों का प्रदर्शन वर्जित। | ६–आधुनिक नाटकों की विशेषता ही दुःखान्त नाटक है। | ६–सुखान्त दुःखान्त के प्रतिबन्ध से मुक्त. |
| ७–अनेकांकी और एकांकी दोनों हो सकते हैं। | ७–अनेकांक (दृश्यविभाजन सहित) | ७–एक ही अंक |
| ८–रङ्गमञ्च की व्यवस्था संकेतात्मक. | ८–वैज्ञानिक कलात्मक | ८–वैज्ञानिक, कलात्मक किन्तु संक्षिप्त. |
| ९–कथा का साङ्गोपाङ्ग विस्तृत विकास. | ९–कथानक की घटना विस्तार से मन्द गति. | ९–कथानक की घटना न्यूनता से क्षिप्र गति. |
| १०–वर्णनात्मकता का आधिक्य. | १०–व्यञ्जनात्मकता का प्राचुर्य | १०–व्यञ्जनात्मकता और प्रभावोत्पादकता का आधिक्य. |

## संस्कृत के एकाङ्कियों की अभिनेयता

भरत के नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में विकृष्ट (लम्बा आयताकार) चतुरस्र (वर्गाकार) और त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) इन तीन प्रकार के मञ्चों के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD



विशद वर्णन को देखने से संस्कृत नाटकों पर अभिनेयता का आरोप निर्मूल प्रतीत होता है। अभिनव भारती से यह सूचना भी मिलती है कि संस्कृत के भाण, प्रहसन, व्यायोग, अङ्क आदि सामाजिक एकांकी (जिनमें प्राकृत जनों का चरित्र चित्रित होता है) त्र्यस्र नामक प्रेक्षागृह में ही खेले जाते थे।[1] इन विवरणों से स्पष्ट है कि भारत में नाट्य-वेद की रचना के साथ-साथ रङ्ग-मञ्च की भी प्रतिष्ठा बहुत पहले हो गई थी और दोनों का विकास साथ ही साथ हुआ था।

भरत ने नाट्य का महत्व बतलाते हुए "न संयोगो न तत्कर्म..." इत्यादि में प्रयुक्त कर्म शब्द द्वारा इसकी मञ्चीय उपयोगिता की ओर संकेत कर दिया है यहाँ कर्म शब्द से उनका तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई व्यापार नहीं है जिसे मञ्च पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता।[2] इस प्रकार प्रेक्षागृह विषयक शास्त्रीय चर्चा तथा प्राप्त छोटे और बड़े दोनों प्रकार के रूपकों की प्रस्तावना में शताब्दियों पहिले उनके अभिनीत होने की सूचना को देख कर संस्कृत के रूपकों पर अभिनेयता का आरोपण न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता। आज प्राचीन भाणों और प्रहसनों की उपेक्षा का कारण शास्त्रीय दृष्टि से नहीं परन्तु सामाजिक दृष्टि से उनकी अनभिनेयता को ही समझना चाहिये। अभिनय के मार्ग की इन कठिनाई को ध्यान में रख कर यत्किञ्चित् संशोधनों के साथ आज भी इस कोटि की रचनाएँ हो रही हैं। व्यायोग एवं अंक तो अपने प्राचीन रूप में भी प्रदर्शित किये जा सकते हैं।

---

१- शेषास्तु प्रकृतयो भाणप्रहसनादौ यच्च वक्ष्यति ... ...
विविधाश्रयोहि भाणो ... (ना० शा० १८)
... तथा 'भगवत्तापस-विप्रैरन्यैरपिच' (ना० शा० १८)
इत्यादि। एवं भूतप्रकृतिप्रधाने प्रयोगे कनीयः-प्रमाणो मण्डपः इति।
एषां मण्डपानां (२) मध्ये यो विनिर्णय एव सर्वं साधारणः
मध्ये मण्डपे नाटक-भाण-प्रयोगात् ...अभिनव गुप्त ना० शा० द्वितीय अध्याय भाग १
पृष्ठ ५०-५१ गा० ओ० सी०

२- न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥
ना० शा० १, ११७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



पुराने नाट्य भवनों के ध्वंसावशेषों के प्राप्त न होने के कारण ही साहित्यिक जगत में कई आपत्तियाँ उठाई जाती हैं। उनके प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि भारतीय जीवन का धर्म से अभिन्न सम्बन्ध अद्यावधि रहा है। वड़े और छोटे नाटकों का अभिनय प्रायः धार्मिक उत्सवों के उपलक्ष में ही होता आया है। देवी देवताओं की पूजा के बाद अथवा शादी-विवाह आदि के उपरान्त स्थापित मूर्ति, देवी एवं अस्थायी मण्डपों का विसर्जन करने की प्रथा की भाँति रूपकों का खेल समाप्त हो जाने पर रङ्ग-सज्जा के साधनों को प्रयोग स्थल से हटा देने की रीति भी प्रचलित रही होगी। आज भी भाषण अथवा वार्षिकोत्सव के प्रसंग में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम की समाप्ति के उपरान्त लोगों को हम ऐसा ही आचरण करता पाते हैं। भारतीय नाट्य के इतिहास में जन नाटकों के उल्लेखों और उनके साक्षात् प्रयोगों को देखकर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि आज की तरह समयानुसार अस्थाई मञ्चों की व्यवस्था पहिले भी की जाती रही होगी।

आधुनिक रङ्ग-सज्जा को न तो कोई नाम दिया जा सकता है न उसके रङ्ग-विधान एवं रङ्ग-दीपन के कौशल के अनुसार उनकी व्याख्या की जा सकती है। आज लोगों की मनोवृत्ति स्वाभाविकतावाद की ओर प्रेरित करने की है। इसके लिये नाटकों में चलचित्र, ध्वनि-यन्त्र (ग्रामोफोन) आदि की सहायता भी ली जाने लगी है।

आज अभिनय के लिये नाटकों का निर्वाचन करते समय वे ही नाटक चुने जाते हैं जो इस युग की माँग की पूर्ति करने के साथ-साथ मञ्च पर सुगमता से प्रदर्शित किये जा सकते हों, फिर चाहे वे पुराने हों या नये। इसी दृष्टि से प्रायः एकांकी की रचना को और उसमें भी एक दृश्यपीठ वाले एकांकी को विशेष महत्व दिया जाने लगा है। जबसे इनका प्रयोग चल पड़ा है तब से रङ्ग-पीठ की जटिलता भी कम हो गई गई है। इनके लिये छोटे रङ्ग-मञ्च की ही आवश्यकता है। एतदर्थ एक पेटिका रंगपीठ (वाक्स स्टेज) जो तीन ओर से वन्द रहता है और इन्हीं तीन पक्षों में रंगपीठ पर आने-जाने के केवल द्वार भर रहते हैं ही श्रेयस्कर समझा जाता है। ऐसे रंग-मञ्च ही सामाजिक नाटकों के लिये अधिक अनुकूल होते हैं जिनमें वैठक के दृश्य में दिखाए जाने वाले घरेलू सामाजिक या समस्या नाटक खेले जाते हैं और इसके अतिरिक्त मोनो सैटिंग स्टेज की ओर भी लोगों का झुकाव है। पात्रों के प्रसाधनों में नए आविष्कार के साथ वस्त्राभूषण आदि के नाम भी बदल चुके हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



प्राचीन एवं अर्वाचीन एकांकी कला की तुलनात्मक मीमांसा के आधार पर यही सिद्ध होता है कि देश काल के भेद के कारण अपनी रीति की कुछेक विशेषताओं के रहते हुए भी प्राच्य तथा पाश्चात्य एकांकी के मूलभूत सिद्धान्तों में विशेष अन्तर लक्षित नहीं होता। हम देख चुके हैं कि प्रायः मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही प्राच्य और पाश्चात्य एकांकियों का भेदक गुण बतलाया जाता है। प्रस्तुत प्रवन्ध में प्रसंगानुसार यह सिद्ध करने का प्रयास किया जा चुका है कि पात्रों के हृदयस्थ भावों से सम्बन्ध होने के कारण संस्कृत एकांकियों के मुख्य तत्त्व रस का सम्बन्ध भी मनोविज्ञान से ही होता है। अन्तर्द्वन्द्व की झलक भी अङ्क और व्यायोग में दिखलाई जा चुकी है।

इस प्रकार दोनों ही दिशाओं में एकांकी साहित्य के प्रणयन का मुख्य उद्देश्य मनोरञ्जन के साथ-साथ लोक-शिक्षण ही रहा है। इसकी पूर्ति के लिए युग-युगान्तर से विश्व साहित्य में प्रयत्न होता आया है। ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार पूर्व में संस्कृत एकांकियों के विभिन्न भेदों के रूप में इसका सूत्रपात ईसा से बहुत पहले हो चुका था। सृष्टि के विकासक्रम में उत्थान-पतन की क्रिया निरन्तर होती रहती है जिससे मानव जीवन की सजीव व्याख्या करने वाला नाट्य साहित्य भी प्रभावित होता रहा है। पश्चिम के देशों में भी नाटक-साहित्य की उत्थान-परम्परा में गीति-नाट्य साहित्य का ध्यान नाटकों ने ईसा की अठारहवीं शताब्दी में ही ग्रहण किया। हाँ, इंग्लैण्ड के नाटक साहित्य का विकसित रूप अवश्य, इससे ३०० वर्ष पहिले प्राप्त होता है, जिसकी तुलना हम भारत के विश्व विख्यात महाकवि कालिदास से कर सकते हैं।

नार्वेजियन नाट्यकार हेनरिक इब्सन की क्रान्तिकारी प्रतिभा ने योरप के नाट्य-शास्त्र की प्राचीन रूढ़ियों का परित्याग कर नाटक साहित्य के लिये कृत्रिमतारहित वातावरण तैयार किया। एक सच्चे कलाविज्ञ की भाँति उसने रूपक के अभिनय का यथार्थ जीवन से सामञ्जस्य बतालाया तथा दैनिक जीवन की सामाजिक घटनाओं को अपनी रचना का विषय बनाकर वातचीत का स्वाभाविक एवं मार्मिक चित्र अंकित किया। उनकी इस नवीन प्रवृत्ति ने समस्त योरोप के साहित्यिकों को रचना शैली और विचार धारा का अनुकरण करते हुए अपना नाट्य साहित्य रंगमंच के लिए प्रस्तुत किया। यह साहित्य छोटे-छोटे नाटकों के रूप में था। विषय भी युग की गति-विधि का प्रतिनिधित्व करते थे। अतः विबुधों की मण्डली में इनकी रचनाओं और शैली का पूर्ण आदर हुआ। पश्चिम का साहित्य जहाँ जहाँ अंग्रेजी का प्रचार था, पहुँचा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



भारत भी ऐसे ही देशों में था। आयरलैण्ड और भारत की स्वतन्त्रता संग्राम की भूमिका प्रायः एक-सी ही थी। अतः दोनों देशों के समसामयिक साहित्यिकों के बीच भावनात्मक एकता के फलस्वरूप उत्पन्न समान विचार-धारा का प्रभाव नाट्य-साहित्य के रूप पर पड़ा हो तो उसमें आश्चर्य की बात नहीं। रचना शैली में परिवर्तन तो प्रत्येक युग में होते आये हैं और होते रहेंगे।

साहित्य जगत में एकाङ्की-विषयक भ्रम फैलाने के कारण जो भी रहे हों, ऊपर प्रस्तुत किये गये प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवाद है कि ऐतिहासिक दृष्टि से एक अङ्क में निबद्ध होने वाले नाटक साहित्य में नवागन्तुक नहीं है। प्राचीन संस्कृत और प्राकृत साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा छूट जाने के कारण भारतीयों का अपने इतिहास और संस्कृति को भूल कर प्रत्येक वस्तु के लिये पश्चिम से ही प्रेरणा करना कोई विस्मय की बात नहीं। योरप को भी संस्कृत भाषा और उसके साहित्य का ज्ञान पहले-पहल ईसा की १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। वहाँ लोग गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित भास के नाटकों से तो और भी पीछे अर्थात् १६१२-१६१५ में परिचित हुए। भरत के नाट्य-शास्त्र का अध्ययन भी योरप में १६ वीं शदी के अन्त में हुआ। अतः जहाँ एक ओर आत्मीयतावश यह मानना युक्तिसङ्गत न होगा कि पश्चिम में एकाङ्की नाटकों का प्रचार भारत से प्रेरणा पाकर हुआ वहाँ दूसरी ओर यह विचार भी हास्यास्पद ही प्रतीत होगा कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रचलित एकाङ्की नाटक योरोप की देन हैं। वास्तविकता तो यह है कि संस्कृत साहित्य में बिखरे हुये एकाङ्कियों पर किसी की सहानुभूति पूर्ण दृष्टि ही अभी तक नहीं पड़ी है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



## सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची


| | |
|---|---|
| अग्निपुराण | |
| अभिनय-दर्पण | नन्दि-केश्वर |
| अभिज्ञान-शाकुन्तल | कालिदास |
| अभिनव-भारती | अभिनवगुप्त |
| अभिनव नाट्यशास्त्र | पं. सीताराम चतुर्वेदी |
| आधुनिक साहित्य | पं. नन्ददुलारे वाजपेयी |
| ऋतुसंहार | कालिदास |
| ऋग्वेद संहिता | |
| एकांकी कला | डॉ. रामकुमार वर्मा |
| कथासरित्-सागर | सोमदेव |
| कठोपनिषद् | |
| कर्पूरमंजरी | राजशेखर |
| कामसूत्र | वात्स्यायन (चौखंभा प्रकाशन) |
| कादम्बरी | बाणभट्ट |
| काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति | वामन |
| काव्यालंकार | भामह |
| काव्यलंकार | वाग्भट्ट |
| काव्यशास्त्र | डॉ. भागीरथ मिश्र |
| काव्यमीमांसा | राजशेखर |
| काव्यप्रकाश | मम्मट |
| काव्यानुशासन | हेमचन्द्र (काव्य माला सीरीज) |
| काव्यशास्त्रीय निबन्ध | डॉ. सत्यदेव चौधरी |
| किरातार्जुनीय | भारवि |
| कुमारसम्भव | कालिदास |
| कुट्टनीमत | दामोदर गुप्त |
| कौटिलीय अर्थशास्त्र | कौटिल्य |


Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDL




| | |
|---|---|
| छान्दोग्योपनिषद् | |
| दशकुमारचरित | दण्डी |
| देवीपुराण | |
| ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन) | सं. डॉ. नगेन्द्र |
| नाट्यदर्पण भाग १ | रामचन्द्र |
| नाटक की परख | डॉ. एस. पी. खत्री |
| नाट्यालोचन | त्रिलोचनादित्य उपाध्याय |
| नाटक तथा भारतेन्दुग्रन्थावली | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र |
| नाटकलक्षण रत्नकोश | सागरनन्दी |
| नाट्यकमा मीमांसा | सेठ गोविन्ददास |
| नाट्यशास्त्र | पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी |
| नीति शतक | भर्तृहरि |
| रसगङ्गाधर | जगन्नाथ |
| रस-सिद्धान्त | डॉ. नगेन्द्र |
| रसार्णव सुधाकर | शिङ्गभूपाल |
| रघुवंश | कालिदास |
| रङ्गमञ्च और नाटक की भूमिका | श्री लक्ष्मीनारायण लाल |
| रूपक-रहस्य | श्यामसुन्दरदास |
| रूपकशतक | गा. ओ. सी. प्रकाशन |
| वर्णन-रत्नाकार | ज्योतिरीश्वर (सं. सुनीतिकुमार) |
| वाल्मीकीय रामायण | |
| विक्रमोर्वशीय | कालिदास |
| वेणीसंहार | भट्टनारायण |
| शिशुपाल धव | माघ |
| संस्कृत साहित्य का इतिहास | वी. वरदाचार्य |
| संस्कृत साहित्य का इतिहास | पं. बलदेव उपाध्याय |
| संस्कृत साहित्य का इतिहास | वाचस्पतिगैरोला |
| संस्कृत साहित्य की रूपरेखा | श्री नानूराम व्यास |
| संस्कृत नाट्य साहित्य | डॉः जयकिशनप्रसाद खंडेलवाल |


Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



| | |
|---|---|
| साहित्यालोचन | श्यामसुन्दरदास |
| सिद्धान्त कौमुदी | भट्टोजि दीक्षित |
| हर्षचरित | बाणभट्ट |
| हमारे नाटककार | राजेन्द्रसिंह गौड |
| हमारी नाट्य साधना | राजेन्द्रसिंह गौड |
| हिन्दी नाटकों का इतिहास | सोमनाथ गुप्त |
| हिन्दी नाट्य-साहित्य और रङ्गमञ्च की मीमांसा | कुँवर चन्द प्रकाशसिंह |
| हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन | शान्तिगोपालसिंह |
| हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव | श्रीपति शर्मा |
| हिन्दी साहित्य में हास्यरस | डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी |
| हिन्दी नाटकों का इतिहास | सोमनाथ गुप्त |
| हिन्दी एकांकी-उद्भव और विकास | डॉ. रामचरण महेन्द्र |
| हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष | शिवदानसिंह चौहान |
| नैषधीयचरित | श्री हर्ष |
| पातञ्जलयोगसूत्र | श्री हर्ष |
| प्रियदर्शिका | श्री हर्ष |
| प्रबोध-चन्द्रोदय | श्री हर्ष |
| प्रबन्ध-कोश | राजेन्द्र सूरि |
| वंगीय नाट्य-शालार इतिहास | व्रजेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय |
| बांगला नाटकेर धारा | वैद्यनाथ शील |
| बांग्ला साहित्येर इतिहास खण्ड ४ | श्री सुकुमार सेन |
| बिहारीबोधिनी | श्री सुकुमार सेन |
| भरतकोश | म. रामकृष्ण कवि (एस. बी. ओ. सी.) |
| भरत: नाट्यशास्त्र नाट्यशालाओं के रूप | डॉ. रामगोविन्दचन्द्र |
| भारतीय नाट्य-शास्त्र | गा. ओ. सी. प्रकाशन |
| भारतीय तथा पाश्चात्यरङ्गमञ्च | पं. सीताराम चतुर्वेदी |
| भारतीय लोक साहित्य | श्याम परमार |
| भारतीय नाट्य-परम्परा | डॉ. नगेन्द्र |
| भारतीय साहित्य की विशेषताएं | डॉ. प्रेम नारायण टण्डन |
| भारतीय युगीन नाट्यसाहित्य | डॉ. भानुदेव शुक्ल |

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MD...




| | |
|---|---|
| भावप्रकाश | शारदातनय |
| भागवत पुराण | गीताप्रेस गोरखपुर |
| भासनाटकचक्र | सं. गणपति शास्त्री |
| महाभारत | सं. { विद्यासागर पि. पि. सुब्रह्मण्य शास्त्री |
| मराठी नाटक आणि रंगभूमि | बा. ल. कुलकर्णी |
| मराठी वाङ्मयीन टीका आणि टिप्पणी | वा. ल. कुलकर्णी |
| मालविकाग्निमित्र | कालिदास |
| मृच्छकटिक | शूद्रक |
| मेघदूत | कालिदास |
| मैथिली साहित्य का इतिहास | डॉ. जयकान्त मिश्र |
| A Bibliography of Modern Sanskrit Plays. | Dr. V. Raghyan |
| A History of Sanskrit Literature | Kunhan Raja |
| An Apology of Poetics | Philip Sidney |
| Aspects of Sanskrit Literature | S. K. De. |
| Bibliography of the Sanskrit Drama | Montogomery Schuyler |
| Bhoja's Srngara Prakasa | Dr. V. Raghvan |
| History of British Drama | Ardice Nicall |
| History of Sanskrit Literature Vol. I | De and Das Gupta |
| History of Poetics | P. V. Kane |
| Humour and Humanity | Stephen Leacock |
| Indian Theatre | C. B. Gupta |
| Indian Theatre | Yangnik |
| Origin of Drama | H. H. Wilson |
| Origin of Drama | Sten Konow |
| Sanskrit Drama | Dr. Keith |
| Survey of Sanskrit Literature | Chaitanya |
| The craftmanship of one Act Play | Percival Wilde |
| The Laws & Practice of Sanskrit Drama | Prof. S. N. Shastri |
| Theory of Drama | Ardice Nicall |
| Types of Drama | Dr. Mankad |
| Types of Drama | R. V. Jagirdar |


Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI



## MAGAZINES

1. A Descriptive Catalogue of the Sanskrit Manuscripts (In the Government Oriental Manuscripts Library, Madras).
2. Catalogue of Sanskrit & Prakrit Manuscripts. Dr. Keith
3. Centenary Supplement of J. R. A. S. 1924.
4. Sanskrit Pratibha 1949—1965.
5. Sanskrit Sahitya Parishat Volume 40, April, 1961.
6. The Journal of the Bihar Research Society 1950, Vol. 34.
7. The Sanskrit Ranga Annual I ) Madras.
8. The Sanskrit Ranga Annual II ) Madras.
9. The Sanskrit Ranga Annual III) Madras.
10. The Poona Orientalist Vol. XVI, 1951.

—o—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वाल्मीकि विद्यापीठ-पुस्तकालयः
क्रि.नं. १८८८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDI

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIL

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu